### frem stadt fereferen.

वेद्येर्निकायम्बर् वेद ही समस्त धर्म का मूल है।

सरम् भूते सहस्य करने धीर समत्य के के अपने में सर्व ना उच्चत रहता काहिए नहाँच वसागन्द

वयागन्दास्त • 162

सुब्दि सम्बत् 1972949087

ब्रधवार 15 मन्नेल 1987 य स -43338/84 II

द्यार्य समाज, अवमेर का हिन्दी पाक्षिक पत्र "बार्य हवारा नाम है, वेद हमारा पर्म । क्रोइम् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ॥"

धमय भित्रादमयम् अभित्रादभय जातादभय परोक्षात । अभय नत्तमभय दिवा न सर्वा ग्राशा मम मित्र भवन्तु ।।

कृष्यसोविस्थमार्थं म सकस बगत को धार्य बनाए

हमारा उद्देश्य :

सम्राज की वर्तमान एवं अविषय में पैदा होने वासी समस्यार्थी को इंड्टिंगत रसते हुए भायतमाज का पुनगंठन करना है।

बेशाख कु॰ 1 सबस 2044 वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैते

### श्रार्यसमाज के वर्तमान व भावी कार्यक्रम पर विचार

### 20 से 23 प्रप्रैल तक विल्ली में प्रमुख आये विचारको की संगोष्ठी

सार्वदेशिक सभा के तत्वाव-द्यान ने एवं कार्य समाज सजमेर के प्रधान श्री दलाचेंग जी भाग के सबोजकरूप में भाग समाज की वर्तमान स्थिति तथा भावी कार्य-कम के सम्बन्ध में विचार-विनि-मय हेत् प्रमुख आयं-विद्वानी की एक सगोध्डी का आयोजन मदिर मार्ग, आर्थ समाज, नई दिल्ली ने गया है। गोष्ठी मे सम्मिलत विद्वानो के व्यापक विचार-विमर्ज के उपरान्त प्राप्त सर्व-सम्मत सुकाबोव निष्कर्षों के माधार पर एक प्रस्ताव पारित कर सार्व-देखिक घाष प्रतिनिधि सभाको प्रस्तुत किया जाएगा । गोष्ठी की प्रध्यक्षता नुप्रसिद्ध श्राय सन्यासी व विद्वान हा स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती करने।

उल्लेखनी है कि श्री दत्ता-त्रेय जी आयं ने शायं समाज की वतमान स्थिति से बिज होकर द्यार्थ समाज के पुनर्गठन की माग सन् 1982 में सार्वदेखिक सभा की अंतरग सभा में चठाई थी इससे पूर्व श्री स्थामी विद्यानन्द भी ने भी सार्यसमाज के पुनर्यठन के प्रश्न की उठाने का प्रयास किया जा, लैंकिन सभा के प्रधि- कारियो द्वारा पर्याप्त रुचि न लेने की ओरदार मागो के फलस्वरूप के कारण स्वामी जी का यह

1983 में सभाने श्री द्यार्थ जी महान कार्य प्रथ नहीं हो सका के सयोजकत्व में ही एक उप-बा। परन्तुश्री दत्तात्रेय की आयं समिति का गठत उपयुंक्त विषय

### महात्मा हंसराज दिवस समारोह रविदार 19 सप्रैल 1987 प्रात 9 से 1 वजे तक स्वान – तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम, नई दिल्ली

धार्वं प्रतिनिधि सभा तदा ही ए वी सस्थाओ एव धार्यं समाजो के सयुक्त तत्वावधान में महात्मा धमर स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक सम्पन्न होगा। इस समारोह में देश भूर से भर ने प्रसिद्ध बार्य विद्वान्, झार्यसमाज के नेतागण तथा भारत सरकार के अनेक मत्री महानुभाव महात्मा हमराज जी को अपनी श्रद्धाजलि अपित करेंगे । कुलाची हसराज माडल स्कूक, ग्रशोक विहार के छात्र-छात्राय मनोहर मनोरजक कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे ।

### आर्र प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन

भाय प्रावेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिस्सी का वर्गावक प्रविवेशन रिववार, 31 मद्द 1987 को सभा के मुख्यास्य भाय समात्र 'भागारकती', मन्दिर भागे, नई दिल्ली में प्रात 10-30 के 130 बने तक तथा 2-30 बने से साथ 5-00 बने तक निश्चित --रामनाच सहगल किया गया है।

### भूल-सुधार

'भार्यपूनर्गठन' के 29 मार्चके अक मे पृष्ठ-3 पर कालम 1 की 12 वीं पक्ति में 'ब्रम्रब्य' की जगह अग्रगच्य भीर इसी पृष्ठ पर प्रकाशित स्वामी जी के पत्र ने 1778 की जगह 1878 होना चाहिए था । क्रुपया पाठक सुभार छें। -सपादक में सुम्धाव प्रस्तुत करने के लिए--कर दिया था। इस उपसमिति मे इनके अतिरिक्त श्री स्वाशी विद्यानन्द जी, दिल्ली, श्री बीरेंड जी प्रधान, आर्थ प्रतिनिधि सभा पजाब श्री भ्रो शेरसिहजी दिल्ली एव डॉ भवानीलाल जी भारतीय चण्डीगढ सदस्य थे। इस उपस-मिति ने भपनी अतरिम रिपोर्ट समामे पेशाकी बी। सभा प्र द्वारा सरिपोर्टपर देख की प्रति-निधि सभाभ्रो जार्य समाजो एव प्रमुख व्यक्तियों से दो बार सम्म-तिया आमतित की गई भीर शक उनके **ग्रा**धार पर पुन य**ह ग्रादेश** दिया गया है कि इन सुफावो एव उन पर प्राप्त सम्मतियो पर भौर ग्रधिक आर्य-विद्वानो की सनोष्ठी का भायोजन कर व्यापक विचार विमर्शकिया जाय।

सगोष्ठी के सयोजक श्री दत्तात्रेय जी भार्य ने प्राय सभी त्रमुख ग्रार्थ विद्वानो को निमन्तित किया है एव उनसे आर्थ समाज के जोवन-मरसा के इस प्रक्त के महत्व को हष्टिगत रकते हुए अपनी व्यक्तियत असुविधाधा के उपरान्त भी सगोष्ठी में सम्मि-लित होने का आग्रह किया है।

बार्य समाम समावेर की गांग-

## ऐतिहासिक धर्म स्थल हिन्दुओं को

धार्व समाज समीर के प्रधान भी बलानेय बार्व तथा नवी भी राशाबिह ने भारत सरकार से पुरकोर मध्यों ने वापील की है कि हिन्सुकी के ऐतिहासिक बुक्ति से महत्वपूर्ण तथा

राष्ट्रीय सस्कृति के श्वरोहर वर्ष स्वसी (राम बीर कृष्ण के जन्म स्थली) की हिन्दुको को सौंप दिवा वाने । उन्होने मुसलमानों से भी बपेका की है कि वे श्रामिक बहुरता एव धर्मा-खता को त्यान कर साम्प्रदायिक शीहाहता, श्रेम भावना तथा करोडो हिन्दुबो की बाबनाओं का धादर कर राष्ट्र की बस्मिक्त के प्रति धपनी सद्-भाषणा का परिचय देते हुए सहय उन स्थानों को हिन्दू भाइयों को सौंप दें । इसके देश में साम्प्रवायिक कट्ता समान्त होकर राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता को बढावा निवेचा।

उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि आर्थ समाज मूर्तिपूजक नहीं है तका मूर्ति पूजा का विरोध करता है, परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम राम और योगीराज वी कृष्ण बारतीय सम और संस्कृति के बाधार स्तम्ब ऐतिहासिक महा-पुरुष रहे हैं। अत उनसे सम्बन्धित स्वान हिन्दुवाँ को प्राप्त होने हा चाहिए। इस ऐतिहासिक तच्य को भठनाया नहीं जा सकता कि विदेशी आक्रमसुकारियो तथा तत्रालीन **युस्लिमधासकों ने इन स्थानी का रूप** विश्वत कर उन्हें मस्जियों के रूप में बदस दिया था।

विवेशक: बलाबेय मार्थ

त्रवान सपादक : रासासिह

संवादक: बीरेन्द्र कुमार प्रायं

**क्र कार्या 21010** 



### वर्तमान परिस्थितियो में भ्रायंसमाज

#### राष्ट की भयावह स्थिति

देव की नतमान परिस्थितिया वका भयावह है देव की राष्ट्रीय एकता अवज्जा पर खान के बादल महरा रहे हैं भाषावाद प्रानीयतावाद सामीयतावाद सामी

#### दायित्व बोध -

इन नगतह परिन्धिनिया में **आय समाज** ना उन्तराधित कार्याधित न जाता है। जो नाग यह कहते हैं कि साथ नगाज नो अब स्वादवयनना नहाँ देशने सब नायत्रय सरकार न जपना भित्र है वह अय समाज को भाग चार है। प्राय समाज में भी कुछ अय दिवाराझार था का एम इन्यूवेया नाग धन गय के जा सब्य की तरह कहन हन हैं कि अब प्राय नमाज ता मर हा है पिछड रहा है खण्डन नहीं करना चाण्यिय कि लागि। एम त व नाय समाज के हिन चिन्छन नहीं करना चाण्यिय कि साव्यवता न्य वात का है कि आय ममान को अपन दाजिल ना बाध मग भाति हो। नना प्रवार आर प्रचण नजाय्य कर सबके स्थान श्वाव।

#### ब्राय समाज हो सक्षम --

बाय समात हा निन्याय भाव से निर्भावता प्रकृत बराइया पर प्रहार कर सकता है भ्रष्टावरण मा पर्गमा कर सकता है। उसे सता ना अथवा बोगा कर नालव नगा है। विकय संग्रां मा प्रमास स्थल है जो कर का चार कहना है स्पर्य ना प्रमास स्थल से नाम स्थल उपय रहना चार्लिय तथा सब कम असानमा असीत सब और अस्य को निवार कर कर ना चाहित। विद्या ना विद्वि धीर अनिद्या क नास क्

#### गौरव पुण प्रतीन —

आय समाज का गौरवष्ण किहास नथा मजबूत समझन रहा है। बासों म समोग उत्साह सौर कर गुजरन का तम ना है। वे मिद्रा निगल और क्विनिक्चयों नोत है। नितक मूल्यों की पुत्र स्थापना और जारक का सन्कित्र है। एक्टायना और देक्योंनि का पाठ जास समाज ही पढ़ा मक्ता है। राज्यायना और देक्योंनि का पाठ जास समाज ही पढ़ा मक्ता है। मञ्चा इक्वरोध नना सौर वमध्या चम्यव्या साव समाज है ज्या उत्साह है। स्थाय ममाज गैर साध्यापिक गण्यादी समझक है। जमके हार मं आहम् वा ब्वा है। इच्च ना विवश्मायस्य उसका दशा है

### हम प्रमाशित वनें --

जत भ्राय समाज स्थापना न्विस कंतुम अवनर पर प्रपने भ्रायको सहाय दमान द तथा न्याय समाज वा अनुयाया वनने वाला भ्रायनन सम्बे धर्मा में अय बन (सन्दा ध्या न्या न्याय सम्बे प्रपाद वन)। स्वाय त्याय स्थापना स्थापन स्

रासासिह

### हमारे देश की विचित्र धर्म निरपेक्षता (गताक का केव)

-- लखक श्रीदलात्रय जी ग्राय

यदि स्थानी स्थान य सब क्षम समझात या सम निरथसता के नाम पर इन वद विचढ़ धार्मिक प्रत्यों की समारोचना नहीं करते तो साम इन से से एक भी सामाजिक कुरीति दूर नहीं होती। इन तस सामाजिक म वर्षवशासी कुरीतियों के सम्ब म में महारमा गोंधी ही नहीं प्रपृत्ति भाज वेस के प्राथ सब राप्ट्रीय और धार्मिक नेताओं की भी नहीं मायना है जो ऋषि दयान व की थी। यहा तक कि हसारे स्वामीन भारत के निवधान तक में प्राय इन सब कुरीतियों का निवध किया बया है अब प्रस्न यह है कि मदि स्वामी दयान द धम क नाम पर प्रवित्त इन सिम्मायों ना साहस पूत्र खण्डन करने का प्रिय काय न करते तो आम विद्यान ही नहीं भारत भी दासता की वनीरों म अकबा रहता।

यह निविधाद है कि हमारी धनेक सामाधिक कुरीनियों का घाधार हमारे धार्मिक विश्वाम और पविष ध म तवा उनसे सम्बाधित पैयन्बर प्रमतार और गृढ समक जाते हैं। इसलिये भी केवल धार्मिक ग्रंथ या विश्वी धम के सस्थापक ना दुहाई देकर इस प्रकार की मा यताओं की समीमा धौर निराकरण का विरोध नहां निया जा सकता।

#### बाय समाज का घटता प्रभाव-

अध्यसमाजक आ टोनन और मगठन के प्रभाव नया क्रांक्ति में ह्वास का एक कारए। सबदम समभाव की यह ग्रन्थवहारिक विकार घरा भाहे। स्वाधानताम्रादालन मंगाधी जीवी इय व्यक्तियतं मायनां को स्व धीननाकं बार राज्य ० बदस्थाना एक ब्राइक स्वाकार कर निया गया जिसके दृष्परिस्थाम आज हम देख रह हैं। राजनतिक सत्ता कं प्रलाभन म अनुर अस समाजी भी इस सहरेमे बहुगगा क्टुरपदी हिंदुआ और विशेषकर गैर हिंदुमों से बोटो का भिन्ना मागने वाल ग्राम्थावियो के निए इन मतदाताबा का धार्मिक तथा सामाजिक कुरातियो ना समाक्षा करनाकस सम्भव हो सकता है ? यहो कारणा है वि' अजस क टवाजा साहब नी क्य पर चादर चटन बाला मे कई अस समाजा नना भा हान मै। जब प्राय समान के सच में इन जा विश्वासी का सहनपबन नौना ना जाना थी उम समय वह सव प्रिय न होन पर भ एक शक्तिशानी सस्या थ । वस्तुन जसका यह सैद्धातिक विवादास्पद स्वरूप हो उसके प्रमाव का एक वड़ा कारता था कि तु त्याग क कब्ट पर प्राधारित सकी यह गनिविधि ज्ञाबल होते हा धार्मिक अधिवश्वामो के जगत में पराक्षरा और विरोध का यह असवाज व ट हो गई। अपनी इस विशेषना को छोन क बाद अय समाज का न तो विवादास्पद प्रतिष्ठा ही रही और न ही उसे अपेश्नित लोक प्रियता हो प्राप्त हुई। देश के सावजनिक जीवन में धव वह उपेतित होता जाना है। आग उसके मच से वही ठकुर सहाती बात नहा बा रहाईँ जो बोटाकी राजनीति के सचस भाग सगठन भीर सत्याए वहरही है प्रथना शक्तिशाला पृथक प्रश्निवन हुने के कारहान विसी को उसके समयत का प्रावश्यकता है और नहीं विरोध की चिता है। विराज भा उसी का माय हाता है जिसका हुछ प्रभाव व मक्ति हो

बन्तत व यममान वा मुख्य उद्देश्य केवल समाज सुधार एक सीमिल नहीं या विश्व धार्मिक क्षांत या। आयममान के इत दो उद्देश्य मा में केवल समान प्रधार का उनक भीष उद्देश्य धिक लोक्सिय होने के कारण मन साधारण और स्वय धाय समाज के कुछ व्यक्ति उसे आधुमिक भारत का केवल एक प्रधावकालों ममाज साधार आस्टोलन धानने लगे हैं। जो महा नहीं है। साधानेना ने बाट बातपाल च्याद्र आ होर सहा तक कि सना जैसी कुरीनिया पुन वह रही है। यही इन बान ना प्रमासा है कि जब सहसन तम निरमेखाल या सम्मान के नाम पर इनके सामयकों भी समा लोकना न करने की मानि स्पानारी है उस से उह दुन पूर्ण कर्मवाल प्रमास होने लगा है। यहाँ तक कि कुछ मस्पमत के लोग धन के नाम पर राष्ट्रगीत राष्ट्रगीत मण्डा मिखान तक का बिरोध करने लगे हैं। बहु विवाह व तमाक तथा निक्षा के प्रति होने वाले कल्यायों तथा वर्गाचारों तक वा धम निरम्मदा के नाम पर समयन किया जा रहा है।

निष्मार्थं — उपमुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विचार स्वत्ततात कि भीर विज्ञान के इस मुग्न में केवल बाम के नाम पर प्रचलित कुरीतियों और अ विवासनी का निराकरता करने के लिये उनका परीकाल और वावस्थक हो तो सभीका और अध्यत्न स्रता न केवल वावस्थक है अचितु प्रतिवास भी है प्रया जिन राजनैतित सामाजिक और वाधिक निकलताता के कारण हुनारे वेस का पतन हुआ और सैन्दा वर्षों तन उते पराधीनत का सिकार हिंग पार उनकी पुनार्वे हैं हा पतन हुआ और सैन्दा वर्षों तन उते पराधीनत का सिकार हिंग पर उनकी पुनार्वे हैं।

मुन्कुल कानडी विश्वविद्यालय, इरिहार द्वारा इस वर्ष दयानन्द स्नात्वकोतर महाविद्यासय, बन्नमेर के सस्यापक/प्राचार्यं श्री दत्तात्रेय बाब्ते द्यार्थं को द्यानार्थं योवर्धन जास्त्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उनके द्वारा हिन्दी, अबेजी में लिखी गई लगमग एक दर्जन खोटी-वंडी पुस्तकें हैं। जिनमें हिन्दू विदाउट हिन्दुजिब और उसका हिन्दी रूपान्सर भावं समाज हिन्दू वर्ग का सम्प्रदाय मही तथा राष्ट्रीय वरित्र सौर एक्सा, सत्यार्थं प्रकाश सन्धमाला, देश धर्म धौर समाज को धार्म समाज की देन धौर विद्यार्थियों के लिए 'बाचार सहिता' प्रसिद्ध हैं। इसमे जो मौलिक विकार ब्यक्त किए गए है उनका सकिन्त परिचय देना इस प्रवसर पर व्यवस्थक भीर प्रश्वशिक प्रतीत होता

### शार्य समाज हिन्दू वर्म का सम्प्रदाय नहीं

उनकी विकास पब्लिकेशन द्वारा द्वारा प्रकाशित सबसे प्रविद्ध अग्रेजी पुस्तक वी बार्य समाज-हिन्दू विदाउट हिन्द्शिम' है जिसका उन्ही के द्वारा किया गया हिन्दी रूपान्तर 'आर्थ मनाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नही'' है । इसमे उन्होंने ऋषि दयानन्द की मान्याताची, ब्रन्थो भीर आर्य समाज के ऐतिहासिक सन्दर्भ मे वह स्पष्ट किया है कि आय समाज कोई नवीन धर्म या पन्य नहीं है। यह उस प्राचीन सार्वभीम वैदिक धम का समयक है जिसे ऋषि दमानन्द द्वारा पुन प्रतिपादित किया यया है किन्तु वतमान हिन्दू धर्म से बहु सबंधा पृथक् और मिल है।

### द्यार्थ या हिन्दू

सविष ह्मारा बास्तिक और गीरवपूर्ण नाम जाये ही है फिर भी ऐतिहासिक, सामिक बोर बास्कृतिक इंदिर से जायें समाज के सनुपायी हिन्दू समाज के एक चटक के क्य में गैर शामिक धर्म में हिन्दू हैं। बस्तुत हिन्दू सर्म नामक कोई समित्र सर्म हिन्दू है। प्रचलित जायें में जिसे हम हिन्दू सर्म कहते हैं उसका तास्त्यां समाजनी या पीरिएक धर्म से हैं। आई समाज कक्का सम्प्रवास न होकर जपना एक पुषक शामिक सरिताल पखता है।

### हिन्दू एकता और संगठन के लिए द्रा. आर्थ समाज ग्रनिवार्थ

पौराशिक काल के गत सैकडो वर्षों के इतिहास से स्पष्ट है कि हिन्दू

गुद्धुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा माचार्य गौवर्षन शास्त्री पुरस्कार से पुरस्कृत

### प्राचार्य दत्तात्रेय आर्य द्वारा लिखित साहित्य के विचार बिन्दु

सकलनकर्ता – वीरेन्द्र कुमार श्रार्य

समाज को हो नहीं प्रिषेतु गारे देश को राजकीन का सावता, राष्ट्रीय पतन तथा सामाजिक साधिक जादि की में निराद पिरावट का एक मान कारण हिन्तुकों को मूर्ति पूजा और उसके सावता जाते का सावता जाते का सावता का सावत

धसन्तव है। यह कार्य एक स्वय गतिवानि और प्रधायनानी वाय स्वाय जैसे क्रान्तिनारी साम्योशन के हारां ही किया जा सक्ता है। हिन्दुजो की एकता चीर समठन के क्षम्य सब प्रसल हमके बिना सस्कन्न होने। हिन्दु विक्य परिचद, राष्ट्रीय स्वय सेवक क्षम घीर आयं समाज में यह सह-व्यूण और प्रधामी जनार

### शार्वसमाज केवस समाजसुधार शान्दोलन नहीं

बाल्से जी नी यह भी मान्यना है कि आर्थयमान करन समान मुखारिना सस्मा नहीं है अपितु एक धार्मिक नुगठन भी है। यह धार्मिक मुखार काम केवल उन्नकी धार्मिक मान्यताओं के परिएाम मान है और उसका मुख्य उपयेव व्यक्ति द्वानन्य हारा प्रतिपादित बेदिक धर्म का अचार व प्रसार करना है इसिए केवल एक सुखार बान्योलन के क्य मे उसे हिल्ह धर्म मान की बान्य में विक्षीन होने से बचाना उसके तथा स्वा हिल्ह धर्म में पार्थके तथा

### वर्म निर्देश या सर्ववर्म सावेश धर्म निर्देश राज्य की बाधुनिक

कल्पना सर्वेषा उपयुक्त व तक्षयत है विशेषकर बारत की विशेष परि-स्थित में यह और भी अधिक सामयक है कि साथ किसी एक सर्वाठित समें के प्रति पत्राठा न करें किन्तु पुनांच्य से हमारे नेवाओं ने राजनीतिक शारण से इस सर्वेनाम सिद्धान्त की एक विष्ठन कर देकर

धर्म निरमक्ष राज्य के स्थान में एक सर्वेधर्म साराम राज्य की नीति अपना ती है। विसके परित्याम स्वरूप बहुतक्ष्मक किन्तु असर्वित्त हिन्दू धम के प्रतिकृत समिति कार सम्बन्ध ध्याँ के प्रमुवाविया की देस विगोधी ध्युचित प्राणी को प्रतिसाहत नित्य रहा है। दूसरी धीर स्वय हिन्दुओं की धलेक छार्सिक और सास्ताजिक हुरी-तियों को भी धर्म निरमेक्षता के नाम पर श्रोताहत नित्य नहाँ के नाम

#### सर्वधर्म समभाव केवल कॉलग बादर्श

सवधर्म गम्माव व्यक्तिगत जीवन ना आरक्ष तो हा मकरा है किन्तु वह किमी राज्य या गप्टु की नीनि ना जाधार नहीं हो सकता । ऐसा करना और विशेषकर भारत की विकेष परिस्थिति व स्वाखनीय तथा अध्यवहास्क दोनों हो है।

#### साम्प्रदाविकता का प्रयं

साम्प्रदायिकता क्या है? यह अभीतक किसी सःवधान या कानून म परिभावित नहीं है किन्तु भारतीय परिषेक्ष्य मंजनका अरथ काम भीर विचार है जो हमारे देश की एक्ला और अखल्डना नो चुनौनी देते है। बहसस्यक हिन्दुस्रो की सपरिभाषित साम्प्रदायिकता घन्य सम्प्रदायो के के विरुद्ध हो सकती है किन्तु वह साधारतात ही राष्ट्र विरोधी नही ही सकती दूसरी और अल्प सम्यको भीर विशेषकर इस्लाम की धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता न केवल धन्य सम्प्रदायों के लिए अनिष्ट कर है ब्रियित वह प्राय राष्ट्र विरोधी भी है। इस्लाम धर्म निरपेक राज्य का विरोधी है और भौगोलिक राष्ट्रीयता को भी वह स्वीकार नही करना, पाकिस्सान का निर्माण इसका उदाहरण है।

#### राष्ट्रीयता का ब्राधार संस्कृति

हमारी धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीयता का झाधार केवल भौगानिक एकता पर नहीं रखा जा सकता, राष्ट्रीयता

एक भावनात्मक एक्ता का नाम है, इसीनिए उत्तरा आक्षार एक आधुनिक भीर प्रगतिकील साह्वतिक उरानन पर्याच्या जा सकता है जिसे हमे पिली जुनी या हिन्दू मुस्तिम सस्कृति न कहकर एक मान्तीय सन्कृति कहुंकर एक मान्तीय सन्कृति

#### राष्ट्रीय चरित्र बनाम व्यक्तिगत चरित्र

मास्कृतिक एकता के इसी घरातल पर हमें बणन नवपुक्को म एक
विकाय अकार के रायाच्या चरित्र का
विकाय अकार के रायाच्या है। अभी
तक इस चरित्र का क्रमें केवल व्यक्तिन
गत व्यवहारों तक सीमत करते रहे
हैं क्लिड इस सोनो से अक्तर है और
होना च हिंदा। प्राय तक हमें प्रयोव्यवस्य पर हो जोर देने है। हमें एक
गेम ध्या मिनगळ राष्ट्रीय चरित्र पर
बच देना चाहिये को प्रयोक्त कारणीय,
चाह वड विभी धम जाति सम्प्रदान
का हो उसके व्यक्तिगत और मार्कन
का उसके व्यक्तिगत और सार्कन
का उसके व्यक्तिगत और सार्कन
का हो उसके व्यक्तिगत और सार्कतिक व्यक्तिगत और सार्कतिक व्यक्तिगत और सार्कतिक व्यक्तिगत और सार्कतिक व्यक्तिगत और सार्क-

वाब्से जी ने इसी द्रष्टि से एक माचार महिना सम्रहित की है जिसका सबन्न स्वासन हमा है।

### निभेवस से वहते ब्रम्युवय

यनाऽम्युदय निश्चेयस समिद्धि म धम'।

देग को सैक्डो वर्षों की धार्मिक और सामाजिक भीर विशेषकर राज-नैतिक दासता के कारण इन्द्रजो न जहा अपनी निवलता को तथाकथित उदारना और सहनशीनता का नाम देना प्रारम्भ किया वही धपनी मार्थिक बौर भौतिक दुर्दना को म्राध्यात्मिक और परलीकिक काल्य-निक अञ्चला के नाम परस्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया है। ऋषि दयानन्द इस यूग के पहले महापूरुव ये जिन्होने इस जीवन म सभ्यूदय को परलौकिन निश्चेयस या कल्याण के समान नहीं अपित् उससे भी मधिक महत्व देकर हमारे इंडिन्कीसा म ऋन्तिकारी परिवतन करन का प्रयत्न किया है। कमें के स्थान म पुरुषार्थं अममानता के स्थान म ममानता, पराजय के स्थान म जय, तपस्था के स्थान म बन भी गशतिः, ग्रीर दासता के स्थान मे स्वराज्य व नवीन आदर्श इन्होन हमे दिय :

#### भिन्नता में एकता

दुर्भाग्य से निज्ञना हमार देण की एक वास्तविकता रही है किन्तु उसे हम अपना आदश समस्त का (शोष पृष्ठ 5 पर उद्धा)

### धर्म (१) के नाम पर राजनीति में इस्तक्षेप सिख धर्म के विरुद्ध है।

धाय समाज धम के विषय में धपते स्वतन्त्र व शास्त्रोक्त विचार रखता है। परन्तु आज हसके विपरीत नमाज में मजहब व सम्प्रदाय को भी धम के धब में ही लिया जाता है। इसी-लिए धाज जब धम चिहीन राजनाति की माग या बात की जाती है तो बस्तुत उसका धाशय साम्प्रदायिकता विहीन राजनीति से होता है।

हम पाठको के लाभाय 18 माच के 'टाइम्स झाफ इंग्डिया मे प्रकाशित श्री पी जे सिंह केस्न का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। कृपया इस लेस्न को उपयुक्त सदम में ही ल। सपादक

अन्य धर्मों की तरह सिख धन मे पुरोहिनों के लिए काई स्थान नहीं है। इसके दो सम्भावित कारण हो सकत हैं। पुरोहितों का नैतिक पतन एव उनमध्याप्त भ्रष्ट चार व दुरा= चार इसका पहना मूल कारण हो सकता है। सिख धम में आस्या रखने इससे अपने धार्मिक कर्रांच्यो का पालन करें व ईक्यर प्राप्ति हेत् स्वय साथ प्रयत्न करें। वे इसके लिये पूरोहितो पर काश्रित न रहेएमी इच्छासिक गुरुको की थी। यही इच्छा दूसरा सम्भावित कारण हा सकता है। यक्षपि कल्ल सिख परिवारी ने म थियो व रागियों का व्यवसाय कई पीढियो से अपना रखा है परन्तु इ'हे पुरोहितो के रूप म मान्यता कभी नहीं मिली। सक्राप में सिखाधम म पुरोहितों की व्यवस्था के लिए कोई स्थान नहीं है। नि बदेत बाबा बढ़ा की भाई मानी सिंह बाबा दीपसिंह इत्यादि जल्बेदारीं वा सिक्स समाज में असाम बादर म व सम्मान प्राप्त रहा है। इस सम्मान का मुल कारण इन जत्येदारी की विद्वतः पविश्रता नैतिकता व ईमानदारी जस गुए। येन कि उनका पट।

उपरोक्त बिंहात तथ्यो की पुष्ठ धूमि म उच्च कांटि के जत्वेचारों ह्वारा बसाबारणा कांटि के जत्वेचारों ह्वारा बसाबारणा कांटि कहण करना मनमाने ध्रस्तान व हुक्कानों जारा करना निख धम के नियमा का खना उस्लचन है। य अत्येवार अपने राज नितक प्रमाद न गठवचन के बारणा ध्यान पदी पर बासीन है धीर सिख मनाज से उनको खनि के मूल म भी उनका राजनैतिक प्रभाव ही है। बत इन के हारा आरी किये गये फरमान व हुक्सनामें तक संगत कवापि नहीं हो सकते।

नि सन्देह चूतकाल में सिख उप-

देशको व सामविक चन्दा सकलन

नर्साधोकी व्यवस्थाची। परन्तुवे

सिक्ष कायकर्श प्रवटाचार व दूराचार में लिप्त हो गय थे। छन इक्ट्राकरने के लिये धपने पद का दृष्पयोग करने सने ये व धम विख्य व्यवहार करने लगे थे। यत गुरु नोविदसिंह जी को इस व्यवस्था को समाप्त करना पडा। सिका धम के इतिहास की यह एक मुख्य घटना है। बाज भी गुरुद्वारी ने इस धनना पर भाषारित बहत से भजन याये जाते हैं । सिख इतिहास के जानकार लोग इन घटना से भली-भाति परिचित है। राजा रहाजीत सिंह कमतामे धाने से पूर्व सिख इतिहम के मिसल काल Musal Period) मे जल्बे गरी की भूमिका नगस्य है । भिश्व इतिहास के इस काल में इस बात का तो उल्लेख है कि ये साग बैसाखी व दीपावली के बन्मरो पर हरमि दर साहब ने समार्थे आयो जित करत है। ज वेदार इन सभाक्षी में सिख धम के विषय पर विचार विसक्त कते थे। प्रविष्य में सम्पान किये जाने वाले नार्यंका प्रारूप तैयार करने थे। पर तुसतल ज सरदारों मे कुछ ऐसे सरदार भी व जो स्वय के निहित स्वार्थों के कारण इन सभावो मे न तो भाग लेत ये न ही इन समाआ म निये गये निणयो को स्वी-कार करते थे। ऐसा होने पर भी इन क विषद्ध कोई फरमान आरी किये जाने का किसी घटना का उले 🗷 नहीं भिनता। बल्कि इन सरदारों के वस्य आज की बकाला राजनीति मे मुक्य भगिका अदाकर रहे है।

सविधि राजा र सुजीतिसिंह जी ने दरवार साहब न उसके मुख्य जल्पेवार का सर्वेत दम्मान किया र स्कु वर्षे-दार न कभी राजा र सुजीतिसंह जी ने राजकीय प्रसासन में हस्तक्षप नहीं विधा । हरिमेन्दर साहब के जल्पेवार ने राजा र स्पानितिस्ह की केवल उनके हारा सिक्ष पत्र के द्वानिक निवाने के उस्तक्षम करने पर ही दिख्यत किया। राज्य के प्रसासन की भनाने के लिए सर्वेशानिक करमों की लेकर किसी मुत्री ने विचक करमान वारी करना वहांपि उचित्र नहीं माना बारा करना वहांपि उचित्र नहीं माना बारा करना जर्मेदारों को ऐवा करने की Personal Law की धाक्षा नहीं देता ! दिखा अस के इतिहास में कहीं भी ऐसा उपकृष्ण नहीं निमता जिसमें कारी को उसकी प्रकासकीय पृटियों के निष्य विकास हो ! अस हर-निस्पद साहब के मुख्य प्रची को व कामन तकत के बल्वेदारों को राज्य की राजनीति में हरतजप करने का कोई साधकार नहीं हैं ! न ही उन्हें केस के राजनीतिक लान में निर्देश देन का शिकार है !

बरनाला के विश्व हुक्मनामा जारी किया गया । बरनाला ने इक्स-नामे का सम्मान करते हुए बान द साहब गुरु द्वारे मे जुते साफ किये। इसमे सदेह नहीं कि इस का पंजाब राज्य के प्रकासन तत्र पर प्रतिकृत प्रमान पड़ाव सिका सेवको जस्बेदारा भीर नेताओं को अनुचित भारसाहन मिना है जिसका भरपूर लाभ उठान से वे कभी नहीं चूकेंगे। बरनाला ने उन पर लगाये गये दोषो का यक्षणि स्पष्टीकरण दे दिया है। पर त् बरनाना शाहब को जत्थेदारों से क्षता मागने की जिस्मेदारी से अभी मुस्ति प्राप्त नहीं हुई है। अत्येदार असी भी यह मानते हैं कि बरनासा ने उन क धार्मिक अधिकारो का हनन किया है। उचित यह ही होगा कि अब जल्बेदारी की इस मनोवित को बढावा न विया काये व उन के प्रति उदासीनता का व्यवहार किया जाये। यांव ऐसा नहीं किया स्थाती इत जत्येवारी के नाम व उन के द्वारा अनुचित फरमात्र सिखाइतिहास मे एक नवींन बाध्याय के रूप में जुड़ जायेंगे और यह स्पष्ट है कि ऐसा होना देश के दित मे नहीं होगा। विशास सिश्व समुदाय ने खुलकर जल्बेदारो के राजनैतिक क्षत्र में हुन्त क्षय के विक्रम अपनी आवाज उठावी है। यह इस सब के लिए उत्साहबन्नक है। जत्येदारी की यह मान्यता कि राजनीति से धम को बलग मान कर नहीं चलाजा सकता कवापि उचित नहीं । बरनाला साह्य को सभी जल्बदारों की इस चुनौती का सहता पुबक सामना करना है।

जी तुष्टारा प्रवश्यक स की काय कारिस्त्री के चुनाव के उपरास जस्थे-दार क्रुपानसिंह को हटाकर रागी दक्तन सिंह को प्रकास तक्स के जरचेदार के यद पर नियक्त करने से बह सिद्ध हो जाता है कि प्रजाब मे स्थित सभी तक्तों के तत्वेदार NGPS के वेतन भोगी कमवारी हैं व उसकी मुह्बोली तस्वीरें हैं। यह इस दात ते भी सिख हो जाता है कि बरनाला के विरुद्ध फरमान का समबन पुजाब के बाहर स्थित तक्तों के अत्येदारों नै बिल्कुल नहीं किया। यदि पजाब के अत्येदारों को राजनीति से इस्त-काप को खुकी छुट दे दागकी व उन के काय कशायी की महत्व दे दिया जावे तो पञ्चाव शरकार NGPS के हाचो में केवल कटपूतली बन कर रह जायेगी । रिश्व धार्मिक संस्थाको ना राजनैतिक क्षत्र पर नियन्त्रश करनेका उद्देश्य कभी नहीं रहा। SGPC का गठन राज्य प्रशासन के कानुन के अंतगत किया जाता है इसलिये इसेका कायश्रीत व अधिकार सीमित है । अन SGPC केवल क्षार्थिक क्षत्र में ही सर्वोपरि है राज-नतिक क्षत्र में वह प्रशासन व विधान नभाके घतगत है। गुरु परपरा के श्रनुनार गुरुद्वारी का प्रव श करना ही SGPC के कायकर्ताधी व जल्येदारी का मूल क्त व्य है।

मुखतापुण हत्यायें

सर्वेदारों के नियं गानां। या

सात नेना स्वा-स्त्रीय है उर्था

सात केना स्वा-स्त्रीय है उर्था

सात केना स्वा-स्त्रीय है उर्था

सात केना स्वा-स्त्रीय है उर्था

स्त्रीय के स्त्रीय है समस्त मिख

समुदाय को साचात पहुच दृश् है।

इन से तिखों के निरंद एक मी सन्देशक स्वा है। ऐसा होने पर भी नन्देशक स्वावी ने से तैयार कही है।

समय समय पर जत्थेदार पथ की एकता के उद्दश्य का राग झलापते रहते हैं। यहाँ पद्म की एकताका स्या जब है? अत्येतारी के अनुसार पन की एकता व श्रकाशी एकता दोनो एक इसरे के पर्यायबाची हैं परन्तुसिख भारदास के भनुसार पत्र की एकता व अकाली एकता दोनो बिल्क्टल पिक्स है। एवं की एकता का वंग समस्त तिक समुदाय की एकता से है। अकासी नेताओं से मेरा निवेदन है कि वे पत्र शब्द का प्रचं धकालीदल से म सवार्थे उदार रज्टिकोसा का परिचय वेकर सिक्ष समुदाय मे पर्य ब श्रकाली दल को लेकर फैंकी आन्ति कों दूर करने की क्या करें 1 00

# पार्य पुनवा जाती रही जाती रही जाती रही जाती रही जाती रही जाती रही जाता वही विजाम है पव म कही जाराय है? बहना बराख का सकत है जाता परिक ना में प्राय के नव वीप से जनते रही। जाता परत निकास है। पूर्व में जातों प्राय के नव वीप से जनते रही। जाता परत निकास है। पूर्व में जातों प्राय के नव वीप से जनते रही। जाता परत निकास है। पूर्व मुद्दारे पास है। गतन पुन्न की सित्तमय गतिमय चारण हर कात है। जिल्ला प्राय के सकत्य तव जा प्राय में कातों पास से जा में के कीत दा जा ता रणी गया से जा ता रणी गया वह हम वा ना पति रही। जाता रणी पास वह जा ता रणी गया वह हम वा ना पति रही। जाता रणी पास वह जा ना रणी पास वह हम वा ना पति रही। जाती हा चलन रही। —साकत सिह भवीरिया सीनिश्र पत्रा भोजपुरा (मनपुरी उ प्र) पसते रही। जनते रही। जनते रही। जनते रही। जनते रही। ज्ञा तुस्दारे पास है। जनते प्रति । जनते प्रति । जनते रही। Karanaranananan daraharanan Karanan Ka

### धार्य समाज स्थापना-विवस मनाया

बाजमेर 31 माच (कास) बाय समाज का स्थापना दिवस वेवानिकत्त बायुवत ना प्रमस्तिह की अध्यक्षता में सम्पान हुआ।

रस मौके पर प्रो बुद्धिप्रकाश आय डा देव समा दयानद शासपीठ के प्रवक्ता हा कृष्णपान निह ने आयसमाज के निद्धानी वतमान परिन्धितिया मे समाज की भूमिका एव महत्ता पर प्रकाश जाला स्वामी धर्मान दजी दयानन्द बाल सदन तथा सुगन तामरा बाग कथा विद्यालय के बालक बालिकाओं के सध्र भजन कायक मधी हुए।

भातः मे साथ समाज के मत्री रासासिष्ठ ने भाभार व्यक्त किया।

\*

### जियालाल शिप्र सस्यान मे यज्ञशाला निर्मित

जियालात्र क्रिक्षक प्रशिक्षण संस्थान अजमेर के आवादास प्रागण मे एक भव्य बशकाला का निर्माण पूरा हा चुना है। इसके निर्माण के लए बी एड के निर्थमत तथा समुसूचित काति क छात्रों ने करीब 5 500/- व दान में दिया। इस यज्ञज्ञाला का उथ्यानन संस्थान के सचालक मान्यवर आ दत्तात्रय अराय नं दिनाक 28 3 87 का किया।

उदघाटन समाराह पर प्रायसमाज शिक्षा संग के मंत्री श्री कृष्णुराव जी बा∘न मुख्य अतिथि के रूप मंपधारे और उक्त बवनर पर श्री बुद्धि प्रकाश जी आय के द्वारा भव्य यज्ञ समारोह भायाजित किया गया।

सत्र 1986 87 के सभी वी एक छात्रों न अपनी अवधान राणि इस यज्ञजाला के विकासाथ दान में देन की चौबला का वे मभा घ यदा ५ के

> का रामपाल तिह সাণ ই

### प्राचार्य दत्तात्रय ग्रायं द्वारा लिकित

भूल कर रहे है। वतमान भिन्नताओं को कम करने के स्थान मे उनका प्रात्साहित करने तथा उसम और ग्रधिक विश्व करना ग्रात्मघाना सिद्ध होगा। भन्नताकी बास्नविकताका बादक समभने या बनाने के स्थान मे हमे एक्ता के आदण को वास्त विकता बनाने का प्रथन करना चाहिय

हिन्दुओं का उत्तरदायित्व इस देश की लगभग 8 ) प्रति

शत जनसञ्या हि दओ की हैं। इस लिए इस देश की स्वाधीनता राष्ट्रीयना और प्रवति की सुरक्षा करना उनका विशेष क्तव्य है दुर्भाग्य से उनम प्रचितत मूर्तिपजा जानपात 7अंग्रहत ग्रादि वार्मिक नवा सामाजि कुोतिया ही इस ≓श नी गकता के लिए सबसे बडा खतराहैं। इमलिए जहाँ बहुमत के कररश उनक ग्रनेक अधिकार है वहा ब्न राष्ट्र विरोधी कृतितिया ना निराकरण करना भा पनका निना हा बड़ा उत्त नायि व ने । यह व्सी लिंग नहीं कि व हिंदू हें ग्रपितु इसा लिये कि देश का बहुस मा उनका है और उसके जिल्ला अहित में उठों का सबस बडा हन या भहित है। ग्रन्तर्जातीय विवाह

जात पान का ऐतिनासिक अभि शहप धौर उसाक्ष उपन खग्राउत क कल के निराकरण का अब एक मात्र उपाय कानन द्वारा अत्तर्जाताय विवाहो को म्र न्वाय करना है इसके सिवाय इस ग्रमाध्य प्राय रोग का और कोई उपाय नहीं के अभ तक कवल स्वजानाय विवाह हा वद्य और

#### (पृष्ठ 3 का शेष )

कननी समभ जत ये और धात जितास विवाही की भवध माना जाता या । अब इसका निरामस्य करन के लिए अ तर्जानाय विवाही को हा वैद्य और काननी बनाकर श्रनिव य किया जाना चाहिये।

ऋषि दयानन्द की विचार कान्ति समार का कानिया का मृट्य बागर विचारा की ऋति रहा है प्राय सब वितहासबना श्राय समाज के सस्यापक ऋषि दयानन्त का रशीसवी सरी का महान कात्तिकारी विचारक मानते हा उनकी प्ररशा से अवसमाज ने यत भी वर्षी के अधिक सामाजिक गशलिक और राजनतिक बादि प्राय मब क्षत्रों में निजी आंक्षाक्षाएं निया निशाय नेपा आशाए और नवी सम्भावनायँ उपन्न की है।

वामिक कान्ति आज के बज्ञानिक यूग में ईश्वर और धम के प्रति श्रविश्वास का कारमा उनके नाम पर प्रतिपारित अ अविश्वाम भौर प्रचलिन निरधक रीति रिवाज है। प्रयसमाज के रूप म ऋषि दयानादन हमे एक ऐशा जावन दशन थाि नै जो हमाी श्राय मिक विज्ञामा मनोवज्ञाकि आकाक्षा तथा जीवन का व्यवह रिक बावस्यकता का सतुष्ट करता है भीर माथ ही शास्त्रत साथो श्राधार पर प्राप्तिका माग भी खला रखता है। उनके द्वारा प्रतिपादित यह जीवन दक्षन या धम मन्त्र और साजा सादा सबके निए समान रूप से साप और तक विहान विख्वासा और यम गाडो संमूत्त है।

### यदि दिवस में ही नहीं कुञ्ज देख पाया —हाँ (भीनती) महाश्वेता सनुर्वेती

यदि दिश्स में ही नहीं कुछ देख पाया नीप पाकर के निकामे क्याकरेगा?

कम पथ कापास भूना कम पस की •्यस्त होकर भी स्वयं को छल रहा है विश्व इच्छा का भपरिमित है जहां पस प्राप्त काराको स्वय कर मले हाहै राग पाकर भी नहीं यदि गा सका तु कठ वचित ताप कब किसके हरना? निय कल की ही प्रताक्षा घर लेती हर अधरा है मृजन स्यो स्थ करता?

शक्ति कांचक बन गया नमादमय ही पुणनाके न्भामे प्रिय का न अपना। यान होत भी न प चा साध्य तक यदि यान विश्त जड बना कस चनेया? गाप की गावा बना काला स्वय की

बस नियति का नाम लकर रह रहा है। छाह पाकर भी बना निरुपाय कितना काल्पिक सताप म उर यह रहा है पास का अमृत नहीं बदि जोन पाया नीन से पीयुष से घट का भरेगा?

पता-प्रा सस कालोनी क्यामगज बरनी -245005

### भार्य पुन<del>र्व</del>डक, भारितक

### बुरी लगे, चाहे लगे भली

राम जन्म भूमि का विवाद--

राम जन्म भूमि का विवाद कम होने के स्थान पर समय के साथ-2 क्रमझ बढताही जा रहा है एव निकट श्रविष्य में इसके समाप्त होने होने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। इस तस्य की सत्यता में कोई सदेह नहीं है कि तवाकथित् स्वान ही ऐतिहासिक राम जन्म स्थान है। बत दिनो दिल्ली मे हुई बरिष्ठ इति-हासकारों की एक संयोष्ठी मे वस्ताओं ने भी अपने अकाट्य-प्रमास्त्री हारावह सिंड किया था। सेकिन बुस्मिम नेता सत्य को धनदेखाकर व्यवना पुराना 'बावरी मस्विद का ही राग सलाग रहे हैं। यहातक कि वे इस मुद्दे की सेकर मुसलमानी को उत्तेजित कर एक नये साम्प्रदायिक दने की रूप रेखाबना रहे है। आना मस्जिद के बाही इमाम धन्युला बुखारी तथा उनके पुत्र नायद इमाम अपनी सभाको न हिन्दुको के प्रति जहर उपल रहे है, कुख्यात तस्कर हाजी मस्तान अपने नावाश इगदो सहित उत्तर प्रदेश पर महरा रहा है। बटनाक्रम जिम तरह से घट रहा है, उसे देखकर लगता है कि निकट भविष्य में सान्प्रदायिक-देगी का तूकान आग सकता है।

सी विषय परिस्थितियों में हम हिन्दुमा का सम्मानित खतरे के प्रित नावधान करना धपना कर्राव्य सम्मत हुए, उन्हें स्वर्गीय पश्चित बयन मोहन मालबीय के निम्न कथ्या मा स्मरण करने का अनुरोख करते हैं---

' हि बुका की दुवलता ही फसप्टा का कारए। बनती है। धव तक आही कही भी फलाद हुए है, हिन्दुयों की युवंतता क कारण हुए हैं। <del>युवतशा</del>यो ने जो फलाबी हैं उनमे यह भावना घर कर गई है कि हिन्दू बुजदिल और कायर हैं। इसलिए व चट उन पर क्षात्रा बोल देत है। हिन्दू भी अपने वरा से निकलकर उनका सामना नहीं करते। वे कायरा नी तरह भाग खड होत है। जब कभी युक्को नो यह पनालगता है कि फसाद करने पर उनकी बच्छासबर नी जायगी बहा व पसाव नहीं करते। उन्हें ठाक रास्त पर मानं का एक ही उपाय है कि हिन्दू समिटित और बनवान बनें। यदि हिंदू सर्याठन रहता गुडाको

हमला करने का कभी भी साहज न होगा। फेयरफेक्स अट किस करवट बैठेगा

भने ही भी राजीन बाझी ने रे नरफैस्त विकास की सर्वांच्य मावासन के न्यासाधीय की ए पी उनकर की सम्प्रवादा वाली दो सरस्यीय समिति द्वारा माच करवाने की पोचला से सम्मादित खतरे के तत्काशीन कप में राहत पा रही हो, परन्तु यह लितिबाद कप से तब है कि इस का हो जनकी वाफ सिवि?) में बहुरा खबरा पहुंखाता है। (कैंदे

असफल बस्पर्ट समभीतो न तवा-

कवित बुल्पिम विश्वेयक ने उनकी

साफ व्यक्ति कोव्हों हो स्ट्री था।)
भागी तक इस विवाद के विषाव
के समावार-पत्र नित नई-नई एव
परस्पर विषद्ध ववरें वे रहें हैं। सत-गत्र इत विवाद के वोई मितव्यवाएंगी
नहीं की जा सकती है कि दोगी कीन
पाया जायेगा? किन्तु लाकवल नहीं-स्वित एस स्वासी जैसे लागो को
अपनी इस मान्यता न ता सुधार
कर लेला ही चाहिए कि धनाड़ी से
जनाड़ी व्यक्ति भी गवदी मिलने पर
सासन चला सकता है।

बातु-शक्ति के सौदाबर

गत दिनो एक रास्ट्रीय दैनिक न राज के डोकपुर जिले के दिवय में तमा-चार प्रकाशित किया है कि वहीं डार्टिएक व्याचार जोरो पर है एक महिराकों की वादीद-करोका सैन-बक्त राज्य राज्य है। नि वर्षेड्र वह समाचार प्रस्क स्वाधिमानी शारतीय के लिए वनक की बात है क्का ' क्यू हमुसाम बीक्स क दर्धी-नम्ब के देश में मारी की यह रहा, विकार है हैं में

सन्दार की चाहिए कि इस कुकल का रोकने में भी विचाने विकेष उद्योग करें। इस व्यानविक्त कुकल में लिच्छ लोगों के निष्क कर्या कारवाई करे तथा इसके माथ दी इन लोगों की गर्दि कोई मजबूरी इस कुन त्य म प्रश्क का काम कर खी है तो उसे भी दूर किया जाए। समाज देशी सत्यायों को भी यथा मुक्ति सरकार ने इस नेक काम मैं सहुसीन देना चाहिए।

#### विश्वनाच प्रताप सिंह का स्थाय-पत्र

साबिर राजीय गोधी ने जी विवयनाय प्रवापतिह का त्याग-पक स्वीकार कर यह तिख कर ही विवा कि के प्रतिपत्वक में ईमानदार बादगी के विष्यु कोई स्थान नहीं है। वैसे यदि 'राजा साहृब' की कार्य-कृत्रकता च दिगानदारी के कार्य-कृत्रकता च दिगानदारी के कार्य-कृत्रकता च दिगानदारी के कार्य-कृत्रकता च दिगानदारी के कार्य-कृत्रकी खुति के सामने की प्रति हस्त्री 'राज्यों का क्या दोष वा ?

हुव मान्य 'राजायी' के जुल-चितक हैं, सलएव हुमारा राजाओं को परामा है कि क्षा व्यक्ति उन्हें इन्हों के निल्लामिन्न के से साहु-निक नीति सम्बन्धी चोहों का यान सीख होकर स्व स्वाय करें एव तरप-क्षात इन सनुसार हो सामराख करें। करु या बोलवाला।

क्रूठ का बोलवाला। सत्यकामुहकाला।।  भूठ बराबर तप नहीं सत्य बस्त्रहृष्ट पाप ।। स्पर्शहार :

कर्ताटक के पुष्पमानी थी राज-इन्सा हेनते के 'राज्युपति प्रधानमधी पण विवाद ते सामन्त्री एक करन पर कि यदि ऐसा किसी जन्म सोक्यानिक देख से होता तो वहा का त्रवान नवी धपने पद से स्वात पत्र दे देता, किन्तु हुमारा देख हतना लाक्यानिक नहीं है। हुमारे एक मित्र की प्रति-विधा मुख्य हत प्रकार थी।

वि हेनडे । यदि सपने देग के जामानवर्गी हतनी कोटी वाली जार राज्यानवर्ग है दिया करते हो जब तक कुछुई प्रधानविष्यों के नामों तो हो कर कि हो कर है जा है जो के बार के नामों के हो कर हुआरों नाम होते । जोर किर-काह होदय । जाराने भी हो तो राज्यान होदय । जाराने भी हो तो राज्यान के साल राज्या पत्र देन का हामा हा किया मा न ?

— योरे-ह प्राय

साल समास समार द्वारा भक्ताता । जनदित्व

### श्रो० बलात्रेय शार्य द्वारा लिखित पुस्तकें

देश क्षम और हिन्दू समाज को साथ समाज वी देन—मूल्य 0 ६० पैने

हमारी राष्ट्रीयताका आधार—मूल्य ६ 1 <sup>(0</sup> आचार सहिता—मूल्य 0 50 पैसे

दी अप्य समाज हिन्दू विदाउट हिन्दूद्यम (अरेजी)--विशेष रियामती धर क 75 00

आर्थ समाज हिल्दू धर्म का सम्प्र**दाय नहीं** मूल्य**—**50 क

न्य प्रकाशन आय समाज (हिन्दी) मूल्य सजिल्द 20 00 द , प्रजिल्द 16 00

— ते श्रामा लाजपतराय ' अभि शिक्षा ( मार्ग में ११ तक) — प्रशासन कर प्रशासन कर

व्यानन्द नथा सम्रह्— मूल्य व 3 00

परिचय निर्देशिका (समस्त देश-विदेश की साम शिकाण सस्याओं का का परिचय) — मूल्य व 1200

### स्त्यार्थ प्रकाश गन्य माुबा –15 माग

[प्रत्येक समुल्सास पर स्वतंत्र दे कर]

1 ईक्टर एक नाम जनेक 9 स्वर्च और <sup>अर्क</sup> कहाँ है?

2 बावमें भाता-पिता 10 चौके चुल्हे मे सम नहीं है 3 जिल्हा और चरित्र निर्माख 11 हिन्दू सम की निर्मेशना

3 जिला प्रोर परित्र निर्माश 11 हिन्दू धम की निर्मेशना 4 जनसम्बद्धाः स्थापना स्थापना 12 बीड और जैन मन

ई गृहस्थाश्रम का महत्व 5 स गासी गीन भीर कैसे हो? 13 वेद और ईसाई मत

6 राज्य व्यवस्था 14 इस्लाम श्रीर वैदिक तमें

7 ईश्वर धीर देव ।5 सत्य का सर्व तथा प्रकास 8 जनत की उत्पत्ति

विक्रेष — सभी ट्रैक्ट आय जगत् के विद्वानों के द्वारा निक्रित हैएक इन्वसाना का सम्पादन वार्ष समाव जनमेर के प्रकान की दत्तावयनी झार्ष ने किया है। बन्यमाना के पूरे सैट का मूल्य माव 8/- स्पर्य है।

स्त वाधिकार वाये समात स्रजमेर क निए व प्रकाशक एव संशोधक राशासिह हुतु रतनसाल वंग द्वारा वर्ग वाथ किएका, माहे प् मुद्रित एव स्राव समात स्रजन, अक्षेर से प्रकाशित ।

वेदो<sup>5</sup>सिलोधर्ममुलम् वेद ही तनस्त वर्ग का भूल है।

सत्य को बहुए करने भीर असत्य ने खोडने में सर्वे । उद्यत रहना चाहिए

-मष्ठांच बयानन्द

वयानन्दाब्द 162

सुष्टि सम्बत् 1972949087 वर्ष 3 बहस्पतिवार 30 ग्रप्रैल 1987 प स-43338/84 II

भार्य समाज, भजमेर का हिन्दी पाक्षिक पत्र

"मार्थ हमारा नाम है, वेद हमारा घर्म। क्षीक्ष्म हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ।।"

श्रभव मित्रादभयम् अमित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात् । अभय नक्तमभव दिवा न' सर्वा ग्राशा मम मित्र भवन्तु ।।

क्रच्यन्तोविश्वमायं म सकल जगत को मार्थ बनाए

हमारा उद्देश्य :

समाज की वर्तमान एवं मविष्य में पैदा होने बाली समस्यामी को दृष्टिगत रक्षते हुए बायंसमात्र का पुनर्गठन करना है।

वैशाख शु॰ 2 सवत 2044 वाचिक मु 15/- एक प्रति 60 पैसे

### आर्य समाज नयी पीढ़ी के चरित्र निर्माण का बीडा उठायें —विस्काप प्रतापीसह



समारोह को सम्बोधित करते हुए श्री सिंह

नई दिल्ली, 19 बर्जन भूतपूर्व हसराज को की जबन्ती पर बावोजित रकामत्री दिश्दनाव प्रतावनिंह ने आज समारोह में भावतः कर रहे वे। कहा कि हमे भारतीयना से अनुवाधित उन्होंने कहा कि अच्छे इसान बनकर मृत्य निष्ठ शिक्षा प्रशानी धपनानी ही हस स्वामी देवानन्व और महारमा इसराज जैसे महापूरको को उपवृक्त श्रद्धावनि वे सकते हैं।

भी सिंह ने आवें समाज की जिससा सस्याची से बपील की कि वे शिक्षाल बान्दोलन के प्रचेता महारमा समाब के सभी वर्गों को एक सूत्र मे



पूर्वरक्षामन्त्री श्री विश्वनाय प्रतापमिष्ठ आचाय वाब्ले को गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार प्रदान करते हुए

विरोक्तर राष्ट्रीय एकता की नीव सजबूत करने में सहयोग दें। मूतपूर्व रक्षामत्री ने इस धवसर पर आयं समाज की उन विभूतियों का गुस्कुल कानडी द्वारा प्रदत्त आरामार्थ गोवधन बास्त्री पुरस्कार से सम्मान किया। जिन्होने जपना सारा जीवन शिक्षा के व्यवार और सामाजिक उत्थान के लिए अपित किया है। उल्लेशनीय है कि ग्रार्थ समाज ग्रजमेर के प्रधान आचाय बाब्ते को भी उपर्युक्त पुरस्कार से श्री सिंह ने सम्मानित किया।

श्री सिंह ने बार्यसमाज को नवी पीढीके वरिव निर्माश का बीडा उठाने नी सलाह दी और कहा कि चरित्र पुस्तक से ज्यादा कीमली है। उन्हीने नहा कि शिक्षाकी परीक्षा मानवीय •यवहार में होती है **च**त समग्र मानव ना नियांस करना शिक्षा का प्रयुक्त उद्देश्य होना चाहिए ।

द्यार्थ प्रतिनिधि सभा राज. की राज्य सरकार से मांग--

### अजमेर के विश्वविद्यालय का नाम दयानन्द विश्वविाचालय हो

कार्वे प्रतिनिधि समा रावस्थान ने संजमेर में खुलने वाले विश्वविद्या-सब का नाम महर्षि दशनन्द सरस्वती विश्वविद्यालय' रखने की बाग राज-स्थान सरकार से की है सभा के प्रशास की छोट्सिंह एक्बोकेट ने राज्य के बुक्यशन्त्री के नाम लिखे प्रथमे पत्र में प्रतेक तक देकर विस्त-

चाहिए। जो किताबी ज्ञान तक सीमित

श्री सिंह बाज यहाडी ए वी

न होकर मानबीय जाबरए के सभी

पहलुओं का स्पर्श करे।

विकालय का नाम महर्षि दयानन्द के नाम पर रक्षनेका धीचित्य सिद्ध किया है।

की छोट्सिंह ने लिखा है-' स्वामी दशानन्त सरस्वती ने अपने जीवन का अधिकास समय राजस्थान में लगाया, कार्य समाज के प्रतिद्व ऐतिहासिक बन्ध की रखना भी उन्होंने उदयपुर के 'नौलका' महल म बैठकर की। राज-स्थान जनका सबसे बढ़ा परम क्षेत्र व्हा है। उन्होने राजस्थान के उद्घार 🕏 लिए भ्रपना सब कुछ। न्योछावर कर दिया । उनकी भ्रन्त्येष्टि भी राजस्थान के प्रमुख नवर धनमेर ने

ही हुई।" श्री स्रोट्सिंह ने अपने पत्र में

दयानन्द स्नातकोत्तर कालेज, प्रजमेर के मतिरिक्त भागभेर मे चल रही ग्रन्य प्राथ शिक्षण सस्थाओं का विवरसाधी दिया है।

षार्यसमात्र धजनेर ने भी इस आख्य का एक प्रस्थाव सब सम्मति से पारित कर राज्य के मख्यमन्त्री ब शिक्षा मनी की नेजा है।

निरेशकः वसात्रेय ग्रायं

प्रभाग संपायकः रासासिह

संपादक: वीरेन्द्र कुमार झायं

🗪 कार्या : 21010

### सम्पादकीय

### प्रतिनिधि सभा का अलवर अधिवैश्वन

यत 11 एवं 12 ध्रप्त 1987 ई को बसवर में बाव विद्यानिंदर के विद्याल कपानार से बाय प्रति तिश्वि ध्या एजस्थान का वाधिक बाबियान हुवा विद्याल राजस्थान प्रतिकृति ध्राविकाल बाय समायों के प्रतिनिधि सम्मिलत हुए।

प्रतिनिधि सभा की साधारण सभा की कायवाही को देखकर तो मुफ्त गुप्त जी की निम्न पक्तिमाँ सहन ही याद हो मार्ड कि—

हम स्याचे ? स्याहो सवे ? स्याहोने प्रभी । "

आसी मिल कर विचारें देश (समा) की समस्यायें समी॥

कई बार हो मक्षली बाजार का सा स्वयं उत्पन्न हो बाता था। अपन्या को के लिये समा का सब मां किटन हा बाता था। हमारी बाक ज्राता के स्वमन वहीं स्वय्ट हो रहे ये साथ ही हमारी कमवीरता के शीरे बीर ज़ल्म होने के सकेत भी बार है वे। स्वापि होनों ये जोना था भाजोन भी था कुछ कर जुजरने की तमना भी थी पर तु दिशा हीनता स्वय्ट संघ्यता हो रही थी। होन विस्ता से सा बाबिस हम सभी उसी नाग

आज इस प्रांत के काय एवं उपलाधियों के नाम पर समर सबर नेते बात कह कर सपना हिन तास पत्र हम जिस द्यान व्यक्ति इस और प्राय समाज के रहदर है हमार को पर जो बायित्व है उत्तवा इस घनों भीनि पालन नहां कर पा रहे हैं। जिन ने नवा ही सुबर बात कड़ी है—

तूबगर सगर की थात न कर यह दता कि कारवाक्यू छूटा।

मुक्त राहजनी से गरज नहीं तेरी रहदरी का सवाल है।

आज 11 वथ बीतने की बा रहे हैं पर प्रतिनिधि समा के पास अपना भवन नहीं जपना सब तक का रिवाड नहीं। अपनी समस्त सम्पत्ति की सूची नहीं है। कई स्थानो पर समाज मदिर बन्द पडे हैं जयना धनक्षिकृत व्यक्तियों ने कन्त्रे कर लिये हैं कई समाजा वे दो धडे हैं। प्रतिनिधि सभा की अपनी कही जाने वाली सम्पत्ति पर भी किरायेगार अथवा अस्य सोम कार्निक है। प्रतिनिधि समा के पास नाम मात्र के उपदेशक भजनोपन्सक एव प्रवारक है। जो हैं उनकी भी समृचित व्यवस्था नहीं। यह यद बताने का उद्देश अलीवना ग्रयवा कराई करना नही अधितु वस्तु स्थितिका दिग्दक्षन कराना है। जो हम सब के लिए विचारणीय है।

नहीं चाहते हुए भी अनवर अधियेशन में चुनाद को लेकर अर्थप्रस कता उत्पन करने को कोशिय की मर्द। कुछ सोगो ने जान बूक्तकर नो मित्रों को लध्यक्ष के चनाय में आमने सामने ला विया। यह साफ रुष्टिगत हो रहा था कि पूत्र में काय रत अथक ही पुन दावेदार हैं इच्छुक है जननी सब प्रकार से पूरी तयारी है पर फिर भी परिवतन के हामा कई बुद्धिजीदियो तथा अप उसाही आधाजनी ने प्नाव के लिये सबया अनिष्ठक एव बार बार मना करन और असमधता प्रकट करने वाल महानुषाव को सामने खडा किया पर ऐनवस्त पर उन तथान्थित परि वतन वादियो ने अपना पनरा वदल लिया और सौदेवाची के मधार पर समापूर्वभूकपथन को स्वीकर कर सिया।

बीर को हुआ तो हुआ। कल को फिल के अलब भी मिन ही रहेग। वा होन होन हानुवाको ने अपनी तीज न्यता महु या तथा भवनत्वाहत का परिवय दकर जा कुछ हुआ। हो सुना कर सिनक्ट सका क काय को अपने कर सिनक्ट सका क काय को आने बढ़ाने का निक्चय व्यक्त दिखा। भी कोट्सिक्ट की जवान निर्वाधिक हुए और उहाने बही सावारण समा के सम्मूख भीस्ताक्य

बाय (शब्से) की तथा का वरिष्ठ व उपप्रधान वोषित किया।

हम आका और घपेका करते हैं कि अलवर अधिवेतन के परचाल सभा का काय गति पकडेगा प्रभावी बनेवा और हम प्रान्त के कोने कोने में कृषि के सदेश की पहुचाने में कामयाद होने। अन्यवा —

> वह बक्त भी देखा है तवारीख की भडियों ने सम्हों ने खता की है सदियों ने खजा वाई ।

> > —रासासिह

### आचार्य श्री गोवर्षन शास्त्री : एक परिचय

भी बाचाय गोबधन को शास्त्री (। १८६१ । १९२७) अरायसमाज के एक निष्ठाबान कायकर्ता थे । स्व गोवधन वी ने भारतीय संस्कृति भीर जीवन दब्धन के प्रकार प्रसार में अनुकरशीय योगदान दिया । आचाच नोबधन की विकारक जिल्लाक ग्रीर लेखक एव उच्चकोटि के सम्पानक भी वे। उहोंने फैंच नाझनिक रूपों के विख्यात प्रवएमिल का मी और बच्चे नाम से हिंदों में प्रनृताद किया था गृदकुल कामडी के मुख्याध्यापक के रूप में उन्होंने हिंदी में भौतिकी तथा रसायन की पुस्तकों की इन शत ० श के प्रथम दशक मे रचना की यह पुस्तक कई क्वों तक इन विक्यो पर मुख्य पुस्तकें मानी जाती रही। उ होने 1915 में दिल्ली ने हिं नी साप्ताहिक पत्रिका ब्रह्नाय के सम्पादक का उपक्रम भी किया जो अर्थाभाव के कारण दीव जीवन हो पाया । उ होने सस्क्रन माना प्रचार के लिए धीर महर्षि दयान द के विशन के लिए जीवन पथ न काथ क्या। उनकी स्मृति मेहा उनके द्वारा स्थापित सन्द्र विद्या सभाके अन्नगत वदिक साहिय और आव मुल्तो के प्रकार का काय शोवधन ज्योतिमाला के रूप में किया जा

आपकी स्मृति ने समब विचा समा ट्रस्ट ने कई महान विमू तियों को गृष्कुल कानकी विषयिक।



लय के माध्यम से गोजधन पुरस्कार भी अनान किसे हैं। पुरस्कार प्राप्त करने वालों में भाजाय राम प्रताद नेनाकार (1981) ता जनकान जान किसे नेनाकार (1981) ता जनकान पिंडत सरकाम (1982) पिंडत सरकाम (1984) के स्वाप्त कर पांडत सरकाम (1984) के स्वाप्त कर्माण कर

साथाय गोवसन जी के दोनी पुत्र की — बल पढ़ कुमार हुवा व श्री भूपे ड हूबा घारठ सरवार के उच्च-तम प्रकारमिक विकाश रहे हैं। बास्तव में वे थोच्य पिता की योच्य सताजें हैं।

### पाठको से निवेदन '--

सदस्यताशुल्कशी घ्राभेज 🗝

वापकी लेवा में विगत कह माह से बाय पुनगठन नियमित रूप से प्रषित किया जा रहा है। इस सदभ में घापसे विनम्न निवै दन है कि पत्र का वार्षिक चुल्क मात्र 15/- MO हारा मेजने का करूट कर जिससे हम साधिक समस्या से मुक्त हो पत्र का निवमित प्रकाशन करते रह सक

सहयोग की कामना मे ।

— व्यवस्थापक

आचार्य भी गोवर्धन शस्त्रप्रस्तर्भस्त्रप्रस्तर्भस्तर्भस्तर्भस्त्रप्रस्तर्भस्तर्भस्तर्भस्तर्भस्तर्भस्तर्भस्तर्भस् ं

शीर्वस्य शिक्षाशास्त्री

आचार्य श्री दत्तात्रेय वाब्ले

के कर-कमलों में सादर समिपत

भ्रभिनन्दन-पत्रम्

श्रद्धे य आचार्य जी ।

क्यानन्द कालेज क्षजमेर के प्रधानाजाय के रूप मे धायको स्थाति राजस्वान की सीमाध्यो को पार कर सम्पूर्ण देख मे पहुँची है। 5 सकायो, 12 स्नातकोत्तर विभागो, बाल्यिय, विज्ञात तथा कृषि में स्नातक विभागों की स्थापना कर अपने प्राथमों-काल ने इस महाविद्यालय की जो सर्वागीरा उन्नति प्राप्त की कह हर विधान-सारती के किए स्पृष्टा की बस्तु है। प्राप्त कुवल प्रधासक, निष्ठावान प्राध्यापक तथा बहुआयामी विद्या के पारवत सर्वत रहें हैं। इसके प्रतिरक्त धनाय, निर्माण प्रतिरक्त वालक-बालिकाधी के पालन पोषण तथा विधान-दीक्षा के विधान वाल सन्त जेती प्राप्त की विद्याल-स्थान का आप पिछले 32 वर्षों से समलतापूर्वक स्थालन कर रहें हैं। प्राप्त के प्रथक परिश्रम और सुक्त के कारता ही यह सस्या प्रार्थिक हृष्टि से स्वावनस्थी बनी भीर को उत्तराह के साथ भी समानता के लाधार पर कच्चे को शिक्षा प्रयान करने का कार्य कर रही है। आपका ही प्रसास है कि इस सदन से एक सी पच्चीय धनाव बालक-बालिकाओं के नि मुल्क रहन-सहन और विकास पर यह सस्या प्रतिवर्ष प्रकाल कपने के लगभग स्थम करती है।

### माज्यवर ।

प्रापकी शिक्षा बनारस, इनाहाबार तथा लखनऊ विश्वविद्यालय में हुई। इतिहास तथा राजनीतिशास्त्र में स्नादकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद आपने कानून की परीक्षा उत्तीष की। मेयो तथा डी0 ए0 बी0 कालेक में शिक्षात् का कार्य किया तथा 'राष्ट्रीय चरित्र और एकता' 'सेवा भीर सचर्ष', 'आगंसमाज हिन्दूसम का सन्प्रदाय नहीं, 'बाइने इंग्डिया एक्ट हिन्दूइन्म' तथा 'देश, धर्म और समाज को आगंदमाज की देन', जेसी चिंवत पुस्तक किया। तथा विश्वविद्या एक्ट हिन्दूइन्म' तथा 'देश, धर्म और समाज को आगंदमाज की देन', जेसी चिंवत प्रत्यक किया। 1915 से 1986 तक सापने 'प्रत्यम', 'बिवय', 'अनायरक्षक' तथा 'वाय पुनर्गठन' जैसी पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। धार्वसमाज और उसके विद्यालाके के अथार-अधार के की में की गई आपकी सेवाएँ अविस्मरएपीय रहेगी। विदेश साहित्य और धार्यसमाज के अथवान पर मण्मीर शोक्षकां के निष् श्री ए वी कालेज में 'दयानन्द शोधपीठ' की स्थापना भ्रापक जिवसकरण का ही मुक्तन कहा जा सकता है।

### क्रशल शिक्षाशास्त्री ।

1956 में सिल्ला, समाजसेवा तथा नागरिक प्रशासन बादि में बापकी विशेष यो यता तथा धनुष्यं से प्रशासित होकर अमेरिका तथा इसलेड में आपको विशेषकप में धामनितत किया गया। वहीं धापके भाषणों से भारतीय तथा पाश्यात्य विद्वान विशेष प्रभावित हुं। महींच दयानन्द का सदेश विश्व के विश्वारकों ने मुना भीत भोगों ने बाला कि धार्युनिक भारत और हिन्दुन्त क्या है? 'इन्द्रोडक्यन टू माडर्न इप्लिया एक हिन्दु-जम नाम से प्रशासित खाएके भाषण उस विचारशारों का पूर्ण प्रतिनिधित करते हैं जो वेदिक ऋषियों ने तपत्या और समाधि के सहाधित धाएके भाषण उस विचारशारों का पूर्ण प्रतिनिधित करते हैं जो वेदिक ऋषियों ने तपत्या और समाधि के सहाधी के अनुभव की भी और जिसे ऋषि दयानन्द ने वैज्ञानिक इप्लिकोण से ससार के सम्भुख सर्वप्रथम रखा था। यही कार्स्स है कि दयानन्द कालेज की एजत अवती के प्रवस्त पर आपको उपराष्ट्रपति औ। गोगालत्यकण जी पाठक द्वारा अधिनन्दन न्या बेटकर देश के शिक्षा-शास्त्रियों ने भापकी सामाजिक सेवामों के प्रति सार्वजनिक रूप से आहर कर्क किया।

खापकी बार्वतमाय के प्रति की गई बसाधारण सेवाभो के लिए हम भाषके मानारी हैं। यत गुरुकुल कावडी के प्रारम्भिक धायाचों में अवस्पी, विज्ञान पर उत्कृष्ट हिन्दीग्रन्थप्रणेता तथा सरकृतसरकृतिनिष्ठ विद्वान स्वः श्री बोवर्डन खास्त्री की स्पृति वे समय विकास समा दृष्ट, स्वपपुर द्वारा स्थापिन गोवर्षन झास्त्री पुरस्काए से साफो सस्मानित करते एए हम रूप का प्रमुचन कर रहे हैं।

स्राप श्वराषु हो, इस शुभकामना के साथ हमारी श्रद्धा का प्रतीक यह प्रश्निनन्दन-पन आपके कर-कमलो में साचर सर्वापत है।

गुक्कुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिहार

**रामचन्द्र शर्मा** कुलपति वा ने जो ने सास्कृतिक धादान प्रयान करावक्रम वे समेरिकन स्वस्कृत के क्रिक्तम्स्य पर वापनी धानीरच नावा तवा विटिल काउतिल के विश्वमञ्ज पर इरालध्य बौर मूरोप की सन 1956 म गाना की तवा दुसरी बार बाधान आदि के होकर विश्वम सामा क्रमके के सन 1983 ने मीटे।

उनकी समेरिका की बाजा संयद ध्यस्त रही और उस विद्याल देव के प्राय सब राज्यों में उन्हें जाने का ग्रवसर भिला। वहा विश्वविद्यालयाँ शोटरी क्लबी नगर परिचयो जीर अनेक प्रामिक व सामाजिक संबठनी शीर अमुख व्यक्तियों से उनकी बाट की क्यबस्था की गई। सैन फर्सकबको के तत्कासीन मेमर सुत्रसिद्ध वाज किस्ट कर ने उन्हें प्रस्थरायत नवर की बढी काबी भट करके उनका नावरिक स्राप्तिनन्दन निया । इसी प्रकार से इक्लैक्ड ने पालियायेण्ट के दीनी सबनों प्रमुख विकाविकालको पश्चिक स्कृतो के सक्रिरिक्त उन्हें वहा तथा सरोप के प्रमुख देशों के दक्षनीय स्थान देखने का धनसर निसा। इन समका रोजक बगन उन्होंने जपनी अस्त्र की की पुस्तक वीट वेट्रफिक (The Two Way Traffic) में किया है। इसी प्रकार इन देशों से बाधुनिक श्वारत का परिचय देखे हुए उन्हाने स्वतत्र भारत की राजनतिक सामा जिक और भ्राविक परिस्थितियो पर जो विभार स्थनत विवे उननी भी इन्दर्शी एक इस्य अन्नजी पुस्तक An Introduct on to Mcdern India and Hindu sm वे सब्लिय किया है। इसमे उनकी मुख्य स्थापना यक्ष रही है कि सास्ताय पुनवनिरस का बास्तविक प्रारंब धर्मीक, नामा विक सुधार वा शेसनो से हुआ जिसमे ऋषि दयान द फ्रीर आर्थसमाज की प्रमुख भूभिका थी। इसी दीव पर बासीओं ने राजनतिक स्वाधीनता के भवन के निर्माण का काय प्रारम्भ दिया जिसे पूरा करने का अप्य सर सार पटेल ग्रीर जवाहर नेहरू को है।

हता पुन्तक में कतमान विकृत दि ट धम के सम्ब ध मा स्थिता में प्रचानत प्रार्धिकों का जिराक्रण करने के निल् उ नि उसके सक सम्मत और सीच मार्च उस विकर स्वक्य को उजानर करने ना प्रयस्त विया दिशका आय समाज बाधुनिक सन्तर्गा है। इन दोनो पुन्तकों की बनक प्रतिया विदेश जाने बाले खाना का धट करने के निये अप की प्रार्यों पुरुषुत कांग्रही निरंत विद्यास्य हाता क्षत्रप्रह सोस्त्रह सारती पुरस्कार से पुरस्कृत

### प्राचार्य दक्षात्रेय अपूर्व द्वारा लिखित साहित्य के विद्वार बिन्दू बिवेश गन्ना के सस्मरस

सकलनकत्ता - वीरेन्द्र कुमार बाय

पहि । सत अद कोमों पुस्तकों अप्राप्त हैं।

इन पुस्तको में उनके सस्मारको सीर अनुभवों पर साधारित कुछ सन्म बिल्डु निम्न प्रकार हैं।

थ।रत के बनान अमेरिका भी वानेक सभौं व्यक्तिको शक्षा सध्दीय धन्नवासियों ना देश है निम्तू बहाना प्राविक भीर समादिक खुक्क्षांभी तथा श्रम्की स्वाधीनता की परम्पा के कारस अमेरिका निवासियों के राष्ट्रीय चरित्र की कुछ विशेषताए है। अनेक रगव नस्लो के व्यक्तियों के साथ प्हन के कारण उनमें नीबो जिंह शब काचे कहा वाता है उद्दे खोडकर) एम वा नस्म के जिन्ह्य विशेष प्रमापाह नहीं 👢 अपेक्षों के निपरीन समेरिकन श्रप्तिकृत्यार भीर हाच ही नापास श्री हैं। भारत के सम्बद्ध वे उच्च विश्वित वर्षो भ **कोतुहल उत्पुक्ता के** साव एक विजेष सबप्रावना वृष्टि बोजर होता है कि दूरिक्या और विशेषकर साम्यकाद के विरुद्ध कर और गया के कारक भारत और विशेषकर स्वर्शीय नहरू की की बृट विश्पेक्ष मीक्षिको वे हितकर और धनुनुस नद्दी समग्रते । अधा वाक्तेणी ने समेरिका यात्रा सबधी प्रकृति बाबी की पुस्तक he Two Way Trafic में सिका है उड़ीने शरेरिका में इस इत्म को यह कहकर 🎹 करने काप्र ल किया कि समेरिका इसरा पाकिस्तान को बनुचित सम्बन बार तीय विनेत्र नीति को प्रसावित करता है। भारत को अपने हित में भी एमा करना अकरी है। व्यक्तियत जीवन की स्वतंत्रता के कारता वहा ल्ली वृक्षों के सम्बाधी आदि से दिश्वी भीर नई पीढी के युवक सुकको से स्वरुद्धन्दशा बढती विश्वाई देशी है।

पूरोप के कुछ देती और खास कर इक्लब्ब ने साम्राज्यबाद की परम्परांजों का प्रचाब समाप्त नहीं हुआ है यह इनके व्यक्तियत बीर सम्बंधिक बीजन से स्पष्ट शिखाई वेता है। यहाँप वार्थ वार्थ वार्थ के स्पेक दूरोपी वाद्य है स्थाक द्वार के स्थाक दूरोपी वाद्य के स्थाक दूरोपी है स्थाक वार्थ के स्थान के स्थाक वार्थ के स्थाक वार्य के स्थाक वार्थ के स्थाक वार्य के स्थाक वार के स्थाक वार्य के स्थाक वार के स्थाक वार के स्थाक वार कार के स्थाक वार के स्थाक वार के स्थाक वार के स्थाक वार के स्

पून ये वारान के निवाधियों की तानुसारन दिक्या है तक्षणिक क्षीर क्षीय हों देश के व्यक्ति क्षीय क्

### प्रवासी भारतीय

स्वयेरिका तथा ब्रुदेश में प्राय स्वय भारतीय यून में लोग स्कूरी हैं हिन्दु इंग्लेंब्स में उ हैं सब की बरीबी र जब की बांडीनता का स्मरता कर या ब्याता हैं कीर उनके प्रति स्वाप्तर तो पूर तमानता का भी वाचाने हैं मुस्तीय रबड़कों तक की हस्ता बद्द बहुवब होता है। दूबरी बोर प्रके-रिका में बड़े मारतीय प्राय तब उच्च सिवात सी सम्पन्न हैं। उनके प्रति बाद समानता और बहु तक कि बाद पूज व्यवहार का बहु भी एक कारण कु व्यवहार का बहु भी एक कारण है । दुवाँस के स्वत्न भारतीय प्रपर्द के बाद में स्वत्न के स्वत्न मानीय तथा पायाची विधिन्तातानी के क्यू मिक्राकृतिकार्ग तक स्वता करते हैं परिस्ताय स्वक्त वे क्यूक्री राज्दीय एकता तथा विधिवतार्ग क्या वर्षि प्रस्तुत नहीं कर पाते।

वान्ते भी वहां जपनी चौंतीतीं जीर व्याध्यानो में धमेरिका वि<u>धा</u>री मारतीयों को अपने देश की वि<del>र्मिश</del>-तामो के स्थान वर एकता को प्रश्नीत्त करने की समाह देते हैं । उद्युक्तरहा के लिए अब की के साथ केवल-किंब्सी वपमाकर तथा बायस में बाबार्य-दीन विवाही हाता एक वर्ड-काव किया जा सबसा है। इन वेक्ट्र मे शनेक देवी-देवता जादि हि ह स्क्रियो नकरी यीविकों स्थापियो तवातार्थी के माध्यम है जानिक सत्त्रेंसी के श्रतिरिक्त श्रेषेक देशियानवी अध विश्वाली रीति रिवाको का अवर्शन हमारे देश के भीरन और प्रतिकार को रम गरता है। इस देशों हैं कुछ मुख्य तथरों में कामसम व भी है कि दू उनमें मुख्यश कीरतीय क्षेत्र के ही सीम धान सेते हैं बही के किया सिको का बाद समाज जसे काहिकारी आन्दोलन की बहुत कम ज्हार्यकारी

माओवी में स्पितिमत चरिक के स्थान में एक जिसका आपतीय राजधिव चरिज में सबस में जो सिकार के सिकार का किया है जो एक का माजबाद के सिकार का किया है जो एक का माजबाद की सिकार का का माजबाद की सिकार माजबाद की सिकार माजबाद की सिकार माजबाद की सिकार में सिकार माजबाद की माजबाद की सिकार में सिकार माजबाद माजवाद म

माथ पुनग्रस की विज्ञासक वरें



### मेरठ के दंगों से नकाब उठ रही है-

मैराठ 21 जर्मल । वेशे विशे वर्षे की साम उसी परती मा रही है, वैवे हैं इसकी रीठ व्यवदाने वेहरों से मकाव उठती का रही हैं इसमें ऐसे वेहरे की सामित हैं, विन्हींने करिय का बीर राष्ट्रीयका का बाना पहल रखा है मनर उन्होंने साम्ययानिकता फैनाने जीर क्राइकारियों की पुनराह करने के स्वयंत्र प्रवासी ने वीर्ष कभी गही सोवी है।

रविवार की रात को ऐसे ही तत्वो ने सर्किट हाउस मे जिस प्रकार मुख्यमन्त्री थीर बहादूर सिंह की चेर कर उन्हें बलत तरीकों से मुमराह करने का प्रवास किया, उसमें उपके असनी रूप सामने या वये हैं। यूवा कापेस का लवादा पहले साम्प्रदायिक मनीवृत्ति के इन युवको का कहना वा कि मेरठ का इया पुलिस के किसी शराबी इन्स-पैक्टर की देन है अब कि दूसरे सम्बद्धात के शोगों ने इस वहानी को बन बहरत बताते हुए स्पष्ट किया बाकि सबे बरात की भारतम वाजी के बहाने एक नियोजित तरीको है यह दशा मुद कराया यया वा। एक ही समय में विधिन्न स्थानी पर हुई हिसक चटनायें इसके प्रमाण 8 1

जिला प्रसासन व पुलिस प्रसा-सन भी शबे-बारात को होने वासी भारतिश्रवाती नो भाषती प्रतियोगिता को हो दगे का जन्मवाता करार वे चुका है।

इसके बनावा विधिन्त समा-चार पर्यो ने प्राप्ती समान करना राव में है। अब कि दये के बावान की बहानी कुछ धौर ही है। राज्याई व बारतविकता से प्रांति चार करने की साहक सायब जिला प्रमानन की बुका है। बचिर प्रकासन की बणी बीली पत्रक का ही दुण्यरिक्शान है वे सर्मानक हाइसा बग्दीकि सरकारी तीन राजनीति से पूरी यह प्रमानिक ह स्वीलिए वह निध्यक्त व स्वत-क निर्णय के की चिवलि से सक्तम नहीं है। बैसे एक भी कबम उठाने के लिए सक्तमत का मुद्द सक्तमा पड़वा

दरमसल दमें की शुरुपांत का सही घटनास्त्रम है गुलमन सिनेमा

के सामने स्थित यी॰ पूर्वा मुपदी-यांन शिव मदिर वाली वली, बाह-**पीर गेट वहां हि**न्दू जोक्षें की एक 💵 परिवारों की बस्ती बसी है। इत बस्ती के जीराहा है बस्ती की चेरे हु**ए हजा**री मुस्लिम परिवार क वे वारात का रात को वहां एक धोर नगर के मुख्य नाग की दो तरफा से माके बदी कर पुलिस सबे-वारात की श्रातिसवाकी कराने मे बक्रमूल थी वही दूसरी और एक रेबती सरहा नामक लोक्षा के यहाँ इसके पुत्र नरेश कुमार की पाचवी वर्षगाठ मनाई जा रही थी <sup>जिस</sup> कारए आपके घर पर अनिधियों ना क्षाना-जाना सवा था।

प्रमुख मार्ग पर खातिसवाजी बारी थी । धानकारी वीपले से लेक्टर निस्ताडी गेट बीपले तक गाके सन्ती कर सी गई थी ट्रीएक वद कर िया बया बा परन्तु इक्के दुन्ये शोगी को दुनित साने बाने दे वही थी। खातिसवासी चला पहें मुस्लिम युक्को काट विवे चौर जरवर वो सस्ताह नारा ए-ज्यारीर धौर वावरी मस्त्रिय के देहेंते शादि नारों के साथ का चरा पर प्रवारत धौर जलती प्रातिक वात्र के एकाएक हमना हो जाने ते लोगों को धरनी जान वचानी धारी कर्म महिला के प्रवास क्षाति का कर्म है किसी तरह महिलाओं को क्षतों पर से पुराकर सुरिक्त स्वामो पर पहुचावा गमा हमने हैं चिरे कोगों ने सोचा कि सायद पुनिक हमारी सदद करेंगे परन्तु पुनिस वमी प्रपत्नी जान बचा पहले हो भाग कडे हुए थे।

बस्ती बानों मै बताया कि उपप्रतियों का नेतृत्व भोहान्यद वामीन पुत्र क्षत्रुत कर रहा था। उसी ने बिजली काटी व पैस का हरवा हाव ति पर हिंदुओं से दुकानें जलाने व जलवाने मे मुख्य पूरिनका बदा कर रहा था।

ल। धनमिंठ को लकडी की टाल

वसे पूर्व नियोजित थे : पुस्तिन पुबको ने शाती जाती महिलाओं पर जलती श्रातिल बासीयाँ फेंकी मीहरले के विज्ञुत कोवशान कार्ट : प्रमुख पगाई मीहरनय यामीन लिकायतों के बावजूद जुला जून पहा है वैनिक विश्व मानव के मेरठ प्रतिनिधि की विशेष रिपोर्ट—

और बच्चो द्वारा माने-बाने वालो पर भी पटाचे व फूलफडियाँ फेंकी जारही थी।

बमूटी पर जैनात पुलिसकर्मियो पर मात्र डको के बलावा आग्नेयास्त्र नहीं था। वे मूक दर्शक बने देख रहे कि

प्रत्यक्षवियों का बहुता है कि
कातिकवाओं करने वासों के एक
मुक्त ने एकाएक मोहुक्ता पुरतायान
की शिक्तांवर वासी वजी पर भोजों
कमा मिला बीर कर्षनाठ मना रहे
परिवार की बाती वाती महिला
मेहुमानो पर जसती | || वाति महिलाओ
पर एँ जी विश्वातिकसांवी से करवे
खें । इस कृष्ट ने उनका पीछा परो
खें सुस जाने तक नहीं छोवा। उस परिवार के पुरत्यों हारा ऐत्याव स्वारं पर इस पुरित्सम पुरत्यों न उनके
मोहुस्से के बरो के सिकृत क्रेनक्स न उनके को उसकी सीखो के लामने जलाकर राखावर दिया गया।

जब यह सम्बाददाता मी मुपती यात ने पहुचा तो देवीकरण की आर्थापर क्षत्री दवायुक्त पट्टी ने स्वय बता दिया कि वह भी देने का मिकार हुआ है। सवाददाता के पन्यने यर मीहरूले वासी इन्द्रा हो गये जिसमे से कई एक के पट्टिया बधी वी झौर उन्होने एक साथ ही सरकार व पुलिस की सकमण्यता वा बकान शुरू कर दिया । उनका आरोप का कि प्रमुख दवाई सीहम्मद वासीन शिकायतो के बावजूब भी खुला भूम रहा है। जबकि दगे की विवासी डालने वाला मोहम्मद वामीन ही है। भीर बधीतक भी विसी सरकारी व गैर तरकारी शोमी ने बाकर उनके हाल चाल नहीं पूछे हैं। वह सभी तरह की काक सामग्री के लिए परेशान हैं। दक्षहत भरे चेहरे जिए यथे के के सिकार लोगो ने नगर में बसे

म्बन्य लाखो हिन्दुओं के प्रति भी दुखान रोजप्रकट किया।

पुर्क सूची से वह मां पता बका खला है कि यह दया पूर्व नियोजित हमिलए भी लतात है कि यहावमर पालिका ने कार्यरन तमध्य 60 मुल्यिम जितन्त्रों ने दस-दम दिन का प्रविम सनकास लिया वा । इसी तरह मरकारी व चेर मरकारी कार्या-त्रया न कारखानों मं सने कोगों ने बी दस-दस दिन की छहिनों से सी वी। प्रधानन यदि सच्चाई व नास्त-विकतायों तक पहुचना चाहुता है वो वह इन सम्बा प्रकारता मी विकतिस से वांच कराकर सही निव्यय पर पच सकता है।

इसके धानावा कल साथ छावनी क्षेत्र के इका विद्यायक घजीत सिंह सेठी ने धपन निवास पर कुछ बन प्रतिनिधिया घोर प्रमुख कान्स जना की एक बैठक बुनाई वी।

उसमें भी श्री वैनाव चन्द्र गौतम एडवोकेट प्रकाश चन्द्र गौतम एडवोकेट, महे-त कुमार बनी भीर पत्रकार सतीब बर्मा ने धपने विचार व्यवत करते हुए यही निस्कर्ष निकाला कि दया पूर्व निमीनत या ।

बैठक में इस बात पर भी
चर्चा हुँ हैं कि स्वानीय ध्रीवकारियों को मेरक भी मौनोधिक
दिखाँत पर पूरा जान न होने के
कारव्या उन्होंने सही तरीकों से
कप्तमु नहीं तपाया निकासी से
मानी कोठी, अहमद रोड बणी
बाजार और और नगर ने हिसक
घटनाए हुँ उन्हें पर्भू रेहित
रखा बया और नगर ने हिसक
घटनाए हुँ उन्हें पर्भू रेहित
रखा बया और नगर नता तक कभी
क्रिती देगे से कोड वारवात नहीं हुँ
चहाँ तपातार भीच दिनो तक कभ्यू
नवाकर सोभी ना जीना हुमर कर

इस बात को बरूरा महसून की वह सित शाफ सिका की हमान के अमुख हिन्दू मुस्तमानों को इकट्टा करके उनसे एकता धीर शांति स्था-पित करने और शार्रवारा मजबूत बनाने का सहबोर लिखा बाये ताकि नेयरु में रिचित पूरी तरह सामाय ही सके।

(बिश्व मानव से सामार)

### अजमेर में दयःनन्द विश्वविद्यालय क्यों ?

प्रयाण्डाल्य प्रमाण्डा —त्रो पुरित्रकास सार्व का गण सकते हवे उसते अपने

श्रास्त्र हुएँ का विषय है कि
राजस्वाल राज्य प्ररक्षार ने सकीर
नवर में दिवस्तिवासन स्थापिय
करने जा निजंब निया है। इस
लिवें को मुठें कर के ते कि
सारिक छैवारियों जी नुत कर की
है । इसेज के पुल्यामार्थी भागवीय
की हरिदेव कोखी के प्रक्षा भागवीय
की हरिदेव कोखी के प्रकस्य प्रमार है आसानी कर से ही विकासियालय
सपना जाने बारान कर देशा, प्रमानीय
मुख्यमंत्री का निवास कोच में यह योग-सारान जाने सारान कर देशा, प्रमानीय
मुख्यमंत्री का निवास कोच में यह योग-सारा वनके कार्यकाल के स्थापित

तानोक्षनीय है कि 1962 वे शि देश के प्रमुख नेवाबी, नवियो तथा कार्वजीन कार्व समाध विश्वक करका परिषद द्वारा यह प्रयत्न किया का रहा है कि अजमेर में स्थानम्य निम्ब-विद्यालय स्वाचित किया जाने । उत्त विकामे पूर्व प्रसाम सभी भी साथ बहादुर बास्त्री ने दिल्ली में वय्-मोयलाधीकी वीकि अपनेर ने व्यानस्य विश्व विद्यालयं की स्वापना मे सरकार पूरा सहयोग करेगी। यह भीवता 16 माच 1965 को क्यपूर रेडियो द्वारा प्रसारित की नई थी। महायुक्तों के नामो पर विश्वविद्या-लवो के सामकरका की प्रकरन पर-**।यरा के अनुसार श्रवमेर विस्वविद्या-**श्य का नाम द्यानम्द विश्वतिकालय रक्षमा कई वस्टियों सं तर्कस्थत है। बड़ी कारल है कि बत 1962 के ही श्रावीर में दशानम विकासियानर हेत् तस्कामीन जिला नवी की हरी बाळ डपारमान राजस्थान विमान-सभाव्यक्ष राम निवास निवा, सांबद भी प्रकासकीर सारजी तथा भारत के पूज मुख्य न्यायाधील औ वेहरचन्द महाजन ने अधियान चनाकर पूर्ण समर्थन प्रदाम किया वा । देश के प्रमुख समाचार वने में भी **एक्क** प्रस्तेच प्रकाशित किये नय ये।

ध्यान के दिस्तिम्बालन का स्वकृष कावकी प्रतान के दिस्तिम्बालन का स्वकृष कावकी हैं जहां प्रवान विदिश्या हुं-िक्चल ही पूर्व हैं जहां प्रवान के तहता का प्रवान के स्वान पर एकने की सावकरणा के पह स्वानि हैं हक के प्रााप पर्योग्व हुम्मक और तक सगत है। हिंदी के प्रवान को हो प्रवान प्रवान काव हात्र स्वान को ही स्ववना प्रवान काव हात्र स्वान को ही स्ववना प्रवान काव हात्र स्वान वा सुर्व हैं स्ववना प्रवान काव हात्र स्वान वा सुर्व हैं सु

अमृत्य साम्रिय का सुजन किया था। जवमपूर, बोधपुर, सबुश, कुष्कर तथा क्यपूर कादि क्षेत्रों वें स्वामीकी ने यक्ता बमूल्य समय, क्रुरीतियो को दूर करने बखुतोद्धार करने, निवेशी बासन के विद्या एक्साओं से पान्द्रीय वाबना क्याने, विका का प्रचार प्रसार करने सभा बैनिक समें का उद्यार करने वे व्यक्तीत किया था। बत में बबबेर बाकर उन्होंने अपनी जीवन तीमा समान्त कर निर्वास प्राप्त किया जिससे इस नगर का जहा एतिहासिक महत्व बढा 🖁 बहुा यह अथवीं (हिन्दुक्षी) का एक तीम त्वेत भी मंत्र गया है। श्राण प्रवरूप िक्क में प्रकार हैं अंक में प्रकार के बलाको के बाध्यक हरू विश्वे वेचे बाबी दी ए वी सरफार्मी का शा बाहरूय है तथा देश का बकते पुराना टी ए वी कॉसेज भी देशभ्यापी शोशप्रियमा अभित कर भुका है। महर्षि हारा सस्यापित की सु वी सरवायो, पुरुकुत्तो किसास कैम्हो कादि की सकता समाग तीन हजार है को देश विदेश में वागग्त सप्रवा-पूर्वक शिवस त्रवान कर यहे 🕻 । स्थ हा राजेन्द्र मनाव (पू राष्ट्रपति) भी व भवाहर साम नेहरू (पू प्रधान मधी) राष्ट्रविता महारमा संबी धारि राष्ट्र के कर्मधारों ने वार्यक्रमान के राष्ट्रीय व वीक्रफ बाल्योक्य की स्वातस्य आदोलन का मूल बेरखा-स्थोग स्वीकार किया है । स्वामी वसानम्य ही यहन व्यक्ति वे जिल्होंने विवेशी भासन की कड़े बच्दों में **प्रतिना की थी । शाला साजपत**नाथ की स्वातकृष्ण वर्ग स्वामी वादा नन्द प्राप्ति देखे ही बसियानी शान्द्र पूत्र के जिल्होंने महावि की शक्ता धर्मेक्ता तथा बार्य तथाच को सर्व मासा स्वीकार विका मा ।

इन इक सबस विश्वयों के शाक्षर पर सम्बद्ध विश्वयोगस्थ न्तरकार पर जनकर शुरुशायक्षया का नाम "देवानाय विश्वविद्य सर्व" रवाने की बास्तविकता से कोई इन्कार नहीं कर सकता है। पूकि अब स्वत नाम करना करना है सत नेहरू विकाविकालय नामक विकाविकालय सुक्षाविया विक्यविद्यालय की भारत प्रजमेर के विश्वविद्यालय का दयानस्य विश्वविद्यासय रे नाम रखने की जन भाषनाओं का धादर करते हवे उत्ते स्वीकार करने की महती अपेक्षा है। ऐसा करने से इन दश व श्रमीदारक महिव दयानन्द के प्रति सच्चा सम्मान प्रवृक्तित कर सकेंचे।

वेव वेपान पुरस्कार 1987 के लिए

### पश्चित विश्वपाद्यी क्रियामार्शका का नाम घोषिस

वार्य तकाश काम्बाक् व वस्तर्ष झारा दिवारिया के वेदांच बुराबार पवन समिति ने वर्ष 947 के किए आई काल के प्रकार निवास परिवार परिवार परिवार परिवार की कि क्षेत्रवार्यक्ष कर प्रवार किल्ला है। 98 वर्षीय व शिक्काय की के सम्बाद काल के निवार की किल्ला की काल की काल की काल है और सात्र की वक्षीय का प्राप्त पूर्व करने में हवला है।

इत पुरस्कार के लिए पूर्व को बिहान को 21000/- की वैंगी, एक्क ट्राफी, वेकिनस्थन एक कास मेंट कर सम्मानित किया जाएवा !

हर वर्ष आर्थ समाय सारवाज्य न ने एक और रागील पुरस्कार की पोचखा की है। विवक्ते जानवेंत वेस वेंदानों के विद्यान एस अनुस्वस्थ कर्जाओं के सारी-रिफ्त जिन निष्दानों ने कर्पबस्क, प्राचानेपरेक्क एक कार्यकरों के कर में स्मेर्ट्स सार्थक क्षेत्र कार्यकरों के कर में स्मेर्ट्स सार्थक की अदिक्त 11600/-की वैंसी एसत ट्राफी, स्रामिननथा पत्र एस साथ के सम्मानित किया साहबा ह

रा द्विजीय पुरस्कार के निष्य वागमान आमें क्यात के बुशविद्य वाणाती, सारवार्थ महारती प्राणीय सगर स्थापी की महाराध का मानव किया जात है। या नव के सामं उत्ताव वालदान्त के मुस्ताब्द की विद्वालं के बल्यान का बुलावार्थ किंग्र हैं। यह विद्यारित नहीं वार्त के बेरिना प्रस्ताह में बोर्जीवार किया वारवार

— केप्सन वेवरान आर्थ स्थाननी

#### धाचार्ये जी का मन्य स्वागत



बबयेर, 24 वर्गन योजां सामा विवास क्ष्मणार्थे व स्वास्त्रक पूरेररार प्राप्त कर दिस्ती वे नवमेर व सर्मवारियों द्वारा स्वामेर के रेसने वीटने पर, बार्स करात, सम्बंद के श्टेकन पर कुस सामार्थी द्वारा सम्ब मधी भी राजानित्त के सिल्प की सामें स्वास्त्रक क्षमण के स्वास्त्रक क्षम भी

को ३ म्

### विद्यार्थियों को सूचना

उच्चकोटि की पाठ्यक्य - पुस्तकें, कानियाँ तथा स्टेकनरी का सभी सामान मस्यन्त किफायती बरो पर उपलब्ध हैं ! सम्पर्क करें ---



श्रार्थ वस्तु भण्डार, धायसमास मसन, केन्द्रावर, समोर

स्वत्वाधिक'र माथ समाज ग्रजमेर के लिए व प्रकाशक एक सपादक रासासिह हेतु रतनताल वर्ग डारा श्री धार्य प्रिन्टसँ बाबू मोहस्ला, कमरगज ग्रजमेर मे मृद्रिन एव बाय समाज भवन अवमेर से प्रकाशित। FREE

नेके पिकोचर्न मृतम् वैष ही समस्त अर्ग का मृत है।

साय की शहरा करने और शक्त के सोक्ये ने क्येंग स्वस्त रहना चाहिए —नहाँव स्थानन

\_\_\_\_\_

यमानम्यार्थः 162

चुन्दि सम्बद् 1972949087

वर्ष 3 कुकतार 15 नई 1987 वर्ष 6 ए छ -43338/84 ग ক্তান্ত্র নির্দ্দিক বিদ্যালয়

वार्य समाजः समाने का हिन्दी पाक्षिक पत्र "सार्व सुनारा गम्प है, वेद हमारा वर्ण । कोश्रम स्वारा वेद है, सत्य समन्य कर्म ।।"

अभय मित्राक्ष्मवध् आमत्रादणयः शातादच्य परोक्षात् । अभय नक्तमभय विवा न सर्वा सांशा सम मित्र भवन्तु ।। कुण्यस्तीविश्वसायंग सकल जनत को भाग बनाए

हमारा उर्देश्य समाम की वर्तमान एव प्रविध्य में मैदा होने वाली समस्यायों को वृष्टिगत रसते हुए धायसमाम का पुनगठन करना है।

ज्येष्ठ कु॰ 2 सवत 2044 वार्षिक सू 15/ एक प्रति 60 पैसे

### आंबार्य पाष्ठे का नागरिक अभिनन्दन

सक्तेर, 3 वर्ष । जार्य समाज सन्देश के सम्मानकाम ने स्वागन पश्चित के पूर्व प्राथाने कार्यों का व्यविकात समार्थे हे प्रायान क्षित्रक समा के प्रशासन किस्ता मोहस्त्राची की मानकाम प्राप्त प्राप्त पुरुष्टिकाम पीसार्थ (स. नागभीति) के कुक साविका ने समाज हुआ।

भी नोटबाभी ने भी बाउने की विका वाहित्व और बाव बमान के प्रति की नई देवाओं तथा नौजवन बात्यों पुरस्कार ने सन्मानित होने के भारता उन्हें सबसेर का नीरव सतावा !

भी मोटवानी वी वे कहा कि भी बाकों के चरित्र से हुने प्ररक्षा प्राप्त करनी चाहिए ! आपने भी बाकों के बीचोंतु होने की कामना की तथा उन्हें



समारोह को सम्मोतित करते हुए विशास समा स्थाध्यक्ष किशन मीटवानी सथा मण पर नैते हुए हैं सामाजी बाल्ने एवं करतान तुर्मी प्रशाद चीवरी ।

प्राचाय दिनेवासिंह वयानव कालेख धवमेर ठा प्रमसिंह पू वायुक्त, देव स्थान क्रक्एराव वाक्ने प्रची बाय समाव विधा तथा, वे एठ वेह्नस्य पूर्व प्रधान बाय समाय उदयपुर विदारका वर्षा वदयन्त्र परिपक्तिरायी समा व्यक्ति परिकारियी सभा व्यक्ति

प्रमुख नागरिको विभिन्न स्थानमें एव तिस्रम सरकाओं के प्रतिविधियों ने सारवापण्य कर की वाक्से का स्था यत किया।

मुख्य सतिथि पद से बीसते हुवे कप्ताम युवांग्रसाद बौधरी ने कहा कि



समारोह में स्परियत बन सबूह

धारवातन विवा कि वक्तेर से बुसने काले विकासिकासन का नाम सहित बतानद करानकी विकासिकास होने की तकसी इच्छा को हुए करवाने का वे कुमी इक्षा करेंदे।

विचा प्रमुख वी बुदुवनाविद्य जी राज्या में कहा कि भी वाल्मे के परिण के तीन विजेष पुरत है—रवाण निपठा और बेशा जिलके बस से में महापुर्त्यों भी कही में ना पहुंचे। भी पतांचाल भी महील देंगे ने बापके मारिक्स की प्रमुख के मुद्दे हुए हुए सामाना की बहु आएको तस्मी उम्र प्रदान करे राष्ट्रि आपका मादकत गवा प्रावी-वाद तमाय को दोर्गकाल तक निमता गुढ्ढे । ताएने भी वास्त्रों में बुनमें वासे निक्मिक्षालय के सिए वसाई नेते हुए कहा कि इस दिक्क-विचानय का खुबना सांपके प्रवस्तों केकतात्वकर ही सम्मद हो केवा है।

वी मासक्यान सीमानी घटनस सक्य विका कार्यस (६) अजमेर ने श्री वास्त्र के बीवन की प्ररक्षारणीय एव अनुकरणीन बताया एवं त्रमु है उनके दीवाँदु की होने कामना की।

इस जमार पर तब भी भीकार इस जमार पर तब भी भीकार विद्य सवावत एवचोकेट (शब्दका पा जमार परिचय सवादेश हु दू अव्यव नगर परिचय सवादेश त्री एवं के चावचं पू दू प्राचाव एवक्डीय महाविचालय सवादेश चो पी ज्ञावम पूर्व विदेशक सलीक विकास (राज) राज्याला वादव अव्यवस्था सवादेश सावपा, स्वाचेर सबरलाख सवा क्ताचिय वास्त्री ने त्वाधीनवा समाय मी तबाई वे माथ तिमा। वाच ही साथ समाय के द्वारण भी उन्होंने इस नवर की सम्बंधि तैया की। क्यान साबुद ने भी वास्त्री द्वारण निववतिस्था-सम का ताम महर्षि वयानव किस्त्री-विस्तालय रखने का समयन करते हुए कहाकि यह उन महर्गुड़व के प्रति सम्बंधि वह उन महर्गुड़व के प्रति सम्बंधि वह उन महर्गुड़व के प्रति सम्बंधी अद्धा होगी।

अंद में प्राचाय बाब्से ने संबंध महानुवायों के प्रति आधार व्यक्त

(क्षेत्र पुष्ठ दी पर)

### अप्<sub>याना प्रचंका विषय है कि</sub> अजगर क विद्यावसालय ग्रममेर वे स्वापित होने वाले

-भी रासासिह एव ए, वी एड, एव एक वी

राजस्थाल सरकार ने निकट प्रविष्य मे प्रजमेर ने विश्वविद्यालय स्थापित करने का निश्वय किया है। 'वेर बावद, दुरस्त धावद' वह निर्णय सर्वेचा उचित एव सामायिक है।

इस विक्वविद्यासन का नाम ध्यानव विक्वविद्यालय होना चाहिए न्योकि देश ने वर्ष विश्वविद्यासय राजनेताओं श्रम्या समाज सुक्षारको या सत महारमाधीं एव ऐतिहासिक पुक्ती के नाम पर है। यखिप हरिवासा तर-कार द्वारा वर्षो पूर्व रोहतक में स्वापित विक्वविद्यासम का नाम महर्षि दयानद विश्वविद्यासय रक्षा गमा है परस्तु वह तो एक क्रिया की केवल प्रतिक्रिया भाव ही वी स्वोक्ति पत्नाव से गुरुगानकदेव विश्व-विश्वासय की स्थापना की गई थी। श्रद हरियासानें त्री एक विश्य-विद्यालय का नाम महर्षि दयानद विश्वविद्यासय कर दिया । देश में कई |बश्वविद्यालयों के नाम, एक ही महापूरव के नाम पर हैं। ठीक इसी प्रकार इस विस्वविद्यासम् का नाम भी बयानद विश्वविद्यासय रखा जाना शाहिए।

### इस नामकरण के कारल --स्वाधीनता के सुत्रकार

वह एक सुविदित-रेतिहासिक तथ्य है कि महर्षि दयानद सरस्वती रवराज्य, स्ववनं, स्वसस्कृति, स्व-भावा के प्रथम सुप्रधार एव , उन्नायक थ । प्रपने प्रसिद्ध द थ संस्थार्थ प्रकास के खुठे समूल्लास में उन्होंने स्पष्ट शब्दी ने यह प्रतियादित किया है कि विदेशी राज्य कितना ही हिनकारी क्यों न हो स्वराज्य से ज्यादा हिनकारी नहीं होता। सुराज्य से स्वराज्य ही कही सविक बढकर है।

कई ऐसे ऐतिहानिक तथ्य वत वर्षों में प्रकट हुए हैं जिनसे वह सिद्ध होता है कि वहाँच दवानव सरस्वती का 1857 के स्वाझीनता सवाम तथा उसके पश्चाम प्रज्यानत होने बाजी स्थाधीनता की ली के पोछे हाम बा ग्रीर तत्कालीन अपेकी सरकार द्वारा जन्म विद्वाहासन्यःसी श्रष्टागयाथा। उन्हाने अपने जीवन में स्वान-स्वान पर वैश्वित समका अचार करते हुः साम्ब्रदाविक, श्रामिक धीर राष्ट्रीय एकता का प्रयास किया या तथा ब्रापसी फट को ही उन्होंने देल के पतन का मूल कारल स्पन्ट रूप वे प्रतिपादिस किया । अवके उपवेको ने राष्ट्र के पूनर्थावरता में महस्वपूर्ण शोषधान दिवा या । आर्वे सभाव्य ने महर्षि दयानद

के विकारों से प्ररित होकर सामादी की सकाई से महस्वपूर्ण बोसदान **नि**का है । प्रताबि सीतारमञ्जानहरू निविद्या कार्यस के इतिहास में यह उस्तेख बाना है कि एक बार वह सर्वेक्स किया गया कि बाबादी की शवाई वे विरक्तार होने वाले व्यक्तिको ने सर्वाधिक किस विचार छारा से प्रस्ति है ? उस सर्वेकण ये यह आत हवा है कि सब्धव 80 प्रतिकत व्यक्ति धार्व समाज और महर्षि दयागद की विचान्श्वारा से प्रेरित होकर स्वाबी-वता बान्दोलन वे भाग ले रहे हैं। स्वामी बढानम्द, लाका नाजपतराय, राव-प्रसाद विस्मित बादि सुप्रसिद्ध नेता एक ऋत्विकारी वार्ष समाज की ही बेन वे श

#### प्रसिद्ध समाय समारक ---

बहु एक तर्वयान्य तथ्य है कि महर्षि दशानव शरस्वती सामाजिक कान्ति के बप्रदूत ये । उन्नीसवीं स्वी के पूनर्जागरल एव सुदारात्मक वान्दोलमों ये सवाधिक प्रभाव महर्षि के विवारों का ही पढ़ा वा। ऋषि दयानद एव उनके द्वारा स्वापित 'बार्य समाव' ने बाल विवाह निवेध सतीप्रका उग्मुलन, विक्रवा विवाह का समयन, जाति बन्धनो का विरोध, स्त्री शिक्षा, बन्धविश्वासी एव सामा-किक करीतियों का प्रवस विरोध तवा सबसे बढकर दलियों के उत्थान का कार्यं विया ।

#### महान शिक्षाचिव ---

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वय शिक्षाविव भी ने । उन्होंने सपने प्रसिद्ध व व सत्याच प्रकाश के नीसरे सम-ल्लास में शिक्षा के बारे में विस्तार से विदेशन किया है तथा शिक्षा के मध्यम, शिक्षा का स्वरूप, विश्वा के उद्देश्य, चरित्र निर्माण, विका प्रवान करने बासों के युख, भेदधान रहित प्रनिवासं एक सार्वभौगिक

शिक्षा राज्य के कर्शक्य साहि के बारे में उ होने अपना नृतम्य स्पष्ट विया है। इसी काशार पर बार्च सवाच ने देश-विचेश ने गुरुकृषी, शहस्त पाठ-मायश्री, कुम्बा राठशासाधी एक ही व वी स्क्रम एक कालेको का वास विशा विशा है को किया के लेक ने महरवपूर्व कोवशान दे रहे 🕏 र

### स्वाजियात के अन्तदासः.-

महर्षि दयानद सरस्वकी ने ही राष्ट्रवासियों मे स्वर्धानमान की भावना उत्पन्न करने के लिए स्पष्ट क्य से यह उदयोषका की की कि भारतीय संस्कृति विश्व की सक्येंप्ठ प्राचीनतम संस्कृति है एव वृदिक धर्म विश्य का प्राथीनतम प्रमं है तया उनका स्म उद्गम भी भारतीय ही है, वहाँ के ऋषि मृतियों से ही समस्त विश्व ने सत्व चाहिसा मानवता एव परिष की शिका-बाल की है। कवि वशायतः न वेक पर नाम शामांवर्धः निवासिकों का नाम जाउं तथा शाका शार्व प्राचा के वाम की बाद दिसावर एकान का संघ प्रवास किया वा ।

### राष्ट्रभाषा के प्रवस पक्षपर

महर्षि दशनद की मातृशावा बुजराती डोने पर एव स्वय सस्कृत के प्रकाश्य परित होते हए भी बहा समान के नेता केवदक ह के सुभाव पर उन्होंने सरकृत के स्वाव पर चन साधारश के डिवार्ज बार्य पाया डिप्सी का त्रयोग सूक्ष किया सवा अपने समस्त ग्रंथ कार्य भाषा हिन्दी मे किसे। अपने उच्येको व की सर्वन धार्वभाषां 'ति-दी काडी प्रयोग किया तथा उस जनाने में हिन्दी के प्रयोग की बढ़ाने के लिए हवारी व्यक्तियों के इस्ताबार कराकर अपेकी सरकार को जापन की विवा का कार्य तमाज के जपनियमों ने प्रत्येक सार्थ समाज के सदस्य के लिए हिन्दी और संस्कृत आनना जनिवार्थ कर दिया ह

### ऋषि स्थानर शीर राजस्थान

महर्षि दशागद जब कार्व क्षण में उतरे तो पूरे देव में भ्रमश करते हुए एक धारते उपरेको का प्रकार-

जवार करते हर रावस्थान ने भी कई बार बाबे तथा समस्य अपना वर्ता-णाम समय च<del>वरनीय की</del> रिवास**ती** ने विदास । उदमपुर के नीसका गहुम में शरपार्थ जनाश को पूर्वता प्रयान की, वहीं परोपकारिकी सकर तका क्यमी बसीयत का पंजीकरसा भी गरवाका। वहाँ के महाराका सन्दर्गसदयी की वेद संस्कृति आदि धर्म स्थारमी का शब्दबन करवाना। कोसपर के शका को भी सध्यक्त शरवाया । वर्तीं स्वामीजी को निवकान भी करावा बंधा को उनकी मरन का कारल बना । जबपुर, चाहपुरा,पानी, मस्वी अवनेर, नवा बहर (आवर), सोसत, बाबरोर्ड, काबू पर्वर्त, पुष्कर वादिस्थानो पर भी बाह आहे असा वापने उपदेश दिये । पुष्कर के सुप्रसिक बह्या मदिर में उन्होंने वेंद भाष्य का कार्यं भी किया। अवगर से तो उन का बहुत ही क्वादा सम्बन्ध रहा। राजस्थान की देखी रियालको मे जानकि और वेतना ना सनार करने में मूचि दयानद का जद्भृत मीरवान रहा। केशरीसिंह बारठ, विवयं सिंह र्वावक वैसे जान्तिकारियो पर इन्ही का प्रभाव परा ।

#### निर्वास स्वली शक्नेर.--

कार्त-कृषि वयम्पर वैदिक सर्ग क प्रथान-क्रमार भेरते हुए 3-4 बार स्वामेर साथे और बेहाँ कई विन ठहरकर खपने म्याबनामी के सकतेर थी जनसा की लाधानिक किया नहीं जनका प्रात्मास्त भी इसी अधनेर नगर ये हुआ । इसलिए अन्येर का ऋषि दयागद की निर्वाश स्थली कहा जाता है। सबधन 3 वर्ष पूर्व 1983 ई में अवनेर नगर ने ही धन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महर्षि दवानव निर्वास सताओं का बाबोबन किया दवा वा जिसमें देख जिदेश के लाखी तर-नारियों ने यहाँ बार्व रे केवि दया-नद को अपनी पारधीनी श्रद्धावनि अधित की तथा उस समारोह का एवचारम भारत की तत्काशीन प्रसानभूषी सीमर्ता इविशा वासी ने किनः था। ऋषि दमानव की कर्ड विश्वांता प्रतास्थी थीं 1933में स्थमेर में ही जनाई गई थी। ऋषि थयानव का निर्वास स्थल (धिनाय कोठी), बरवेच्टि स्थल (पद्मावनक स्थित श्मशान) जनकी स्मृति में निर्मित 'शरस्वती-वदन' ऋषि सञ्चान ६६ दबानद शासन तमा उनकी वसराधिकारियाँ परोगकारियाँ संबा

(शिव पृथ्ठ 3 पर)

### सम्पादकीय

### अजमेर की विशिष्ट प्रतिमा का सम्मान

बचनेर के नासबीय कहे बाने वाने तथा दवानन्द कॉलेज, प्रवरेर के सम्बापक प्राचार्य भी दक्षात्रेय बाओं को गुरुष्ट्रस कांबड़ी विश्व-विधासन, हरिहार द्वारा "गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार 'से वक्ष शाह की IV अप्रेम को सम्मानित किया गया : 'नोवर्षण बास्की पुरस्कार' धार्य अवत् में भरवन्त भीरव एव सम्मान का प्रतीक माना बाता है इस पुरस्कार से प्रतिक्वं सम्ब प्रतिष्ठित 2-3 बार्य जनन के विद्वानी की सम्मानित किया बाता है तथा प्रत्येक की शतय-श्रमव अभिनन्दन-पत्र भी प्रशास किया जाता है। इन बार वह भीरव-पूर्व पुरस्कार एव सम्मान एक समित व्यक्तित्व के धनी तका आर्थ समाज एवं महर्षि स्थानन्द के प्रति अनम्बनिष्ठा रखने वाले तथा "मनला बाचा, नगला" बाबंश्व की जीवन में धारल करने वाले हिन्दी एव अपेजी के प्रकाश्य विद्वाल, भी बला-भेग की बाब्ले को भी दिवा नगा है। यह अजमेर के भाव जनतु के लिवे गौरव की बात है।

श्री दलावेंय वाक्ते की इनसे पूर्व भी दयानन्द कॉनेज अपजेर की रजत बय-ती के भवसर पर तत्का-सीन उपराष्ट्रपति श्री मोपासस्बरूप पाठक द्वारा उनकी श्रीक्षशिक सेवाओ के लिए सम्मानित और अभि-नदिस क्या जा चुना है। परन्यू इस बार एक विश्व विद्यासकारा उनकी विद्वता एव पाहिल्य को स्वीकार कर सम्मानित करना निजेव महत्व रखता है। वह ज्ञातच्य है कि उन्हेबह पुरस्कार यत 19 धप्रेस 1987 ई की नई दिस्ली के ताल-कटोरा स्टेडियम से भूतपूत्र रक्ता मत्री की विश्वनाथ प्रतापशिह की धारम्बाता में आयोजित विशेष समारोह में प्रशान किया गया था ।

श्री रक्ताचेय वान्ये अर्थमान में धार्व समाज बजमेर के प्रधान, धार्व समाज विका तथा (जिसके धन्तर्गत डी ए बी. कॉलेब, विवासास टीवर्स देनिव कॉसिय तवा डी ए वी स्कूल धावि जैसी 14 विकस्त सस्वावें सचाजित 🜓 के वरिष्ठ उपप्रधान, निराधित बासक वासि-काको का पालन शोक्ख एव शिक्षशा फरने वाली सत्वा दवानन्द वाल सदम की प्रवस्त कमिति के प्रशाम, प्रविद्यम रेड कास सोकायटी विका शाखा चनभेर के वेगरमैन, बार्व प्रतिनिधि सभा रावस्थान के वरिष्ठ क्षप्रधान, सार्ववेदिक धार्व प्रतिनिधि श्रमा के सबस्य, कार्य प्रावेशिक प्रतिनिधि समा के बतर्थ संवासद. श्री ए बी प्रबन्ध समिति गई दिल्ली

के बरुरव समासद, सार्वधीय धार्व समाब विश्वला सस्था परिषद् के यत्री, प्रवमेर विना सहायक्षा प्राप्त विश्वास संस्था प्रयाधक स्था के बडयक्षं, सार्वजनिक विद्यास सस्या परिषद राषस्यान के उपप्रधान आदि कई विभिन्न रूपो में सेवा कार्यकर रहे हैं। इतनी सार्वेषनिक सस्वाकी के कार्यमे व्यस्तारहते हुये भी की दतात्रेय की बाज्ये निरन्तर स्वास्था-बक्षीन रहते हैं तथा बार्य सिद्धान्ती कापीपए। करने काी पुस्तकों के जन्यमन करते के साथ-साथ देश-विदेश के प्रसिद्ध लेखकों की चर्चित पुस्तकों एक पण-पणिकार्ये भी नियमिस रूप से पढते रहते हैं। धाप एक अच्छे वक्ता और कुसत विचारक होने के साथ- । सा साद-हत लेखक भी हैं। घाप द्वारा लिखित एव सम्पादित निम्न पुस्तके विशेष उल्मेखनीय हैं। हिन्दी -

राष्ट्रीय चरित्र कौर एकता, बार्त्रस्था हिन्दू धर्म ना सम्प्रधान नहीं, धार्य समान, मूर्ति पूत्रा अवे-किंक, धार्य समान, मूर्ति पूत्रा अवे-किंक, धार्य समान का चरिक्य एक चेतावती, सस्यार्थ प्रकाल क्षत्रमाला (15 सान), धात्रार खहिता, सेवा और सम्बंध मार्थि।

#### mail and ....

मार्थन इण्डिया एण्ड हिन्दूइण्य, द्व वे ट्रॅफिक, बार्म समाज, हिन्दू विश्वकट हिन्दूइण्य ।

भी बास्से की कीर्तिका शबर स्तम्म दयानस्य कांनेज सजमेर है। इस कॉलेंब के आए सस्थापक-प्राचाय वे तथा इसकी स्थापना एव निर्माण में पश्चित जियासास जी को बनन्ध सहयोग दिया दा। जब सापने कार्यभार बहुए किया था तब यह माध इच्टर करनेज था, इन्होने अपनी सगन तथा कुसल प्रशासन से इसे L3 विभागी मे स्तासकोत्तर उन्नति भी चरम शीमा वर कचाया । तथा कई विशास भवनी का निर्माख करवाया । आपके उस क्षमय इसका अनुकालन एव वत्तम परीक्षा परिखान सर्वत प्रवसनीय था। बापने कर्मश्रीर प वियासाल वीकी स्मृति ने विया-बास टीयसं ट्रेनिय कॉलेज, जिया-सास कन्या सैक स्कूल मादि की स्थापिस करवाने ।

बोवर्षन पुरस्कार प्राप्त करने पर इस धार्य पुनवर्ठन पनिवार की लोर से की वरानेय वी वास्त्रे का होरे से की वरानेय वी वास्त्रे का होरे तथा सर्वक्राक्तमान देश्य है उनके सता सर्वक्राक्तमान देश्य है उनके सतायु होने की वामना करते हैं।

— रासासिह

### झवानेर के विश्वविद्यालय का शाम.... ( पृष्ट 2 का क्षेत्र )

का कार्यालय सम अजनेर में ही हैं। बजमेर में ही सुप्रसिद्ध शह विश्व-विचासय का रूप सिए दयानद कॉलेज क्या भारतकी सबसे पुरानी दी. ए **वी स्भूल तथावन्य 15 विकास** सस्वायें भी अजमेर मे ही हैं। ऋषि दयानन्द के जीवन काल में स्वापित कार्य समाज, अधमेर प्रान्त का सबसे पुराना भावं समाव की यही है। बाल विवाह निवेध कानून (शारवा एवट) के प्रणेता प्रसिद्ध इतिहासकार हर-विसासकी सारदा दयानद कॉसेज श्रवदेर के सन्वापक एव 1939 के हैबराबाध के सत्याच्छ ने स्पेक्षल ट्रॉन भेजने बासे म्हान् आर्थ नेता पहित कर्मवीर जियासास, देशभक्त कु व्यव-करण सारदा, रामविसासची सारदा, रायबहाद्र मिट्रनतासबी भागेंग, प्रसिद्ध नमात्र सेवी 🖬 श्रम्बानामणी सर्वा वैसे बार्च पुरुषो की वर्गस्वली अजमेर ही रहा है। बबमेर के प्रसिद्ध ऋक्तिकारी नेता पहित ज्वालाप्रसाद श्वनौ. श्वर्जनसाल सेठी, विजयसिंह पाचिक आदि का भी बार्थ समाज तथा डी ए वी स्नुस जावि से बहुत सम्बद्ध रहा है।

#### मूपू प्रधानमंत्री द्वारा समर्थन -

बजिर ने स्वान्द निक्विष्यालय के विचार का समर्थन प्रारत के स्वार्धन प्रधानकों रव की लान-सहादुर बास्त्री ने भी किया वा तथा 16 मार्च 1965 को बेहली से एक सार्वेद्धनिक स्थान स्वार्थनीयों ने स्वार्थन से स्वार्थना विस्विधालय को स्थापना करने के विचय पर सहानुभूति पूर्वक विचया पर सहानुभूति पुर्वक विचया पर सहानुभूति

#### वेशव्यापी समर्थन ---

सम्मेर में यमानय सिमनिक्यालय में स्थापना के सवस्त्रीन में तरकाशीन प्रवासों को देवस्थापी समर्थन प्राप्त हुसा वा जितके समर्थकों में सू पू रखामणी वार्ड मी चौहान जैसे केन्द्रीय नची, जनेक राज्यों ने मानी, राज्यपाल, उपकुष्तपति, हाईकोट के के जब तथा सत्तर में तथा तथा विपक्ष के प्रमुख सात्रय सम्मित्त हैं जितने सारत के पू पू व्यायात्रीय सी मेहर्स-एरम्पाल सी प्रीवदेन के पू पू-रम्पपाल सी प्रीवदेन

सम्बर, ज्वीसा के सरकालीन राज्य-पाल भी ए एन चौसला, विहार के बू पू पाञ्चराक्ष मास्त्र भी, पजत के कू पू किसा मधी भी ध्य-राज्य चित्राक्षकार, प्रचान के विश्वविद्यालय के भू पू उपकुतपति भी सूरवणान, पजाब के पूर्व शिक्षा अभी टेकच्या, पजाब के पूर्व शिक्षा अभी टेकच्या, स्वान के पूर्व शिक्षा अभी टेकच्या, केम्बीय अभी भी राणनिवास सिर्धा, सू पू राज्यपाल भीनरहरि वादनिक्ष उन्न के जू पू मणी भी व्यवस्थान प्रवत, सावि के नाम विषेष उल्लेख-

### ग्रंजमेर की जनता का समर्वन

वब प्रजमेर में दयानम्ब विका-विचालय के प्रवास चल रहे ने तौ उन प्रयासो का समर्थन श्रवमेर की अनता के विभिन्न दनों से भी मिला बा, दयानद विश्वविद्यालय की मान को लेकर एक शिष्टमडल जिसमे अजमेर ब्यावर किशनगढ आदि ब्राजावेर क्षाप्त के सासव, विधान समा सदस्य, नवर पालिका, राजनैतिक दल के प्रतिनिधि सम्मिलत थे, 28 मार्च 1965 को राजस्थान के तस्कालीन राज्यपास डॉ सन्यूग्रीनन्दवी के अजमेर साने पर, दयानद विश्व-विद्यालय की स्थापना के श्रम्बंध में ज्ञायन दिया या। उस आपन पर हस्ताक्षर करने वालो में अजमेर के तस्कालीन सातद मुकुटनिहारी लास भागेंव, मसूरा के राव नारायस्थिह मसूदा (तत्कालीन उपाध्यक्ष राज. विद्यानसभा।, तत्कासीन उपमत्री प्रभा मिखा, नगरपरिवद धवनेर के तत्का-लीन बाध्यक्ष देवदत्तकी सर्मा, नगर स्थार न्यास के तत्कालीन सध्यक्ष कुच्लाबोपाल वर्ग, जिला प्रमुख विस्वे-इबरराथ धार्यव, मा कि बोर्ड के तस्कामीन खध्यम सदमी जाल की जोसी, राज प्रदेश कॉंग्सेस कमेटी के सदस्य पुरुषोत्तमदास कुदास बादि सम्मिलित वे । विनसे स्पष्ट है कि धजमेर के जन प्रतिनिधियों का भी श्चमधंन इस विचार का पोषक है।

प्रत राजस्थान सरकार से विनम्भ अनुरोध है कि उपरोक्त सभी तथ्यो एव परिस्थितियों को प्रस्टियत रखते हुए इस विश्वविद्यालय का नाम अर्हाण दयानद सरस्वती के नाम पर दयानद विश्वविद्यालय रखा वाये।

#### सम्प्रवन की सम्मन्य एव को स्थ-वायुनिक समय ने सार्ववनाय के सरका, चुनान, कार्ववस्थानी, पुन-वर्ठन क्या वैद्यानिक प्रचार व मतार वाचि के सबस में कम्पयन करते के यह वनुमव हुआ है कि इसके कार्वविधि सम्बन्ध एवं पुनर्ववन की समाज प्रारम्भ में एक क्रांतिकारी, सामाज प्रारम्भ में एक क्रांतिकारी, सामाज प्रारम्भ में एक क्रांतिकारी, सामाज प्रारम्भ का सामाजिक राम-नेतिक, पास्ट्रीम का वावरएं के कम

करत व वह जुएन पुर दुग्यें कर कार्यं सिंध सम्वर्ग एवं दुग्यें कर कार्यं सिंध सम्वर्ग एक क्रांतिकारी, क्रांमिक सार्व क्रांतिकारी, क्रांमिक, सार्विक, सार्व्यक, सामार्विक राज-गीतिक, राष्ट्रीय वण काररा के कम के बस समुद्राय के सम्बुख उच्चरकर क्रांति है। इस का अंगरिनिक स्वक्य विविक्य प्रधान वे पुरू होने के कारण व्यवसाय का एक कम के अर्तितिकी वा हो गया था। किन्तु बर्तमान समय के अर्त वाली कर कार्या वा वा वा वा विकन्तु बर्तमान समय के अर्त वाली कर कार्या वा वा वा वा विकन्तु बर्तमान समय के अर्त्य वाली कर वा हो गया था।

थवा है।

इसके साथ ही वैविक विकास्तो के प्रकार प्रसार तथा अववहारिक कीवन में अपनाने की को परम्परा सदस्यो मे विश्वमान थी बहु भी प्रम क्षोमल सी होती जा रही है। अस्व देश वहा प्रान्तवाव, वातिवाव, वार्मिक यतवाद तथा विचठनात्मक प्रवृत्तिमी से नृत्रिकत हीता वा रहा है वहा मानव समाम भी बातिनत, वर्गमत धादि जनेक प्रकार के भेरभाष, बाट-बर, कुगैति में से दक्षित होता कारहा है जिनका विस्तारक्य ने वर्णन करना कठिन है। इसी तरह विभिन्न बनगत राजनीतिक दांवपेंच से देख विषटन कै करार पर खबा है । साम्ब्रदायिकता देश की अवस्त्रता को बलने के लिये, विकराज व्याल के लगान मुह फैलाये दिन-दूनी रात भौनुनी होती था रही

इस प्रकार देशा की सामाजिक, श्राणिक, श्रामनीतिक, सैमारिएक तथा आर्थिक आदि जनेक राष्ट्रीय सम-स्थाओं के सन्दर्भ ने बार्व सनाम की आज उतनी ही आवत्रयकता नहीं 🕏 जित्तनी स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय क्षितिज ने वी कपितु उससे भी कही श्रष्टिक राष्ट्रीय समस्याओं को सुनभाने मे श्रमका समुचित समाधान कोजने में बार्व समाथ की जावस्थकता मनु-**जब की जारही है। यस आ**र्थ समाज प्रपने पूजवत् उध्वयल स्वरूप, राष्ट्रीय एकता के सूत्र को स्थापित करने के निये इसके सगठन, प्रचार मैली कार्यावधि, नेतृत्व, सदस्पता, सामाजिक उत्थान तथा पुनर्गठन इत्यादि अनेक मन्दर्भी ने सिहाय-लोकन करने भी सावश्यकता सनुभव की जारही है।

### स्रायं समाज की कार्यविधि, संगठन, पुनर्गठन: एक समाज शास्त्रीय अध्ययन

- डॉ कुष्स्पास सिंह श्यानम्ब वैविश्व क्षेत्र पीठ, प्रवर्गर

प्राप्ययम की प्रक्रिशा

रपर्वं क पश्चित विषय-बस्तु को दुष्टि में रखते हुए वह विचार किया नवा कि बार्य वनगु के विद्वानी, सन्त्रासियो, पदाधिकारियो, सम्रा बदो, धनावहितैनियो, बनुरागियो तका बन्व सभी स्वधित व्यक्तियों वे विस्तृत वैद्यानिक अनुवन्धान हाथा तच्यात्मक वागकारी संकलित की बामें। इसी वृष्टि से कोलपीठ के हारा एतहिषयक सन्वेषसा प्रारम्भ किया नगर । इस शब्ययन के द्वारा बार्व समाम के सबक्षित सनेक प्रकार की समस्याची तथा वक्षों के विषय वें तम्यों का एकपीकरण किया क्या है। वह ब्रध्ययन इस वृष्टि से भी महत्त्र-पूर्ण है कि मार्थसमध्य के बप निमयो ने तशोधन तथा चुनाव प्रक्रिया संबंधी दृष्टिकोस आदि को किस प्रकार से पूनर्वेटित किया जाने जिससे आर्थ समाज की स्वर्थि और अधिक निकर कर सामने का सके तथा इस दिक्ता मे प्रचाबोरपादक कार्य प्रस्ताती को शह-नाया जा सके।

इस प्रकार धनेकल आधार विन्दुयों के परिपेक्ष्य ने वह कार्य प्रसरम्य किया गया है। विश्वकी प्रेरका विकेष रूप से श्री दक्तात्रेय औ ग्रामं ने दी है। इसके शाथ ही साच समय-2 पर समूल्य सुम्भावो के झाछ नार्गदर्शन भी किया है। इस महत्त्व-पूर्ण बहरयन को प्रारम्भ करने के लिये एक प्रकाशनी की सरचना की वर्षे । इस प्रकारकी के निर्मास सबधी कठिन कार्य थे डॉ. बजरम क्षामनी टॉक, प्रवक्ता, समाच सास्थ श्री बुद्धित्रशाम जी आर्थ, प्रक्रका, समाधासस्य तथा हाँ वेवक्रमा जी वेषसमार सरकृत विमान मध्यक ध्यानम्य नालेक, अञ्चेर ने समय-समय पर प्रमूख्य सुन्नाओं के द्वारा सराहतीय सहयोग प्रदान किया है।

बहु ध्रम्तावली सन्पूर्ण वेश-विवे-शस्य तथा धन्य विभिन्न क्षेत्रो में स्थित कार्य पुरुषो के पास प्रेषित को वर्ष । जिनमे से हमें 103 प्रश्ता-

वानियां उत्तरसहित प्राप्त हुई है। मध्यमन के हाए। कतियय प्रस्थाय-लिया राष्ट्रमें वहर्ष वह जिल्हे इस वर्ष-चसारमक बद्धबन में सम्मिन्द नहीं किया नया है। इस प्रकार वहमध्यवन 100- प्रश्नाविवाँ के उत्तरवाताओ के बाबार पर किया क्या है। इसमें पश्चिकोश इस्तरदाता प्रविक अनस्या थाले प्रीढ़ व्यक्ति है जिससे यह ध्यु-शान स्वतः ही समाया जा श्रवदाः है कि जो भी तथ्य प्राप्त होने ने महरूव-पूर्ण एव अनुजयी व्यक्तिओं के होने । इन बन्बेयस्य ने जहा श्रीड़ स्वस्तियी का सहयोग रहा है वहा बुवकों तथा महिलाओं का प्रतिनिधित्व भी उस्के-खनीय है। इस अध्ययन ने उत्तर-दाताक्षो का भौगोशिक बायु सरपना वादि धनेक बर्गी ने विकल्फ किया वजा है : जिनका प्रतिनिधित्व निस्न प्रकार रहा है---

**प्रायु सरव**ना के बा**षा**र पर 25 वर्ष तक का 4% 25 वर्ष से 50 वर्ष तक की बादुका 40 % तथा 50 वर्ष से अधिक अवस्या का 54 % । वैश्वरिक स्टर के काशार पर माध्यमिक विकास स्वर तक के म्यक्ति 3%, स्नातक स्तर तक के 43% तका विधिष्ट उच्च विका वर्णात् एम ए, पी एवं की, इल्बी-निवर एम वी की एस इस्पावि का 43 % प्रतिनिवित्य रहा है। व्यावसाविक तंरवना के बाधार पर क्षवि एव व्यापारी वर्वका 28 %, क्रिक्षण एव क्रम्यमगाव्यः पन वर्ष का 25 %, सेवारत (सर्विश) वर्ग का 18% बन्द 4% व्यक्तियो का प्रतिविधित्व रहा है। आर्गिक पृष्ठ-भूगि के आधार वर वैक्कि धर्मानू-याची 83% सनातन वैविक धर्मानु-यायी 15% तथा 1% अल्ब नत सम्प्रदाय के स्वक्तिको ने इस अध्ययन ने जपना सराष्ट्रपीय क्यूब्सेन प्रदान किया है।

शार्व समाव का स्वक्रप, कार्यप्रशाली एवं प्रमाव वार्व समाव के स्वक्रप के सम्बाव में विद्योग—

वर्तमान समय में अनेक मत-

रामान मिर्क में क्रिक्सम् है आर ही जोग वासीनक विचारतारानें मानिक हैं। साइट में प्रतिक्रेक, वर नम्मदान प्रचित्त हैं विचारी कार्य प्रवाद के त्यार हैं। क्षी मंगर आर्थ समाव हो गोग किए का मैं जीकार करते हैं, यह जागते कि कार्य साथ के स्वरूप के दिश्य में मोधों के पृष्टिकोश क्षाप्तार्थ प्रसुत प्रभा रखा महा विक्के क्षाप्तकर रामां साथा में स्वरूप कारकर रामां साथा में हैं —

83 प्रविशत से की धक्षिक सत्तर दाराओं ने कार्य समाध्य के स्वधन के स्थाध में यह तिचार स्थल, विश्वध है कि यह सरका प्राचीन वैदिक वर्ष और चरकृति, सम्पता का पीचक, प्रचारक तवा महर्षि दयानग्व द्वारा स्थापित है: 39 प्रतिवत उत्तरकाताओं ने इसे समाज सुधारक के क्य के जाना है जबकि एक तिहाई 33 प्रतिका ने वृष्टे कारिकारी राष्ट्रव्यापी जान्योसन के रूप में स्वीकार किया है, विशेष-कर स्वाधीनता बाम्बोलन, जनजान-रल, तिचा प्रसार, वातीय समस्या चन्यूनन, तथा भक्तिमाओ की स्थिति सुखारक बाम्बोलन बसावा है । 10 प्रतिवत उत्तरवाहा इस मत के भी हैं जो वह मानते हैं कि जार्ग समाज हिन्दू समाथ का एक सुधारवादी वान्दोलन है, जो कि हिन्दू सयाज वें व्याप्त अन्धविश्वास, क्षिवादिता, बानविवाह, तरीप्रया, धार्षि कुरी-तियों का निराकरशा, वेदो के यथार्थ स्वक्य तथा यथार्थ वेदावं का प्रचार करना, इसका सक्ष्म रक्षा है । इसका व्यविशाय यह है कि ज़िन्दू समाज ने थी बुराईवां, कुरीतिया व्याप्त 🖁 उन्हें जार्ज समाज स्मीकार नहीं करता 👢 अपितु उनका विनास करके स्वस्थ स्त्यदित मानव समाच की स्थापना करना चाहता है। इसी दृष्टि से मोध-पीठ के निरेशक भी दत्ताचेय कार्य ने 'The Arya Samaj Rindu walkout Hindusm' नामक प्रन्य की सुवारा की 🛊 ।

इसी कन्यमा ने एक गर्याल तथ्य जगरफर सामने यह भी ब्रामा है कि रूप थी उत्तरसाद्या ऐका स्कृष्टि है विवर्ता एके नदीन द्वास्त्रसाद का क्या उत्तीन एर दिकाई हो, शदा कार्यंच्याल-पुरित्तय देवाई बार्यि के वस्त्रस्त्र मेंदि क्या पत्थ सही है यह सम्मों के कुल्यन्द हो चारत है।

(क्रमस )

# व्यक्तिकोक प्रियमिक में वेश्वानय (वर्ष-क्रिकेक) ज्यात्र प्राप्त ने वर्की वा । निवाह प्रवादी नामना का व्यक्ति । विश्व प्रवादी नामना का व्यक्ति । व्यक्ति विषयित् विषयि

बाद ने खिक्कान में समीतन करके केन्यूकर शस्त्र की उसके बाधार-चूल अर्दीकों ने बोक विना नगर।

वीता में प्रथमे पूर्व सेक्बों मे स्पष्ट कर पुना है कि राजनीतिक कारकों से धर्म निरपेशका का यह मार्था विकृत होकर सर्व धर्म लावेका बन वया है। विसके दुन्गरिक्तामों की की विवेचना इन लेखी वे की वा चुकी हैं। सेक्यूकर का सर्वपण-निरंपेश किया बार्या क्षेत्र निर्वेक, वे केवल एक साध्यिक विवाद सह बया है। सर्वे का बास्तविक कर्व |श्लीबान, धर्म या पथ न होने पर की देख के तकियान एवं कान्ती परिपेशव में सर्व सन्ही अपों ने क्द की बना है। वैसे सिका का शाब्दिक वर्ष भने ही तिन्य हो गौर मुससमान वा सर्व र्शनान ने व्य क्यक्ति हो। किन्तु व्यवहार में वे दोनो सब्द सद एक धर्म या सम्प्रदाव के बलुयायियों के लिए ही प्रकीव होते हैं। इससिए यहा हम सर्म निर-येख इसी प्रवित्त का में प्रयोग कर रहे हैं।

सविधान के मौतिक पश्चिकारो से बार ऐसे प्रावधान है जिनका माधार व्यक्तिक कहा का सक्ता है। **अधी**त धारा 25, 26, 28 और 30 इतमे भी मौसिक प्रावधान कारा 25 में है जिसके कहा क्या है, "भारत के प्रत्येक नावरिक को सपने धर्म पर विकास रखने, वर्ष का पासन करने धीर उसका प्रचार करने की पूरी स्वतंत्रता क्षोमी"। बारा 🌿 वें श्चार्मिक समुदानों को अपना सार्थिक सत्याको का प्रवत्य व व्यवस्था करने की स्वतंत्रता दी नई है। बाय 28 के अनुसार सरकारी अथवा सरकार द्वारा कार्निक सहायता प्राप्त विवास-बरमाधी ने किसी विवासी को उसके विश्वावकों की श्रम्का के दिवरीत किसी धर्म की जिला देने का विश्वेश किया गया है।

बारा 30 का प्रशीव

क्षारा 30 का स्वयंक मान केवल मस्ववंक्षकों की स्वरंगी वार्षिक

### धर्म निर्पेक्षता और संविधान

—द्याचार्ये क्लानेय वार्य---

स्वतशा तक ही वीनिय नहीं एवा है। इस बारा में काल्यासकों की बहुवक्सरों की तुमना में विलेख पिर-कार विद् वर है। सल्पतक्सरों की विक्रक्क सरमाएं सर्पारी अपुरान प्राप्त करने के वाश्वद धर्मी वर्मे की विक्रक्क सरमाएं अपने वर्मे की है कि, बारा 30 की वर-धारा-3 में यह स्वय्ट कर के कहा बया है कि शांकिक सल्पतकां की मिकस्त-स्वार्थों के विश्वस्तानों की स्वयस्ता शीं बरह ही सरकारी सनुसान प्राप्त होता। और उन्हें 90 के 100 प्रति-सत तक सरकारी अनुसान प्राप्त एका है।

वे ब्रस्ताए वर्षने धनुपानियों के बच्चों को तो बदानी वार्गाण विवार देने में न्याय है ही, इसके सम्ब हो वार्गाण किया होते, इसके सम्ब हो बच्चों को बच्चों को स्था हमें ही जिल्ला कोने में स्वत्य है। केरल के विवार कालेज, सहस्वार हो तर वे विवार कालेज, सहस्वार बात के स्वत्य के किए यह स्वत्य वार्गाण के जिल्ला को सिए यह स्वत्य कालेजी में वह रण्ड वार्गाण के सिलांची में वह रण्ड वार्गाण के सिलांची के सिलां

### हिन्दुकों के प्रति सञ्चाव

जन सम्प्राप्त ने यह नामाता है कि ब्रास्त 25 एवं तिवाल के कुछ जन्म प्रावदानों द्वारा प्रत्येक लाकि को साधिक स्वरुपता वी गई है। मेकिन इस स्वरूप वी एक विचा-रहीन प्रकर्म क्रम्युप्तकों की तरह स्वरूपी विकास व्यवसातों में सापी दर्श की विकास व्यवसातों में सापी दर्श की विकास वर्षों में स्वरूप करने ? क्या इसका वर्षों समग्र काए कि स्वरूप एक्समें की बहुस्क्रमा की लोखा साधिक साधिक स्वरूप प्रत्ये है। विक्रिय से स्वरूप प्रत्ये है।

इस सदर्भ में यह की उत्सेवनीय है कि बिस प्राप्तका से बहुतवयक दिस्तुकों को सपनी विकास-स्थापों में सार्थिक विकास देने से पश्चित एका स्वाहि, यह निरासार है। क्योंकि कहुतवयक दिन्दु करारी जिम्म-विका जान्यताओं वासे सुनेक सुनुतार होने के

कारस दुरुपयीय नहीं कर सकते हैं।

इसके साथ ही यह तथ्य भी उत्-सेवानीय है किइन से भी केवल मार्थ-समज की विकास सस्वाए ही ऐसी हैं जिल्हे वह अधिकार प्राप्त नहीं है को गैर हिन्दू जिल्लासस्याको को प्राप्त है। सत्तएव धारा 30 का व्यामहादिक परिस्थान यह हुआ है कि भाष क्षिन्द्र समस्ते जाने के कारल धार्यसमाम जैसे सबठन को भी ब्राधिक स्वतंत्रता के इस ब्राधिकार से विचत रका गया है। वो उन्हें सबि-वान द्वारा प्राप्त है। वतएव वार्य समाज की जिल्ला-सस्याची द्वारा शारा 30 के अस्तर्गत समान अधि-कार की जांब एक प्रकार से हमारे सविद्यान की धर्म-निरपेकता की परीक्षा है।

### हिन्ध बचित क्यों ?

उपसेश्वनीय है कि देहती उच्च न्यायासय ने धपने धार्यसमाज सबकी निर्णय में कहा है 'हिन्दू या उनके किसी सम्प्रदाय द्वारा स्थापित मिक्स सस्याको को सारा 30 के बन्तर्गत दिए वए विशेष प्रक्षिकाए प्राप्त नही हो सकते । इसको हम दूसरे बस्यो में कह सकते हैं, कोई हिन्यू सबठन वासस्याको सह अधिकार नहीं हैं कि वह प्रपनी इच्छा की विक्रण-सस्थाए स्वापित करके उसके लिए सरकारी प्रमुदान व मान्यता प्राप्त कर सके। इसके साम ही वह घल्प-सक्यकों के समान जपनी शिक्षण-सस्थाको मे अपने धर्मानुवावियो तक को की स्वक्षमंकी किया नहीं दे शकता। इस सबके उपरात भी यदि बहु प्रपनी सस्थाओं ने वार्गिक जिक्षा बच्चो की देगा चाहे तो उसकी व्यान्यता व अनुसाव सरकार द्वारा इन्दक्र विए अपने । ऐसी स्थिति मैं बहुवाहुकर भी अपनी सस्वाधो वे धार्मिक विका नही दे सकता। इस सदर्भ ने यह भी दृष्टच्य है कि देख में जी पश्चिमक ल्पूल नामक सस्वाष्ट हैं वे वैर तरकारी होने पर धी केवस उच्च वर्व के तथा धनी व्यक्तियों के सिए हैं। जिसमें होने बाना व्यय प्रति सात्र असर उपवे

माशिक शक होता है। ये संस्थाए बरीब तो दूर सध्यम वर्षकी पहुँच ते भी परे हैं। किन्तु अन्य ईसाई विश्वास शुरुवाए इन पब्लिक स्कूली का मुकाबमा मासानी से कर सक्ती है। स्थोकि उनमें भी उच्च वर्ग के हिन्दू बच्चो द्वारा फीस की पर्याप्त बाय होती है। उच्च वर्ष के वे प्रसि-भावक व्यप्ते बच्ची के श्रप्ते भविष्य के लिए ये व्यय वर्शस्त करते हैं। व्यय के श्रांतिरिक्त वे उस सारक्र-तिक भीर प्रापिक बाताब रह की सहन या पत्तन्द करते हैं जो इन सस्थाओं ने उनके बच्चो को मिलता है। यद्यपि सनिवात द्वारा शल्पसक्यकों की इन सम्बाबो को सरकारी अनुदान प्राप्त करने का अधिकार है फिर वा उनमें में बनेक उसे स्वेच्छा से सेना अस्वी-कार करती हैं। स्योकि अनुदान से कहीं बधिक बाय उन्हें बैसे ही प्राप्त होती है और साथ ही वे अनुदान से सम्बन्धित प्रस्पेक बन्धन से मुक्त होकर इन सस्थाको को अपने धर्न प्रचारका प्रधानकारी नाध्यम बना सकती हैं।

#### बहुसस्यकों का अधिकार

न्यायमुर्ति भी खना ने अपने निर्णय के धरुमान 73 ने कहा है कि बचित बारा 29 के बीर्चक में सरम-सक्कक सकर का प्रमीन किया नया है फिर भी ने प्रतिकार धरनक्काक और सहस्वकक बीनों की प्राप्त हैं। धरुमान 74 में ने दस बारा का स्वाप्त नेन करते हैं कि प्रवक्कों को दन बाराबों ने स्वापित सस्वाधी को अपनी गाम्यता के अनुतार नमाने का अपना प्राप्त के अनुतार नमाने का बारा 25 के 30 तक की तब बाराय 25 के 30 तक की तब बाराय के उन्हेंच्य बारिक निक्वासों और उनके प्रमार के निष् स्वमन सीरित उनके प्रमार के निष्

न्यायमूर्ति सन्मा के उपगुंक्त विवेशना के उपरान्त यह प्रक्त पैवा होता है कि बहुसक्वक हिन्दुकों को इ.स. इ. तार की क्षामिक स्वतंत्रता का लाभ कैसे मिल सकता है। जैसा तब्बो से स्पष्ट है कि बारा 0 का क्षेत्र अब केवस अल्पसक्यको की धार्मिक स्वतंत्रता का रक्षा सवका उसमे हुस्तक्षेप न होने देने तक सीमित नहीं है। उहे एक विशेष अधिकार वह भी दिया गया है, जिसके हारा वे सरकारी व्यय पर बहुमक्यको के क्षण्यों में भी अपने धर्म का प्रवार-प्रसार कर सकते हैं। गोबा ग्रज्य न्यायासम् ने सन् 1980 मे दिये अपने िणय में वहा है कि इस प्रकार की ध्रसमानता बहरसक्यको

### श्राक्षार्य वाज्ये का नागरिक

करते हुए शवने हारा निवित्तं पुस्तकों के बाक्षरं पर वर्षना चित्रकोख प्रस्तुत किया । कार्यक्रम का वैधीयन कार्य समाध के मणी रासानिष्ट वे किया ।

रवाशय कारोज में व्यक्तिक -

असमेर 6 मई। वीवर्षेत पुरस्-कार करने के उपलक्ष्य वे सामार्थ बारमे का दम नद कालेब, धवलेर ने की के बार वाओं की अध्यक्ता में व्यक्तिनदन किया नवा । उन्हें हिल्बी व सरक्षत में बानपण बंट किए कए। अस से की वाकों ने भ्रमने लीकप्त बक्ता में वहा कि श्रमान ने एक्तु राष्ट्री समझ्य है जब उसने ब्लाप्त होंगी कार् । और देश वर्ष विशिष्ण विश-कास है कि इस बुराइयों का केवल आर्थ समाग ही समाप्त कर सकता है। केकिन जान बाग समान स्वय ही सुकार की जावश्यकता प्रमुभव कर रहा है। सत्त्वय वदि हम देश. समाय के एकता साना काइने हैं की हुते कार्व समाध का धुनवठन करना वाहिए। कार्वभगसमान हा व् के युक्ताने किया।

### किञ्चनगढ् में समिनदन---

दिखनगढ 10 वर्ष । धार्यसमान दिखनगढ के प्राथमंत्र वालने वा जीवनगढ समारीह भीतुर नेनर दीसर्वास्त्र (मु दू वरिष्ठ सादुक्त राजस्थान नरकार) की मध्यस्ता एव वा कैशाव चली (सुनिवद विश्वार) के तुष्कृत कादिव्य से सम्पन्न हुस्या। समारोह में साथ समाज के

समारोह में जाय समाज क सहयक्ष की सकोटिया रोटरी नसक Marry 13

(पृष्ठीका शेष) ने बध्यक्ष की भूषवास, नावन्त्र उनक के प्राथक की श्रीकृतकार्य कैंग, नुस्सिय समाज के स्वर की नुभराती भाई, सिम्बा समुदाम की बीर्र है सरबार श्रतोपविश्व प्रेस कर्म की बोर से भी क्षराचव जैन, मा नैवि-कत्त है के सचिव प्रवदान स्थलन, बप्रवास तवाम के उपाध्यक्ष भी धोमप्रकास नौयस, कुनायस समाज के जी बाब्यूरान, जैव स्कूस के की व्यापय, व्यवास वासाकार संय के सचिव विश्ववसाय, शावरकृत एतो॰ तिवेशन के तक्ति शायनव नौशरी, पार-विकास ब्यूबानी समिति के बारवाद जी राजस्तक्त चीवरी, क्रुबक क्रिकेट ir men akadika int क्षति के विकास सम्बंध की एकेक वादमाह भाषता के सम्बद्ध क्षेत्रिकन बीलवरा, नवर कांग्रेस के अध्यक्ष की सरवनारायख मोदानी, नहिला समाज की जीनती जमा वाचं एव मोमती योजिन्द अप्रयास, 'दवानद कॉलेव के धूपु छ।व शी वसन्तविद्य पूर्व वसन, सरसन समिति के भी नृज्यपूषण भट्ट एव सभी नार्य सभासको ने भी भी बल्से का माना अर्पेश क्ष्य श्राविक स्वाचत स्थि।

धम निरपेक्षता

(पृष्ठ 5 का शेष)

#### वास्तविक समस्या -

अत्राज्य प्राप्त की वास्त्रविक समस्या अस्पतक्यको को समान धार्मिक अधिकार देने के क्यिरीत बहुसम्मको को कम से कम प्रत्यक्षको के समान

सीववार देने की से नेता काम दो कोण कार्य, काम्यानी व प्राथमां कि कुनरे देव में देर हिन्दुओं की कीई में कर साम्रावर की की काम्यानक में महिन्दी रामिति रामिति हिन्दू में की को को में में मोदी को है ही नहीं चीर चीर है तो यह साम्राव का मान्य मान्य पूर्वकार स्था है कि की ही सकते सहस्ता में संकार कितान में में की है की साम्योगकों के मान्यारों की मान्य में किश्चुस साम्राव महिन्दी है एको निपरित यह वी उन्ते बारीन है कि वापालीक साम्राव मान्यकार की सहस्ता की स्था की साम्यारों के मान्यकार है। स्थान कार्यकार की सहस्ता कार्यकार हिन्दू साम्यारी कर में है। इसके साम्यार में प्राथम हिन्दू साम्यारी कर में है। इसके साम्यार की कार्यकार की हिन्दू साम्यारी कर में है। इसके साम्यारी मुख्य की कार्यकार की हिन्दू साम्यारी कर में है। इसके साम्यारी मान्यकार की कार्यकार की साम्यारी की कार्यकार की साम्यारी की कार्यकार की साम्यारी कार्यकार की साम्यारी कार्यकार की साम्यारी कार्यकार की कार्यकार की साम्यारी की साम्यारी कार्यकार की साम्यारी की

क्यवस्था के बावने वा कार के तत्त्व कराई है जि हिल्हू कर्त के जन्-व्यक्ति की बंधा त्यावस्थित मनवक्ता की तुक्ता के जनाई कर होड़ी का वहें है। इसके नाम है कहाति स्वीतिकिक्त मिलिक्ट्रों के काईक्य कर के के लिए के अधिकार कर होड़े के अधिकार के कि कहें सेती में कुंबलिक्ट्रों के विकास कर होता है। वार्वी देखी शिक्ष हैं। विकास के हिल्हू की में प्रकास काम कुंब कामार आह है।

हिन्यू तब बयों के प्रति बनायता व बास्या का अवसार करते हैं।
बनायर जी प्रतिक परवाद कार्य करते तीयनायिकों ने व्यक्तिय कार्य कर्य हैं।
बनायर जी प्रतिक परवाद कार्य करते तियन हो हिन्यू हो व वितरिक क्रिकेट हैं।
बन्ना तीर्थ पुक्त है उठके वेशानियों एक व्यावशिकों के अवितरिक क्रिकेट हैं।
बोई गैर हिन्यू तीर्थयाचा की वृष्टि वे बाता है। वास्त्रम के वेशा क्रिकेट हैं।
बोई गैर हिन्यू तीर्थयाचा की वृष्टि वे बाता है। वास्त्रम के वेशा क्रिकेट हैं।
बोई ग्रीय हिन्यू सार्थ करते हैं।
बाद करते कि वृष्ट करते हैं।
इस व्यक्तियास राज्यों तक में सार्थ के नहीं मा को हैं।

शह सब विनेषन केनल नह सिंद्र करने के लिए थिया जा रहा है कि विकार सब बीर बायका के कारण वालिक सल्पकलको को सबनी स्वयन विकास सम्प्री कर कर सिंद्र स्वयं क्षित के सिंद्र सिंद्

बावं समाव क्षिता समा सबनेर के अस्तर्गत ही ए.की. कालेज के तत्वावधान में सुभारण्य

### नवीन विचालय

लक्ष्मीबाई-इम्बुमती प्रवनाष्कर विद्यालय पटेल मनान के पात, अपपुर रोड, ब्रजनेर

एक नजर मे-

- △ गर्वरी कवा से V तक हिन्दी व वसे गी माध्यक द्वारा वानक कालिका के किल्का
- △ नवंती के निय नवीं मुख्य-वामक वाशिकाची हेतु नुवित्रपूर्ण व प्राणुनिक लावनी की विशेष व्यवस्था ।
- △ प्रश्निक्तितः सम्बद्धिः सः उच्च विक्राः प्राप्तः अध्यानिकाक्षीः द्वारा प्रशानकाली कञ्चापनः ।
- 🕽 बेलवृद व ब्यायाम की उचित स्पवस्था ।
- △ प्रत्येक विश्वार्थी के व्यक्तिस्य के सर्वावीस्य विकास की समृश्वित व्यवस्था।
- △ 15 मई सन 1987 से प्रवेश काय प्रारम्भ है। समय प्रार 8 से 12 वजे तक।
- △ वर्याप्त सख्या होने पर देख की व्यवस्था।

देववल सर्मा स्थापक सहनीवाई इन्द्रमती प्रवाधकर विद्यालय, प्रविदेश

स्वत्वाधिकार बार्य समाज अजमेर के लिए व प्रकाशक एव समादक राससिंह हेतु रतनवाल वर्ग द्वारा श्री आर्य जिन्टर्स, वासू भीकृत्वा केसरवाग अजमेर मे मुद्रित एव धार्य समाज भवन अजमेर से प्रकाशित !

### वेशे जिल्लाभ मं मुलम्

वेद ही समस्त धर्म का मूल है।

सत्य को बहुए करने भौर असत्य न श्लोडने में सर्वदा उचत रहना चाहिए

महर्षि बंगानन्य

रयानन्वान्व 162

सुष्टि सम्बत् 1972949087

बर्ष 3 वानिवार 30 मई 1987 अंक 7 प स.-43338/84 II

। कोश्म् ।

भार्य समाअ, भ्रजमेर का हिन्दी पाक्षिक पत्र "ग्रार्थ हमारा नाम है, वेद हमारा वर्म । कोइन हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ॥"

श्रमय मित्रादभयम् अमित्रादभय जातादभय परोक्षात । अभय नक्तमभय दिवा न सर्वा ग्राशा मम मित्र भवन्तु ।।

कुण्वसोविश्वनायम सकल जगन को झार्य बनाए

हमारा उद्देश्य:

तमाज की वर्तमान एव सविष्य में पैदा होने वाली समस्याधीं को दष्टिगत रक्षते हुए प्रायसमाज का पुनर्गठन करना है।

ज्येष्ठ शु॰ 3 सबत 2044 वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

### आर्य-विचारकों द्वारा-

### आर्य समाज की वर्तमान स्थिति घर विता व्यक्त

सार्वदेशिक समा के प्रकान स्वामी शानन्द बीख जी ने सना द्वारा वार्य समाच की वर्तमान स्विति के सम्बध में सुम्हान देने के लिये नियुक्त समिति द्वारा प्रस्तुत की नई शिक्तरिको पर पून व्यापक विचार करने का आदेश समिति के समीजक श्री दशालेम बी शायं को विया वा।

समिति के संयोजक जी दसाठीय बी ने देश के प्रमुख धार्य विचारको-विद्वानों को इन सुभाको पर व्यापक क्य 🖹 कियार विमर्श करने हेतू निम" जिल किया । निमंत्रित आर्थ विद्वानी का इस सबकों में 20,21 एवं 22 श्रवीस 1987 को आयी समाज, मसिर मार्च, नई दिल्ली में बार्य जनतु के सुप्रसिद्ध सन्यासी काठ स्थामी सस्य-वकाश की भी धध्यक्षता ने सम्मेलन हुया। कार्व विभारको द्वारा तीन दिन तक विश्वार दिनमें करने के पश्चात सर्व सम्मति से प्रत्येश विद्रशी पर माग्य सिफारिको के बाधार पर

अलिम रियोर्ट तैयार की गयी। 22 नर्पंत की साम 5 बजे समिति के सयोजक श्री दत्तात्रेय (वाक्ले) जार्ग के नेन्त्व में बार्टी विभारकों के सिष्ट-मझल ने अस्तिम रिपोट सावदेशिक सभा के प्रधान स्वामी बानदबोध जी को प्रस्तत की। क्रिष्टमबस मे-सर्व श्री डा धानन्द प्रकास, उपमधी सार्वदेशिक सभा, के देवरत्न धार्म अतरम सदस्य सार्वदेशिक समा, बीसतराम चढ्ढा अतरग सबस्य साव- देशिक संघा, मध्यसेन चोपडा, धत-रम सबस्य शार्वदेशिक सभा सम्मिलित

बार्ग जगतृ की जानकारी हेतु हम सिच्टमहस हारा सार्वदेखिक ख्या प्रधान की दिया ज्ञापन, स्वामी सरपप्रकास का आयाँ की चेतावनी पूर्ण सदबोधन तथा समिति की वर्तिम रिपोट को अविकल रूप से प्रकाशित कर रहे है।

--सपादक

### शिष्ट मंडल द्वारा स्वामी आनन्दबाघ जो को दिया गया जापन

विश्वन -प्रार्थ समाग के सबब मे सभा द्धारा नियुक्त उपसमिति की सिफारिमें।

माननीय स्वामी जी.

सावंदेशिक समा द्वारा सन् 1982 में बार्य समाज की वर्तमान रियति तया भावी कार्यक्रम के सबस मे बाचार्य दलात्रेय (शब्से) आर्थ के सयोजकरव में तर्व की स्वामी विचा-नम्ब जी करत्वती, त्री, वेरसिंह जी प्रश्नाम, हरियाचा बार्य प्रतिनिधि संधा भी बीरेन्डबी, प्रधान, वार्य प्रतिनिधि समा प्याय तथा दा भवागीसाल भी बध्यक्ष दयानन्द शोधपीठ पजाब विकासिकालय, क्योगढ की जो उप समिति निसुनित की गई वी, उसकी मन्दरिम रिपोर्ट सन् 1983 में सभा को प्रस्तुतको नई। जिस पर धापके बारेशनुसार जम नियमो में सम्बाधित वीतोक्षण की प्रक्रिया के सम्बन्ध ने सन् 1983 और पुण सन् 1986 मे व्यक्तिं समाओ, प्रतिनिधि तनाम्रो और प्रमुख आर्थ विद्वान पुरुषो की सम्मि-तियाँ प्राप्त की वर्ष, जिनसे स्वष्ट है कि उप समिति की अधिकांत सिफा-रिक्षों को बहुमत का स्वानत बीर समर्थन प्राप्त हुआ है।

आपके बारा इस रिपोर्ट पर प्राप्त सम्मतियों के बारे ने सीर अधिक व्यापक रूप से विचार करने की साव-स्मकता बताई गई और तवनुसार वाषके धादेश पर सवीजक महोदय ने देश कर के समधन 20-25 वार्य प्रतिनिधियों का एक सम्मेतन निय-जिल किया ।

इसका प्रथम अधिवेशन वा स्वामी सत्यप्रकान की की अध्यक्षता मे 20 अप्रैस 1987 को आर्य समाज मन्दिर मार्गदेहसी ने सम्पन्न हुना। सर्व ५ वम मध्यक पद से स्वामीजी ने बार्य समाब के सैद्धान्तिक पहसूको तथा गौरवपूर्ण-काश्री शौर इतिहास की पृष्ठ भूमि ने उनकी वर्तमान स्विति तवा समस्याओं पर प्रपना लिखित एव मूमत ताल्यिक विवेचन प्रस्तुत किया । जो इस आवेदन के साम सल्तन्त है। समोधक महोदय ने उपसमिति की नियुक्ति और उसकी रिपोर्ट पर 3 वर्षों ने की वर्ष कार्य-वाही से उपस्थित सञ्जनो को भवगत कराया । तत्पश्चात् उपस्थित आर्ये विचारको ने वपने-प्रपने विचार व्यक्त करते हुए बार्य समाज की नर्तमान स्विति पर चिन्ता करते हुए और उसके सामने उपस्थित समस्याधी का वर्णन करते हुए सनेक सुम्हाच दिये। श्री मोहनलाल की मोहित (मौरिश्वस) ने भी उपस्थित होकर अपने विचार ध्यक्त किए।

बन्त में सब सम्मति से निश्चित किया गया कि कल अर्थात् 2.1 प्रप्रैल को प्राप्त 10 बखेपुत सम्मेलन की बैठक को अध्य जिसमें बाज के सुफानी शहित उपसमिति के प्रत्येक विद्युपर विचार करने के बाद उसे सार्वदेशिक सबाद्वारा सीघ्र कार्य करने के लिए प्रस्तुत किया वाव :

तरभुमार बाज वि 21-4-87

को स्वामी सत्यप्रकाश वी की अध्यक्षतामे पुत अस्तरित रिपोर्टके प्रस्पेक विन्दु पर विचार करने के पत्रवात् कुछ समोधनो के बाद उप-समिति की रिपोर्ट जिस रूप मे स्वीकार की नई व साथ सलय्न है।

स्योजक के प्रतित्कत सम्मेलन में सार्वदेशिक सभा भी अतरग समा के को सदस्य उपस्थित थे, उन सबके हस्ताकरों से यह समोक्षित रिपोर्ट अब झापकी सेवा में प्रस्तुत है। आशाहै कि कई वर्षों से विचारा-धीन इस झस्पन्त महत्वपूर्ण प्रक्रम पर साबंदेशिक सभा अपनी विकेष बैठक यबाधीश बुलाकर इन सुभावी की कार्यान्वित करेगी और उनमें से जिनके लिए भावश्यक हो उन पर खार्यसमाज के उपनियमी तथा सावंदेशिक समा के चरिष्ठान ने जरूरी समोधन करने के लिए तुरत कायंगाही करेगी।

> हम है भापके धार्य बन्ध् कि न के सरस्यों के हस्ताक्षर

ΔΔ

. निरेक्त : दत्तात्रेय वायं

प्रयाग संपादक : रासासिह

संवादक :वीरेन्द्र कुमार ग्रायं

फोन कार्या: 21010

### सम्पादकीय

एक नकर स्थर— ब्रायं समाज का पुनर्गठन क्यो ?

सरस्वती ने सहिच दयानन्द 7 मात्रील 1875 ई जैज गुक्ला प्रतिपदा को बम्बई नगरी से आय समान' की स्वापना की बी। 1975 🛊 भारत की गाजधानी दिल्ली मे श्चाय समाज की स्थापना शताब्दी मनाई गई थी । उस अवसर पर भाय समाज की विराट प्रचण्ड मक्ति का दिग्दर्शन हुमा था। जो जयमीय बा काश में गजायमान हो रहे थे उनमें से एक था "बार्यसमाजन क्या किया, सौ साल में कमाल किया।' सचगुच स्वामी श्रद्धानन्द, प लेखाराम, नुरुदत्तजी, लाखा लाजपतराय, स्वामी दर्णनानन्द, स्थामी स्वतत्रानन्द जी, महासय कृष्ण, जान-व स्वामी जी के समय भावसमाज की क्रान्तिकारी विभारधारा का बहुत तेजी से विस्तार हुआ। या और यह सही मर्थीने एक सार्वभौमिक संबठन अन नया । देख-विदेश से पाच हजार के लगभग भायं समाजें स्वापित हो चुकी है, हजारो की संख्या में स्कृत कालंज,पाठकालाए, मुरुकुल स्वापित हो पके। भारत के पूनर्जामरत्व एव राध्नीयता तथा स्वा-धीनता सम्राम मे आर्थ समाज का ग्राभूतपूर्वं योगदान रहा। सचमुच द्यार्थ समाज का गौरवपूण इतिहास रहा है।

मोर श्रपन पक्को को देखकर बानन्द मे निमन्त होकर मृत्र उठता है परस्तु अब अपने पैरो को देखता हैतो प्राचासे अधुधारा प्रवाहित होन जगनी है। ठीक यही स्थिति क्षाज स्थापना के 112 वर्ष बाद माय समाज की है। हम आज धारमा-लोचन की आवश्यकता है। यदि यह कहा जाय कि साज वायसमाज म अनायों का बहुमत हा गया है चुनावी इल-इल में बायममाज का सगठन क्रपर से तीचे तक फूटपरस्ती, बुट-बाजो, कूर्सीपरस्ती ना शिनार हाकर झपन सूत्रमαव्य 'ससार का उपक≀र करना इस समाज का मुख्य उद्ध्य है" तया 'फ़ुश्वन्तो विश्वमायम् 'से बहुत पीछे हट गया है। बदो कं आचार की भूला बैठा है। आध समाज में युवको कानही कै बराबर प्रवेश हो रहा है। बूढे लोग सत्सगो में घा जात है, सत्खवो मे उपस्थिति भी नहीं के (शेष पृष्ठ चार पर)

### सम्मेलन के प्रध्यक स्थानी सत्यप्रकाशकी का बार्यों के मार्ग चेतावनी पूर्ण उद्योधन

### आर्य समाज की वर्तमान स्थित व श्रविच्य



स्वामी सत्यप्रकास बी

- 1 1975 म बार्य समाज की रूपा-पना हुये एक सी वर्ष हो गये। अब इसका प्रवेश दूसरी सदी मे चल रहा है।
- काय समाज के माथ अपने देश मे प्रार्थना समाज बहा समाज, राम-कृथण मिज्ञन बादि अनेक सस्याद्या ने जन्म लिया । इसमे कई सस्थायें किथिन हो गई कुछ काने बढी भीर कुछ नई सस्वाए उत्पन्न हुई। आर्य समज के विरोध में सनातन धम संस्थाए, राम-राज्य परिषद, हिन्दू महा-सभा, विक्व हिन्दू परिवद, शब्दीय स्वय सेवन सघ बादि सस्थाए उत्पन्न हुई। कुछ, ने स्राय समाज का प्रत्यक्ष विरोध किया और कुछ के माथ हमारा स्तेह सम्बन्ध भी रहा। इस स्तेह का हमारी गतिविधि पर उचित व बनुचित तथा प्रत्यक्ष व परोक्ष
- 3 सभी विश्वल्यामी आयोजन पिश्लेस सीण्ड भी नर्यों मंजन्ते, नर्जे सवा विश्वत श्रुण तवा कुछ स्वास्त श्री हो गए और कुछ सी स्वर-रेखाए पूर्णतवा परिवर्णित हो गई।

प्रश्नाव पढा ।

- सभी महान् जान्दोलनो का पिछले इतिशास का विवरण रहाहै।
- साज की इम विचार गोण्डी का उद्देश्य भी साय समाज का मूल कर ब बतमान रूप तका भविष्म इन तीनो पर विचार करना है। प्रसक्तता की बात है कि सार्वे-देशिक सभा के तत्वाकवान में तथा स्वी वास्त्रे जी के त्यांजन

- मे और मेरी अध्यक्षता में आराप यह गोध्ठी कर रहे हैं।
- 6 आपको पूर्ण स्वताता है कि इस गोच्ठी में गम्भीरता से समस्त भागहो को छोड़ कर बाप जितन करें। कथी-कथी मैं भी भ्रपने कुछ, विचार दूगातथा वाब्ले जी भी देंगे। पर भाप नि शक भीरे उदारता से इन पर विचार करें। महर्षि दयानस्य ने बडे विस्तार से अपने सिद्धान्तों की हुमारे समक्ष रखा । यह हुमारी प्राधार जिला है। कृपया बाप सोचें कि कही हम इन मौसिक सिखाती से समसीता करने को तो तैवार नहीं हो गये। विशेषतया धपने पड़ौस में हिन्दुमों के साथ। मेरा ऐमा क्याल है कि बहुत सी बातो म हमने उनके समक्ष श्रपमा सिद्धात पक्ष (मृति पूजा व नव-तारवाद) स्पष्ट रखना बद कर दिया है। इसका ही यह प्रभाव हुआ कि स्वतंत्रता के बाद हिंदुओं में अनेक गुरु, श्रानेक माबा व नवे देवी देवता उत्पन्न 🜓 गये । तथा धनेक अन्छ **विस्वास वर्ध**। **न**या यह सब हमारी दिलाई की वजह से तो नहीं हुआ जिससे देश वागे नहीं नयातथापी छेनयाशीर नैनिकता की शब्दि से भी राष्ट्र का पत्तन हुआ।
- अध्य समाज न केवल भारतीय हिंदुमों के लिए या इसका हम्दर-कोएा मानव माल के लिये था। क्या इस पर माप विचार करने की इच्छा रखेंचे कि बन्च भार-तीय कुछ सम्बाय मारत भर के बाहर थी विदेशियों में प्रचलित हुए, लेकिन बार्ज समाज हिंन्सी भाषी हिंन्दुमों से बीच में क्यों केटिवत रह नवा।
- 9 आमं समाज के यस मिद्रात तथा नेव के मन्त्राध्य सकतो स्वीकार्म हैं। क्या हमने साथ हो जाव यह भी स्तेषा कि इनको मानना हो केवल वैविक सर्व नहीं है। अपनी मध्यक्रातीन परम्पराजो से एटकारा पाना थी खता ही सावस्वक है। उवाह-रणुत्या नेरी प्रया करता है, उत्तको सम्म करता है,

- कार नहीं है। यह के बन्द होने से मुर्तिपुक्त प्रारम्भ हुई। बौर का मृत्त पुक्त प्रसारमा का में मृत पुक्त प्रसारमा का मो मृत पुक्त प्रसारमा में ऐतिहासिक स्वस्तियों, कार्य-निक मिच्या तथा नमस्कार में बास्ता खते हैं। बहुत समस्कार है वहाँ वारित कहा जुस्त हो बारी है। मेरा खांपमाव है कि प्रत्येक हिन्दू की बनाता होगा कि वेदिस तिद्वाली बनमें से लिए आएपो बौनेसी बारचाए छडेबनी होगी।
- 18 क्या ऐया ता लाही है कि भार-तीय राजनीतिक परिक्लिपियों के शारण हमने अस्तवानों व हंसाइयों के मिति कर्द्रण अस्त्र कर दी है। तका वह कर्द्रता ' हमार रास्त्र में किस्सों में काथ करने गई किएंग साइक हो गई। है। जो प्यार हमने क्याने व्यक्ती विष्णू को यहा दिया है, वही प्यार हमें बिटेसों से वहां के बीडों, हसाईयों राजा गुमममानों को देना होगा। मैं कोई भी बात प्रापंधे आंखह पूर्वक गही कर रहा हू। बाय व्यवसा। पूर्वक विचार नरें।
  - हमने कार्य सम्बालन के लिए धार्य समाए प्रतिनिधि समाए, सार्वदेशिक सभाव अन्य प्रकार के संगठन बनाए है। बापको सोचना होगा कि क्या ये सगठन बाज विषटन का काम नो नहीं शार ग्हे है। महर्षि दवानय ने इस ग्रुग की स्थितियों को समभते हुए हमे जनतात्रिक संगठन प्रसाली दी भी। क्या हमारे सगठन की वसमान स्थिति किसी दूसरी दिशा में चिन्सन करने के लिए तो बाध्य नहीं कर रही है। क्या कार्य समाज की जनता आज उत्तमी ही वर्नतिक तो नहीं हो गई, जिसनी देश की समस्त जनता। धव क्या परस्पर की कसह महर्षि दयानन्द की कल्पना का बरयत विकृत रूप तो नहीं है।
- 12 मैं यह मानता है कि हिंदू मार-तीय संमाज का मुत्रतम स्तंग (बीरो केवल) है। जो भी कोई आस्था वाले इस देत से प्रपत्ती आस्थाओं से मिरेगा वह हिंदू कह्माने जनेगा। वाहे कैन हो, चाहे नास्तिक या प्रपत्त स्क्रम्बाय बाले बीर बार्य समाज भी खरनी आस्थाओं से स्वास्क भी करनी आस्थाओं से स्वास्क भी करनी आस्थाओं से स्वास्क भी करना सोंगा । पुक्ते कुषकेकुक कर जानेगा। पुक्ते कुषकेकुक कर जानेगा। पुक्ते कुषकेकुक कर जानेगा। पुक्ते कुषकेकुक

### आर्य समाज की वर्तमान स्थिति तथा मिवस्य के सम्बंध में सार्वदेशिक समा की प्रस्तुत रमट

प्रापार्थ भी दलाशेय **की** के संयोजकृत्व में लावदिविक सभा द्वारा श्चार्थ-समाज के भावी कार्यक्रम तथा पनवंडन के सक्क में नियुक्त उप-क्षमिति की भीर से सार्वदेशिक सभा को 1983 में एक बतरिन रिपोर्ट येश की वर्ष थी। 7 अप्रैल 1983 को दीवान हान बावं समाज दिल्ली मे इस उपमाणिति की बैठक हुई। किश्मे अक्षरिय रिपोर्ट पर पून्ति-चार किया नदा । उसमे ची दलाहोन धार्व के चतिरिक्त स्वामी विद्यानन्त्र की तथा हो केरसिंह की भी उप-स्थित के। बाकी वो सबस्यी अर्थात बी दौरेन्द्र की और डॉ प्रवानी आस की भारतीय ने अपनी लिखित सम्मति अत्येक किन्दुनर शेज दी। विचार-विशिवन के बाद अंतरिम रियोर्ट को कुछ सत्तोधनों के साथ स्वीकार किया ववा । जिसे की दशा-स्रेव की कार्व ने मार्वदेशिक सवा की बतरम में बीपचारिक रूप से अस्तुत क्या। सभा ने विचार-विविध्य के साव निक्ष्य किया कि उपनियमी मे समोधन सबसी प्रक्रिया के धन्तर्वत इक्टे प्रसारित कर विका बाए।

तत्वश्वात वनवरी 1987 वे साबंदेशिक संघा के प्रधानकी ने प्राप्त सम्मतियो पर और अधिक व्यापक विचार करने का मावेश दिया । स्दर्भगर वाँ स्वामी सत्यप्रकाश की की कस्यक्षता में 20 व 21 मध्य को धार्य समाज मदिए सार्व में प्रामित आर्थ पुरुषो हारा विचार-विमश किया गया । इस गोष्ठी में श्री केर्रासड प्रधान आयं प्रतिनिधि संबा, हरियासा, श्री मोहन साल मोहित, प्रधान जावं सथा भौरिक्स, श्री दीवसराम चढडा, प्रधान बार्व प्रतिनिधि समा, महा-राष्ट्र, श्री वगव तेन चोवड़ा, प्रधान मार्ग प्रतिनिधि सभा पूजरात, श्री चन्त्र किरल वर्ग कोचाध्यक्ष धार्व प्रतिनिधि तथा, उत्तर प्रदेश, श्री विकारल की वनिष्ठाता-।ससा विकाय, कार्य प्रतिनिधि समा, चत्तर प्रतेश, वाँ भागन्य प्रकाश की, जनमा सार्वदेशिक समा विक्ली कैप्टन देवररन झार्च, महावाची वार्च समाय सामास्त्र, सम्बर्ग, सी बैराती साम जी काटिया, मंत्री-सार्थ

समाज हुनुकान रोड, नई विक्ती, ग्री राज विह वो निर्वेशक नेदिए। विकाइ, श्री ए.शी मैंनेजिक नोदी, दिल्ली, श्री राजनाम सहका, मण्डी सार्थ प्रवेशिक सम्रा दिल्ली, श्री प्रवाद वेशककार, रीकर, हुकराव कर्तीक विक्शी, श्री विकास्थर प्रताद सम्मी, मन्त्र प्रवेश, श्री विकास्यर की वार्ष्य प्रवेशी, श्री विकास प्रवेशी होकर विचार निज्ञा। घोच्छी का प्रवेशिक व सक्यात धाण्यां वसारोव श्री सार्थ में दिल्ला।

वपने प्राचित्रक प्रावस्थान से स्वामी सत्यप्रकास जी ने बार्स सद्याज के मूल-मतस्मी एक इसकी वीरव-मयी परम्पराष्ट्री की पुष्ठभूकि से वर्तमान स्विति तथा सहस्याक्षी पर प्रकाम शाला। और प्रविध्य से ऐसे कार्यक्रमो पर मधिक बल देने की नावस्यकता नताई। जिनके खात समाज का भौतिक स्वरूप बना स्त्रे भीर जनसामान्य के द्वित से इसकी किकामी का मधिक से अधिक प्रचार इत इंडिट दे किया जा सके ताकि बनैतिकता व अधिवश्यास की सवा-प्ति हो। आर्थ ममाज के संस्थागत रूप के साथ ही इसके अस्टोपनारमक वक्ष पर भी ध्वान देने की सावस्थकता उन्होने बताई ताकि वह धार्मिक महता-वसित न हो बाए। और पूरे समाय को उद्देशित के करने लिए पुन एक प्रश्क मक्ति के रूप मे खडा श्री सके ।

पूर्व प्रस्तुत बर्तारम रिपोर्ट को माधार मानकर विचार विनिधय किया गया और आवश्यक समोधन एक परिकथन के उपरात को सर्व-सम्मत सस्तुतियां तय हुई उन्हें श्रव प्रस्तुत किया था रहा है। प्रस्तुत रपट को वो भागों में विभक्त किया यया है। प्रथम भाग के अतर्गत जन सस्त्रीतयो की श्री-मशित किया बया 🖁 बिन्हे अधिक महत्त्वपूष समक्रा क्या है और जिल पर सार्वदेशिक तभा द्वारा तुरम्त कार्यवाही की अपेका की बाती है। विनीय भाग के बतर्गत को सस्तुतिया है, वे आवश्यक बौर उपयोगी हैं। जिन पर साबं-देशिक समा द्वारा उचिन कार्यशाही की बानी चाहिए।

हुवरे जान में जो पुकाब रखें मंगे उनके सबस में समिति ने पुकाब विए कि हनको तका सन्य प्रस्ताको को कार्योद्यत करने के नियद सार्व-विकास समा एक या स्थिक समितिया बनाकर उनकी सिकारियों को ध्यान में रख कर स्थाबीध्र निर्णय सबसा आवश्यक स्थवन्या करें। इन नुकानो को और स्थिक स्थव्य स्थार निष्कत को और स्थिक है का कार्य सार्वे ।

#### प्रथम भाग--

1 सार्य समाख को वपना पूजक् सामिक सन्तित्व सुरक्षित रखने का हु तजक प्रवास करना उपयुक्त होगा और इस सन्दि सार्य समाज के सरस्यता सबबी गर्यभाग रुपनिकत 3 में रेबाकित सखीवन मोहकर रखे निमन क्या में लिखना होगा प्रवीत्—

मैं प्रसन्नतापूर्वक मार्ग समाज के उद्देश्यों की जैसा कि नियमों ने विशिक्ष रिए वए हैं तथा भन्तव्यो एव सिद्धातों की बो वेदों के आधार पर ऋचि दयानश्य के ग्रन्थों में लिखे गये हैं, मानता और उनके अनुकृत बावरसः करना स्वीकार करता हु। मैं क्षेत्रशाकरताह कि ईश्वर के प्रतीक के रूप में किसी मूर्ति या अड वस्तु अथका व्यक्ति की पूजा नही करता भीर नहीं आद और तीर्ष वैसे निविद्ध और जन्म-विवाह और मृत्यु के अवनरी पर कोई अवैदिक काय करता हु। मैं जन्मनत जातपात तका खुआ बुत का विकार और व्यवहार दोनों में विरोध करता हूं। मैं धनैतिकता एव वधविश्यास पर षाधारित किसी भी प्रचलित मान्य-ता को स्वीकार नहीं करता।

### निम्नलिकित तथे उपनियम वर्त-यान नियम 4 के बाद जोडे जाए ह

- (क) आर्थ समाव का कोई सदस्य ना विश्वकारी अपने नाम के आने कोई भी खालिपुचक उपनाम नहीं विश्वेषा और साधान्यतथा आर्थ उपनाम का ही उपयोग करेवा ।
- (ख) बार्य समाक में सदस्यों की वो श्रेसियाँ होती हैं— सामान्या सवासद न बार्य संवासद।

साधारस समासदो को उपर्वुक्त सिकाल नक्षी नियमों के अतर्गत प्रवेस दिया जाए।

पार्थ सभासव बन जाने के उप-रात के समाज द्वारा सचामिल काय-क्रमों में से किसी एक या प्रतिक म नियमित रूप से कार्यरत रहते पर "तिक्रम सदस्य" सम्प्रे वार्येन । ऐने कार्यक्रमों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हो सन्ते हैं —

- विदेश सिदालो का प्रचार
  प्रसार—जिनमें सन्यासी, उपदेशक,
  लेकफ, प्रकाशक बादि सम्मितित हैं।
  2 वी बादि पहुं रक्ता 3 जुदि
  4 सन्याजिक सेवा 5 वातपदि,
  खुआसुत का निराकरण 6 सिका
  गार्य 7 महिला सुधार 8 झाव
  प्रचार साहि।
- (ग) आयं समाज के पदाधि-कारों सकिय सदस्यों में से ही निर्वा-चित हो सकेंगे
- (व) किसी राजनैतिक इस का पदाधिकारी तथा उसका साँखद वा विधान-सभा गादि मे निर्वाचित व्यक्ति कार्य समाज, आर्थ प्रतिनिधि सभा या सार्थदेकिक सभा का पदा-विकारी नहीं हो सकेगा। ऐसे व्यक्ति-यो पर क यं नारिस्ती आदि की सद-स्थता के लिए कोई प्रतिबंध नहीं होना । उपयुक्त नियमो का व्यावहा-रिकरूप से पासन होता है वा नहीं. यह निक्ष्वित करने के लिए कोई वधिकृत नाध्यम शावश्यक है, बन्यवा इन उपनियमों का कोई उपयोग नहीं है। इस राष्ट्र से समोधित नियमो का उत्सवन होने पर सतकंता समिति (विसका प्रावधान वास्त्रीय है। को निष्वित प्रक्रिया द्वारा अनुसासनात्मक कार्यशही करने का धांतकार होगा. विममे परमुक्ति भीर सरस्यता से भी पृथक् किया जाना सम्मिलित है।
- 2 सार्ववेषिक सचा की अदार का पठन इस साझार पर होना नाहिए ताकि उसमें पशासिकारियों एवं कुछ विकिष्ट व्यक्तियों में के सिन्धिक ऐसे महानुभाषों को सिन्धिक ऐसे महानुभाषों को सिन्धिक ऐसे महानुभाषों को सम्बन्धिक सामा के किया जा सके को अपनी समा सामा के किया किया विकेष सामा के किया विभाग समा निकेष समा के किया विभाग समा निकेष समार के सामा के किया विभाग समा

- हो। इस प्रकार के व्यक्ति सावर्रीकक सभा के विभिन्न कार्यों से कमबद्धता, स्थायित्व एव प्रवाह ला सकते हैं।
- 3. (23) प्रातीय आर्थ प्रति-तिक्षि ममाओं के सनिवानों में एक रूपता वा प्रावधान किया जाए। इसी प्रकार नीचे के जिला स्तर, विकास खण्ड न्तर पर व्यवस्था का प्रावधान प्रातीय समाधी के सनिधान में रखा आए।
- 4 (25) माप्ताहिक सरसवी म उपस्थित न्या समारवी के तातास बन्द सम्बद्धी नियमी नो व्यावहारिक पानन के लिए निष्यत प्रक्रिया एव ध्वतस्या का प्रावजान हो तथा पदा-ध्वतस्या का प्रावजान हो तथा पदा-ध्वतस्या का प्रावजान हो तथा पदा-क्षित्रस्यानों ने 50% उपस्थिति क्षत्रियानों हो। पदाधिकारियो एव बत्तर्य सदस्यो की जतस्य बैठकों में 50% उपस्थिति योनवार्य समझी आए और यह न होने पर उस व्यक्ति के स्वीयस्य समझा वाए।
- 5 (30) वलगत राजनीति से आये समाज नो पुषक ज्याने तथा उत्तरक स्वापन धार्मिक तथा राष्ट्रीय उत्तरक स्वापन धार्मिक तथा राष्ट्रीय समाज नो पुरिकत रखने के लिए उपनियमो में प्रावस्थक प्रतिवशों का समाजे किया जाए। खेरी मसाज प्रथमों में राजनीत्म सांची सम्माज नो तथा राजनीतिस सम्बंधी आख्यानो तथा राजनीतिस सम्बंधी आख्यानो तथा राजनीतिस सम्बंधी आख्यानो तथा राजनीतिस समाजे नो लोगों के सांची समाज नी और से किसी गाजनीतिक पार्टी के समायंग या विरोध का नियंश किया वाए।
- 6 (37) आर्यं नमाध के जात-रिक विवादों को सावदेशिक सधा एव प्रतिनिधि बसाओं की न्यार मझाए नियटाया करें ताकि जातरग का समय सण्ठनात्मक एव रचनात्मक कास समय सण्ठनात्मक एव रचनात्मक कास समय सण्ठनात्मक
- 7 (38) आर्थं समाज मितरो में दैनिक सत्सगो की व्यवस्था की जाए जिनमें सध्या स्वन, बेद पाठ, मजन आदि का नियमित प्रवस हो।
- 8 जनस्यक्ता में धपने की 'धार्व' 'निवार्व का प्रावक्ता तप-नियम हारा किया जाए । इसी प्रावक्ता आयों के सन्कार विशेषकर यही-प्रवीत व विवाह सन्वार, व्यवस्था एव विश्वित्वामा नी बीटि म यवा-सम्बद्ध आस सनाज भवन में ही किये जाए।

#### बुसरा भाग--

 शार्यं समात्र की विक्रण संस्थाक्षा की प्रवध-मिनियों में बहु-

- मत तथा कम से कम मुक्ष्याध्यापको और ग्राचार्यों की बार्यक्रमाओं होने की व्यवस्था की जाए।
- 2 पुरोहित प्रशासी-प्रक्रिकस्थ, बेनन तथा नियण्या की व्यवस्था की जाए। बार्य समाज के भाष्ट्रमा से पुढ हुए व्यक्ति की माम उपनाम देकर पार्य समाज का सहायक सदस्य और बाद मे पूथ सदस्य बनाया बाए।
- 3 (5) जन सामान्य म स्वा-याय परम्परा को प्रोत्साहित करना और प्राय समाजो ने पुस्तकासयो की बनिवार्य स्थापना का बाबोलन
- 4 (12) केंद्रीय पुस्तकालय, सोध केंद्र की स्थापना की जाए।
- 5 (13) प्रचार मैली हे सुधार जैसे व्यक्तिगत सम्पर्क, प्रचा-राजे यात्रा, नियुल्क माहित्य वितरण
- 6 (14) प्रशिक्षण केल जिनमें उपवेशक तथा कार्यकर्ता पूरे समय के लिए नैयार किए जाए, जिनका सवामन एक केंद्रीय समिति द्वारा
- 7 (15) प्रायं विश्वल्य सस्याक्षा का केंद्रीय सगठन बने तथा विष्वत्यिवालयों के पाठयकमो [जिलसे प्राय ममाज का तथक है] में सुभार किया जाए और महर्षि दयानक्ष के रचन से सबस्रित पुस्तकों को स्थान विलाया आए।
- 8 (19) विधिन्न स्तरो पर अस्य विद्वानो की गाष्टिया आयोजित की जाए।
- 9 (20) वद के आधार पर सत्य विद्यामी का भविकृत विक्लेषण भौर विवेचन ।
- 10 (42) रामायएा, महाभारतः आदि लोकप्रियमन्त्रो के वैदिक सिद्धातः सब्द्धी सस्करणः प्रकामितः किये बाए ।
- 11 (26) क्रिक्षण सस्याको की कतमान स्थिति पर विचार तथा उनमे सर्माभका के समान पाठ्यकम
- का व्यवस्था। 12 (27) गुरुकुलो का केंद्रीय संबठन बनाया जाए ।
- 13 (28) आर्यसमाज सम-वंकसमाचार पद्मीका प्रकाशन किया खाए।
- 14 (29)स्वामीजी की जीवनी तथा आय समाज के इतिहास का प्रचार।
- 15 (31) राष्ट्रीय पुनर्निमीस के विशिश्व क्षेत्रों से कार्यरत वार्यों

- का सकिय सहयोग प्राप्त करना। 15 (32) ब्रामीसा क्षेत्री के
- 10 (32) सामासा सामा क लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित प्रचा-रको की व्यवस्था करना।
- 17 (33) असिक वर्ग में आयें समाज के सबन प्रचार की अध्वरूपा करना।
- 18 (34) झामीसा क्षेत्र मे भजन -संगीत समा प्रचार-यात्राची द्वारा भार्यसमाज के प्रचार का अधियान चनाना।
- 19 (35) बायं समाज के उत्सवो पर वैदिक सिद्धानो पर उप-देस बौर अवेदिक सिद्धातो का सम्बन्धा
- 20 (36) युवक-युवनिको का सगठन (धार्य बीर दल, आय कुमार सभा, आर्य वीरागना दल आदि)
- 21 (37) कार्य समाजी शवा आयं प्रतिनिधि समाजों ने बल-बनी पर रोक (नियमित रूप से निर्वाचन, अधिकारियों के पद प्रहेशा की अविध सीमित तथा अनावस्यक हस्तक्षेप समाप्त करा।
- 22 (38) आय समाज की मान्नरिक कमजोरियों का विश्लेषमा व समाधान का उपाय।
- 23 (40) ध्यावहारिक प्रति-नायें भीर उनका पालन ।
- 24 (41) नियमित रचनात्मक कार्यक्रम यज्ञ, सत्या, स्थाध्याय, आय का 5 प्रनिक्षत भाग वान, मदिरो की मुख्यस्या, युगेहित की नियुक्ति
- 25 बाय शिक्षां सस्वाधी के सम्बादित करने तथा उन्हें आर्थे समाज के निकट लाने की दृष्टि से समाज के निकट लाने की दृष्टि से सम्मान एव प्रनियोगिता कार्यक्रम का साथीजन करना।
- 26 सन्यास तथा वानप्रस्थ की वीका केवल प्रधिकृत माध्यम् द्वारा ही, निश्चत योग्यता प्राप्त व्यक्तियो को ही वी जाए।
- 7 अाम परिवार सम भीर उसमे रोटी-वेटी के व्यवहार की व्यवस्था।
- 28 पदाधिकान्यि तथा उनके परिवार जनो से यह जपेका की जाती है कि वे अन्तर्शातीय विवाह को प्रोस्ताहन देवे।
- 29 बाकाश्चवाणी व दूरदर्शन द्वारा वेद प्रचार।
- 30 प्राथ सभासदों के परिवारों में नियमित रूप से वैदिक सिद्धातों के प्रसिक्षण की व्यवस्था करना। विवेध कर नवावस्थुक परिवारों की।

- 31 किसी बार्य प्रतिबिधि सचा के प्रान्तीय भौगोलिक क्षेत्र में स्वापित बार्य समार्जे उस प्रान्त की प्रतिनिधि समा से सर्वास्त्र हों।
- 32 जतकुण्डी यज्ञी आदि अदै-विक कार्यों पर प्रतिबन्ध ।
- 33, समाजो च उसकी संस्थाची की सपत्ति के अधिकार तथा प्रवश्च के निये अधिका भारतीय कानूम या एक्ट।

### सार्थ समाज का पुनर्गठन क्यो ? (इसरे १९०० का वेव)

बराबर रहती है। जनांस, दक्षाम, 25% उपस्थिति अधिकां बारों के विवाह आदि अस्पात अस्पत बाति आधार पर होते हैं रहना हैं। नहीं परिप्रिक्त के सामार पर होते हैं रहना हैं। नहीं परिप्रिक्त के सामारिक के प्रतिकार के सामारिक के प्रतिकार के सामारिक के प्रतिकार के सामारिक का प्रतिकार के सामारिक के सामारिक

अत पुराने नकान के भीराहिंदार एव रोगी शरीर के कायाकल्य की तरह ही बार्य समाज के भी पुनवठन की भावश्यकता है। भार्य समाज के नियम उपनियमो, निद्धानो, मत अयो की अपने मन वचन, कर्म मे बारख करने वाले भार्य भगावियो को प्रोस्साहित करने की आवश्यकता है। आर्थं समाज की पृथक पहचान की बावक्यकता है। भाग समाजियो के गुलात्मक स्तर को आने ऊर्जा उठाने की आवश्यकता है। भले ही हमारी सख्या कम हो परन्तु यदि हम सुसगठित होकर सकक्त होने तो हम राष्ट्रीय जीवन धारा म प्रवल वर्ष स्व स्थापित कर सकेंगे। उसी स्थिति मे प्रार्थ समात्र भपनी सार्वभौतिनता, प्रवारता सैदातिकता, सन्य निष्ठा, कर्राव्य परायणताका परिचय दे सकेगा। अन्यथानमक की खान से जैसे सब पुछानमक ही हो जाता है ल्यो प्रशार हम भी भौराशिक समाज की दूलपन तथा समभौतावादी पर-स्वरा के कारण अपने वस्तित्व को ही गवा बैठेंगे।

#### बडे गीर से सुन रहा वा अमाना हमी को गये बासता कहते कहते।

अल भाज इस बात की प्रवस आवश्यकता है कि आर्थ समाज को सिक्स, आगाजुन प्रवस समाज नगते हेंतुं उसका पुगर्नेटन निन्मा जाय। इंस्वर हुने सन्बुद्धि और सन्वतांत्र प्रवान करें कि हुन महींव दसनान्य सरस्वती के सही भयों से शास्त्रीक अनुवाधी बन सकें।

— रासासिह

आरण्य से ही बाय समाथ में सरस्य की प्रमु ता रही है धीर स्व स्व तिद्वालों में दिक मानसाबों के प्रचार का मुख्य सामन रहा है। स्वताय समय में भी सरका सगठन के मुख्य के ह के रूप में विद्यामा है और इसके आध्यम के ही मैंदिक प्रम की जानकारी जननमुस्य को यो जाती है। बार उपसक्त पंचत विषय म

के सबध में जो तच्य सामने आये हैं

वह इस प्रकार 🖹 —

वह तथ्य महत्वपूज है कि आप से प्रीक्ष उत्तरवाना आग समाज के सत्सव में नियमित रूप से जात है । इस दी बीर ती नियमित क्या से मान के कामकानी है चातोच है। इस दी बीर 15 प्रतिकृत व्यक्ति है जो है जो सत्सव में कीय रखते है जोहिं नियम कर दी नहीं जा पाते हैं। एक प्रतिकृत कर है नहीं जा पाते हैं । एक प्रतिकृत कर है नहीं जा पाते हैं । एक प्रतिकृत कर है नहीं जा पाते हैं । एक प्रतिकृत कर है नहीं जा पाते हैं स्वाववा उनके नियस से बहुत हुरी पर है।

कुछ उत्तरदातायों की यह भी विकायत है कि साथ समाय के हि। इसी कारफ कम विकर होते हैं। इसी कारण नक्षम में 7 प्रविक्रत की प्राचित नहीं होते हैं। 4 प्रतिक्रत के अनुसार उनकी आब नमात्र को अनुसार उनकी आब नमात्र कोर के अनुसार उनकी आब नमात्र कोर से मा अह धनुसद करते हैं कि जात समाय एक रास्ट्रिन विन्त्र गुकारक सत्या है स्वर्धि के साथ इस रास्ट्रिन विन्त्र गुकारक सत्या है स्वर्धि के साथ इस स्वर्ध है स्वर्ध ह

स्वष्ट है कि लगभग एक तिहाई उत्तरदाता मत्स्या में नियमित कर से नहीं बाते हैं जिनके कारए विचार-एगिय हैं। वास्तव में माय समाज के सल्दागे एक कावकार्ग को स्विक उपयोगी तथा लोकप्रिय बनाने की बावक्यकता अनुसन की जाती रही है। यह जी एक तस्य हैं कि सल्दाग में अधिकास कर से वे ही व्यक्ति जाते हैं जी समाज के सबस्य हैं।

सबस्य बनने के सम्बन्ध में मन्तरूव्य प्राय समाध देश प्रतिक्र की प्रायमा से ओत प्रोत देश हितकारक, हमाज सुधारक इत्यादि कम में प्रारम्ब में नेक्स शब्दाबित एम-त इसी विचार सारक्षी में मक्षावित हो रहा है। हमी कारक्ष के सम्बन्धित हो रहा है। हमी साचे समाज की कार्यविधि, सगठन, पुनर्गठन एक समाज शास्त्रीय प्रच्ययन (गताक से सागे)

### सत्संग में उपस्थित के प्रति हरिटकोण

सकलन कर्त्ता—डा कृष्णपालसिंह दयानद नोधपीठ धवनेर

के प्रण जनता की घरिश्विष बनी हुई है दूसरे समाश्र के दम नियम भी सावभीमिक कप ये होने से व्यक्ति समाश्र के सदस्य बनने की घरिमलावा एखते रहे हैं। वसमान समय मे हमने उत्तरदाताधों से समाश्र क तदस्य बनने के विषय में आमाश्र का तदस्य बनने के विषय में आमाश्र का तदस्य प्रमुख्य के विषय में अमाश्र का तदस्य काने के विषय में अमाश्र का तदस्य काने के विषय में अमाश्र का स्विटकोश्र प्राप्त हुआ है।

65 प्रतिसत ने बाय समाज के सदस्य बनने की इच्छा अभिव्यक्त की है। जबकि 37 प्रतिक्रत उत्तर-सानाकों ने स्वानी त्यक्ट राव नहीं प्रधान की है। इनके करवारी पर आय समाज के उत्तराधिकारी नेतृत्व जा को निक्षेत्रक्त है। अप्रतिक्रत ने सब्दान वनने के सम्बन्ध में अपना स्विटकोस्य अधिकार दिया है। स्वत तथ्यों के सामार पर कहां जा सक्ता है कि समाज के सिद्धा ती प्रव कार्यविधि के प्रति सास्था होने से वो

### भार फूटेगी

— ला**वा**नसिंह भदौरिया सौमित्र —

भीर कूटेगी अक्षमी राज रह सकती नहीं है।

उठ रहा ऐसाधजा घर थे कि तम ही सभ पट रहा है।

यह अध्या है कि उपजन मालियों से खुट रहा है।

बा रही जीबी उसी की स्तब्धा हुई है

सग रहा है जात करा करा ये वक्षण्य उठ रहा है।

धीर के मुख पर हकती रख पुराना चाहते हो
कालित की धावाज ऐस सात रह सकती नहीं है।

भीर को सो स्वीज अक्षरी रात रह सकती नहीं है।

धैय की काफी परीझा हो चुकी है हो रहा है शीम का यह सम भत सम भा बगावन हो रही है बेबसी चप साझ बितस सास बब लेती नही है-झस की हुग बूद विच्या की ब पन पन को ग्ही है। झीशुकों के नेत्र मंदेखों मझालें जल उठी हैं। झाबा की मेहमान बन बरसात रह सकती नहीं है। भ्रीर फूटेमी अक्षणी राठ रह सकती नहीं है।

साफ से आज मिणीनी केलकर जी धर चुकी हैं थोड़ था बन जुग निजा जठनेतिया तथ कर फ्ली है। और केसन कर दिये हैं तम पिता ने हाज पोले स्व निवाई का सभी खंगार रजनों कर पुकी है। सो उमा ने माग में सिल्कुर कब का धर दिया है-तारकों की यह बटन बारात रह सकती नहीं है। और फुटेगी जधरी रात रह सकती नहीं है। मृत्र का रख खं रही है जमनवाता नन-किरए से स नि के नुपुर ज्वनित हैं ज्वानित के उठते थरए से, और धारा-निजीर से निजी चला है स्निन्य से

ाप के पुत्र प्लानात है जाना के उठा परिश्व के आहे आहम-विकास हो जितने बता है जीत-म्या से जो प्रधानी के जुनो स्वर पश्चियों के जागरण से जात्रण की जात

पता—भोजपुरा मैनपुरी (उ. प्र

तिहाई उत्तरदाताओं ने सबस्य बनने के पक्ष से अपनी राय दी है। हुतरे जिहोने स्पष्ट राय नहीं वा है उनके कारशो पर नक्षीर विजयन तथा सनुसाधन की आवज्यता है।

### सदस्यता त्यागने के कारए।

क्रमा बरिगत तस्यों में यह नम्य स्थ्यट विदित हो रहा है कि 32 प्रति वन उत्तरदानाओं न सदस्य बनने अववा न बनने में कोई स्थट राय मही वी है। इन कारण से यह जानाग भी आवश्यक हो गया कि क्या इन व्यक्तियों ने सववा व स्थितियों न समाज की मदस्यना त्याम ना है बदि त्याग वी है तो उसके क्या कारण हो सकत हैं? इस विदय मं हमें उत्तरदाताओं से जो तस्य प्राप्त हमें उत्तरदाताओं से जो तस्य प्राप्त हमें इस्तरदाताओं से जो तस्य प्राप्त

19 प्रतिसत उत्तरदातामी न यह सम्मति अभिन्यक्त की है कि उनकी प्राय धम में आस्था हो गई है इस कारण से सन्स्यतात्वाय दी है अववा सदस्य न बनने की सम्मति दा है। 8 प्रतिमत व्यक्तिया ने सदस्यता याननं का वह कारण बतलाया है कि उनका अस्य आय समाजियों से मतभेद है। 4 प्रतिशत का बहुमानना है कि बायसमाज से सौहादपूण बातावरण का धमाव है। इस कारण सदस्यता त्याग दी है। जबकि 60 प्रतिज्ञत अविक्तिया ने अपनी कोई स्पष्ट राय नहीं दी है। इसका काण्यायह भी हो सकता है या तो वे व्यक्ति समाज के सदस्य है ग्राधव बनने के इच्डिक है। (शेव अग्रामी अन्मे)

\_\_\_\_

-- ग्रगला ग्रक --

धम ग्रीर राजनीति
 —व क्षितीश वेदासकार

सनातन धम का स्वरूप
 महाश्वेता चत्वेंवी

 डा कृष्णपाल सिंह के लेख की अतिम किन्त

> कविवर लाखनसिह भदौरिया की कविता।

ब्रायंसमाज मसूरा का निर्वाचन

चान —दुल्नेसिंह

मत्री —जवाहरलाल देवल

कोबाज्यक्ष —उदयमिह चारावत

पुस्तकानयाध्यक देवमुनि ग्राय

30 =



बाल सबन हेतु जपने जीवन भर की कथाई 30 हजार रूपने का चक सदन के प्रधान दलाण व बाव को केते हुए वानवाला मालचब ।

### अनुकरणीय दान

स्राजनेर 17 गई।स्थानीय भन गानग्य **निवासी शीयत्रमण्**य **रेता**ह्य ने अपने परिवाद अवों आरा की जा रही उपका से प्रश्ति हैन्डर भरने जीवन चर की सारी कवाई 30 000 क्यमे दमानद बास सबस हेतु सदन के अधान सामाय दशान व बाय की दान कर दी है।

सदन प्रचान थी दलाचम जी ने देवास्त्राधी के दान की जनुकर रणनीय बताते हुए कहा कि इससे पूर्व की हमें कई व्यक्तियों ने लाखो क्षेत्र काम के रूप में किये हैं। प्रश्तु स्य का समदेवजी समी व देवाला जी के बान की मैं विशेष महत्व दे**ता** क्योंकि इन दोनो महत्त्रुणाबी ने धपने जीवन की सारी पश्चिम कमाई दान दे दी । एक अपने अविच्य के भू अरोरे के लिए एक पता भी अपने पास नहीं रखा। बाधाय की ने की देवाना को भारतासन दिया कि सदम वापको जीवनपात कोई कच्ट नहीं हाने देगा।

### वैदिक गणितः सर्वश्रेष्ठ मणित

वैदिक विसत की किलाव उन चाद किताओं ने हैं जो अपनी तो मारत म है पर बिक्ती विदेशों में 📗 इम्लड और समेरिका के तमाम धनेक किसा सस्थाना ने वदिक मस्तित पढाया जा रहा है। जदन स्कूल बाफ इकोनोमिक्य में यह किताब कोस में है। समेरिका आस्ट लिया और शक्त में भी कीस में इसे पढाया जाता है। लवन के ही मेरी बाड सेंटर में फिस हाल एक कीम चलाया वा रहा है जिसमे बालाया गया है कि 10 + 2 प्रणाली के समकक्ष वहा की ककाओ का गरिएत बदिक गरिएत प्रसामी हारा पदाया का सकता है अस पूर्व त्तवा भारतीय प्राचीन वैदिक गरिएस पर इंग्लंब और अमेरिका में बाकाववा रिसच 🚮 रही है । जब एक चार किताब की प्रकाशित ही चुका है। शा वरेंद्र पूरी के अनुसार विदक्त विश्वत की जीकांत्रयता का एक कारख बेकक इसकी व्यावद्वारिक उच्योगिता है। म्बारह महीने केवल को घटे रोज वदिक विशित का अभ्यात करने से इटरमीवियेट बस्तित पाठयकम के बराबर योग्यका हासिल की जा सकती है। विश्वत की ऐसी तमान प्रतियोगितामी में बहा कैन्क्रुलेटर का प्रयोग वर्जित है । वैदिक परिएक प्रशाली का ज्ञान बरवान है। कई तरह की नरहनाओं ने तो वैदिक वस्तित कैरमुकेटच को की प्रकार नकता है ऐना डा पूरी का दावा है।

- बनसरता के सीबन्य से

### सस्यागत प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी को प्रमुखता हैं

दिल्ली डी ए वी कालेज प्रवश्वकर्ती शमिति ने प्रपने नशी सस्या प्रमुखी की सस्था के प्रकासनिक क यों में हिंदी का प्रयोग करने का निदम दिया है। समिति के मगठन सचिव श्री दरबारीसाल ने दि 13 4 87 व 47 4 87

की सस्या प्रमुखी की भेज गये अपने परिपत्रों में उन्त निवश विया है . भी बरवारीलाल ने सस्वा प्रमुखों से यह भी बनुरोग्न किया है कि वे आप्री की मनिवादन के लिये नमस्ते जन्द का प्रयोग करने की प्रराणा वें तथा नेकटाई को उनकी वेशभूषासे पृथक्कर दें।

महवि द्यानन्द भी मात्र हिन्दुशी के साथ जोडकर रखना या उन उक्त ही नीमित करना ऋषि के प्रति अभ्याय 👫 धाजरत प्रायजनत के कुछ मान्य विद्रान नेता भी स्वामी जी की मात्र एक हि दू सुधारक सिद्ध करने पर तुले हुए हैं। इन व्यक्तियों में दो प्रकार के व्यक्ति हैं। प्रथम को घपने लिहित स्वाबों के वशीचूत हो ऐसा कहते वा शिवते हैं। द्वितीय-को बसमान परिस्थितियों ने ऐसे फिर जाने में ही देश समाज का हित समस्ते हैं।

हनाची वर्षिक में प्रमान अकार के व्यक्ति ही निर्देशका रूप के जाकि

होती हैं। हो, ब्रिटीय प्रकार के व्यक्ति प्रमानक ऐता मह श्री हैं। और उनका कीर्य निजी स्थार्थ इससे शही है। परम्यू महन्तिबर के प्रति अपराध ता बह जीकर ही रहे हैं बने ही बन-अपने में कर रहे हों।

इस सदय में माननीय बाजाव वेदचराओं सथस्थी के शब्द मनतीय है। उनक जन्म के हैं — ' " भट्टिक वयामन्द ने हिन्दू नावक किसी वर्ण के शिए कुछ वहीं गावन-गाम के उल्लाम का बीका उठावा था। बार्च बनाय को माच हिम्दू नाम वे चोडमा महर्षि स्थापन्य का भागान है"।

\*##Ret 3 mf. 198/

### मार्थ क्यान कारोर पुरश देखीति हार्सिकी त्रो**० वसात्रेय बार्य हारा सिक्ति पुस्तकें**

देश बन और हिन्दू समाय को साथ समाय की देश-- मूल्य 0 50 पैसे

हमारी राष्ट्रीयता का बाबार मूल्य र 1 00 बाजार वहिता—मूल्य 0 50 वस

3 थी बाम समाज हिंदू निवातट हिंदूदन्म (अनेवी)--विशेष रिमावती दर

× 75 00 माय समाज हि दू सम का सम्बदाय नही मूल्य-50 व

MADE STREET बाग समाज (हिन्दी) मूल्य सजिल्द 20 ED र अधिल्य 16 00

ने भागा बामपतध्य धम विका (भाग । से 1 । तक) -- पूरे सट का मूल्य इ. 32 00

### मत्यार्थ--प्रकारा ग्रन्थ माला –15 माग

प्रित्येक सम्ल्लास पर स्वतच टैक्ट रे

9 स्वयं और नरक कहां है ?

2 आवम मता पिता शिक्षा बीर परित्र निर्माल

10 भी के पूल्हें में धम नहीं है

11 द्विम की निवसता

शुहरवाधम का महत्व

12 बीड बीर जैन मत

स यासी कीन और कैसे ही?

13 वेद और ईसाई नत

कारत कास्त्रका

14 इस्साम और वदिक वर्ग

7 कियर और वेद बरत की उत्पत्ति

ईश्वर एक नाम भनेक

15 सस्य का श्रय तथा प्रकास

विशेष -- मणी ट्रैक्ट बार्य अपतु के चोटी के विद्वानों के हारा विकित हैं एव स-बमाना का सम्मादन बाई समाच बजमेर के प्रधान को इसाव बजी बास ने किया है। स बमाना के पूरे सेंट का सूच्य 8/ क्यों है।

#### स्माननः सोपसेठः

वमानन्य (स्लातकोत्तर) कॉलेक अवमेर में स्थित वमानन्य शोक्यीठ के लिए एक प्रोफ्सर की नेतन लवजन <sup>2</sup>000/- प्रमा अवस्ता 1500 2500 माबश्यकता है। मोग्यताए निम्न प्रकार होनी चाहिये

मान्यवा प्राप्त विश्वविद्यासय से एवं ए वा एवं दी हिन्दी संस्कृत श्रयका दसनबास्त्र ने द्वितीय श्राणी

दस वय का स्नातकोत्तर कथाओं का पढाने का जनुभव

अनसाक्षान काम का सनभर अवदा योग्यता क्याति एव मान्यता प्राप्त विद्वात को बन्य मोन्मलासी के सुद्र ।

आवेदन-भत्री आवत्तमाव शिक्षा समा सक्तेप को करें।

कार्यालय प्रशिक्षक ब्यानम्ब कतिस धसनेर

स्वत्वाधिकार भाग समाज अजमेर के लिए व प्रकाशक एव सपादक रासासिह हेतु रतनसाल गग द्वारा श्री भाग प्रिन्टसं वासू मोहस्सा केमरगज भजमेर मे मुद्रित एव भाग समाज भवन अजमेर से प्रकाशित ।

वेबो<sup>5</sup>सिलोबर्मभूतम् वेद ही समस्त धर्म का मुल है ।

वयानन्दाब्द 162

सुष्टि सम्बत् • 1972949087

वर्ष 3 सोमवार15 जून, 1987 वर्ष 8 व स -43338/84 II গ্রাহ্ম টুট্টাইটা

धार्य समाज, धजमेर का हिन्दी पाक्षिक पत्र "धार्य हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म । बोइन् हमारा वेच है, सत्य हमारा कर्म ॥"

स्रभय मित्रादभयम् अभित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात् । अभय नक्तमभय दिवा न सर्वी साधा मम मित्र भवन्तु ।। कुष्यन्तोविश्यमार्येश सकल जगत् को प्राप बनाए

हमारा उद्देश्य .

समाज की वर्तमान एवं मविष्य में पैदा होने वाली समस्यामी को वृष्टिगत रखते हुए भ्रायसमाज का युनगँठन करना है।

म्रावाद कु॰ 4 सवन 2044 वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

### चौ० साहब का निधन राष्ट्र व समाज की अपूरणीय क्षति



(पविवे पृष्ठ 4 पर- "बातिबाव बिरोधी भौ॰ भरणसिंह")

श्यवेर के प्रक्यात विकायिय एव प्रार्थे सपाज अवसेर के प्रधान प्राप्ताये दत्तानेय कार्य ने पू. पू प्रधानकत्री वीचनी चरलतिह के निधन को राष्ट्र व श्रमाण की महान आदि बराया है।

चौचरी साहब के परिवार के नाम अधित सपने कोक सदेव में सावार्य भी ने निक्वा है, "बीचरी साहक सहान देव पर, मुबंग्य स्व-तन्त्रता देगानी, कृट प्राप्त कार्याते, साहक सहान देव पर, मुबंग्य स्व-तन्त्रता देगीची, किवानों के मसीहा एव ईनानवार व्यक्ति के उन्होंने सपने बोच्ट व्यक्तिक एव परिवा के बात पर सिवेब झार बीची है। उनके निवन से वो सावाधिक व रावनीतिक स्व-वा देवा हुई है उनकी मूर्या नामी समय नहीं है। वोक की इस की भी मानने साव सही मुंगी सामने साव सही है। वोक की इस की भी मानने साव सही मुंगी सामने साव सही सुंगी सामने साव सही मुंगी सामने साव सही मुंगी सामने साव सही सुंगी सामने साव सही मुंगी सामने साव सही सुंगी सामने सुंगी सु

मारमा से प्रार्थना करता ह कि वह चौसरी सम्हत की विवनत बारमा को सवगति प्रवान कर एक धाप वरितनो को धैर्य प्रवान करे।"

इसी अश्वय गाएक क्रोक प्रस्ताव अस्य समाज अपनेर ने भी चीसरी साहब के परिवार को प्रक्रिय विवाह ।

धार्य सभाव सजमेर ने सपने छोक प्रराज्य में कहा है कि चौकरी सहस्य सहान सामनेदा, किसानो व बनियों के मसीहा, ईमानदार व्यक्ति में। ऋषि-मांक बाद में कुट-सट-कर परी श्रृष्ट ची। बापके निबी कमरे में केवल ऋषि प्रदानाय का सिकार कटर निरोधी में।

आपके निवन है राष्ट्र व बार्य समाव की महान् बाति हुई : ऋषिवर के महान् सेनानी को हमारी कोटिव महान्तिमी सावर समप्ति हैं।

ש מוש ודר די ידרוודריווי

### खुश्चवन्त्रसिष्ठ का दुष्प्रचार

शी बुधवन्धिवह उन फबूल व सारिवहीन शिवाने से अपना कोई सानी मही रखते हैं। जभी गत उप्ताह उन्होंने अपने स्तम 'मा काह से दोस्ती, ना काह से बेंर' में दमों के विश्वय में भी विराह्मन बातें निखी हैं नि सपेरेह उनके पत्रकारिया की गरिमा को भारी देव यहनी हैं। आपने लिखा है— "यह जब कोई रहस्य नहीं रह गता कि दिस्ती और किया होनी वगृह जो मेरें हुई हैं उनके अधावादर मुसलमान वे और विकार हुए हाधिकतर लाग पूलित मंधी ए तो हारा चलाई यह मोलियों है मेरे।"

वेस के ताकारला से ताबारला घावबी की बी नह बात हो पुका है कि वीं ए सी ने मिनवाना नांव से बोली घाश्मरखार्थ चलाई। परन्तु 'तरबार की' फिर भी क्षपनी ही होके जा रहे हैं।

शभु से प्रार्थना है कि पश्रकारिता जैसे पनित्र निक्रम को श्री खुसबत सिंह जी जैसे महानुसानों के बचाए।

—वीरेन्द्र द्यायं

• — वीरेल कुलार आर्थे

वि वीर अपनी इस झारखा के समर्थन से तक देते वे कि के प्रत्ये हर्गातिक महामन 'फूट वांधी की राज्ये हर्गातिक महामन 'फूट वांधी की राज्ये के सन्ताति हिंगू व मुसल्यानों से वीच कराते हैं। यक्षि हमारी यह झारख करते नहीं वी एव सरस्ता पर बांधारित की। परन्तु स्वतन्त्रना के बाद हुए साम्प्रवायिक वगो ने यह सिख कर दिया है कि इनके अतिनिक्त वी ऐसे कारख है औ कि हिन्दू क मुसल्योगों के मध्य देगे प्रवक्ताने म

साम्प्रदायिक दगो का सबसे बडा कारण में मुसलमानो की चरम सीमा तक पहुँची असहिष्णुता को मानता ह

(क्षेत्र पृष्ठ 6 पर)

बत एक माह से दिल्ली और कि पेट साम्बाधिक दर्श की बाय के फूनता रहे हैं। इन बने के अब तक्ष करें सी स्थातिओं की बानें वा पुकी हैं बीर को बीत करने की सम्पत्ति स्थादा हो पुकी हैं। देन में साम्बद्धा-कि बने पालने बार नहीं हुए हैं, बल्कि इन सदसे में पुनीपयुक्त उस्ले-बनीय तस्य यह है कि पराझीन भारत के पुकारने स्थानक भारत ने बनो के प्रतिकार ने बुढ़ि हो नहें हैं। नह दो वर्षी (1985-86) में ही सबस्व 436 -सीमो की बामें साम्बद्धाविक करती है मर्ट हैं।

> परतत्र मारत ये ह्य साम्प्रदाविक वर्षों के निए वर्षमाँ को दोषी सम्प्रते

> > प्रधान संपादक : रासासिह

संपादक :बोरेम्प कुमार बार्व

फोन कार्या: 21010

### सम्पादकीयः

नई शिका नीति मे--

### संस्कृत पर कुठाराघात असह्य

आरत सरकार ह्वारा उद्घोषित नई शक्ता नीति के अन्तर्गत सस्कृत में सर्वेचा उपेक्षित कर दिया जया है। यहले तृतीय माचा के अन्तर्गत सस्कृत स्वाध्या बहुत क्रम्ययन होता था परन्तु अब विहास भारतीय आचा को सिम्मास सुत्र में स्वाध्य के स्वाध्य अन्यानी हो वायेची। सार्वदेशिक साथ प्रतिनिधि सभा के साह्रान पर देश की तमस्त बार्य समाची में 10 मई को सस्कृत दिवस मनाकर हचा नई विश्वा नीति के अन्तर्गत सम्कृत की उपका का सिम्मास सम्बद्धा करा स्वाध्य सम्बद्धा करा स्वाध्य समाची में 10 मई को सस्कृत विश्व मनाकर हचा नई विश्वा नीति के अन्तर्गत सम्कृत की उपका का स्वाध्य करा सरकार से अनुरोध किया है कि सम्कृत सम्बद्धा का स्वाध्य सम्बद्धा स्वाध्य सम्बद्धा स्वाध्य सम्वाध्य सम्बद्धा स्वाध्य सम्बद्धा सम्बद्धा स्वाध्य सम्बद्धा सम्बद्धा स्वाध्य सम्बद्धा सम्य सम्बद्धा सम्वद्धा सम्बद्धा सम्बद्

सरकृत देवनाएती है। यह हमारे प्राचीन सम्, भाषार, नीति, इतिहास साहित्य और सन्कृति की वाहिका भाषा है। सरकृत है तो भारत है, सरकृत है तो मारतीय सन्कृति है, नम्हत है तो भारतीयता है, सम्कृत है तो ध्वम है, सम्हत है तो सायल है।

सम्मत के बल पर ही भारत प्राचीनकाल में विश्वयुक्त कहताता था। सम्मत विका और ज्ञान का अनुस्य सण्डार है। वेद उपलिचंद्र, सीता, रामायद्य महाभारत सब सम्मत में है। समस्त प्राचीन बाङ्गमय सम्मत में है। सम्मत समस्त मारतीय भाषाओं मी जनगी है। उत्तरी मारत की आये परिचार की भाषाए नी सम्मत की पुचिया है ही, दिख्या की प्रविच भाषाओं में 70 से 75 % तक सम्मत की सम्मत

महाँच दयानन्द सरस्वाती ने प्रत्यक जाय समास्व के लिये सस्कृत का ज्ञान प्राप्त्यक बताया था। ध्राय समाज ने अपने स्थापना काल से ही स्वपनी पाठमाना और विधानवा में सस्कृत के अध्ययन-स्थ्यावन की धोर ध्यान दिया। गुन्दनीय शिक्का का ता मस्कृत विशास अग है।

मत संस्कृत की उपका मारतीय संस्कृति और धम पर कुठारावात है जा सर्वेदा संस्कृत है।

भारत सरकार हारा समय रहने पुनविचार कर सस्कृत को उसका उपयुक्त स्वान देना शाहित । —-रासासिह

#### पत्र बोलते हैं --

### नाम न हों, काम चाहिए

झापने पत्र का नाम प्रत्यन्त उपयोगी रखा है पर कार्य क्या हो सकेगा ? इस क्यिटित समाज को ठीक करना कठिन है। — सुरेशक्य वेदासकार

आर्य समाज मार्ग गोरखपुर (उ॰ प्र॰)

### राजींब का पत्र -

### आर्यजगत को जगाने वाला

यह पत्र महत्वपूर्ण है। ग्रायंजगत् को जगाने वाला है। परवा-वृश्यक है। मै इसकी उत्तरोत्तर उग्नति चाहता हैं।

> —श्वासिह, भूपति-भवन स्रमेठी (उ प्र)

### श्भ – विवाह

टा ए वा धक्य प्राध्यमित विद्यालय, प्रजमेन के प्रधानाचाय व वार्य नमाव प्रस्तपन सभी को नासांनिह जी की तुपुत्री सी पुत्रचा का **वि वर्षेन्द्र** स गव देवान-द बाग सदन की सी अमसी का वि कहा। नव्य समित कसत १ जून व 10 जून का कुच विद्याह सम्बद्ध हुआ।

भाय पुनगठन' परिवार की भीर सं नवदम्पत्तियों की हार्दिक शुक्रकामनाए।

### उपसमिति की रिपोर्ट सराहनीय है

मैं बार्य समाज सज़नेर के मुख पत्र 'बार्य नुतर्पठन' का नियमित सक्यतन करता हूं, पत्र के 30 गर्द के अक मे जी पतानित जी खाने द्वारा सावेदिक आग्रं मितिन तथा को प्रस्तुत उत्तरिक आग्रं मितिन तथा को प्रस्तुत उत्तरिक आग्रं मितिन तथा को मित्र के स्वार मित्र करवानी व स्वार में मित्र के स्वार में स्वार प्रमाण की का में बार स्वार में स्वार प्रमाण की का में बार स्वार मित्र मित्र प्रमाण की का में बार स्वार्थ में स्वार प्रमाण की का में स्वार मित्र मित

आ बाहि कि यह पत्र भविष्य से और पश्चिक क्रिका प्रद विचारधारा मानद समाज के समझ रचने ये सफल होया।

- **नवीन कुमार सर्मा** रामगज, बजमेर।

### सावंदेशिक सभा को लिखें

मान्य प्राचार्य की.

13, 14 चून को होने वा रही सावदेशिक समा की अदरण के एवेण्डे मे उप समिति की रिपोर्ट का कोई उल्लेख नहीं हैं । क्रुपना सावदेशिक समा को लिखें।

—वीससराभ चढ्ढा प्रधान, महाराष्ट्र शार्व प्रतिनिधि सभा बाजेगाव, शादेड (महाराष्ट्र)

### महर्षि की मृति जगाइए !

आपने अभी आयंसमाज के भविष्य के वारें ने कुछ प्रस्ताव पास किए। इससे पहले भी प्रस्ताव पास द्वुए हैं। कोई परिशास नहीं निकता। वहाँ मैंने एक महाँव की भूति नगाई है तथा एक कीर्ति स्तम्भ भी स्वापित किया है। इस पर निक्वा है—

- मार्थ्यावर्तं एक महान् राष्ट्र है ।
- 2 आयं जाति एक महानु जाति है।

3 वेद एक महानु पुस्तक है।

मेश आपको सुभाव है कि अवसेर ने भाग भी एक ऐसी ही मूर्ति व कीर्ति स्तम्भ नगवावें। —के बी. लाख

93, ज्ञिवाकी मास, देहरादून (च प्र)

#### आवश्यकता

वार्य समाज क्रिका सन्ता, सजमेर द्वारा सन्तानित तमा विश्वालयों में (1) स्थानन्त कालेज सजमेर हिंदू व्यावसाता पत्र के जिए निर्धारिक योग्यताए काल से कम उच्च द्वितीय खेली ये कातकोत्तर, क्लातक तना एम फिल यो एवं जो को वरीयता (1) पह चिकत्स (2) निस्तुत (3) पूरीत (4) हिन्दी (5) अरोजी (6) जन्दु बारण।

(2 विद्यालयो हेतु—(1) आवश्याला (हिन्यो) एम ए वी एड (2) पीटी मार्क तृतीय व्येषी ह्या सी वी पी एड (3) विद्याल अध्यायक हितीय येड—एम एक सी वी एड (4) अध्येषी अध्यायक हितीय पेड एम ए बी एड (5) आवश्याला एम एक ची एम एक (6) आवश्याल एम लाग पम एड (8) आवश्याला (सन्ह्रम) एम ए एम एड

(8) वरिष्ठ लिपिक-स्नातक हिन्दी एवं अधेनी टकरण का जानकर

(9) क्रिक्ट लिपिक—हायर सैकब्हरी बयेजी / हिन्दी टक्स के साथ

(10) तृतीय श्रेली घड्यापक बी ए बी एड व हामर सैकच्डनी एस टी सी (11) चतुष श्रेणी कर्मचारी प्रापु 20 से 30 वर्ष योग्यता कम से कम पाचनी क्यांत का । सावेदन मंत्री बार्य समाज विकात समा, सनमेर को निर्धारित सावेदन पर (ग्लं चपये के गोस्टल सावेर पर) यस विवस की अवधि ने करें।

#### सहयोग दीजिए

दयात-द वैदिक जोडपीठ, वयात-द कालेज, सकमेर में ऋषि के पर ध्याहहर पर लोध कार्य वल रहा है। वयि किसी सज्जन के पाल ऋषि के पत्र अपहार में सम्बन्धित कोई सामग्री हो, ता हुण्या स्थालक स्था-तन्द वैदिक होथीठ, द्यावन्य कालेज ध्यावेर की लेजने का करट करें।

--सवासक

बुरकुस कांगवी विश्वविद्यालय हरिद्वार, द्वारा प्रवत "पीवर्धन पुरस्कार" के उपलब्ध में माननीय वी क्साजेय खार्च को सम्बद्धित

### अभिनन्दन-पत्र

स्विनेर राजन्यान की गौरवनवी वतुन्यदा का ह्वव है। सन्वेर के विर संसादी, विद्वारों, क्यों व त्याव युवारकी की खबना में क्येंगीर प विद्यानाम जी एक ऐसी कड़ी वे जिन्होंने करपना नेक्सकी की क्सानेय जी सार्व को सरका उसरविशारी बनाया।

यो रहाजं व यो ने प्रपत्ते स्वय की गृवेश्वता तथा प्रतिचा के बव यर इस नवरी को राजस्थाल का सर्वोत्कृष्ट विक्रा केन्द्र के नतर पर प्रतिस्थित क्लिया । ऐसे परण स्वास्त्री एक विश्वानिय भी दर्शाण गर्ना आर्थ को उनके सम्प्राय प्रविद्य एक वीविक साहित्य सुनन के परिस्तान स्वरूप गुरुकुत कावडी विक्रमिकालय डाए "श्रीमधंन जा मी पुरस्कार" से पुरस्कृत किये वाले के प्रपत्ता में सुणदा सार्वनिक प्रामान्यन है ।

वर्षुत जी वरात्रिय वार्य जेवे कर्मठ एव विवक्तस्थ प्रतिका सम्यन्त जनीची को कोई पुरस्कार देना पुरस्कार का ही मान बढाना है।

सरस्वती के बरदपुत्र की बसावें न वार्य ने कपने क्यापक वाक्यपत्र तथा प्रमुत्तव के बाधार पर ऐसा उस्कृष्य साहित्य सूनित किया है सिवसे बुक्त स्त्रानों से लेकर उद्भुद्ध तस्य विचकते कर ऐसी उपायेंय सामग्री अधित है को देस, समाज के स्वास्त्र निर्माण के लिए बतान है। सार्थ अपाज के स्वास्त्र निर्मारण में सामग्री यारवामी प्रतिमा का स्त्री उसेण सामग्री स्वास्त्र क्षेत्र क्यांति प्राप्त ग्रन्म बार्य सामग्री विकास विवादतः विज्ञहरूवा में स्वस्त्र है।

राष्ट्रीय चरित्र के जिन स्वस्य प्रतिमानो का विश्लेक्स झापने आपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "राष्ट्रीय चरित्र और एक्सा" वे किया है। वह भी युवा पीढी को नई स्पूर्ति एक विद्याचीन प्रयान करता रहेगा।

कनमेर नवर वे जारमना सफताता पूर्वक सवाजित लगवार वन्द्रह ही ए वी विकास सरमार्थे आपकी हुवल प्रकारन समया तथा हुरतार्थी व्यक्ति का परिचावक हैं। इन सरवार्थों के सभी प्रक्रिकारी तथा कर्ववारी नर्थ वापकी स्मास प्रियता तथा सहवोगी सम्मान से नितारत समुद्ध है स्था के इन सरवाजी की प्रगति ने निरन्तर सन्तद्ध रहते हैं। सगवार 85 वर्ष की धामु ने भी क्षात्रका ओकस्पी व्यक्तित्व सस्ताह तरना से तरिवत है जिसने समाज तथा उसके पुत्रवा घटनों को स्वस्थ क्य सेने तथा उन्हें सुस्पस्ट गांग पर लाने की साथ विकासन है।

यहत्याकाकाची तथा जान का यह ज्योतिपुत्र दीर्वकाल तक हन सबको दिका बीध कराता रहे। यताधिक वर्षो तक आप जान निश्चि सरक्षण श्रीर सबर्धन करते रहे।

दयानस्य कालेज परिवार जापका जाधकावतः इरते हुए सथसकामना करतः है । ' ओरम् स्वस्ति ' जुवाकाशी

दिनाक 5 मई, 1987

प्राचाय एव दशनन्य काल्ज परिवार

## हिन्दी अपना हक चाह रही

हिन्सी, हृतसत्त्री की सकृति, हिन्सी बग-बन की वारती है। हिन्सी में, पारण कोश रहा, हिन्सी सकृति--करवारती है। हिन्सी, की अपनी तरत रहा, रखती है जैर-निरोध सकृति। हिन्सी, वस बीचन ने बन्धी, कि विकक्ष विधे सुकीस नहीं।

यह दिव िपरां को दुष्टिता है, यह उक्तित राष्ट्र की समिता है। इसमें सरीत की वीट-कथा, बससे शरीक्या की करिता है। यह सोच प्रवाद नपुरता के रख प्याप्तित गायु की शास्त्र है। इसमें शिव्य, स्टार गुरूरण हो जीवण का क्या संवारा है।

इसने हथकदियाँ तहकाई, हतने युव कम्बन घोसे हैं। हसकी हुकारों के बाये, करेबी सासन, जीसे हैं। इसने ही मुक्ति मास, सकर, है, राष्ट्र-युव्य को सहबाई। हसने स्वाप्त स्वाप्त है, सामित-जीति की सहबाई।

तबमुत्त के कटा बयानम्य, इसके स्वर में ही बोले थे। 'श्रम्कुत' के होकर मार्तेष्क, हिस्ती ने प्राप्त उनेले थे। गीला रहस्य रचने वाले, यगावर ने तिलक किया। स्वातन्त्र्य-वधू बरने वाले, गीडी ने इसकी गौर तिया।

हिन्दी ही जुड़ में ताय, हुँती, हिन्दी डुड़ से सब रोई है। हिन्दी ने युन की कार्तित सिकी नीहू से कलस दुकोई है। हिन्दी की अक्टेलना निक्त हिन्दी का ही, वयपान नहीं। बह कुला कुला है राम्द्र झेह, धारत मों का सम्मान नहीं।

हिम्बी बचना जुल श्रीय रही मांगती किसी की श्रीय नहीं ! बोलियां बहिन बन रहे, वनें दिन्दों को कलहिन जीत नहीं ! यह है संस्कृति का प्रस्त, एक्ता की भी दससे रखा है ! यह सदय, स्थाय की श्रीय राष्ट्र चक्तों की बरस गरीसा है !

तुमसी के राध बढ़े तट पर, उन्हें भार तिम्बु के जाने दी। रामावस्य, नितम पश्चिमक के मौतों जो नित्ते समाने दी। भीरा के जनमों को स्वमनों, चर पर बीचुरी कवाने दो। भूष्ट के पदों की जिल, निरमले अकर-जबर तक जाने दो। नानक कबीर के राम एक उनकी दो काथ बनायों ना ! हैं मोकार गुजार रहा वह सनहद नाद भुसाओं ना । मोडो सतलज की धार, इधर देखों न करांची जाने हाँ। वता-यमना के साथ सिन्धु को भी थाफर मिस जाने थो।

श्रीरा की पीडा व्याकुल हर उर तक पीर पहेंचने दो। व्यासे खड़पी तक हिन्दी की गगा का नीर पहेंचने दो। इस की मसुता मिसरी घोले, सुरा खोले वस की कांडें। सुक्रती का रक्ष घर रोग हरे मानस का महु बगति चांडें।

'भूषत्' के इत्यों को पढ़कर फिर नई जवानी धाने दो। युग के भूषण्यक्य फड़कने दा फिर राष्ट्र रक्त गरमाने दो। सभी विक पान करें नाहक, 'रक्षधान हुआ दी वस्ती ने, केवब, रहीस पनिराम देव का वान हमारी वस्त्री मे।

भारत गाता है, शाजनयी, यह बीन सभी को याने दो, फिर हदस हुदब से मिलने दो तब मेद, फ्रान्स मिट बाने दो। फिर मातम मन्यन होने थे, जीवन के मोती पाने थे। सोन चौदी की कटमक से, जीवन, होरो तक जाने यो।

बेदों का समृत बुहलाई ऋषिकर की समृत वास्ती है। सन-जन पीने को आहुर है सुक-पुन से प्याक्ता प्रास्ती है। सपने पुरस्तों का तप त्यान, फिर नई रिममया लाया है। सारती भाल उत्थामल पर फिर नवा मुर्थ मस्काया है।

इस उगते हुये बाल रिव की, ।फर नई रिक्सिया छाने दो। खन मगल की गना उमझी फिर स्वयः सुतीतक ज ने दा। बहुती समृत की धारा मं आभी सन-सन स्वाप दरें। अल्लास का विच करुमण, धोर्में अमृतका हुन हुस पान वरें।

मानवता जाये प्रार्णो से, करुण से चीये प्रार्ण मिर्छ । फिर राज-भारत में टे फार्ड घार्ड वनकर इसान । छ । सब क्लेज मुक्त हो कारत वर्ने सब र जीवन, रस-धार वहे। सारी घरती रसमिक्त वन प्रागा-धागो मे प्यार वहे।

अरुपुरय तिथे हो नि अरेयस मामजता को पश्चिमए किए। भारती स्वरों में जय गांथे, जनजन को जावन-प्रामा मिला।

कोजपुरा मेनपुरी, (उप)

भारी धरी धरणसिंह के विसन वर देश के प्रमुख अग्रेजी तथा हिन्दी सवाचार पत्रो ने शपने-अपने र्हास्ट-कोला से कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। बनेक प्रमुख नेताको ने भी उनको अद्वाजित अर्पित करते इस अपने विचार व्यक्त किये हैं। चौद्यरी साहब जैसे राजनैतिक क्षेत्र के एक वरिष्ठ नेता के सम्बन्ध ने ऐसी प्रतिक्रियाएँ स्वाभाविक हैं। सनकी राजनैतिक विचारधारा तथा द्यापत राजनीति के सम्बन्ध में इस-लिये मैं यहां कोई विवेचन नहीं करना शाहता । किन्त इन सब मत्याकनी मे जिस बात पर प्राय सब एक मत प्रतीत होने हैं. वह यह है कि बौधरी साहब एक ईमानदार, निष्ठाबान तथा स्पष्टवादी राजनेता थे। जैसा **'टाइ**ब्स जाफ इंडिया" बादि कुच पत्रों ने लिखा है कि उनकी इन विशेषताची का श्रेय बार्य समाज

चौछरी साहब उन बोडे से मिने

को है।

चने प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं में से एक वे जिल्होने कभी वे स्वीकार करने मे सकोचनडी किया कि उनका प्रार-भिक जीवन व चरित्र निर्माण सार्व समाज और ऋषि दमानन्द की ही देन 🚦: समाचार पत्रो मे उनके तिवास स्थान के उस कमरे का चित्र प्रकाशित हुआ है जिसमे उनका पार्थिक शरीर जनता के दर्मनार्थ रच्चागयाथा। उस कमरे ने दो चित्र साथ-साथ रसे हए विकार देते है प्रथम ऋषि दयानन्द का तथा दूसरा महात्मा गान्नी का । इन दोनो ही की कुछ विकिन्ट शिक्षाओं के श्री चरग्सिंह एक प्रतीक थ। देश के शासिक नव निर्माण और विशेषकर बाबीस किसानों की उन्नति के संबंध से उनका शब्दकोरा स्पष्टतया गाधीनादी था । उनका सादा जीवन तथा रहन सहन भी एक नाश्चीवादी नताका स्मरशा दिलाता वा किन्त् ऋषि दवासन्द ही उनके बास्तविक प्रकारकोत व मार्गदणक रहे हैं यह नग्य भी निविवाद है। उनकी निर्भी-बना, स्परन्वादिता सँढातिक स्टबा तथा अन्मगत जानपात जैसी सामा-किक कुरीतियों का विरोध इसका प्रमारम है। अपने इस सक्षिप्त लेख में, मैं उसके केवल कुछ उदाहरश हेकर उनके प्रति आग्नी भढाजनि **अ**धित करना चाहता 🕏 ।

जाट बनाम किसान जानिकार के विरोधी जीधरी वरगामिह जी के

### जातिवाद विरोधी चौ० चरणींसह

### --- ब्राचार्यं दलात्रेय (बाक्ते) ग्रायं –

ये कहते हैं कि अन्होंने राजनीति में अतिबाद और विशेषकर जाटवाद को प्रोस्साहन दिया किन्तु उनके जीवन, व्यक्तार व विचार इन तीनो से इस भारोपका खडन होता है। उन्होने अपनी कन्याओं का विवाह जन्मगत जातपात तोडकर, गैर जाटो में किया। मुक्ते स्मरण नहीं है कि वे कथी किसी जाट सस्था या मगठन से सबधित रहेहो और नहीं किसी आट सम्मेलन या संचाकी उन्होंने ग्रध्यक्षता या सवस्थता स्वीकार की । ये सही है कि देश में किसान वर्ग ग्रीर विशेषकर उत्तर भारत में किसानो में एक बढी सक्या जाटो की है, किन्त साथ ने वे भी सही है कि चरमासिंह उनके समर्थक वा नेता इसमिये नहीं ये कि वे जाट वे बल्कि इसलिये में कि वे किसान में । यही कारण हैं कि उनके समर्थको बे बाटो के धतिरिक्त गुजर, महीर धावि धम्य पिखरी जाति के किसानो की बहुत बडी सक्या थी। अनेक उच्च जाति के शीम भी जिल्हे गायी जी की बामीस वर्ष व्यवस्था धीर बडे उच्चोगों के स्थान में कूटीर उचीयों के महत्व में विश्वास था. नौष्ठरी साहब को प्रपना नेता स्थी-कार करते थे। लोकदल अर्थाद जिल दशा का नेतृत्व उन्होने किया उनमे प्राय सम्ब जातिया के यहां तक कि मुसलमान भी सदस्य व श्रविकारी ग्रे हैं।

सबस्र में उनके समामीचक धक्तर

काट राजपुत विवाद राजस्वान में बादों के साथ गानूरते डाया प्रपंधहार किये अने के अनेक उदाहरण किये कारे के अनेक उदाहरण किये कारे हैं उन्हें अपेक्षाइत होटी जाति का समकलर पाजपूत गाजा और किशनेवार सामाजिक किये हो कि साथ निष्का करते हैं के अपेक्ष करते हैं कि साथ निष्का करते हैं के अपेक्ष के सोने के के अपेक्ष करते हैं सह तक कि वे स्थान करते हैं के स्थान करते हैं का प्रयोग नहीं कर स्थान करते हैं कर करते थे उन्हें सन वा है कि स्थान करते हैं कर सह ले के उन्हें सन वा ही

उपयोग करने की सुट थी। औसा भी सरी साहब ने एक बार कहा था, "जन्माधिमानी अधियो के इसी प्रकार के दुव्यंबहार का परिखाम था कि पजाब में लगजब 51 प्रति-कर बाट वा तो मुसलमान हो गये याफिर सिक्काबन नये। आधुनिक युव मे ऋषि दवानन्द ही एकमाच ऐसे महापुरुष थे जिल्होंने देव और शास्त्रों के बाधार पर जाटी की क्षत्रिय भौषित किया । इतना ही नही आर्थ समाज के धनेक प्रसिद्ध सन्यासी, बिहान, वृहित आदि जन्म से जाट हैं। घरच भी बदि किसी वर्ग विशेष के श्रविकास अवस्ति आयं समाज के अनुयायी हैं तो वे जाट ही हैं। वी चरएसिंह जी इनसिए अन्त सक प्रपने आपको सार्यं समाजी व ऋषि दयानन्द का अनुसायी चौषित करने मे नौरव अनुभव करते थे।

ग्रन्तर्जातीय विवाह एक नात्र मेरी सम्मति मे उनकी सबसे बढ़ी देन जनका सातिबाद के विरुद्ध वह कातिकारी अभियान था. जिसे स्व प नेहरू जैसे राष्ट्रीय नेता भी स्वीकार करने में किमकते थे। चौधरी साहब ने प नेहरू से सन् 1945 में ही यह गान की थी कि वे कम से कम सरकारी अधिकारियो तथा कर्म-वारियों के लिए धन्तर्जातीय विवाह व्यतिवार्थ कर दें किन्तुनेहरू औं ने उनके सुकाव को यह गण कर धमान्य कर वियाणि विवाह एक व्यक्तियत मामला है उसने राज्य वा कानन को हस्तक्षेप नहीं भारता चाहिए। नेहरू जी की यह दलील सैद्धान्तिक शब्दि हे सही थी, किन्तु भारत की परि-स्थितियों में उसका एक मामाजिक व राष्ट्रीय पहला भी है। जन्मगत जानपात न केवल हमारे सामाजिक जपित राष्ट्रीय जीवन का की एक बढा अभिनाप रहा है, जुख अपनावी को छोडकर कोई भारतीय बीर विशेषकर हिन्द अपना विवाह केवल व्यक्तिगत जुश दोषों के साझार पर सायव ही करता हो। प्रायः सव आति व धर्मी के लोग विकास समध

अपनी जाति व सर्वकी सीमा के मन्दर ही करते हैं बहा तक कि कार्य समाज की स्वापना के पूर्व व बाद में हिल्ड कोड जिल के पारित होने के पहले अपनी जाति में ही विवाह करना कानन की चर्धि से बावस्यक या । यदि कोई उच्च वर्ष का हिन्द किसी श्रन्य बारित की कन्या से विवाह कर लेता या तो उसे कानन भी स्वीकार नहीं करता या। ऐसे विवाहों से उत्पन्न सतानें वर्वध समभी वाती भी उन्हें बपनी पैदक सम्पति ने कोई विश्वकार या हिस्सा नहीं मिल सकता। सेसी विचति में चरएसिंह जी का सुऋाव जातिवाद के उन्मूलन के सिवे सर्वेषी उपयुक्त भीर बावस्थक करण सम्भेता बाहिए बा। कान्त द्वारा बपनी ही जाति में बिवाह करने के लिये बाध्य किया जा सकता है तो धपनी ही जाति में विवाह न करने का कानून अनुभित क्यो समझा जावे ? बस्तूत जन्म**नत** जातपात के निराकरण का बतंत्राम परिस्थिति मे वही एक कारबर उपाय है।

चातिबाद को प्रीत्साहन-वह दुर्भाग्य की बात है कि स्वाधीनता के बाद चुनाव बादि राजनैतिक स्वयों के कारण हमारे अनेक प्रमुख नेता तक जातपात के इस राष्ट्र विरोधी भस्मासुर की ब्रोत्साहन देने में सकीच नहीं करते। अधेवी राज्य मे जिन सामाजिक व श्रामिक सुधारी को हम अपनी राजनैतिक मुक्ति के लिए बाबस्यक समभते वे, जातित्रथा का निराकरता उनमे सबसे प्रक्रिक महत्व का प्रश्न या । ऋषि दवानन्द ने सर्वप्रथम इसलिए भूग कर्मानुसार वर्ण व्यवस्थाको ही वेदोयत सिद्ध करके जन्मनत जातपात के बाधार को ही नध्ट करने का प्रयत्न किया। खबाज्य अथवा हरिजनो की समस्य। भी इसी सर्वेषकी जाति व्यवस्था 🕏 बुक्त के विचैले फल मान हैं। क" के स्वान के कम के बाधार पर सवा-कृषित श्रष्ठतो को ब्राष्ट्रास ब्राह्म उच्च बर्गों से सर्वेचा झारमसात करके इस समस्या का चिरस्वायी भीर कारगर उपाय किया जाना चाहिये का किन्तु स्वाधीनता के बाद इन बयों को उचित तात्कालिक के स्वान मे अपन प्राय सदा के लिये स्वय उनके हित विरोधी, राजनैतिक व शासिक लाभ के अलोचन देकर हाने जन्म की दिल्ह से उन्हें हुमेशा के लिये प्रस्त बना विया है । भाज स्थिति यह है कि इरिजनों के जिये ळची बाति के सोग भूठे प्रवास पत्र देशर बद्धन बन रहे हैं।

(शेष वृष्ठ ६ पर)

वर्ष

**भा**रत को महान से और महान बनाने का स्वप्न देखने वासे और उसकी जब-यात्रा का महाकाव्य सिखने वाले नहाभारतकार नहीं म्यास ने अब से सगझब 5,000 वर्ष पूर्व सार्वजनिक रूप से बोवला की

क्रव्यं बाहुविरीस्थेव न च कांग्रदशोति मे । श्रमदिषीय कामधा सधर्म किं न सेव्यते ।।

"बरेलोगो । में भुजा उठाकर यह उच्च स्वर से कह खा है, प न्यु कोई मेरी बात सुनता नहीं। मनुष्य जीवन के जो बार पुरुषार्थ हैं-सर्म धर्व, काम भीका-इनमे सांसारिक जीवन के लिए अत्यन्त धावश्यक ग्रयं जीर काम की सिद्धि भी धर्म के माध्यम से ही हो सकती है। जीव , धर्म का सेवन क्यो नहीं करते ?"

महर्षि व्यास का यह आकोश माज भी उतना ही सत्य है जितना चस समय रहा होगा। उन्ही महर्षि ब्यास ने धपने मस्तब्य को स्पष्ट करने के लिए धम की भी एक सर्वमान्य परिभाषा कर वी है। वह इस प्रकार

भूगता धर्मसर्वस्य श्रुत्वा चैवावधार्यः

भारमन प्रतिनुत्तानि परेषा न समाचरतु ।।

"धर्मकासारक्या है, यह भी जान लो और उसको सुनकर प्रपने मन में ब्हता से धारण कर सो। वह सार यह है--जानी जन्तरारमा के विदय बन्य व्यक्तियों के साथ आचरता नहीं करना चाहिए।' धर्म की वह ऐसी सार्वत्रिक परिभाषा है जिसके सही होने पर किसी को भी मापरित नहीं हो सकती। इस परिभाषा मेन कही साम्प्रदायिक अभिनिवेश है, न किसी कर्मशब्द को स्थान है धीर न ही किसी दाशनिक मान्यता का पोषरा है। इस कसौटी पर कसने पर हरेक मनुष्य अपनी अन्तराहमा की बावाज के बनुसार स्वय ही सर्वधीर शक्ष क निजय कर सकता है। इस सर्वे का निर्धारण करने में किसी प्रन्य या गुढ या पैशम्बर की भी जावश्यकता नहीं है। इस कसीटी के बाधार पर भनेपढ बीर बनार व्यक्ति भी विषत भौर भनुषित का विवेक कर सक्ता

यह समें समग्र जीवन का अग है भीर इसमे जीवन का कोई क्षेत्र प्रस्ता नहीं रह सकता । राजनीति की क्यो-कि जीवनका जगहे इनलिए वह सी । किसी देश और किसी का स में भी इस परिभाषा का घपलाप सभव नहीं जब तक मानव विद्यमान है तब तक उसके साथ यह कनोटी भी रहेगी :

स्वतंत्रता की सीमा इससे यह भी स्पष्ट है कि छमं अपुषूति-कन्य है, बुद्धि-जन्य नही। बहु माम्बता - प्रधान नही प्रत्युत धाचार-प्रधान भीर नैतिकता-प्रधान है। बबर सतार के किसी मानव को किसी बाचार पर बापति है तो वह अपनी अन्तरात्मा की कसौटी पर कस

### धर्म और राजनीति का संतलन -- क्षितीश वेदालकार ---

कर देख सेगा कि मैं अमूक व्यक्ति के साथ जैसा व्यवहार करेरहा है यदि वैसी परिस्थिति में में स्थव होता तो बबा में भी धपने साथ वैशा ही व्यव-हार किया जाना पसन्द करता? सगर मनुष्य के पास उचित भीर बनुचित के उल्लेख की यह कसौटी न होती तो मनुष्य समाज कभी का विश्व खलित हो पुका होता ।

इसी माचरता-प्रधान वर्ग की

व्याख्या योजदर्शन ने बम और नियम के रूप में की है। बहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचय धौर अपरिवृह ये यम हैं बौर शीच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय धौर ईश्वर-पशिधान ये नियम है। यम समाज की सुचाद व्यवस्था के लिए है और नियम व्यक्तिगत जीवन की नुचाद व्यवस्था करने के लिए है। सनौ तक व्यक्तिगत जीवन सबसी नियमी का प्रश्न है, उनका पालन करने में मनुष्य स्वतत्र है। क्योंकि धनका पालन न करने से उसकी केवज व्यक्तिगत हानि ही उठाना पडेगी। यदि कोई व्यक्ति जानबुक्तकर अपन जीवन को उल्ल नहीं करना चाहता वो उसके लिए उसे बाधित नहीं किया वासकताः परन्तुवहातक सामा-जिक नियमो का प्रक्त है-जिन्हे वो बदर्शन में यम कहा गया है उनमें किमी को स्वतंत्रता नहीं है। इसीलिए समाज में हिंसा करने वासा या असत्य आचरण करन वाला, या चोरी-ठवी अववा हाका हाल कर परद्रव्य का अपरहरा करने वाला व्यक्षिचारी तथा भौरी का मोषण करके पुत्री का ग्रपरिमित परिग्रह करने बाला व्यक्ति दण्डनीय है । यह दश्ड देना भी राज्य का काम है, व्यक्ति का नही। बगर कोई राज्य इस प्रकार के अपराधी के लिए दण्या की व्यवस्था नहीं करता तो वह राज्य नहीं है। तब केवल जराजकता ही सम्भव है। इसालए जब व्यक्ति की स्थतन्त्रता पर बल दियाजाता है तब उसका यही अब होता है कि जहाँ वह व्यक्तिगत हितको नियमी में स्वतन्त्र है वहाँ उसे सामाजिक हितकारी नियमो में परतन रहना पडेगा।

#### ब्यावहारिक राजनीति

यदि कभी ऐसी स्थिति भा जाए जब समाज और व्यक्ति के हिनों मे परस्पर टकराज हो, तब क्या किया आए ? उसके लिए भी गीति निर्माताशी ने बहुत सुन्दर व्यवस्था की है। यह इस प्रकार है --

त्यजेवक कुलस्यार्थे शामस्यार्थे कुल स्थजेतु ।

बाम जनपदस्यार्थे न्वारमार्थे पृथिवी

जब व्यक्ति बीर समाज के दिशी में सबव हो तो राज्य भीर समाज के

व्यवस्थावको का यह कर्तव्य है वि किसी कुल के हितों की रक्षा के लिए वे एक व्यक्ति के हित की छोब दें। जब किसी कुल भीर ग्राम के हितो वे खधमं हो तो ग्राम के हित के लिए कुल के हित को स्थान दें। जब किसी ग्राम और जनपद के हितों में परस्पर टक-राव हो तो जनपद के हित क लिए वास के हित को त्याग दें। पण्नेतु यदि मनुष्य की ग्रन्तरात्मा के साथ श्रष्ट हों तो सारी पृथ्वी को भी त्याग देना चित है। इसमे प्रथम तोन बातें व्यावहारिक राजनीति का अग है भीर अतिम बात उसी धर्मकी भी सके करती है जिसको महर्षि व्यास ने तथा सन्य धनेक शमकास्त्रो ने तरह-तरह से प्रतिपादित किया है। इसी से यह बात भी निकलती है कि-यन् भूतहितयस्यतः तत् सध्यमिति ने भक्तमः।

-अर्थात जिसमे निधक से प्रधिक प्राशियों का अधिक है अधिक जिल हो वही सस्य है, या वही धम है। यह परिभाषा हमको पश्चात दार्श-निकी के उस मन्तव्य तक से जाती है जिसम उन्होने बाचार शास्त्र (एषिक्स) की समाप्ति 'ग्रेन्स्टके जर आफ दि बेटेस्ट नम्बर' पर जाकर की है। इसी बात को महात्मा बुद्ध बहुत पहले अपने उपदेश सुभिक्तों को देते हुए कह चुके हे-- 'चरम शिक्खावे चारिक बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, लोका-नुकम्याय - मिछ्जो, तुम जब उप-देश करने जाओं तो हमेगा सधिकतम लोगो के सुख और हित का ध्यान रको जिससे लोक-कल्यांग हो सके। महात्मा बुद्ध का यह उपदेश भारतीय सस्कृति का बढ़ी भाष्ट्रत उदशोध है जिसमे 'सबें भवन्तु सुखिन सबें सम्तु निरामया**़। तर्वे** भद्रांशि पश्यन्तु मा कश्चिषु अपभागभवेत् कावर्णन है। इनी से 'बसुधैय कुटुम्बकस् वाली भारतीय संस्कृति की विशेषता चरि-तार्थ होती है।

इस प्रकार धर्म राजनीति को सन्तुसित करता है और राजनीति धम को सन्तित करती है। दोनो एक दूसरे के लिए धावश्यक हैं। यदि धम का यह रूप स्वीकार हो तो वह किसी भी धवस्था मे तिरस्करस्माय नहीं बल्कि राजनिति के लिए भी बरगीय है, क्योंकि इसके बिना राज-नीति केवल निरक्त तानाशाही बन वसाबी ।

परन्तु यदि धर्म का वह सही रूप स्त्रीकार न हो ग्रीर पत्रियम की विवारधारा के अनुसार धर्म की रिली-जन, मजहब सप्रदाय या किसी पच का पर्यायनाची माना आये, तो उस धर्मको राजनीति से सर्ववादर रखना होगा । क्योंकि साप्रदायिक मान्यताधी पर बाबह करने वाले कभी दूसर मत वानो के प्रति चदार नहीं हो सकते। जन्मित जापह का अर्थ ही धरहिकाता

है। सप्रवासो की विशेषता यह है कि प्रत्येश्व सम्प्रताम धन्य सप्रदाया स धपने सप्रदाय के अष्टतर हाने का बावह करता है। किसी समय भैंग्वी-प्रक भी धर्मका अपग माना जाता रहाह । वासमाणियो ने को पचमकार की उपासना के नाम से मद्य माम मान मुद्रा भीर मैथन का खल्त्रमखल्ला प्रचार स्थि। या हाला कि तत्रिक आर दाशनिक रच्टि संय पारिभाषिक क - द है भीर इनका वही श्रयं नहीं है जो मोगो मे प्रचलित है। परन्तु व्यवहार में उनके वही सव चलत रहे जो सम की बाट ने केवल अधन का ही अगध।

साध्याधिक मान्यता को प्रमुक्ता परू दने वा यही दूरपिक्तान होगा। अपनी मात्रदायिक या-यताम्री के अनू-सार राजनीति को चलाने वास तथा सियासन और मजहब को परस्पर बाइन वाले इम्लाम मनानुवायी न केवल अपने से भिन्न मतावलियवा को काफिर कहत है उनका धर्म ग्रथ कर्णपरो के लिए स्ठोर दण्ड की व्यवस्था भी करता ह। दारल-हरक भीर बारुम इस्लाम की फिलासफी के सपासक किसी गैर-इस्लामिय राज्य के प्रति निष्ठा न रखना प्रयना धर्म सम-भते है। सैमटिक मजहबी के नाव-माध अन्य पद्यो और सप्रदायों में भी यही प्रवृति उमर रही है । यही 'फडमेट-लिजम' है। अव अवाली मा भी खमौनी के राष्ट्र पर चल रहे हैं।

निष्कव रूप में हम कह नकत है कि धर्मका भारतीय परस्परा वाला अर्थ स्वीकार करने पर धर्म राजनीति के लिए भी बाधलीय है परन्यु पश्चात्य परम्परा बाला धम राजनीति से सबबा दूर रहना चाहिए । सोवियत सघ. वियतनाम चीन इडानेशिया, मिध्न और तूर्वी ने यही किया है। वे किसी भी सामदासिक सर्मको अपना राज-नीति पर हाबी नही हाने देत । यदि भग्रत शरकार सही तौर से दश के 'सेक्यूलर' (धम-निरपेक्स नही पय-निरपक्ष) सर्विधान की रक्षा करना चाहती है तो उस बहुजन समाज के हिता की उपसा करके नेवल आगिक राजनैतिक लाभ प्राप्त करन के निए **श**ल्प-सद्यकीया विभिन्न सप्रदायी का महत्व देने से बाज बाना हागा। तक-विग्द बुद्धि-विग्द भीर निज्ञान-विरुद्ध साप्रदायिक मान्यताना का अधविश्वासाको और चम गा क बाम पर जनता को लूटन व ले मात्र सतीको निववण म रखना हागा। इसी का फलिताय यह भा है कि उस साप्रदायिक पारियों का राखकीतक मान्यता देना बन्द करना होगा। चुनादों में सप्रदाय और जानि क श्राधार पर उम्मीदवार खन करन पर रोक नवानी होगी। द्वार्मिक स्थाना पर राजनीतिक गति विधियो पर अक्श समाना होगा । स्योकि इसक बिन न शाज्य दिक सकना है न राष्ट्र । 🙉



रजिस्तार महोदयः उस्कृत वर्गेडी जिस्त्रजिद्ध्यासयः हरिद्धार १७०४०॥

मार्थ पुनर्वठन, शाक्षक

बाद पं. सं. RJ/AJ-169

(वेच पूष्ट 1 कों)
हात ही के बगो से बदगाइम पर एक
विद्यान पटि तालने वे बाग से मान
वह तम्ब पूर्वदाता स्मष्ट हो जाएगा 1
वगी से पूर्व दिए तए बिन्होंने वने
कराने में मुख्य पूर्विका सवा की,
पुरित्म नेताओं के बारण्यों भी एक
सानगी तो वैकिए ---

 मुस्लिय किसी कोर्ट के पासम्य गही है, वे किसी कोर्ट मे सफाई देने नहीं जार्सेने लेकिन कुरान या परसनस सों के विशास कोर्ट ने आने वालों का सफाया कर दिया सामिता.

---दमाम जोबेपुरमाह को जावन वह

2 बाबरी गरिनय तहरीक सीने पर मोली बाने का आव्दीधन है। हुमारी यह बीच बालिक बकात के विकट है। अपर मुस्तनामों के साव नाम न हुआ तो नजाब अपनी सीमार तोक देवा।

—आजमा बा, विधायक उन्न 3 अगर भुसलमान विल्ली वा सकता है तो प्रयोज्या भी वा सकता

है। — सैंट्यद जहाबुद्दीन

4 मैं बतन को मा नहीं
मानता। बाबरी मस्बिद मुस्तमानो को न दी नई तो बस्टी ही
मुस्तमान बाबरी मस्बिद हे नमाव

पछ गे।

व्यवस्था नहीं मानतः (राजीव वाबी से) वपनी दुनितः हटा तो। फिर देखा जे, इसानों का वक्ष्मानुत तुम्हारी किस्मत का गैसका कर देना। —माही इमाम

इंस बचर्य में गई भी उल्लेखणीय है कि कुरान की कुछ बाबदों के जमन्य में प्रस्तुत एक गाविका पर जुलाई 1986 में दिने गए निर्मंत के दिल्ली के मेट्रोगोलिटन मधिस्ट्रेट मी ने एवं गोहाट ने ब्लाइ है कि पनित्र प्रस्तक कुरान नजीद के तरि धादर प्रस्ति हुए जन जानती जा सुकत यध्ययन नह प्रकट करता है वे हानि-कारक हैं और पफरत की विश्वा देती हैं वचा मुख्यमानी तथा वेच बन्ध समुदायों के बीच वेदलान पैदा करती हैं।

उपर्युक्त निर्मय को परिवस्त रखते हुए यह वोचने पर साव्य होना प्रवता है कि गांधी वी ° हारा मुस्लिमों के जन्म सर्वानकियों के तित साक्ष्मक एक के बारे में वो कहा बना है कही उसकी मेरणा स्रोत यही सावतें तो नहीं हैं ?

कहाँ तो 'वसुधैव कट्टम्बकस् बी

भाषना से जोत-प्रांत नेद की खुकारों जीर कहीं कुरान की ने समाक्रीसत् सावतें?

वर्गों का पूसरां प्रमुख कारकु वरकार की तवाकियिए समें तिर-पेतता? है। इस करके में पुजीनपुर्ख वता यह है कि नोई की कामेकी प्रमानकों समें प्रमान के नहीं कर्ण की नहीं समक पासा या किर स्वपने निहित त्वानों के दमीचूत हो समक्षेत्र के उपरांत भी उसे वहीं तरह के किसा। सीर सारचक्कक कर्म के मानुक्तित प्रमान के तहीं प्रमान कर्म काम्युक्तित प्रमान के तहीं हो सम्बन्ध राजीन वाडी दमें की जब कोमकर क्रम क्यार पर हती साती है। सान क्यां कर क्रम क्यार पर हती साती है। सोन क्यां क्यां

हुन्दे बाता । सर्वीच्य त्यायास्य के निषय को जनवेबा कर जपने तुम्ब स्वायों के लिए 'मुस्लिस विधेयक' सान बासा क्या ऐसा करने का साहस कर सकता है?

राण्ड सम ते उत्तर है। इस सरम को जिस विन मारतक्षे का मुत्रक्षमान स्वीकार कर तेना एक क्रका हुएक को बादन स्थान के तिकावति वेती सपनी मानगामों के तिकावति वे वेता, उन्हीं दिन ते साम्प्रवाधिक को दीने कक की बार्चें १ गरणु प्रका नह "" मुत्रक्षमान स्थानत " मुत्रक्षमान स्थानत

--साम्प्रदाविक वर्गे --

### दो वर्ष में ४३६ हसास

विश्व के ननीं (1985-06) में वेस के तात राज्यों में हुए 23 तात्रज्ञ-सुविक वमो में 456 से प्रतिक जोग ने पर । 21 815 तोचों की निर्माण हुई चीर 1231,52 ताल सम्बंध की सम्मणि की मुक्सान पहुंचा।

इन राज्यों में गुजरात, बाक्र प्रवेश सहरास्त्र कर्नाटक, दत्तर प्रवेश सहरास्त्र कर्नाटक, दत्तर प्रवेश सहप्तर है। विद्यार स्वीतिक क्षेत्र कर्नाटक, विद्यार है। विद्यार के महिनो के प्रवेश नाली इन हिंदा हो के कर प्रवेश सहप्ता है। विद्यार के विद्यार कर्मिक, विद्यार कर

क्किन क्का शिक्ष होंग है। विशेष मेर, 6335 विष्यक्षा हुए, 164 मेराक तथा 236 12 लाख कमने की हानि हुई। कर्नाटक के राजनगरम जनकौर व मैसूर, मान्यमदेश के किहीर, उपराधिक के नेरु, मृरिया (जिंवा पीनोबीत) व हकाहाजरू, महाराष्ट्र के गांतिक पश्चन, बगरा-की बीर मिहार के नवावा में वने हुए।

1985 में बनो का अभूख केन्द्र रहा बाध्न प्रदेश । राज्य के रगारेड्डी जिसे का तबूर सुस्तानसाही बीर हैदराबाद के बास-पास के क्षेत्र कुर्वे नी विरस्त में बाए।—पाहुक्ववित के

### जातिबाद किरोबी चौ कररासिह (तेव पृष्ठ 3 का)

वातिसवक नामीं का निवेध---चौषरी साइव का बन्तर्जातीय विवाह का उपबुक्त सुकाब स्वीकार करना यदि कठिन या तो कम से कम इस प्रकार का क नृती या सर्वेद्यानिक प्रावधान दी किया ही जा सकता षा कि कोई शरकारी ब्रीसकारी धपने नाम के घाने अपनी जाति हा चरुलेखान करें। जब हुभ रामसिंह रैगर अधिस्टूट या वयाराम बाड कलैक्टर अथवा जयदेव गुप्ता पुरिसस धधीक्षक जैस नाम पदत व सुनते हैं तो जातिबाद को प्रोरसाहन विसता है चाह अ ति सूचक नाम के अधिकारी स्वय नितने ही निष्पक्ष हो उनकी जाति से समधित व्यक्तियों के मन मेयह आरक्षा भीर ग्रपेका उत्पन्म होना न्याभाषिक है कि यह ग्रश्चि मारा उनका या लग । दसरी तरक ध्यम्य जानिक जोगो में उनके प्रति उत्पन्त होना स्वाभाविक है कि भिन्न वादि के होने के कारण उनसे त्याय की अपेक्षा नहीं कर सकते ! मैंने स्वय चरए।सिंह की को अब वे प्रधान नभी बने, तब नेहरू जी की विवे ववे उनके सुभाव का स्मरण विकात हुने याप्रह किया या कि यदि अपने काय-काल में वे हिन्दुओं की जाति प्रशा को सर्वेषा गैर कान् ने घोषित नहीं कर सकते तो कम से कम सरकारी क्षेत्री में आति सूचक नामो के उप-योग का कानून द्वारा निषश अवश्य कर दें यह उनके प्रधानमधी कान की बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। मेरी वायना से सहमति सूचक उनके कार्यालय का पत्रोत्तर भी मुक्त प्राप्त हुवा किन्तु दुर्भाग्य से उनके प्रधान-मेजित्य काल की श्रह्माक्षीय तथा विवास्त्र तता के कारण वे यह माय नहीं कर सकः।

वरतुन मैंन स्व श्रीमती इंदिरा एतिहासिक कल्प गांधी नो भी उस प्रकार का सुभाव समाप्त हा आहे।

देकर निवेदन किया वा कि वे केन्स्रीय राज्य के मित्रियो तथा समस्त सरकारी कर्मचारियो को यह बावेश दें कि ने अपने सरकारी पढ़ी के साथ अपने जाति सुचक नावो का प्रयोग न करें। यह बात निविवाद है कि जब तक हिन्दू सभाव धन्मवत जाति प्रवाके धशिकापी से सर्वपानुस्त नहीं हो बाता तब तक हमारा देश एक राष्ट्र तो दूर शाम हिन्दू समाम का भी उसका एक वक्तिकाली राष्ट्रीय प्राधार नहीं नव सक्ता। हुमारे प्राय सभी श्रामिक व सामा-जिक सुधार भी जातपात के इस नशक की खान में विसीत होकर तक होते का रहे हैं। असएक स्व भी वरक्षित् के प्रति सबसे बढ़ी श्रद्धा-वित मेरी सम्मति मे यही हो सकती है कि हम उनकी स्मृति वे एक ऐसा देश व्यापी जातपात उन्मूलक बास्दी-लन प्रारम करें कि जिसके परिशास **४१रूप हम।रे देश व समाज का ग्रह** एतिहासिक कलक सदा के लिए

### बी. एक. में सीधा प्रवेश

राजस्थान विश्वविद्यायन से मान्यता प्राप्त जियालाल विश्वक जियालाल विश्वक जियालाल विश्वक स्थानमा स्थानीय निवास के साधार पर विचा मी भी एक टेस्ट के प्रवेश से लिए सावेदन नव 11 जुन 87 से स्थानक कियाला होने सावेदन नव 15 जुन 87 से स्थानक कियाला मार्थित मार्थेक मार्थेक ।

—शाचार्यं
 विवासस विकार प्रश्वित स्थान,
 श्वित स्थान

### हमे खेव है

स्वानामाथ के कारता क्षम पूर्व घोषित कुछ सेवाँ को इंत शक ने स्थान नहीं दे पाए हैं। आशा है कि उक्त लेख बानामी सक ने वा सकेंदे।

--सपादव

स्थरवाधिकार भाग समाज भ्रजमेर के लिए व प्रकाशक एव सपादक रासासिह हेतु रतनलाल गण द्वारा श्री भावें प्रिन्टर्स, बाबू मोहरूना कैसरगज भ्रजमेर मे सुदित एव स्राग समाज भवन अजसेर से प्रकाशित ।

### वेदो<sup>5</sup>खिलोधमं मूलम

बेद ही समस्त धम का मूल है। सत्य को ग्रहरा करने भीर भम य के क्लोडने मे सबना उच्चन रहना चाहिए ----महर्ष दनान द

वयान वास्त्र 162

सप्टि सम्बन 1972949087

। क्रो३मा

# आर्थ पुन्यहिन

आर्यं समाज, अजमेर का हिन्दी पाक्षिक पत्र "प्राय हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म। को इन हमारा वेद है, सत्य हमारा कम ॥" हमारा उददेश्य

हमारा उदबस्य समाज की बतमान एव मविष्य में पँदा होने वाली समस्याधी को दृष्टिगत रखते हुए द्यायसमाज का पुनर्गठन करना है।

सकल जगत को स्नाय बनाए

भ्राषाढ भुक्ल 4 सवन 2044 वार्षिक मू 15 एक प्रति 60 पसे

### व्यक 9 प म 43338 84 II

बध 3 मगनवार 30 जून 1987

म्रभय भित्रादभयम अभित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात । अभय नक्तमभय दिवा न सर्वा ग्रागा सम सित्र भवन्तु ।।

### क्या संस्कृत मृत भाषा हैं ? - क्षितीय वेदालंकार

भी सिन री विक्रान प्रिय लग्कार देशाको 2 । बी सनी से लागे के लिए प्रैयल प्रकार दक को तैयार करना थाइसी है उसका क्षाइयर गईं िक्षानी कि को बगाय गया है। सिक्षाठ करने हे पुत्र बगत क्षेण है कि जिस य ग की जिला सो जायनी हमारी आपनी पोडी उसी दन को तैयार हानी य गुप्तान नामि निर्माण को क्षिय स क्ष्यकान हो तो उनका चरि राग्य भाषी भीडी के बार का या से रेस को और भाषना यक्ष सा । नालि निर्माल और वीर्त के स्वयस्तान होंगे तो इसने सेच उनका जायन क्षा गरी प्रमुख कारसार एउं है कि स्थय कर मालि निर्माण सा सबसे मालन ये जा विकार हुक का है। बची के अनुसार व च वा पाडी को भी डा

स स्कृत कावा घोर साहित्य के विभिन्न विषयों पर परम्परास्त शिलार र स्थान नेने की प्रमुद्धि काग्रन में लारे दृष्टिष्ट स्व िक्ष सुद्धी है नेनी जब मात्र के का न क करण रूप रिकार सम्ब धी रादरीन तैयार की सी तोन जनने इसकी कुछ पर्याची भीर न ही व व क किमी शिला धायोग ने दूस पर त्यान दिया हुल कि एक के बाद एक शिलार धायोग निर तर बँठने रहे और वि । कि जियम के स्वाम कि शिलार धायोग निर तर बँठने रहे और वि । कि जियम के स्वाम कि शिलार धायोग सामित्र कर में रहि कि धा को हारा चलाई कि विमा धायोगों के धामून पुन परितत का ज वश्यन है पर तु समस्य शिला था। यो की सह रिपोट केवल पर खनेश कमर रह गई। सरकार भी कुछ इस द स से बात कहती रही और शास प्रमास निर्माण परितत न स्वय उसे गही दिका बौर का करना है।

सिना धावाबा का रिपोर बाना गई बीर व स्कृत की प्रस्थरावत विकास सहया उर हर जुन नानी वह सा कात की कुछ वस्त्रवाला स्वीर रूप सुवार प्रदास कर का सुवार वस्त्रवाला स्वीर रूप सुवार स्वार कर की कुछ वस्त्रवाला स्वीर रूप सुवार सुवार का स्वार हा पय ने दन सरक की क बीवन का स्वीर में भूत सबा अब का इस का स्वार की का सब स्वार हो। या तो सुवार मा सुवार मा सुवार का सुवार का सुवार मा सुवार म

भास है। बाज इस्तिमित्री का साकराया का जान करिय सामाज के प्रकार के स्वाहित्य की एक्ट प्रकार के प्रकार के प्रकार के स्वाहित की है। पूत पाया के साम्य सामाज के प्रकार के बात कराय के प्रकार के बात कराय के प्रकार के स्वाहित का सामाज के प्रकार के सामाज के प्रकार के सामाज के सामा

नई मिलानाति में संस्कृत की सबधा अवहलना कर दी गई है। का भी किसी भो स्तर पर वह स अध्यक विषय नहीं रहा। यद्यपि किसा सम्बद्धीति। गाके सन्तियों क भाषणा में संस्कृत के प्रतिक्षादर सार पूजा के माय का कसी नहां हाती पर तु यह मादर भीर पूजा भाव सहत कुछ वैशाहा है जैसा मदिरों में देव मूर्तियों के लिए होता है। इसारी काति ने बहुन आसान तरीका निकाल सिया है कि जब किया सह पृष्ठप के के पद चित्रों पर चलन की अपने मेन सामध्य हो। न इच्छा तो उस महापूरुण का परम माका सबतार बनाकर मन्दि मे नेव मृति के रूप स प्रतिब्दित कर ला। वससे समुद्ध की ग्राव्यकरप्रियना भीर प्रवक्त निप्रयता के स्त्रभाव की संत्रिट हो। जयगी भीर समाज के अपल्पक्तिकान बय क लीयों काम खपती चिक्त चाबनाकी चरिनाध करने का एक अहाना मिल जाएगा कुछ वैसाही पूत्रामान संस्कृत कंप्रतिभी दिखायाजा रहा है अविति हे देवी तुम हमारी मानसिक शव ना का बाध्य परा और न बद्ध स्वीकार के ती रहा पर तुहुमारे व निक शबन भीर ०४ ० हार म काई दक्कल न दा न्योकि बहाता धुमने अप्रजीदेव काप्रति 6त कर रखा है।

सास संप्रसीम में निर्काणना प्रस्क का सरक्षी क्या ने प्रायोज्या में स्वातनी क सिवस मिल तकसी है पर तुस स्कृत के का स्वी धीर धायस व यस दिवास को नहीं। क्यांकित प्रेचेक कदस पर स्वाप्त को प्रकृत है कुत सिव्ह सिंहें अप स्वी नहीं आपती में सी साम नो सानना का दान कहा है बंदि किसी दिन रोगों किया साम कि साम त्री को जो दास सम्मान के स्वीचक ताम सिननों ने ना हो होगांग सह यस ना गुरु मनाज जा सन्य का स्व अप जा का ने पहले सहस्त में स्वाप्त को ना साम के प्रस्त को ना साम के साम की साम क

सह मनावित्ति हो इस प्रश्न प्रश्नान मृत को सबस वय जेन व

बाद दलर जन्मा सरकार ने सपन राज्य संविधाय सूत्र के अर्थ हैं हमी बुदु बीर मुम्बूबी देश तीन साथ साथ ता एक न के प्रधान तेण्य दिया है। विद्वालों की दरूर ने बदु या पताय केव पिय क अन्य भावा दा समिनान कर रेहे व्यक्ति बहु विचित्त के स्थान हुई युद्ध किनो साथा के घर्गा नामाति नास गार्वे हम की मुक्त इत हुंग बहु नगत ने कि स्वयं गिन्य कुछ वुन सहर सुन्त (विष्णुष्ट दीपर



### 'अपूज्या यत्र पूज्यन्ते...'

मनस्मृति से एक क्लोक घटा है कि-

अप्रयासच्चर्यत प्रामनातु व्यक्तिम । चीचितच वर्णनी, दुवित्य सरस्। चया।

सर्वांत जिस देश नमाज सौर परिवर में जावर सम्भाग धौर पूजा से बचोर भारति होता होता हम्मान हिन्स बाना है चौर को व रनव नेमान सम्भान धौर पूजा के पान होते हैं अवसी सबहलना सौर तिरस्कार किमा बाना है हो ए छी विपरोत स्थिति से बहा तीन चीने सर्वं परि-भास सहती है -(!) दुनिन्स ... सोर जकान (शुक्रमरी) भीत सोर सर्व का शातावरण !

दन मन परिप्शितयों का कारण है कि मानव सून्यों का जास ।
सन्याई हमानदारी नै तिकता है में, साईहण्टुन, मानवना, स्नात्तकका
करूपा स्था, पराधकार, तेस प्रक्रि साहि मानवीय मून्यों का पतन हो गया
है। हम गूमा की पूना के क्यान पर सुराह्यों के साल से सानव फलाना
पत्या वा रहा है। वैश्वितक पतन के साथ नामाजिक एव राष्ट्रीय स-स्वापन को हो रहा है। जाई मतीवाबाद न्यार्थ वाद मजीवाबाद साथा
वाद शान्यीयबाद, वानिशय नाम्यास्कतापुरकायस्थाय साहि विचक्यभी
ह ही मानवाय मून्यों के हाम के फलहरूक्य उपन ही गहे है।

सन जावस्थनना इन बात काहै कि हम सामे प्राथमित, स माजिक एज मीनिय मन्त्राकी पूज प्रनिरहाधना कर । बामान सम्मान और अन्वर (पूजा) के पात हैं। उस्ही वो लग्मान वरें। बाबुरे हैं उन्हें हुन कृत जीर ब्यादयो पर नड चटकर । तभी ह्या सास वहनाने के अस्त्राहितों ।

रासा सिह

### निक चन

महाराष्ट्र कार्यं प्र तिर्मात नवा प्रकान-की गोलतगाय यह हा प्रमो-की हरिश्व-प्र तुक्की कार्य व्यक्त-की गोलतगाय तिश्यक्तर पुस्तकासमाध्यक्त-का विवय कुगार जिल्ले

2

### आर्य समाज सान्ताक्रुज

प्रशान-जी घेषारताथ की सार्व उपप्रशान-की वेषपत्न सार्व सह म भी भी विभन-वरूप सूद कोव त्यक्ष भी सस्त्रीलास सदाव

### समाज की सम्पत्सि यर जनायिकृत काओं की सुबता हैं

वेश की मनेक समायों को सम्पत्तियों कर सनावों व संसाधाविक सत्यों ने मनाधिकत कर से स्वयं किए हुन हैं।

सार्य शितिचित्र स्था राज क उच्यान न सार्य समाय स्थानेर के प्रधान साथार्य उत्ताचित्र में सार्य उत्ताचना स्थान हराने हेतु अपने तर पर प्रमास करने के स्थान है धरुपन है धरुपन हमारा सची धार्य प्रधा से स्थान में ने निवेशन है कि ऐंगी निया सार्य समाय की तस्पत्ति जिस पर किसी बतामांकर च्यक्ति सस्था विवेश ने जनावित्रत कर स्थान साम्रकार बना रखा हो, की सुचना साथात की को सबने हा कुट हरें।

—सम्यादक

### संस्कृत भाषा....

(जेव पृष्ठ एक का)

का विषय से लिया करत के पर-तु इस प्रकार के तिवासा सूत्र से उस स स्तृत का कही स्थान मही एहेथा। वास्तविकता यह है कि अकेशी स स्कृत भाषा के पढ़ने से भारतकर्ष की समस्त भाषाओं का मर्श पढ़ता जा तकता है। चारतीय का ही क्यो, हम ती कहेंगे कि समस्य आरापीत (इ डो सूर वियन) काचा वरिकार स स्कृत समस्त आवाविकान का बाबार बनी हुई है। स नार का सायद ही कोई विश्वविद्य सब होता, बहा त स्क्र-के शिक्षण की व्यवस्था न हो । कभी कभी ऐसा मामास होता है कि जिल तरह योग याचा बन कर पश्चिम में अधिक पाँच फीलाता का रहा है अही स स्कृत के सम्बन्ध में भी ऐसान हो । संस्कृत मृत भाषा नहीं। मृख वे सोग हैं ज' इसे अपनी' तो कहते हैं पर इसे अपनावे नहीं। छ स्कृत केशस मारत नी वती नहीं है। यह समस्य मानव जति की बिर-निश्चिते है। स सार को सब ने प्राचीन बाचास स्कृत में ही वह अवस्था काव नुग्लिय है जा मानव जाति के पूर्व ज मनाविधी और ऋषि मुनिया ने हजारा सालो तक प्रपंते चिन्तव-मनन और स्वाध्याय के परिशाम स्वक्र स चित । क्या का। भाजभासारे भारत की राष्ट्रीय एकता को वर्षी सरमध्य दुस भाषा में हैं दें शो किसी भीर भाषा में नहीं। कश्मीर ने कथ्याकृमारो तस भारत के प्रत्येक प्रवेश में धार भी संस्कृतका का सब का समाव नहीं। किली बारतीय माणा का कोई प्रशिष्टित ना हिसक र एसा नहीं होगा को अपनी भाषा के सामा साम संस्कृत का भी ज्ञातान 🚮 । यदि साने पुत्र जो का उस महान विरासन को हम मुर्गकान स्थन। चाहते हैं तो कई शिक्ष नीति में इसक लिए एक राष्ट्रीय नीति निर्धारित करना होना और स स्कृत के पठन पाठन को सही दिया। देनी होनी । शन्तवस असात के लाक वर्तामान को जीवने वाली उन महान कही को तोषक हुन अपने प्रविक्त पर हो कुठाराधात करेंगे

### ो मर्ताक से आये |

30 44. 87

**व्य**तंत्रांन सनव व यह शतुम्रव चान समाच को बनता का प्रहरोत महीं निस रहा है बचना वह शुपूति में हास हका है। विक्रते 30 वर्षों से छाव समाय के प्रति जन साथ रण में बारवा की कभी बाती वा श्री है। इस बात का प्रमुखाय समाध के सस्त में में उपस्थिति को देखने से ही हो बाता है। बास्ताने जो म्यूनता द्वा पत्ती है उसके कारली के बन्धन्छ थे हुएँ शरतरशासाओं के धक्षोबरन बानकारी श्राप्त 🚮 है।

50 प्रतिकृत के बापसी विकास वैजनस्वतः को घरवा में कमी का कारसा सामा है। बस्तुस इस प्रकार बैशनस्थला, पदकोशुपता श्रादि प्राव समाओं वें एप्टिनोबर हो रही है वह प्रश्वम बनुषय वस्य है । 40 प्रशिक्षत की यह माम्बदा है कि बार्य नमाय ने स्वाध्याय नवा काव्यारियक मासमा की और विशेष ब्यान नहीं दिवा है। 33 प्रतिभव के धनुसार बावें समाब के सदस्यों ने शासनीतिक स यदनों की श्राधिक महत्त्व प्रदान किना है। 35 प्रतिबत के अनुसार साथ समाय के सक्षित्रेशको से जनता की शाकुष्ट करने हेत् रोषक श्रीयाम कीव्यवस्थानहीं है। इसी प्रकार 32 प्रतिकत ने वास्या वें क्यो आरो का यह भी कारख बशाया है कि शमाम व निक-नीयन की समस्वाधी के प्रति उदासीन है। 3 प्रतिवद ने बाली कोई स्पष्ट राव मधीं दी हैं।

श्रत इस सम्बन्ध में तबकारनक दिन्द में बह पहाचा सकता है कि बर्शन,न सन्य में दार्थ समाय के प्रक्रिकोरिको एव इस्तरदावी व्यक्तिकी को तथाब में स्वाध्याव, स ब्वारियक **छ**्जान के शासन की स्वयस्था प्रापती विवाद, वीवमस्त्रता का निराकरस् राखन विका संबदशों के प्रकार वे प्रयाण को बचाना सम्ब की दैनिक शीवन की समस्याओं के प्रति वायसक हो कर दशका नेतृत्व का के समाधा-कार्थं समसामधिक प्रयत्न करना बादि शामीब्द है ऐसा करने ने ही सनाथ के प्रति समहा की बास्का में वृद्धि ही **हके**यी, साथ ही बृध्द जीवियो की साकुन्द करने के सिए समृचित प्रकल एव व्यवस्था करना सावश्यम है। प्रवाह व्यक्तियों को समाम के प्रति धाकुष्ट करनेशंबन्धी

विभिन्न सुभाव स्परिवर्णित तक्वी एव काराही 🖢 बहु स्कृष्ट 🖁 कि बार्य श्रवाम वे मध्यः शुक्रिक्रीवियां की सनी -मानी

### आर्य समाज की कार्यविधि; िया या का के विकास समिति पूर्व के संगठन, पुनर्गठन : एक समाज

### ज्ञास्त्रीय अध्ययन

#### डा. कुच्लपाससिह

न्यनता होता कारती तैयह एक श्रावस्थारतीय तथ्य इस सस्यान से त्रकट हुवा है। यस समाज में बुद्धि बोवियों को प्राकृष्ट करने सम्बन्धी तमायों के विषय ने उत्तरवाशाओं से को नवीनत्व जावकारी ब्राप्त हुई है।

बह्न इस प्रकार है -

बो तिहाई (66) प्रतिका ने कार्य समाज में चरित्रधान यूचको की प्रीरखाद्वित करने का सुम्हाव दिया है। वर्षाक 👫 प्रतिसद ने बुद्धिशीनी, रवामी, सम्रत्मा, स्वनी-संन्यासियों तका बानप्रस्थियों के द्वारा जार्य समाज का नेतृस्य करने के पक्ष में राव अधिम्यक्त की हैं। 59 प्रतिकत ने बुद्धिवीवियो का यथायीन्य सम्मान किये जाने का सुफाव दिया है।

55 प्रतिक्षम ने सदाचारी उप-वेक्को तका संबद्धी के निर्माण व श्रीरसाहन दिये बाने का सुमान दिशा विवा है। इसी प्रकार से समाज के सन्ताहिक सधिवेदनी समाजी साथि को बीव्यक स्तरका बनाना तथा सामानिक राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जायक हाने के अनेक सुप्त व दिवे गये हैं।

सत निरुद्धवं रूप में तहारे को दटियत रकते हुए यह कह सकते हैं कि याव समाज में विदानी, बृद्धि-बीबियो, को ध कुक्ट करने से कार्य समाय का नेतृत्व, बुद्धियोगी, सदा-कारी, संगमी, त्यामी, बस्त्राविदीव रहित राय-होय ईस्कोंबि विरहित, विद्वाधिमान, बाहम्बर अदि से रश्चित सरवोद देण्टा, स्वायप्रिय क्षोक्षादि दोषो से रहित धर्मारमा सम्बासियी तवा बानप्रस्थियों की सौंपने से समा-बोरक्ष मेंबक्यम्बाबी है। साब ही चरिश्रवान युवकों का समाज से प्रवक्त न करना प्रमितु उन्हें समाज वे धाने के लिए में रित करना, बुद्धिश्रीविको का सम्मान, कवनी-करणी के प्रन्तरसे रहित उपरेक्षक क्षत्रां को प्रोत्सी-इन तथा सस्य य को बौद्रिक स्तर का मनाने के विश्वय में ख्येष्ट होते हुए त्रायुक्त कवित सुभ्राको को किया कप (प्रयागारमक) में अपनाने से और . समाज के शिव व्यक्तियों का साकृष्ट करने के सभावोग्मति की का सकती

मार्ग समाज में प्रारम्भ से श्री

यात में प्रारम्भिककाशों जैसा उत्साह विद्यमान नहीं है इसी जल्लाह को पुन स्वापित करने के लिये बार्यसमाज को पूर्व स्वाधित करने के लिये बाव समाज को पूर्व बित किये जाने की यावश्यकता विद्वारों द्वारा प्रमुख fed at tei fi

बहुएक प्रथक विषय है कि वर्गें-

बार्य समाज के पुनर्गठन विषयक रव्टि कोरा में सर कि कथा सर्व विदिश ही है।

बृद्धिवीवियो विद्वार्ती कर्म ठ कार्य -करतीयों का बाहरव रहने के कारण स्वत वता समाम राष्ट्रीय कागृति जनवानस्। विका बेदोस्मान सुशासूत बन्त्रतन महिला करवाल, वर्णाञ्चन व्यवस्था की शास्त्रीय मर्यादा पर याद्यारित समाम की पुन स्थापना सामाजिक सुधार वरिश निर्वाण इत्यादि सनेक को को मे जो बोबदान रहा है, उसके सम्बन्ध वे हमेउलान-दाताओं से ओतध्य प्राप्त हुर हैं के

निम्म प्रकार हैं।

बहु उल्लेखनीय सच्य है विद्याधिकान उत्तरदाताची ने मार्व समाम के वि-शिल्म क्षेत्री में किये गये योगदान की पुष्टिकी है। उनकी धाराणाओं के अरक्ष र पर यह अवस्त हुआ। कि 75 प्रतिशत ने स्वाधीयता स स्था प्रान्दी-लन में इसका घत्यविक योगदानवान। है। महिला कल्याण काय कम मे यो-बदान के सम्बन्ध मे 74 प्रतिकत साधिक सनने हैं। अवकि 18 प्रति कुछ कम का महत्वपूर्ण योजनामयानते है। विकार प्रसन्द मे 75 प्रतिकत के बनुसार बस्वविक योवदान रहा है। सामाजिक सुबार व से महत्वपुर्श कार्यो मे भी बार्य स्वाचकी मुनिका कै स ब स में दो तिहाई उत्तरदाता इसके त्रसास्य रहे हैं।

इसी प्रकार वेदोरबान 71 % चरित्र निर्माण 61 प्रतिकतः राष्ट्रीय मध्यति एव जम जागरण क्षेत्र ¥ 54 प्रति ने इनकी तस्ते-बनीय भूमिका को स्वीकार किया है। बत स्वयः है कि यान की पार्य समाज की श्रुवि एक शब्द्रीय हित्रचि-तक समाज सुधारक समाव सेवीस रवा के रूप में तथा इसके विभिन्न क्षेत्रों मे लिये वय कार्यों के सब च मे एकराय से सब गहत्वपूर्ता भूमिका स्वीकार करते हैं।

इससे स व जिल महत्वपूर्ण सुम्हाको को भी ज्ञान में रखना वाश्ववक है। हमी रिष्ट से उत्तरासाओं न पुनगंठन स ब धी को सुभाव दिये हैं। य निस्न यो तिहाई से अधिक 71 श्रीत ने बार्य समाज के केन्द्रीकरण करन का सुभाव विवाहें 141 प्रति ने **धार्व** समाजके उपनिवमानि वैद्यानिक बुनवं ठन की घावश्यताकी श्रीर हवान भाइक्ट किया है। बत सान समय से को नेतृस्ववर्ग हैं उसके प्री क्षत्र स्था प्रकार कते हुए नेतृत्व परिवर्तन के पकाने 22 प्रतिश्रम ने अपनी राध वाभिव्यक्त को है 56 प्रति ने बाय समाज में ज्यात विषटनकारी करगो एक सल्बों पर नियम्ब्रण करने के पक्ष में राग दी है : (क्मल)

कि महर्षि दयानस्य द्वारा सार्वसमान की स्थापना नवंत्रथम व वई में कीनई भी । उस समय उन्होंने इस सवाज के 💵 नियमों की श्वयस्था की बी। बाद मे स्वय स्थानी 10 निवनी रूप में बन्ति स्वीकृति प्रवान की इस के साथ ही बार्य समाज के उपनिवय स विधान साथि की क्य रेखा निर्मा-रित की गई थीं। वर्तमान समय ने धार्यं समाज में [विश्विलता का शतुष्य किया वा रहा है। इसके सनेश कारसाही सकते हैं किंतु कुछ विचा-एको का यह भी गतम्य है या अनुभव कि बार्व समाज को पूनवंदित किया वाना चाहिए। विससे इसमे उत्पन्न हुई विविक्ताको दूर किया वा सके। इस सब स में हमने जलरदाराओं के इष्टिकोसा बानने केनिये एक प्रश्तावसी प्रेषितकी । विसके छाधार पर यह एक सहस्वपूर्ण तथा उक्तरकरमासने प्राया है कि 90 प्रतिशत उत्तरदान्त्री न मार्थं समाच के पूलगँठन पर बल वस स्वा है। इसके सावकेवस र प्र'न ने घवनी इनव व समे शब्द राव नहीं बी हैं अबकि उप्रति ने ही ग्राव समा के पूनगंठन की बावश्यकना को स्वा-ख कार नहीं किया है। यश्रीप कश्चिकात उत्तरदाताचीने जार्यसमाज के पक्ष को पुष्ट किया है। तबावि बावे समाब के उपनियमों से सक्षाधन परिवर्तन के विषय में स्नानामी सन्त शान एव विचार विशव की उपेक्षा है साथ ही यह भी विचारणीय हैरे द्वार्यं समाज या पृथ्ने ठम विसंप्रकार से किया वाना च हिए तथाउसना स्वश्य कीसा हागा ? उसनी पद्धति कैसी हासी इत्यादि अने व पक्षी के सबस मे ग भार विवेचन की सामग्रक्ता है।

द्यावश्यक सुभ्राव एवं निष्कर्ष उपरिवर्णित विवाण से सुस्पष्ट ही हैं कि मधिकांश व्यक्ति यह यनू-**सब** करते हैं कि साव समाख का प नवं ठन किया थात' वपश्चित है तथ पि इस इस पुनर्गंठन की प्रशिया श्वाहै।

बकार है।



# आर्य समाज और हिन्दू जन-समाज

### डा. स्वामी सत्यप्रकाश

अभि वं तमाय का प्राप्तृतांव हिन्दू समाय के अत्मावंत हुआ। सहित समायत हिन्दू परिवार के बीच जन्मे धीर पने । हिन्दू समाय के पुच बीच बीमो सुनक समाय था। पारतवर्ष के पुन निवारी सार्व थे। यह समय वा जब इस भूमि पर मीडे से ही आनय आश्री थे। जार मादक में हिसासय परेज के जाय- पर कही, इस मानव के साय में देववाधी अधिकृत हुई-न्द्रवाओ की यह जन्म कभी जो बागों की प्रारम्भिक भागा वनी, और मानव वाति के नेतृत्व के लिए वेद की न्यूवाओं के मानवस से एक आधार सहिता प्राप्त हिंदी की नाव तक मनुष्यवात्र की धावार हिंदी है। इस वाचार सहिता प्राप्त हिंदी की नाव तक मनुष्यवात्र की धावार हिंदी है। इस वाचार सहिता प्राप्त हैं की नाव तक मनुष्यवात्र की धावार हिंदी है। इस वाचार सहिता प्राप्त हैं की नाव तक मनुष्यवात्र की धावार हिंदी की नाव नाव साव स्वाप्त सहिता प्राप्त हैं की नाव स्वाप्त मानवित्त स्वाप्त स्वाप

- स यच्छाव्य स वदस्य स को मनासि वानताम।
  तुम सकेने नहीं हो। सःव साथ पत्नी साय-संव बोती साथ
  साथ विवादी।
- (2) दुरिताति परा सुव यद सत्र तत्र आ सुव? दुरित दुख दुर्गुण दुराचरण—सत्र दूर फॅको। वो की चत्र सत्याथ कारक हो, उस प्रदृश करा।
- (3) स्वस्ति पन्यामनुषरेम-इम सब कल्बारा के मार्ग पर वसें
- (4) सर्वाक्षासम सिन कबन्तु—समस्त विवाद मेर्गिम हो।
  (5) सूख्तीक की कड जूती कर्णो कड स्थाक स्वासम—दानी
- कानो से जन्छ। सुनो, शह बच के शब्द ही कानी मे पर्छ।
  (6) ईशावास्वमिद सब ब-बह समस्त अवत ईश्वर से ईश्वरी
- (6) ईवाबास्वमित सब'य—बहु समस्त जवत ईश्वर से ईश्वरीय सास्तित म यो से जोत मोत है।
- (7) कुर्वन एव इह कर्याणि जिल्लीविषेत वत समा। कार्यकरन हुए। की वर्षकोने की दल्का कर।

इस प्रकार को से बड़ी व खियो के वातावरण में मनुष्य में वापने समास का विकास किया। बारती को स्वयं बना चिया। मनुष्य में सिमकर तपस्या वो बीर प्रकृति का बरवान उठे उपमध्य हुआ। प्रमु से मनुष्य को बार्गृहिक या रामका दिया। इस स्वयिम सुन में किन सोनव सनुवाय का उपमय हुआ। उपकार तथा। इस स्वयिम सुन में किन सोनव सनुवाय का उपमय हुआ। उपकार तथा। यह समस्य सर्ती पर फील गए। मह समस्य सर्ती पर प्रकृत साम के प्रमु प्रमु से । व साम के प्रमु प्रमु प्रमु से । व साम के प्रमु प्रमु से । व साम के प्रमु प्रमु से । व साम के । व साम के प्रमु से । व साम के । व साम के प्रमु से । व साम के । व साम के प्रमु से व साम के । व साम के प्रमु से व साम के । व साम के । व साम के साम के प्रमु से व विवाद की विवाद की नहीं।

ग्रह कहानी इतारों वर्ष पुरानी है हो सकता है कि साखी वर्ष पुरानो हो 1 हिन्तु विक्षण पार पाण शहरण वर्षों के इतिहास में चालस्त, प्रसाद, ईच्या सैनास्य के खु-डा बातररण, ने ग्रास्तों को स्वयं से नरफ बना ग्रासा और इस परिश्चित के परिशास स्वकल कलतास्वाद सैनाम्बर साथ और नास्तिकतासाय उत्तरप्र हुए जिल्होंने साथ जाति को खिल्ल फिला करके सनेक कुरोतियों सीर कु मों का नाम ज बना शका।

सहावारत के १६ तुड क बन-१२ चारन के उत्तर पूर्वीय कीनो से बार कार इस देश पर इसने हुए। जूनामी माने, कुवाल माने, हुल काने। इनके से कुड विकेश भारत में यह नए बीर चारतीय बायों ने उन्हें बरना बना निय ने इस देश का या व हन गये। दे के के मुसलसानों ने साकमण का तो देशाने आवें (बो र सी कहै आते से) बानों चार्या के करू

प्राप्त की बसे। उन्होंने मुससमानी सर्व स्थीकार नहीं किया का से पारती भी का-तिपूर्वक मः एत में वस वस् । 900 ई के सममन से जी मुसलमानी काफिले इस वेश पर काक्रमस के इप में घावे, वे सपने शाव कुरान बीर हबरत मुहस्थय की रसूस के रूप में साथे। इन्होंने नये सर्थ कीर नवी सम ता को भारत पर सावना चाहा । इन्होंने इस देश के रहने बालो को काफिर बुतपरस्त और निन्ता सब्दो से सम्बोधित किया-'हिन्दू' शब्द का इन्होते घा-व्यूत्पसि की-काफिर, कोर, बुताम कीर बुत्परस्त । मूसलय न मारत में सबे नारे मैकर सामे थे। मारत सिला मिन्न 🛍 समा था मृतिपूजा शवतारव द बन्मना जाति पात बाद न इसे जील की वा कर शाला था। मुसलमान विजेता के रूप में शांते रहे, उन्होंने भारत पर राज्य भी किया, बीर यहा के लोगों को मुसलगान भी बना बाला : 900 ई से 1900 ई तक समझन एक विद्वाद भारतीन मुक्तनवान ही नहा । 10 0 बची से 19 कराइ के अनमन सुसक्तान बारत की बनदराना में व्यक्ति हुए। इनवे बोबी सी संबंदा घरत के बाहर से वाये हुए बुसल-मानो की बी- केव ठी भारतीय न्यू ही वे को मुस्सनान सन नए। कृष्य हिन्दुको को मुस्सियव सन वै बसाश मुस्समान बनावा वया, कृष्य प्रकोधनो से मुसलसान वने, भीर काफी सबया में ऐसे हिन्दू की मूसलगान बने को भारत ये हिन्दुको के प्रस्थाचार और कहित बन्दबहुतर से तान के । ब ताल भसम उड़ीसा के बीख हिन्तुओं के बस्पाचारों से दु की होकर पूरे के पूरे ही मुन्तिम बन गए। ये श्रीक हिन्दुसम वामे पृस्ति और कुस्तित भावताय के लिए बाध्य किए अरते थे।

स्थामी दशानन्द अन्त परिस्ताम पर पहुंचे बहु यह था---

(1) चरत में रहने वाले रिन्धुकी की रक्षा करना—

- (क) जुबसमानों के, (क) ईस इनों छे, (व) पश्चिमी सम्बक्षा के दुकों से :
- (2) दिश्युमो की यह रका तथी सम्मव है, जब हिन्दू सपने समाव के निस्त पाच कक्ष'कों से छुट जाय । ये कल क हैं—
  - (क) मृतिपृथा और प्रवतास्याद
  - (स) जन्मना वर्शत वातिबाद
  - (ग) जुल्लातक र का चन्छ्रध्यताक व
- (व) सस्ती मुक्ति विश्वाने वाले उनेवारा व हे, पूजाी महन्त मठा-बीच भावि से विभूतिः ।
- (६) बस्य यस्य स मीर कविया व से मुनक-आड, फलितकशित्रक, धुत प्रोतवाद, हस्तरेका घीर मध्यम, मस्तिर मीर तीचों वे सम्बद्ध सम्बद्धित्रका वादि। (कास)

भी त नेवा के कीने कोने ने साम्प्रवाधिक स्था के समाचार बा रहे हैं। सत्तर-2 प्रातों से सन्तर-2 स्नातवा सवर्षे रहें उचानों से सि-नोधी स्मानक सुनों ने सादन ने उनी

ू द जाब, नागालीं व व विपुरा की सपनी प्रमस्थाए हैं। कई राज्यों स सभा या लोगा सबसा विवाद चन

रहा है।

सह विश्वास करना कि इन
सब सोनो की मानुष्रीय एक हा ने सारतवर्ष है। एसा नहीं सत्या हैति इनके किसो की निवादकार का स-द भारतवर्ष प्रवस्त प्रकार साम सारतवर्ष प्रवस्त प्रवस्ता साम मानुस्कृति के कल्यास से है।

बह है साथके भारत की तस्वीया केंद्र सी वर्ष पुर्वः

हमारे देश के राष्ट्रीय मच की लवजन वही दशा स्वामी दयान-इ के समय में बी संबंधि उम्म स्व के पात्र सिन्द वे । द य सिक्ष किण्णु भीर राज के पूजारी जानिर तर संवय रत में । विधिन्त रधी के बनुवारी भ्रवट **प**डे धआरियो की जमात जैन, इस्नाम, इसाई धर्म के जन बाइको का पाख ब शास बदिश और खर्च जो के गुलाम, विवासिताको में क्ष्म हुए र वे रज-शाबे और नारा की नक मानच वासे तबाइबित 'पश्चित्र त्मा' विद्व न एव प कित । समाज में चारो फोर अ अ॰ विश्वास पास इसीर विश्वत का राज्याचाः कियो के सामने र ब्टाय इंडिंग्डो ग नहीं था।

### स्वामी बरानस्य का प्रयास

हुम उगर कहु चुके हैं कि देगकी विश्व कि स्वार्ध में सिवापन गित हैं भी उन्होंने उसे सिवापन में उन्होंने के सिवापन में सिवा

सन्ये विश्व का तलाग से निकला सह सन्यास ने शह के ति क निवा का वादार का उठाई मार पूछा था। रहा को नहुं पानव की सन्यास प्रोत्ताकी होने पानी को स्वत्य के निर्माण है होने के तिमाण के निवा का किया कि साम कि स्वत्य की निवा का विश्व का काई स्वत्य की निवा का वादानी नहीं कर साम के निवा का विश्व का वादानी नहीं कर संप्ता के निवा का विश्व का वादानी नहीं कर संप्ता के वत नाजा है हुने सच्छे सीर सम्बा के स्वत्य के वत नाजा के हुने सम्बा के स्वत्य के वत नाजा है हुने सच्छे सीर सम्ब के स्वत कर स्वत्य हुनो के करवाम का शहर सम्वा हुनो के करवाम का शहर सम्बा हुनो के करवाम का शहर सम्बन्ध हुनो के स्वत्य का शहर सम्बन्ध का शहर सम्बन्ध का शहर सम्बन्ध हुनो के करवाम का शहर सम्बन्ध हुनों के स्वत्य का शहर सम्बन्ध का साम सम्बन्ध का समाम सम्बन्ध का समाम सम्बन्ध का समाम सम्बन्ध का समाम सम्बन्ध का सम्बन्ध का सम्बन्ध का सम्बन्ध का सम्बन्ध क

तनी हम सब इस प्रशीपर एक

### आर्य समाज का पुनर्गठनः कुछ सुझाव

, -- ग्रम्बा प्रसाद शर्मा-

परिवार के सदस्यों की वरह वारित भीर समृद्धि में रह सके वे 1 इसीलिए सर सैत्रद महस्य बा के छे इस्लाम के कहर बनुवाई भी उनके प्रवासक वे 1

कार रिकड सलकाट बीर रेमसे
के बानदक सार्वि कर्म हवाई विद्वानों ने स्वानोधी को सारत का रिसांगा कहा है। वे दिस्स बीवन पद्मित हारा कर्म हदान बनाने के लिए
स्वामीनों ने को प्राप्त नवादा वह
बाधाय स्वात । प्राप्त नवादा वह
सीयों में सानन मूस्तो चीर स्ता का के
लीयों में सानन मूस्तो चीर स्ता का के
स्वादा सहरी पिरासा थी, सामार्थिक
कुरारियों को दूर रूपन की नयक वी
धीर विदेशी सानन से सारत का गुक्त
स्थान की धार को । इन्हों लागों ने
स्वत नवा धारीसन में नुदर र का य
की कि नि का चार पादनकार।

#### त्रार्यसमाज को निक्कियता

समय की मित के साथ घाँ मा साथ के सीन भी काम काम, मत बीर नीम से बिनत की गये। वे ह-मान के पदी नी बामूचण समक कर उनसे विषठ गय। घाँचे व सन्द की हमाई रखन बेंदु नई संदय्या। बाद कर सी गई। समाप्र मानु पतिन पर साथ बन कर बैठ सबे। बन बावरण के कार्यको तिलाखित देवी गई 8 वे पश्चिमी जीवन शैली के गुलान कन नय 1 गुटव दी और राजनीति स माज में भर कर बई 1

फला सवास निष्ठाबान कार्य-कर्ताम के हाथ से निरुक्तकर शावारी वर्ग के हाथों में चला नया । सब्दी वाहुवाही लटने के चक्कर से उन्हीने प्रतिनेती से सम्मीता कर निवास की स्वाम प्रावसर और सर्वेदिक हैं-चारों से मिनत में 1 सी स्वय सी वाह बहु हुए को बया अमारेगा?

#### समाधान

दन बान पर नेव के तथी वे दिक विदान एक मन हैं कि यदि देख को बन मान बखा बति से निक लनाहे ता धार्य नशास्त्र का पुनारे तन बरना है। धार्य नशास्त्र को पुनारे तन बरना है। बाद सुफान को दिव है वथा- उसके स्र विचान य न बीधन प्रमानी उत्तार प्रसार, विचानों के लिए जनावी उत्तार विदान य न बीधन प्रमानी के लिए विदान य न बीधन करनी की देखा विदान य स्ववास के के हैं।

स गठन घादि ।

इम प्रकार बामको के सुन्त स्कारो बोर बारिक निर्माण के निए माना-पाना वर्षो नपस्था करें । यदि पाना-पाना वर्षो नपस्था करें । यदि पाना-के साथ माना की पीछ हा वर्षचार की निद्रा भ पान पानान्य तैयार कर निया ता विवर तो की मान बेन परन्तु वेश के नाक्षा परिकार आवर्षों साथ बन जग्बेंग जीर नव हुमारे शक्ष एक ऐसी बक्ति हारी भी सारतीय माना का बाख्ति स्वयं वे सकेशी।

हम प्रवनी सहान में तो बार्य -रव क मस्वार हानने म खपफर रह स्रोर आया करें कि जुनतो सनाबी, नारी धीर मधनो म सहर चलन लाग पाकर सन्वे पार्श की मेरा ह । कर बहुर कर देंग नो यह दुगका मान नी विद्व हुन। ।

भागों का हिमाग का यू पायल काय परिवा के साथ माथ धार्य स्वाय माथ धार्य साथ साथ पाय पायल काय परिवा के साथ माथ धार्य साथ का प्रकार की क्षेत्र कर के साथ माथ धार्य साथ का प्रकार के साथ की का साथ की का साथ की साथ कर जा की साथ की साथ कर जा की साथ की साथ कर जा कर जा की साथ कर जा कर जा की साथ कर जा कर ज

जब यण्तांत्रवाते य बाता कि जण्ड स्वाय दा सो अन्द्रात त्रथ्य अप्तस्य ज का के सम्भूका गुरुशक कना वाल्यि ।

देती है।

पनाबन क्षेत्र वल्पसम्बद्धाः

### अपना दीप जलाओ

--लाश्वनसिंह नदौरिया "सौमित्र"--

लली चुनोती देता हमको बढना हुपा था कारा, बल पण दूर आ रहा हम से उपता हुपा सदेश तिला ताचनी दशो विलाश उडी तिलिश की धून थाना दीप बलाना होना स का के प्रतिकृत !

> आद्या की चिर थीएन वॉनका को काडा उक्सा हो, मानो नहीं क्योनि जवना प, जी बनकर मुस्का दा, जबमय जनती के उपका वे खिलें क्योनि के फूल, माथे संफिर निम्न लगाये इस झरती की भूका।

स्रमा स्रमा मार्थे भूतन से भार नवन संहोर सबनी का सानीक स्तस्त्र बंग, वाण भारत मेरा अस्त्र सरकति कराव ल सा सा नीता न ने सीर सुक्राते नहीं स्वित्य र सों से प्रेप जलाने।

> तब समयुवातुम अलगकी कितनी बागलिय ही । और रथकने प्रशो में रिलनाध दृश्य निये हो ।

# साहित्य-समीक्षा

पुस्तक का नाम : शासू हूबी मुस्कानें (कविता संग्रह)

रखिता : लासनसिंह जबौरिया 'सौमित्र'

प्रकाशकः रचयिता स्वयं माकार: 20×30×16 पृष्ट 88

मूल्ध : इस रुपया

सम्पर्क सुन्न : सोमित्र, जोजपुरा, मैनपुरी [उ. प्र.]

'तीकिष' के नाम व उनके काव्य से संपूर्ण प्रायं जवसः भवी-माति परिचित है। साप सालुक्षि हैं। अध्यकी कविताए अस्पन्न भावपूर्व एव सामिक होती है । कविवर प्राव्याकार ने आपके विवय में सत्त ही कहा है-

नाकान में कवि एक है, साकानसिंह सीमित्र। जाकी कविना महकती, अर्थो कनीजा दन ।। बालू ३वा मुल्कानें सीमित्र वही के मुक्तकों व कविदायों का स बह 8 1

आधुनिक प्रशति के कोक्सनेपन पर कवि के भरपूर प्रहार किया है-प्रवित का विज्ञविका ससे कितना वागे वला है। भूमि, नम सागर सभी को जीतने का हीसमा है।। फासके स सार के नवदी कियों में बदस डाले। तम न होता प्राथमी से बादमी का फासमा है ।।

क्तिवर का हवस जन साधारस द्वारा की गई उपेक्षा से शुक्त है। उद्ये दुख है कि जान उसके परिश्रम का कोई मूल्य नहीं समभते 1

क्षिकाददै देखिए-

सर्वद विता पीडाको को कितने अन्य पडा सहराना। तब सभाव के तील कष्ठ से पूट रहा मद सरा तराना।। स्कासभापीकासास्वरहेमपनाराय सुनावे की छ। इतना सरस नहीं होता है बिच के घूट कष्ठ से नाना।। माता है कि बन-बाधारक कवि के तहरद की सबस्तेना, उसके उच्चकाटिके काव्य का समस्य ना सोर तके सत्यन्त प्रेम व न दर सहित -बीरेन्द्र मार्ग अपनायेगा ।

# श्रीगुरुकुल चित्तौड़गढ़ मे प्रवेश आरम्भ

स स्कृत विश्वविद्यालय वार्यासी से धार्म पद्धति वर बास्नारिन प्रचीन व्यक्तरस्य न वेद निरुक्त प्रक्रिया से मध्यमा सःस्त्री न जान ये कक्षातक की पढाई व परीक्षाका समावज है विगत वर्षी से सहाका परोक्षा परिशाम झति हो उत्तव रह रहा है पढाई 1 जुलाई से मारम्म हाती है प्रवेश संबंधी अन्य जानकारी के लिए मुख्याधिकाता आही गुरुकुल चिसीक्ष्यद राजम्बान 312001 इस पतं से पत्र स्थवहार सा सम्पक करें।

#### धार्वे समाज, बजमेर द्वारा प्रकाशित साहित्य

# प्रो. रत्तात्रीय आर्यद्वारा लिखित पुस्तकें

- देश धर्म बीर हिन्दू समाज को जार्य नगाउँ हो देन बूट्य 0 50 पैसे
- हमारी राष्ट्रीयमा का बाधार- मूल्व व 1 00
- 3 प्राचार संदिता मूल्य 0.50 विके 4 वी कार्य समात्र हिन्द्र विदावट हिन्द्रुक्म (अ.सं.की) — विकेष रियावती
- TT T 75 00 बार्यं समाज हिन्द् धर्मं का मन्त्रदाय नहीं ब्ल्य-50 क

#### सम्ब अकाशन

बार्थ समाव (हिन्दी) मूल्य साजिश्य 20 00 र धाजिल्य 16 00

- वे जाका सः बयतराय 2 सर्में विकार (भाग 1 से 11 तक) -प्रे केंट क्रूस मूक्क म. 32 90
- 3 बयानस्य कथा सम्रह सूक्ष्य व 3 00
- 4 परिचय निर्वेशिका (समस्त देश-विदेश की जाये जिल्ला स स्थाओं का परिचय) मूल्य रु 1200

### सत्यार्थ- प्रकाश ग्रन्थ माला-15 माग

(प्रत्येक समुल्लास पर स्वत म द्वैक्स)

- 1 ईक्बर एक नाम धनेक 9 स्वर्गकीर तथक कहा है? 10 चीके जूतहे में अर्म नहीं है 2 बादन माता विता
- 3 शिक्षा और चरित्र निर्माण 11 हिन्दू सर्ग की निर्मालता 12 बीख धीर वीन वत 4 सहस्थाकार का महत्य
- 5 सन्वासी कीन भीर 🐒 देव भीर ईसाई मत भूषाम भीर वैविक समें 6 राज्य ध्यवस्थाः
- 7 ईक्वर और बेद 8 अवत् की उत्परि विशेष

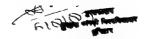
-समी ट्रीनट जाये जनत् के चोटी के विद्वाना के इररा निश्चित हैं एव सन्वमाला का सम्यायक कार्य समाज सबनेर के प्रवान प्री वसामें गंबी कार्य ने फिया है बन्बनाला के पूरे सैंट का मृज्य 8/-चपये है।

# लक्ष्मीबाई पवनास्कर विद्यालय

मबन निवास जयपुर रोड, भजनेर [मान्यता प्राप्त]

# प्रवेश प्रारम्भ है

नर्सरी से पांचर्वी कक्षा तक हिन्दी-अँग्रेजी माध्यम् समय प्राप्तः 8 से 12 बजे तक



कित्रीतिकोषनेपूजन् वृद्धितिकोषनेपूजन्

सस्य को प्रहुत्। करने और अनुस्य के स्रोड्ने में सर्वेश उसन रहना वाहिए ---वहाँव स्थानन्य

दवानन्दाब्द : 162

꺙

सुच्दि सम्बद् 1972949087

वर्षे 3 बुधवार 15 जुलाई, 1987 अंक 10 प.स-43338/84 II গ্রাছী টুল্ফুলি

द्यार्य समाज, प्रजमेर का हिन्दी पाक्षिक पत्र "भाषे हमारा नाम है, वेद हमारा वर्षे । ब्रोड्यू हवारा देव है, सत्य हमारा कर्मे ॥"

श्रमय सिनादभयम् अमिनादभय ज्ञातादभय परोक्षातः । सभय मक्तमभय दिवा न सर्वो सावा सम मित्र भवन्तु ।। क्रम्बन्सोविश्वमार्यम् सर्वे जगन् को श्राय वनाए

हनारा उद्वेश्य : समाज की बतमान एव जिल्लाक में पैदा होने जाली समस्याधी की दृष्टियत रखते हुए आर्थसमाज का पुनर्यटन करना है।

श्रावस्य कु 5सवत्त 2044 वार्षिकम् 15 - एक प्रति 60 पैन

# अ**पंजाब से आतंकवाद स**माप्त करने का

सबसेर । सार्वे समास ध्रमेर के तम्बालत में हाल हुई में ही प्रवाद म हरियामां में सात क्यांचियों हारा भी मई हरवामी पर करना स्त्रीय मारत बरकार की वृत्युम गीति के प्रति स्थमा रोच स्थात करने हेतु-इरक साम का सारी मन क्यांच समा स्त्री की सकस्यता सार्थ समास के प्रधान कामस्य हरायों सार्थ स्त्रीय के प्रधान सामस्य हरायों सार्थ स्त्रीय की

बचा से मुरसिद्ध हातें नेवा सेवा आपने कहा कि घारें बेपाय पढ़ व आपने कहा कि घारें बंपाय पढ़ महिनो हे एका वे तथा नियुक्त करण की मांग के कर रहा है। पर-कु सेवारी सरकार हम पर नकारणाने स्थार स्थार हम पर नकारणाने सार स्था धरनाए हुए हैं। जिसके प्रत्यक्षण धातक्षणीयों को सुमध्य सेवार का प्रदान रिका पह है। यो सार्थ ने पुरक्षा पट्टी बनाने य पजाब बरे सेवा को सीपने की मांग सारत सरकार के सी।

सामका पर से बोजने हुए घाषायें बरराष्ट्रेय औं से कहा कि मैं जो भुजवर्तातह की इन बान से पूर्णतया सह्यत हूं कि प्रयोग से प्रातक्षाद दायित्व सिखों पर

समाध्य करत को जिम्मदारी हिल्पी की नहीं प्रशित्त कियों है। सर्वाहि वालकों है। सर्वाहि स्वति है। सर्वाहि है। सर्वाहि है। सर्वाहि स्वति है। सर्वाहि सर्वाहि है। सर्वाहि सर्वाहि है। सर्वाहि सर्वाहि है। सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि है। सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाहि सर्वाह स्वाहित स्वाहित सर्वाहित सर्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाह स्वाहित सर्वाह स्वाह स्वा

धाचार्यं भी ने कट्टा कि मैं ग्रानमा - हिमा का बवसा हिमा केना घानवदा व देवहिंद में नही हैं। घरन्तु प्रतिकिधा तथी क्य सकती हैं जबकि फिटा नहीं। धापन केनीय

व पत्राव में बात र पीडिन लाग के विषय एक ऐसे जुर्राधित श्रेन का निर्माण करे, बहा उनके किए लियाब अवसाय बारि बोक्नोपयोगी सभी मुनियामा ती स्वयस्ता हो। रकत बाय हो प्रापंते उक्ताविश के पत्र वेष पत्रावन वाले सोगो की बम्पील की रका का पूरा दायिल्य सरकार तब तक ल, — द्वात्रय कार्य •••••••

खब तक को स्थिति चनक नाउन सौनन क सन्दूष्य नहीं हा जाती।

सभा में उद्धा शासन एवं मरताबं भी पारित कर प्रधानकन्ताः छुट्ट ना को पाषित किया गया । मना व वस्यावाहो ना मनत का मीन एकर पजाब व हरिपाशा में ट्रए ह नाकार मार गए अनिनयां को खडार्बीव वन क पजवात समा नमान्त हुई ।

# हिन्दुओं ने अतीत की गलतियों स कोई सबक नहीं सीखा — बीरेन्द्र कमार आर्थ —

नावदारा के महिर में हरियमों ने प्रवेश को संकर जो दुर्माध्य छु दुस्ता पटी है, प्रविष्य में हिन्युमां को उसके भय कर दुध्यरिमाम मुस्याने पढ़ेंगे। भारतीय दिशहात दस नध्य का बाजी है कि बसीत में प्रम भा पिती दुर्मदाना पटी है, उन सबसी परिचति हरियमों हारा क्षिय हम

सर्व विश्ववीन का नातल पाण्डानारता है। महाला। सालवीय कर्टर पोराशिक के, परणु हव समारित्वन के हरवामी हुप्तारित्वामी का भिष्कर कहरवामी हुप्तारुक की पावना को शिक्षाणिक केते हुए हरिष्मानी के कहा मा 'हमारे हुर्पिक्तो विश्वविको के बहुकाने में साकर सर्व परियंतन न करें। हुम उनकी चरण-एस केत

हिंदुकों को सलात की वलाल ने का प्रतिकल तो पाकिस्तान के श्य हवार सामने हैं। नाथ द्वारा का द्वारना सिद्ध करती है कि वे किन एक और पाकिस्तान के निर्माण ने लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर रहे हैं।

काश सतीत से कुछ सीख सनगः। सकीक्षायप-गिराका गयन्तुः जो विरक्त सम्भक्त जान्।

# आर्यसमाज शाहपुरा

प्रधान—श्री बजीलाल खोणा मत्री—भी बजीलाल सोनी

कोषाध्यक्ष— श्री सत्यनारायण ठोलम्बिया पुस्तकालबाध्यक्ष— श्री बादकरण सूददा

# संतराम बी. ए. पर डाक टिकट बारी किए जाए

बार्से प्रतिनिधि सभा, राजस्थान के वरिष्ठ उपप्रधान व स ये समाज, स्वयंगर के प्रधान आवार्य दक्ताचे पत्री आय ने भारत सरकार के सी सदरायकी वी ए पर डाक टिकट आरी करने की सपील की हैं।

धान्यार्थको ने के और खवारयत्त्री को लिखे पत्र में श्री सत्तरामकी के सामाधिक व साहित्यकीय कार्यों का स्मरण कराते हुए, उन्वर बाक टिकट बारी कर उन्हें सन्मान देने का धनु-रीव किया है।

विवेशकः वसानेनमार्थ

अधान संगादक : रासानिह

संपावक जिरेना कुमार ग्राम

कोब कार्याः ३१०१०



# कब तक खून बहुता रहेगाः

विनोंक 6 एव 7 जुनाई 57 ई की राविया करनेल के काले हार्ड-हान में वो बन्ने और बाद वहें। चौनील चटे में हरियाका रोक्केल की तीन वर्जों को पवाल के लावबू तथा हरियाका के पतेहाबाद के पाट सादकवादियों हारा रोककर निवांत 74 वस याजियों की स्टेमनाने की स बायुन्त गीनियों ने घून किया बया। रक्तरनित हरिवहाल का पन्ना पून कृत के तन नवा। तारा देश हन्न य रह नवा, नृतक कव हिन्दू में। विकल तमुवाय के व्यक्तिगों की पना विद्या गया। उसकी प्रविक्कित देश के सक्त मायों में थी होना स्वामाविक या। कही करणूँ नवे, कही बन्द सावीवित हुए, कहीं सत्ताग हुई धीर कही सोक प्रस्तावों की सीपचा-रिकताए हुई।

सवाल उठता है कि साखिर कब तक इस निवसता से वेशहोही,
पैजापिकवृत्ति वाले हत्यारे सातकवावियों के हावो हत्याए होगी रहेवी?
रेण का बनवन नुश्ता रहेता? केकपरी को मोलिको से उठावा वाला
रहेगा। बहुन हो चुका। हर बार सक्त भुरना कदय उठाने की बात
गह यो बाती है सौर तुरन्त हु बब घटनाए फिर बटित हो बाती है।
यह जासको के निने बनाडारियों के निने, सरकार के निने घीर नज्या
का बात है। खुरबा एवं गुल्वर व्यवस्था सबका निकस्मी लाबित हुई
है। पनाव का निर्देश पार्टित है। हुनारों की सक्ता में लीव घर बार
साहकर दिल्की, सुरिशाला नवा सक्त्य राज्यों में चने यसे हैं। पनाव में घीरोज थी, वार खं बान पीर कभी ज्यादा की सातकवादियों के
हालों सारे बार्ट हैं। सन्ते वाला हुर व्यक्ति चाहे वह निक्का है सा हिन्दू
समारान्ति हैं। उपने वाला हुर व्यक्ति चाहे वह निक्का है सा सारानाल की सातकवादियों के
सानाल की रक्ता करें।

सरकार को धनितस्य निस्य भदम उठाने चाहिये --

- 1 काश्मीर से बज्छ नक की सीमा पर मुग्का पट्टी बनाई जाब।
- 2 सोगो की जान माल की रक्षा करने तथा उनमें भारमविश्वास पैका चरते हेतु विशेष का भी की सेना क हवाओ किया जाता i
- 3 पश्चिकासीन क्स सेवाची म सनिवार्य रूप से सुपक्षा खैनिक हो ।
- 4 पत्राम पुलित के सरेहाभ्यव उत्को की खटनी की भाग । प्रशास पुलिस मे खल्यसम्बद्धी समुचित असिनिश्चित्व दिया जान ।
- 5 नुष्याचर व्यवस्था सुदृढ की नाय ।
- 6 प्रातकवादिनो का कठोस्ता है वयन किया जाय !
- ग सातकवादिको की सरपकड और पहचान के लिए अधिकाधिक अन सहकोग आप्त किया वाय ।
- 8 पीडित म्बलियों का फीरन राहत दिसनाई जाय 1 वैसे इरिवाचा सरकार ने तत्परता दिचाई है।

स्थित्रमार्थी कर्म कर्म्या करन प्रतान में बातकशारियों का मुकानता करने तथा प्रपने दिन्दु आईयों की रखा घरने हेतु विक्यों को भी सक्रिय होकर बागे बागा होगा। यसो से खंडन पर वे बट बावें।

# पूर्व आयार्थ दतात्रेय वादले-कीर्तकोमुदी

— काकार्य का विश्व**क्षान**म्य जिल्ला —

महाराष्ट्रप्रदेवेऽय, विप्रवते सुशिक्षिते । दत्तात्रेयाभिधोधीमान्, जात स्थातक्षरियदान् ।१। बल्पकालेन यो विद्या, जन्नाह तु कुशामधी । सर्वानधोस्य सिद्धान्तान्, धर्मसम्बन्धिनो मुहु ।२। सवकस्यासकृद् वेद राह्यान्ताना प्रदर्शकृत् । वयानन्दवि वरमस्ति वाराज्य चाप्ययन्त्रतः ।३। समज्यं निविक्ता शिक्षामुत्तराख्यप्रदेशके। राजस्यान प्रजायत्ये, क्रियाक्षेत्रमबाऽवृक्षोत् ।४। दयानन्द वशी वृद्धयै तत्सिद्धान्दप्रवारणे। पूर्वजे स्थापितो विद्यालयोजनेन प्रवृक्षितः । १। धार्यात्रर्रोस्य या भूमिमंतुजाश्य निरम्तरमः। अर्थावनरानने प्रापान् होतु प्रत्यति ध्रुवम् ।६। महर्षे जीवनास्याभून, लोलासवृतिसत्तमा । वत्र सा पावनीं मूमिरजमेरस्य विसते ।७। दबान-दाभिष्ठयेन, तत्र वे स्नातकोत्तरमः प्रादनमयत शिक्षाये महाविद्यालयस्तरम् ।८। योऽय शिक्षाविदा शेष्ठ , त्रव्ठो धर्मधिया प्र्वम् । प्राचार्य पद शस्त्रवसो व समभूषयत् ।९। दलावेवाभिष्ठभ्यार्थं, आर्थं गौरववर्धन । विश्वविद्यालये का क्रुडवाम् ससम्यान पुरस्कृत ।१०। विविध - विषयवन्धान्यो निबन्धान् व्यलेखीत, बहुमरिवसमृद्धा प्रन्थराशिम् बिनर्रत नितरा यश्चिन्तनीय प्रबन्धान, स अवति भूवि बलायय वार्य सुविच १११।

सामाजिक जैवाणिक सुद्धारे, धर्मप्रचारे व स्वतन्त्रतामा । बान्दोलने कातिकृतावरिष्ठो, तक्ष प्रतिष्ठोऽस्ति गुनैनेरिष्ठ ११२। वृद्धवतोऽम तु प्रपीडितोऽपि, नाङ्गोङ्गता कातिवसुवचरेवम् । प्रात्मान् परित्यस्त, मपीडित च 'महाजनाना तु परम्परेख' ११३। क्षेत्र'व्यनेकेषु प्रस्तततिह—किन्तवार्यं सामाजङ्कतो वरिष्ठ । विद्वहृत्यके विद्युत कीतिनाच ,जीमध्यात् सत सारवर्षमाषु ११४। १

पता - बानन्य मन्दिरम्, कूंबायाडी, बदाबूं (उ प्र )

हिन्दू बाइयो की खातिर वाननी वान कोविक्य में आर्थ । विश्व प्रकार प्रधान के बाहुर हिन्दुओं ने प्रपनी वान कोवित्रम में वाककर वापने विश्व बाहुंगों की रखा की है।

विश्व बाइनों को मुने रिक्ष है बादक्वायिनों की विश्वा करनी होत्री : बादक्वायिनों के विश्वत तत्पावत्, बरणा, सर्गवण कावि बाह्यात्पक करन कार्ग में गीले नहीं रहें । बादक्वका पक्ने पर साहकारियों और उकक्रायिनों के कमा लोड़ा में !

हिल्दू किया कार्य 2 है। जार्य को कार्य के कोर्य जुवा नहीं कथ सबदा। पर वर्ज की भी शीमा शोमी हैं।

—रामानिक

# धर्म और राजनीति

-- श्री कर --४: मृत्युक्त स्वत् स्ति शिक्ष

जब राजनीति से धर्म हटाया जाता है, बढता अ.रम्में-मन्धर अधरा छाता है।

बी लॉक बॉर परलोक सिद्धि का साधक है, बज्यूदय और नि नेयर्स का कोरावक हैं, जिसको संकीचें घावका कभी न कारी है, विवकों प्रश्ला प्रति-वारा पीयूम पिसासी है,

वृद्ध परमतत्व सर्वेषा युकायां जाता है---जब राजनीति सें धरमं हराया जाना है।।

सद्धम्म म्या शुक्ष शान्ति सुझा बैरसाना हैं नय न्याय-नीति का सुभ सन्मार्ग सुभाता हैं, भौनवता से वर बण्डु भावे उमयाना हैं, बसुझा का नृहन कुडम्ब रूप वरसाना हैं स्स विधि-दिवील में सार्ग में पांचा मोला है— जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाना है।।

अत्याचारों से भूमि कापने लगती है स्रोनी सुनीति, दुर्नीति दानवी जगती है तब स्वाध-अपुर दुदस्भ दप्य विश्वलाता है निजता-परता का क्षुद्र भाव भरजाता है स्रानव सानवता पर विच वस्य गिराता है— अक्ष राजनीति से उम्म हटाया जाता है।।

सत पत्य सम्प्रदायों को सम्म बनात हैं वे अक्ष दीप को दिनकर कह भरनारे हैं क्या कभी सम्म श्रना ने युद्ध रचाये हैं कब सत्य-श्रद्धिता ने नररतः वहाये हैं विपदा वारिशि में विक्य दुवीया जाना हैं— जब रोजनीति से श्रम्म हटाया जाना हैं।।

झा जारो की झर्किन उम्र हो जाती है, गुज्बत्वी स्नेह समठन का गढ उानी है, मेंहगाई दिन-दिन दूनी बदनी जाती है जनता सुक्क जातिन ने के कही भी पानी है,

मर्थत्र पुष्क पुरुष्य दृष्टि मे भारता है— जबराजनीति से धस्म हटाया जाता है। सुद्राप-मृत्रि में तोप भाग उपल्यती है

बगिरित लोगों की बेहे जीतो जमनी हैं
होकर बनाब लाबी जन पुढ़ पुट रोते हैं
भूको मर-मर कर प्रारा करोडों कोते हैं
बुभिन्न तुट दानक, मानव तक बाता है—
जब राजनीति से बन्में हटाया करा हो।

शासन-पत्ता जब धर्म्मुक जाती है, बनकर विनीत जित सीम्य रूप सरमाती है जबता भी नेतिकता को हो जपनाती है, तब शांतिकति नित सुब-तमृद्धि बरसाती है, बरसाब-नोड का टक गढ साथा जाता है -

सदमान-स्नेह का दृब गढ दाया जाता है --जब राजनीति से धम्में हटाया जाता है ॥

# आर्य समाज और हिन्दू जन-समाज

— स्वामी सस्य प्रकाश सर्स्वली —

(बंदाक से बागे)

यदि हुम्ले सम्मी में यह नहें तो वह है तो सम्मी हिम्म सम्मी स्वामन्द ''हिम्मूम' को स्वाम प्रवास भारते के स्वाम स्वास सम्मी है कि उंजर दिने वह यह समझीता है कि उंजर दिने को समझीता है कि उंजर दिने को समझीता है कि उंजर दिने को समझीता है कि उंजर कि समझीता है कि उंजर के हिम्म मान के समझीता है कि उंजर के समझीता है जिस के समझीता है कि उंजर करता मान है ने हिम्म के समझीता है जा है जा के समझीता है जा है जा



सनसेर के मेरे मिडान निज प्रो दलावय वान्ते, ने एक पुस्तक निजी है—Arya Samaj—Hindu without Hinduism (सर्वोत हिन्दुस्य के साथ सम्बन्ध वितने कन्यु हैं, उनसे पुत्ता वहांच क्यानन्य के सन्दा वा सामसमाण हिन्दुस्वविहीन हिन्दु समाम्ब है।

सारक के परित्र क्य में से कांकी सी बार्जे सदाविकाद डीक हैं। आब समाब की स्वापना के समझ नहीं क का दृष्टिकोश सारत की परित्र की तीलिय न या, के हमे विकाशनारी धारोलन काना धाहने के। स्वामी स्वापना धावें की माध्यम के हारा ऐसे मानत कामक मा निर्माण करना चाहते के सिक्से विक्षी भी सम्प्रदाय की साम्बदायिकता न नो, न सन्धविश्वास हो, न नास्तिकता न स्विवादिता का केवक प्रक्रांतक बागक धम क्वारा पाणिक हो पोर विनक्षा एक माफ धाक्षर संध्य पोर सामक सम्बद्धा हो ।

काय समाय उस दंगाई सर का पोषक है जिसमें देशा देशक वा दक मीता नेटा नहीं है, जो महानू क्यों-परेक्टा था कि तु, प्रमत्कारों से निहीन धीर जिसको क्षेत्र म प्राम कर महुच्य न नरक जाबा है न स्थय लोक को )

कि में समाज उस मुस्लिम क्षम कापायक है जिससे ईमाय की लिट से मुहत्सद और कुश्यान का का का स्थान नहीं और ओ पक्षपात रहित सत्य क्षम पर निकार हो !

মী বাংশী ই গংবা ই ক্লু না Arya Samaj—Hindu without Hinduism (খাবের্দ্ধা) Arya Samaj—Muslim without Islam

(धरव भीर मुसलमानी देखों में)
Arya Samaj—Christian with
out Christianits

(बूरोप भीर समरीका मे)

Arya Samaj—Buddhist with out Buddhism (বাঁহ কৈ) মু

धारक के बार्थ समाज हि हू हिंदों का योक्क है बारब म साथ समाक धारब हिंदा का योक्क रहता, धकीका में साथ समाज घड़ारी हिंतों का (नीचों धारिका) योक्क रहेता और दूरींच और खमरोका के धाय समाज बहा ने तोचों के हिंदों का पूराव यांक्क रहेता।

इल जावना से घाय समाज विश्व कर में बेवा करने का बती है। बाय समाज के कायकर्त्ता की इस दुव्टिकीण को समञ्जेर का हयास करें।

स्वारणस्य कोकाजीठ को सहायोग स्वीजिद्ध — दयानन वैविक कोवपीठ, द्यानम्य कालेव, सबसेर में कृषि के रक्ष व्यवहर पर कीम कार्य क्या रहा है। यदि विमी सठकत के पात स्विके वस्तु प्यवहर से सम्बन्धित कोई सामग्री हो तो, उपना स्वापन दयान-स् वैविक कोक्सीठ, रवानम्य कालेक स्वकोर को बेबने का काट करें।

- संपालक

#### पत्रो म सहस्वपुण विषय-

#### नारतीय वर्शन के प्रति अभिष्कि एक योरोप से प्रकार-

बनन निवासी प्रो की बाईज न सपन प्रथम पत्र में आरतीय दक्तन क ति स्वाधिकचि प्रकटकी ग्रीर सम्पूर्ण यारीप में इसके प्रचार की महती भावश्यकता समभन थे। जनाकि उन्होंने समने पत्र में कहा है मि - अब स मेने प्रापकी उन वंशी झौर झापकी बननाई हरू फिल सफी ≖ हलता पो पदा भीर उस पर शीर विया तदम मर दिल में ग्रापकी शरह दूख निश्वन के लिए उबाल उठ रन्य। मेरी धात्मा उन मनबूर रस्मियो से अकडी हुई झापकी तरफ शिवों जा रही है जो कि इ सानी धाखामे नहीं विखाई पडती लंदन को कि नरे रोक संबक्ष मानही सन्ती। — सत्यज्ञान की सलाख मे मैं बतीर किथ्य के छ।पक पान जा गर्हेप चना है।

— अपनी निकाल से आत्मे बाता को अपना माक्तिय बनाकर सज्ब ई धोर सम्म और कहानी प्रभ की एक नई सश्मनन कावम करने वाक नक्षेत्रकानी पहले कमी न दखी धोर न ही जिस तक पहुचना भागुम्मिन वे जाना हो।

मैं धपने झ वर एक वा-सम्स खलती हुई साम का कोला पाता हूं को कि १% सापकी निस्ताल से ख्यादा पवित्रता कोर ताक्व देशा तिससे मैं हु-दुस्तानी फिलासफी की कहानी रासनी को सर्वास्त्र से फेला सकू। सहात्र सामनी का सहादत बोर

# प्रो. जी. वाईज के पत्र महर्षि के नाम

का. कृष्णपाळ सिश्च —

निस्कार क मुनास्थिक के बुरे सबर को पीवन ने शिवर इस्में बेदाना की प्रवाद करनत है। ताब हुन स्वपनी मीजूदा नस्स के (ओ करीवन दमाब दुनिया में फैमी हुई वडी-वडी मजसिसी बहासी वाली सब-वाम स्वित्वयन सीर निहिस्तिश्म में गढ़ हो रही है।

सत नस्ता नी तालीय व तर-विवाद के लिए भी उसकी वकरत है, वयों कि एक फूटी तहनीय का वर्गन्या पर चक रहा है, विवाद हम्मान की फिरदत तक पुत्र को स्वता हानि हो रही है, विवाद हम्मान को कहानी किरदत पुत्र होर हम झाएक मुकाबले में शीरकार कम्मे हैं।

#### 2 जन्म से क्रिस्प विद्या--

प्रो वी बाईव न प्रयत्त दिवास एव तृतीय पत्र म जन विश्यो का विवयत्त्र दिया है जिनका वसनी म सम्यक विकास हा बया है धौर उनके प्रणिक्षण की ावश्यो की वा सकती है। प्रार्थीय नवसुणको की जिल्लासिक्यित विश्या से सम्बन्धित प्रतिक्षण विधा वा सकता है। बेले— राजगीतिक समझास्त्र काटहैण्ड वढ़ेंबीरा (जक्की मा काम) साहु काम रेय-साला, चढ़ी साओ इस्लावि।

द्वितीय पत्र में बिटिश राजनी-तिक सम्बास्त्र के विषय में विस्तार से पर्चाकी हैं।

#### 3. ਬਚੀ-ਚਾਤੀ ਚਵਾ ਦਦਕੇ ਲਾਜ—

ही जी बाईब न महर्षि को तृतीय पत्र में मदी-हाजी सर्वात वसी बनान के कान बीर उनके लाभ के सम्बन्ध ने विशेष क्ष्म है उस्लेख किया है, इसके साथ ही भारत में निर्मित होने दाखी पहियो के विवय से सपनी राव कई हेतुयों के साथ प्रकट करत हुए लिखा है कि—
'हि-पुस्तानी नक्यों में सपन मौजूरा
कर सकते हैं क्योंकि प्रापका पन्य समस्त , प्रापक हमस्त में प्रवाद कर सकते हैं क्योंकि प्रापका पन्य समस्त , प्रापक हमस्त में मजूरी सस्ती है। क्यार प्रापक हमस्त पर कि 'व्याननवरित कहनरीन पालीसी ऐ, सकती कारवन्य रहेन तो वकीनन प्राचित में वे कुषहाल प्रोच करिय-जल-बाख होने और प्रचच नो बहुत वस्त मैं वात है निकाल हमें नहीं वहने वस्त मैं वात है निकाल हमें ।

## 4 जर्मन के प्रस्थेक विद्यविद्यालय से संस्कृत का शब्दयम

प्री जी वाईज न चनुन पत्र में सस्कृत भाषा के ग्रध्यवन ग्रध्यापन के विषय श उल्लेख किया है। प्री जी वाईज के लेखानुसार---

'जमन में संस्कृत भाषा क सन्ध्यमन स्राच्यावन में विशेष प्रणिविष् उन समय तक विद्यमान थी। इसी कारण से उस समय समनी के प्रत्यक विकाविष्यास्थ्य में संस्कृत को सन्ध्यम होता है।

सन्हाय सध्ययम के स्थानो के सम्बद्ध में जैसा कि एक में सिखा है 'मारवक यूनिवर्सिटी के सन्हात टोचर प्रोपेश्वर कर्बीक्य न मुफ मिखा है कि ह्या एक जमन यूनिव-सिटी में सन्हात पढ़ाई बाती है—

— बस्यत देवर (वर्तिन) पिर-कत (कील), वैकीशी (मिस्टर), होगर (वक्स बास्ट), घरट कुहु (ने-पन) विश्व सस्टेंड थोर बायक ख (शीरिन) शीधिम-उस-विक सिर्फ नान वाथ वश्कुत का प्रोपेसर है, स्यूनीक (बीरपेट स्टेंब), ब स्थव पोट (हेली), विश्ववय (हेनवर्य), बीरस प्रोस्तिर (हेंबकर), बेनफी (बीटेबन), ग्रीस्तीर (हेंबकर), कनराव (बीटेबन) नन), स्पीराम (कोलासवन) जनसम (भागोना), फविन स्रोर रोस्टान से भीसस्कृत पढ ई जाती है। <sup>32</sup>

— धापका इससे नानुम होना कि सस्द्रत तमान अभनी भर महर एक यूनिवसिटी ने पढाई जाता है !

हभी पल ये रनवाको के काम के विषय में उत्सेख करते हुए तिवा है कि रनवाको मा नाम मुनाबिक कोर विवाद में प्रकृतिक वाचित होगा भीक्षेत्र ने के हैं सामा रनवाओं है। जिनमें से एक तिहायन होकियार है, जानी उतले को को कि सामा रनवाओं है। जिनमें से प्रकृति को तिहास को भी। चलके क्षाप्त में को क्षाप्त है जाने जिल हो हो है। जाने में हक काम को सीखना वहुए होंगा स्थोपित नहीं रूनेम के क्षाप्त हो वा स्थापित नहीं है। हम के वा मानिय को सामा प्रकृत स्थाप में सिक्ष काम करता प्रकृत हों। इसके वाय मानिय कर प्रकृत हमा करता प्रकृत हों। के स्थाप करता हो। इसके वाय मानिय कर प्रकृत हमा करता प्रकृत हो। वा कि तिहास कर प्रकृत है। वा कि तिहास कर प्रकृत हो। वा कि तिहास कर प्रकृत है। वा कि तिहास कर प्रकृत हो। वा कि तिहास कर प्रकृत हो। वा कि तिहास कर प्रकृत हो। वा कि तिहास कर प्रकृत है। वा कि तिहास कर प्य

मदी साजा को चर्चा करत हुए वहीं संघडीमा अंब धास काओं के विषय में लिखा है कि मरे बढी-साज ने गुभ बनाया है कि उसन यह काम जिस काम तकि से सीखा वह यण है कि उस्त स्नाद के पश्च तान म। मतक शास्त्रिक की की फौर बहुत ग्राप्तर कमृत लक् इट्ट्राझीर इन ए माब वसन्ह भी मीखा था न्यक्त व न बह स्विट व ज्वड से घड स जो के एक बढ कारकाने के दा मन्तरक काम कता रहा जो बाइट में सब्यनाम घटामात्राक एक स्टल म तलाम पर्ट। उनके द्याल म एक तालिम गद्द म के निये यह हुन र साखने का बहतरीन तरीका है।

हम कि प्रस वहा साओ किया साधन का जा कि तता तथा पाध है। उनके विराय मंत्री राव का स्तान वरन हुए निका है कि "इस सरोके से यह बांड्या के तमाम पूर्वी को बनान का काम सीख जेते हैं, बमय बांटे छिया वर्षे रह बमान, न-कबानी धीर नाम सखीन का सी वाले बीका है। हम सपन काशियो ना दे यहा या जाय और कुछ ससें मंजमन सीख स, ता धन्की तरह दाखिल कर सकत हैं। —हम हर दाहिस बरासन सीर हम्लाहर जुनत्लक बानी धीर उनकी क्याहि-बात पूरी करन की तैवार है।

(शेष धगरे अक ने वडिये ।)

#### **ं भेगेरत एई** विश्व के शतहाब में वार्यवयांके कर और वर्षा अद्युष स्थाय है। इस ब्राप्त की स्थापना मध्ये हुए वहि में वह कहूं कि मानिक एक सामाजिक दक्ति से कहियो एक क्रशाबक्यासी में प्रमित विश्व की बिसी के दुख्य अक्ति प्रदान की ही बह विविधाद भावंसमाच है, दो वह प्रापुत्ति न होयी । यवि वै वह कहें ईनाई इब कुलसमानी हारा जुटे जाते हुए हिन्दूरव के कीथ की वर्ष किसी ने रक्षा की कीर उसे समझ करने का प्रवास किया तो यह वाश्वसमान है, क्षो इक्षमें सहत्व की बरा क्षमा नहीं। धरिने यश्च कह कि भारतवर्णकी स्वतन्त्रतः के मूलमन्त्र का वाता भीर रकक्षभाता सदान में फिर वाहे वह हिंसारकुक हो वा बहिसारमक सबसेबाने बक्क पुष्ठित बाला सैनिक वार्यसमाज है, औं बह एक ऐतिहासिक सत्य ही भागा भागमा । परम्तु स्वराज्य प्राप्त होने के बाद भाव हम मधिक शिविल वि है । पात्र पार्यसमाज मे गिति हीनना सी था रही है इसी कारण धान वदीन वर्गवा नवपुरक इसमे नहीं या रहे हैं। वदि गम्भीरता-पुत्रकहम आल्मनिरीभण और मनम करने को सल्पर होगे तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि सः द बाक भीर कुछ परत्पराकी रक्षा वरने वाले यहाँ के बाद बाने नाली वीडी बार्ब समाज का उत्सव करा सकती हैं, परन्तु द्यार्थसमाच की वतिमीलवा एव प्रवाह की जारी नहीं रख नकती है । यह स्पष्ट एव सनुभवन-य सत्य है। नवो ? बहु प्रश्न विचार-को ब है। और इस स्थोका उत्तर बाह्य वीवने की प्रपेक्त हमे प्रपेने

वार्गी रवा का प्रमुगन हम प्राप्तिक कराव और देव में सकरे महान को देवकर कर सकते हैं। हमारा स्वा महत्व है दक्के निए वार तोचेंचे तो वारको पता वकेश कि साबेक्तमाब स्वतिक को बासार बनाकर पकते वाली तक्या है। प्रवाहित पत्तिक के वाला हारा समाव का निकास हम कर में साबे-समाव का निकास हम के प्रार्थ-समाव का निकास होगा और समाव बच्चा होगा की पड़ा और सावक का विकास होगा और समाव के साव विकास होगा और समाव के साव विकास होगा और स्वास्त्र

धन्त.करण म खीनना होया ।

# आर्यसमाज का भविष्य

-भी **सुरेसक्**ष्रजी वेदालकार, व्रज व् --

उसका 'कृष्य-वो विश्ववार्षम्' का विद्यांत विश्व मानू हो सकेगा । नरस्तु बाव बाग्रंखमान से व्यक्तिस्व का विश्वास करने, का कार्य स्वयक्ष समाज हा नवा है। यरिकास वह है कि राष्ट्र ने बार्यसमान को सुवा विवा है।

किसा के लेज में बार्यसमान के बहुत कुछ योगशान विवा है। स्त्री विका, बालको की विका विधालकों का निर्माण शादि के द्वारा सरकारी स्तर पर उसने विका का प्रचार किया । परम्तु भाग स्वतन्त्र भारत ये शिक्षा पर विचार करने वाली को हम कोई सपदा वृष्टिकीश नहीं दे सकते हैं। हमारे पास अपना दृष्ट-कोण है भी तो नहीं। स्थामी श्रद्धा-नन्द ने मुहकूनी का निर्माण कर इस युव में एक मौसिक विधा-प्रणासी की स्थापना की भी और विश्व के शिक्षा विशेषत्र शुरुकुत ने समय समय पर द्याते वे क्षीर वस पर विचार करते थे । लेकिन भाग स्थिति काफी सदसी हुई है। हम शिक्षा में स्वतन्त्र भावना की स्थाव अपनी सस्यामी का सरकारीकरण कर रहे है। भाष मार्थसमाच के पास कोई भी ऐसा केन्द्र नहीं वहां ग्राय समाज के वैदिक सर्ग के यून वेदो का उसी अपदा भीर विश्वास के साथ धारुवायन होता हो । यत इन दिशा में हमे सोचना है कि शब-ब्य ने हवारी जिल्ला सम्पार्थे कैसी हो ? हम कैसे सार्य किहान् उत्पन्न कर सकें।

 है। यह तो कुछ ठीक भी है पर बबते संविक महत्ता किन भवनार-वेशको को वे बाती है धौर किन पर उरलब की कज़ता निर्धेद होती है वे मजनोपरेस जब नम से कितनी तस्त्र धौर धमस्य घटनाधो हागा एक विधिम प्रकार का मनोर्जन करते हैं जो कि हनी के बीच धावयबाज के तिर्जातो को ज़्जा है। गुम्म गो बनुमब हो रहा है कि धाज के बुद एव धायसमाज के सिदातो से प्रविच्या जनस्वा के न रहते क जास धायसमाज दे स्वायेगे । मह सी एक मोचने की बात है।

तीमगी बात यह है कि बाज धार्यसाल का देश एव समाय को किती भी लिर्मात एव समाय को किती भी लिर्मात एव स्थान कर के हैं। इसे मही हैं। इसे मही हैं कि हम देश हो हो है कि हम देश हो हम हम देश हो हम हम देश हम देश हम देश हम देश हम देश हम देश हम हम देश हम

हैं। त्या इसके विषरीत नाण की बाक्ति हीं सकती है ?

धार्वसमाय को सबने को बुद्ध करने के लिए नव-बुक्को को तमा-विश्व करने के लिए कीई उपकुक्त कार्यक्रम तम्बुख रखना होया । सार्व कुमार सम्प्राधो की वरेक्स का परिचान साथ हुने समुख्य हो रहा है! जब सार्य तमाय के सरकारों समर्थ वालों वाले सीर बृद्ध सन्त्रमा दिवाई देते हैं। सल में रो समग्रता है कि इस सरपाओं को पीक्स देना चारिए।

पार्यसमात्र के सिद्धात बुद्धिवाधी हैं, सस्य है भीर उनकी शबके बढ़ी विजेवतायह है कि वे सभी कालो भीर सभी समयो पर सत्य हैं। गरम्यु सत्य भी अनुपयुक्त व्यक्तियो के हाक भएना प्रभाव को देला है। ऐती दशा में बाब बद हम बार्वतमान के मनिष्य पर विचार कर रहे हैं ती हमे उपयुक्त इन उत्तरे सम्बन्धित मन्य बाता पर विश्वार करना चाहिए। धर्यात् हम एक वैदिक धर्म के ज्ञान का केन्द्र बनावें । प्रचार पद्धति मे परिवतन करे, अपने बहुत्व को स्थापित करने का प्रवक्त करें तवा साववीर वस स्रोर शावंकुमार सभाको बल दें। सन्यवा सार्थ-समाजका भविष्य बहुत उञ्जादल नही। बुगवदी तेकी से ददका रहा-रै। वर्षि इन चूट वए तो बहुतः पीछ रह जावेंगे। वस परमेलवर के प्रार्थना है कि वह हमे मनिस और बस दें कि हम बाबे वह बके';

# पाठकों को सूचना-

नत एक माह से धक्मेर खहर ने अाव. तथी हो कर्मचारी हुबदास यर हैं। किर की वेंचे-तेंसे, विकास्त से ही बही, हम "हार्स पुनर्यटन" का अस्पेक स क बाठको एक पशुचा पहें हैं।

धाता है कि याप हुनारी विवसता की समक्ष लेंगे।

— व्यवस्थापक

でする。 表別/ある場合数。

# पाप-माशक मध

-- रब. पं चन्रप्रसिर्ह

वस्ते भदो वरेष्यस्तेनायवस्त्रानींको । वेवाकीरवकसङ्घ ॥४॥ (सामवेद, पावमान पर्व)

मानि -- समहीजु : प्विती की मही, बू लोग की स्टूबल सेमें वासा :

(ते) तेरा (वः) को (वरेन्द्रा) प्रदूष करने लावक (तद ) तका है (तेन) उत (श्रन्थता) प्राण-प्रच संबोचन रत से (धापनस्य) चारी कोर परिताका त्रशाह कथा। तु (देशवी ) विका भएनगाओं शपा

(अध्यक्षेत्रहा) पाप की प्रश्रवा का पासक है।

न्यन्य सम नमे क्लोड देने पाडिये । वे मैले हैं, श्रपवित्र हैं। उनये पाप का पूर है। वे हिमा से पैदा होते हैं। उनके साधीर से पाय है। वे पाप ही की उपज हैं और पाप ही की प्ररक्षा करते हैं। वस्त्व बोहन ! तेरे प्रीम का नक्षा पाषप्रद है। इससे स्वास्त्य अनुसर है। इसके पान से मरीर नका कीवन-साथ करता है ! भीर वन को काया-वलट ही हो व्यासी है। वह नणा श्रमुख है। देवी प्रवृत्तियासी रही 📢 ती इत नवे का ब्यान माते ही बाव काती है. स्यमे समती 🖁 । प्रसी भाषना किनी तकट के कारण गृतशाय हो तो केषभ भी ही नहीं, सहसहा उठती है। साई के स्नेष्ठ का नका सत्त को, सरसता की, बतीय की, लोही सदाचार की रक्षा करता है। साम्ब धापशिया माती हो, साई का स्वेही म्रम के रास्ते से न<sub>की</sub> हुद्धा । धन

के लिए तकद बढ़ने ने उसे बातस्य वाता है। पाप की बोहिनी साई के रनेह के सम्मूच एक करा भी शही क्षर समसी।

135

हनारा सब श्रष्टक स्थाता है। उसकी कवि कार की और ही वासी है। कोई धन्दर-सन्दर से मानो वंदी ती धावाच में वाप की जनका करने सबता है। दिस कहता है । पाप है ही शवा, इससे साम ही होगा, मूठ दोवा हो. इनके एक अपना ही नहीं, बपूख वातिका साम है। परोपकार्वकार करन में क्या दोच है ? इस प्रकार के कियने सुध है को नेरा सुनी वन रोब करता खबा है।

त्रको । स्राप की सास्त वचाकर ती बह क्या चस भी बाबे, परम्यु बावके सामने बाते ही वह मोह का---वजान का ताना-वाना विगन-बिन्न हो बाता है ! बापकी एक इनकोर काल पापी का बटाहार कर रेकी है ।

तो किर वह बाद की क्या-ब्रोह कहाँ <sup>?</sup> मेरे लिये यही क्रोम है। मैं वकी का प्यासा हु। एक 'प्याकी ! एक पृष्ठी। एक सूख !!!

# मामाल की खंपलि पर अमसिकत कहतों की समानदा

देश की कनक समाजो की सम्बन्धियों पर शामाओं क ककामधीतक तत्वों ने बनाधिकृत रूप वे काने कि हुए हैं।

मार्थे प्रतिनिधि सभा राज के उपप्रधान व धार्थ स्थास श्रास्त्रीर के श्यान ग्राचार्थ दलाभेवजी मार्च उक्त धनाविकृत करतो की हटाने हेत् मधन स्तर पर प्रयान करने के इक्सूक हैं । जतएव हमारा श्रमी जार्य पुक्तों से इस तरमें में विवेधत है कि ऐसी किसी बीर्य सनाथ की सम्पत्ति जिम पर किसी यसामाजिक व्यक्ति संस्था विशेष ने सनाधिक्रस अप के क्षक्रिकार बना रक्षा हो, की सूचना जाणाव ही की लेखन का करन करें। —सम्पादक

# जिला आर्चे समाज

उत्तर विक्रार बार्य तथा के समझ्य वर्षी की शक्कविक्रीय सम्बंधी क वेड्रमधाम के नम्बीस कासून की गुढि कर उसका नाथ कुनारी विवेदिता सन्दर्भ क्या करका विवास सन्दर्भ की अनुदेश की स्थ सम्बंध करावा ।

सम्बन्ध के कि क्यों से प्रधासन द्वारा एक विवास में प्रतिरोध अरपन्य किया जा रहा गा । जनवीक चौत्ररी देश तरवींक में विवाह के निए भौत्यासम ने शाबेदन किया था: परन्यु तरकासीय समाना व तुमेशने न शान्त्रशामिक पामना है असित होकर उन्हें **मूं है कुलाई स** प्रताकर वनशैक पोक्रशे को केन में तथा नश्लीक खालन की बरवाना रिमाइ हो। ने विजया दिया । परस्तु माननीय उच्च स्थानावाद स कुछ का बुध बाँए पानी का पानी काम कर विका संबद उसन क्यान सैंस्सी में कहा कि नेक्टीक कार्युत नार्योग है, यह उसे अंक्टी दन्यानुसार जीन का हक है तथा जाबन उसके इच्छा ने नियम वसे रिमार्थ होंग में नहीं एक संबंधी है।

उक्त विकास सरकार में हवारों की शक्का ने मोनो ने बाक हवा वर-वह का सामरिक अभिगन्तम किया गया ।

-- राग बुम्धना कार्वालय प्रकारी, धार्व शमाज, समस्य

#### वार्य समाज प्रजमेर द्वारा प्रकाशित साहित्य

प्रो क्वाज़ब कार्य क्वारा किंक्त प्रस्तके

। वेस धर्म और सिन्द समाय की कार्य समाज की देव---मुस्त 0 50 वैसे

2 हमारी राष्ट्रीकता का बाहार-मूल्य क 1 00 3 काचार सहिता - कृत्य II 50 पैसे

4 दी क्षाप नवास दिल्यू विवादत (गर्पेजी)-विवेच रिनावती दर **#** 75 00

5 साथ सभाव हिन्दू धन का सम्प्रदाय नहीं बूल्ब--- 50 व श्रन्य प्रकाशन

। अपने समाज (हिन्ती) मूल्य सजिल्द 20 00 र. व्यक्तिर 16 00 से, लामा साववसराय

2 क्या किका (बाम 1 से 13 तक) पूरे सैट का बुस्य व 3200

3 क्यानाम कथा शरह-पूरव र 3 00 4 वरिया निवासका (समस्त देश-विदेश की वार्य विश्वास सरवाको का क्रियम) - मुख्य व 12 00

## सत्त्वार्त-प्रकाश्चराश्च साला १५-सम

( अनेक वश्रुश्यास वर स्वतंत्र हैं का ) 1- रिस्पर का नाम फर्नेन '94 राग्ये सीय ग**रफ क्रेडिक**ी

10- चीने खहे में को सही है 2- बार्क गता-पिता

3- क्रिक्स और परिच निर्माण 11- क्रियु वर्ग की निर्वक्ता

4- ब्रह्मचाथम का महत्य 12- वीड भीर चैन 🕊 5- सम्बाको कीन भीर वंशर हो 1 13- वेद चीर ईक्षाई मह

6- रा<del>वद</del> व्यवस्था 14- इस्छाय घोर वैदिक धर्म 7~ ईश्वर सीर देव 15- वाल का धर्म समा प्रकास

**8- बनत** की बरपत्ति

विक्रेय--- व की हैं बर पार्थ करत के चोडी के विदानों के द्वारा विविक्त है इब सम्बन्धना का सन्तरक सार्व समाद शबकेर के प्रकार गरे. क्या-भें अभी प्राप्त ने किया है। सम्बन्धान के पूरे वीर का कुछ ह/- करने हैं।



वैदो-सिलो पर्म मुलम् वेद ही समस्त धर्म का मूल है।

सत्य को प्रहरा करने भीर भसत्य खोड़ने में सर्वेश उद्यन रहना चाहिए ---महर्षि दयानन्व

सृष्टि सम्बत् 1972949087

दयानन्दाब्द : 162

पाक्षिक पत्र

"ग्रायं हमारा नान है, वेद हमारा धर्म। क्रीइम् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ।।"

श्रमय मित्रादभयम् अभित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात् ।

क्रण्यन्सोबिश बमार्वे स सकल जगन् को ग्राय बनेए

हमारा उददेश्य .

समाज की वर्तमान एव भविष्य में पैदा होने बाली समस्याधीं को इंड्रिंगत रखते हुए द्राप्समाञ्जका पुनगंठन करना है।

भाइपदक् 7 सबत 2044 वाधिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

वर्षं 3 शनिवार 15 अगस्त, 1987 अंक 12 प स-43338/84 II

अभय नक्तमभय दिवा न सर्वा प्राथा मम मित्र भवन्तु ।।

#### (नतांक से धारे)

क्यि सम्बेह में हिन्दू इसलिए हूं कि है। युभ्दे हिन्दू हाने की खुकी है। किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हुँ 🏞 रिलीजन के प्रचलित सर्व मे हिन्दू कोई सर्म नहीं है अपितु जीवन काएक तरीका है। स्वय महास्मा गौधी ने अपनी अपरोक्त पुस्तक के पुष्ठ 7 वर बहुलि साहै वि "द्विन्दू बर्म केवल बतनामी हिन्दुचो का धर्म सीर में सपने प्रापको उसका मनुसामी मानते हुए भी उनकी सनेक बाती की अपेक्षाकरताई। किन्तुवर्धिर्मे सनामन हिन्दू धर्म का धर्म करू। मैं अपने भाषकी लगातनी हिन्द् इसलिए कहता है कि मैं देव, उपनिषद पुराश तथा धम्य हिन्दू धर्मप्रन्यो मे विश्वास करता हूं और इसकिए **श्र**वतार कीर पुतव •म को भी मानला 👸 । अपने विशेष धर्म में बराधिन धर्म को मानता है धर्मात् उसके वैदिक सर्थ में न कि उसके यसमान प्रचलित भीर विकृत भव मे। मैं भी-आरपर भी व्यापक मण से विक्यास करता है और मृतिपूता मे श्राविष्टवास नहीं करता ।

#### सामरकर की परिभाषा. --

प्रसिद्ध कान्तिकारी भीर देशभक्त भीर सावरकर ने 'हिम्दुस्व' नामक पुस्तक मे इस बारे में क्के सुन्दर श्रीर मौशिक विचार व्यक्त किये है । हिंदू भीर हिन्दू धर्म का भेद बताते हुए वे पूचले हैं कि हिन्दू कीन है? इसका शही अर्थ बानने के जिए हिम्बूईरम या हिन्दू श्रम को ज्याक्या करनी ग्रानक्वक है। किन्तु मनेक इस अंबलन में घरफान होकर विराजा श्रमुभव करते हैं कीर इस प्रकार

# हिन्दू बनाम हिन्दू धर्म

---भाषार्या व्याञ्जेय आर्टा ---

धनेक समुदायों को या तो वे हिन्दू नहीं मानते वा फिर उसके द्वारा हिन्दू बम के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न करते हैं। इशमे सिख, जैन घौर देव समाजी ही नहीं हमारे वेतवे भी भीर प्रवतिश्रील प्रार्थसमानी भी हैं। साबरकर ग्रामे लिखते हैं कि हिन्दू धम उन सब धार्मिक विश्वासी ग्रीर मिन्न∽मिन्न समुदावों के लिए नागु होना चाहिए था जो धपने का हिन्दू कहते है किन्तू साझारणतः वह उसी धर्म का वाचक है जिसके बहुसक्यक हिन्दू ही अनुवासी है। किसी धर्म भीर जातिका नाम ऐसा होना चाहिए कि को सबके सिए नहीं तो प्रशिकांश लोगों की समान विशेषताची की प्रकट करता 💆 । ऐना करना सुविधायनक भी है किन्तु केवल सुविधाजनक द्वीने के कारण हमे ऐम किसी सब्द वा परिणाया को स्वीकार नहीं करना चाहिए जो हानिकारक हो सीर असके कारण यलतफ्द्वभीवा अय उस्पन्न होता हो। इस दृष्टि से हिन्दुओं का बहुनत जिन विशेषताओं के काश्य त्राय एक समन्ता जाता है उनका साधार स्मृति, श्रुति या पुराण है। इसनिए उसे सनातन धम कहना श्रामिक उपयुक्त है, किन्तु बहुमत क इन हिन्दुनो के वासरिक्त वृसरे हिन्दू भी हैं भो यातो पूरारूप ने पुराणा धौरस्मृतियों सौर वहा तक की वेदो तक का नहीं मानते । इससिए बिद हिन्दुओं के सर्वका प्रयं

भीर इन्हें ही हिन्दू कहा जाय हो दूसरे उदार भीर प्रयक्तिशील हिन्दू इसको स्थीकार वही अर्रेन भीर बहुमत के इस दावे की सनुचित मानेंगे। इसिक्ए को हिन्दू अल्पमत में हैं उनम धर्मों को भी स्वीकारनही करेंगे भीर बहुमत के इस दाने को प्रनु-चित्र मानेंचे । इसशिए वो हिन्द जल्प-मत में है उनके धर्मों को भी स्वीकार करके हुमे उनका पृथक छ। निक अस्ति-श्य स्थीकार करना होगा, जन्मया केवल पौराणिक भीर कट्टर हिंदुओ को ही हिन्दू माना चाय तो यह सुधारबादी हिन्दू व्यापक हिन्द्त्व की सीमा से ्यक समस् जाये गे।

इस प्रकार सावरकर अही यह स्वीकार करते हैं कि बहुमत के हिन्दुओं के धर्म से सस्पनत वाने अनेक हिन्दूओं का धर्मप्रथक् धीर भिन्न है बहाँ वे यह भी चेतावनी देते है कि "हिन्दूधर्मवी बहुम्त के हिन्दु घो का सर्ग है उसकी घन्य सब हिंदुधो पर थोपने का हमें बलत प्रयत्न नहीं करना चाहिए अन्यया **ब्**न्दुक्षी मे परस्पर कटता उत्पक्ष होबी । यदि हिन्दू सम समस्त हिन्दुयों के अर्थका खोलक नहीं हो सकता दो हमें ऐमा धाग्रह नही करना करना चाहिए और वह स्वीकार कर लेना चाहिए कि बहुमत के हिन्दु भी के धर्म का नाम समादन धर्म प्रयोश च ति, स्मृति, पूराकोक्त धम है भीर द। शीके हिम्बुओं के अपने-प्रयमे सम है जिल्हे तिस सम

मार्वेषम्, जैन धर्मतया श्रीय धरः के नाम से सम्बाधित किया बाता 青111

#### छोकमाण्य सिलक की परिभाषा

लीकमान्य तिस्क म केवल हिन्दू धर्म के एक निष्ठावान अनुवापी ही वं अपितु वं हिन्दू धर्म हास्त्र ग्रीर संस्कृत के भी विद्वान वे । न्यावमृति ण्योन्डगडकर से हिन्दू धर्मकी उनकी व्याच्या इस प्रकार तद्धृत की है-त्रामान्यबुद्धिबेदेषु साञ्चनानामनेकता । उपारमानामानियम एतद् धर्मस्य सक्षसम् ।।"

तिनक द्वारा रचिन सम्कूल मे हिन्दू धर्मकी इस परिभाषा के मनुसार वेदों के अति प्रामाणिक **जादर भाव, उपासना की विभिन्नता** तमा उपास्य देवो की अनेकता बह हिन्दू बर्ग के लक्षण हैं।

प्रक्त यह है कि क्या धार्यसमाज इस परिमामा के बनुसार दिन्दू सर्ग मे आ सकता है? स्पन्न है कि तिलक की इस परिभाषा और उसकी न्यायमूर्ति नचेन्द्रमहक्षर द्वारा की वर्ड व्याख्या के धनुसार झार्यसमाज हिन्स् सर्ममे सम्मिमित नही किया बा हकता । स्वयं सावरकर ने लोकनान्य तिसक की इस व्याख्या का विवेचन करत हुए 'हिन्दुस्व' के वृष्ठ 107 थर लिखाहै कि 'तिसक की बहदरि-भाषा सनातन धर्म की व्याख्या है जो उन्होने चित्रमय जनत्, (सचित्र मराठी साप्ताहिक) में भ्रमने विद्वता-पूरा लेखा मंकी है। क्षोक्सान्य तिलक ने उसमें स्वयं स्वीकार किया है कि इस परिवादा के धनुसार बाध समाजी हिन्दू दर्गकाध गनहीं हो सकते वधाप वे राष्ट्रीय दृष्टि से भने

(शेव पृथ्ठ 2 पर)

निवेशकः बलाजेयधार्य

केवल बहुमत के धर्म से लिया जाये प्रधान संपादक : रासासिह

संवादक बीरेन्द्र कुमार झार्य

कोन कार्याः 21010



# स्वराज्य को सुराज्य बनाय

15 ग्रगस्त 1947 ई को देश अग्रेजो की पराधीनता से स्वतत्र हुआ । इस स्वाधीनता के लिए बनेक कुर्वानियाँ देनी पड़ो । अग्रेजो की लाठिया-गोलिया खानी पडी, काले पानी की सजाये भुगतनी पडी, कई क्रांति बोर फासी पर लटक गये, लाखी लोग जेलो मे गये और यातनाए मही। बाखिर बलिदान रग लाया। देश स्वाधीन हुआ। कहा भी है, सर्वआत्मवश मुख, सर्वपरवक्ष दुखां" अर्थात सब प्रकार से अपने अधीन रहना ही सुख है, तथा सब प्रकार दूसरों के प्रधीन रहना ही दुख है। गोस्वामी तुनसीदास भी कह गये 'पराधीन सपनेह सुख नाहि' अर्थान गुलामी मे स्वप्त मे भी सुख प्राप्त नहीं होता। स्वराज्य ती हो गया पर

अब इसे सूराज्य बनाना है।

सुराज्य से तात्पय है जहां सब प्रकार की व्यवस्थाये सम्यक् भीर समुचित हो। किसी का शोषण न हो कोई भूखा, नगा न रहे। सबको रोटो, कपडा और मकान उपलब्ध हो सके। देश सर्वेतो मुखी विकास करते हुए उन्नति पथ पर अग्रमर हो अहा कोई बेरोजगारन हो, हर हाथ को काम हो । कल उद्योगधन्वे, यातायात, सदेशवाहन, शिक्षा, चिकित्सा, कृषि, व्यापार सब प्रोजन हो। सबसे बढकर समस्त देशवासी ईमानदार, कर्राव्यपरायस कर्मनि , धार्मिक, धास्तिक नैतिक एव मानवीय मूल्यो के प्रति ग्रास्थावान, चरित्रवान, देशभक्ति एव परीपकारी हो। सर्वजन हिताय लक्ष्य विश्व मे प्रतिष्ठा हो । हो । राष्ट्र शक्तिशाली बने, स्वार्थवाद भीपावाद, सात्रदायिकना, त्रान्तीयता, जातिवाद, क्षेत्रीयनावाद, कर्मभेद, जानिभेद, छुआछूत, गरीबी रिष्यतखोरी न्ना चार आदि सब बुराइयो से मुक्त हो । बात हवाद, नक्सलवाद साथवा उग्रवाद गुण्डागर्दी, चोरी हकैती नक्षाखोरी आवि न हा। जहाँ के सत्ताधारी शासक ग्रापने आपको जनसेवक समभे । जिनमे सत्ताकामद न हो ।

जब समस्त भारतवासी कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक गुजरात लेकर नागालैंड तक एकत्व की अनुश्रुति करे, सब 'सगच्छध्व म सबदध्व, वो मनामि जानताम्'' "समानो मत्र समिति समानी,' के ग्रादशों को धारण करते हुए "सर्वे भवतुसुखिन "कालक्ष्य अपने सम्मुख रखें, जहा भारतीय संस्कृति, भारतीय परिवेण, भारतीय भाषा, वेशभूषा, खान-पान आ चार विचार हांग तभी हम वह सके गे कि प्रव स्थराज्य के

साथ साथ सुराज्य भी आ गया है।

''रामराज्य' है। रामराज्य की हमारा आदर्श परिकल्पना ही सुराज्य है। "दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, रामराज काहुन ब्यापा '। राजा अश्वपति बडे स्वाभिमान के माथ यह गौरवपूर्ण घोषाएं। करते थे कि "मेरे राज्य मे कोई चोर शराबी, कदाचारी तथा भ्र-नही है। '' ऐसा भारत के ही ऋषि दयानन्द का "आर्यावर्त्त, गाम्रीजी का रामराज्य तथा लाल-बाल ग्रीर पाल के स्वप्नो का भारत होगा।

आग्रो हम सब मिलकर न्याधीनता की चालीसकी वश्याठ पर यद इढ सकल्प ग्रहण कर कि हम स्वराज्य को सुराज्य बनायेंगे। वद भी कहता है, यनेमहि स्वराज्ये अर्थात् हम सब मिलकर स्वराज्य को सुराज्य, मुहद्वता और समृद्धि के लिए प्रयस्नशील हो ।

भारत माता की जय हो।

– বাবাভিন্ত

# दढत्रती कर्रावीर पं. जियालाल जी

जने ह सवर्षों के बीच जीवन भर जिन्होने जनसाधारए। की निस्वार्ध सेवा को और भार्यसमाज तथा उसकी सस्थाओ की तन-मन-धन और सर्वात्मना लगनमे सीचा उस प्रजमेरके सुप्रसिद्ध आर्य नेता कर्मवीर प जियालाल जो को हमारा शत-शत नमन। प्रत्येक वर्ष श्रावरणी पर्व को उस कर्मबीर श्रीर धर्मबीर का जन्मदिवस धार्यसमाज ग्रजमेर धीर उसके तत्वाबधान मे सवालित शिक्षण सस्थायों में समारोहपूर्वक मनाया जाता है। धार्यसमाज धजमेर तथा धार्यसमाज शिक्षा सभा अजमेर ने दयान द कॉलेज ग्रजमेर जैसी विशाल महाविद्यालय के सम्बापक कर्मवीर प जियानाल जी के प्रति कृतज्ञना प्रकट करते हुए जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण सस्थान (बीएड टीचर्स ट्रेनिय कॉलेज), जियालाल कन्या सैकण्डरी स्कूल, जियालाल कन्या प्राथमिक पाठशाला, जियालाल शिशु निकेतन की स्थापना की तथा 1964 में "सेवा और संवर्ष" के नाम से उनका जीवनवृत्त भी प्रकाशित किया जो एक प्रेरणादायी वालेखन है

कर्मवीर प जियालाल जी महर्षि दयानन्द ग्रीर ग्रायंतमाज के प्रति अन्य निष्ठावान, आदर्श सेवाभाव के अनुपम उदाहरए। तथा धून के पक्के थे। प्रातताइयो एव समाजकटको से सधर्ष करने में उन्हें जानन्द का जनुभव होना था। उनका मनव्य था --

> जिन्दगो जिन्दादिली का नाम है। मुदें दिल क्या खाक जिवा करते है।।

अजमेर में प्लेग के समय उनके द्वारा की गई अनुकरस्**ी**य सेवा, हैदराबाद के धर्मधुद्ध सत्याग्रह तथा पत्राव हिन्दी रक्षा ब्रादोलन में सत्याप्रहियों की स्पेशल ट्रेने भिजवाना, सस्याओं का सचालन, ग्रनाथ एव निराक्षितो, श्रदला-विधवाओ, परित्यक्ताओं को देखभाल, आर्यसमाज के विशाल नगर कीर्तन. महोत्सव, हिन्दू मन्दिरो की रक्षा निर्मीकता तथा अट्ट साइस, छुआछन के निवारसाथ विशास प्रीतिभोजो का आयोजन आदि सब उनके अद्भ्य कलक्यनिष्ठ होने के प्रमास है।

मजन ही के दम से इस दहर की आबादी एक उसके न होने से वीरान है वीराना।

--राचासिह

(शेष पृश्ची का)

ही हिन्दु हो। यह परिमाणा वद्यभि अपने अराप में बड़ी अर च आही है किन्तुबहन हिन्दुत्व की परिभावा है और न ही हिन्दू धर्मकी। वह केवल सनातन धर्म सर्वात अ ति, स्मृति, पुराचोत्तः सम्प्रदाय की दरिवादा मात्र है।" लोकमान्य तिलक की इस परिभाषा के सम्बन्ध मे एवी कुलकर्भी द्वारा विस्त्री ''तिलकाची गेली 8 वर्ष'' नामक मराठीपुस्तक के युष्ट 220 के यनुमार स्वय तिश्वक कहते हैं कि 'बरी इस परिभाषा का उद्देश्य वह है कि उनम हिन्दूसर्गकी समस्त अ।सियों, वर्णी भीर सम्प्रदायी का समावेश किया जा सके तथा धन्य धर्मों को उससे पुत्रक्तमध्या जा सत हैं को ध्रपने-ध्रपने देवताओं को सके। दूसरे शब्दों में बहु परिभावा तर्कशास्त्र के अनुसार न अधिक के सिए ऐसी मान्यता बरूरी है।" सकीरत होती चाहिये और नहीं

प्रशिक न्यापक।" इस्लाम धौर ईसाई धर्म से हिंदू धर्म की भिन्नता वमति हुए तिसक भिखते हैं कि "इन क्षरों के विषयीत हम यह मानते हैं कि ईश्वर के समय-समय पर झव-तार पक्ट हुए हैं और माने भी होने वसपि ईश्वर को हम एक मानते हैं किन्तु हम यह स्वीकार नहीं करते कि पृथ्वी पर उसका एक हीं तथा सन्तियं सवतार हुआ है। जिस प्रकार उपासना के सनेक तरीके हैं उसी प्रकार उपास्य देवता भी प्रकेश हैं ऐसी हिन्दू अर्थ की भाग्यता है। धन्य धर्म के समान हिन्दुची का कोई निश्चित देवता नहीं है। हम यह नहीं मानते कि केवल विष्णुया कियानी खपालना से ही मुक्ति हो सकती है। हिन्दू धर्म में भीव, बैच्नव, बनपरंव बादि बनेक बोध्य वानते हैं भीर उनकी उपासना

(शेष पृष्ठ ३ पर)

धार्यसमाब के निवस हकारे बन कार्यों का पाकार होने पाष्टिए ! क्षम्यंत्रेयाल के निवस वार्यव्याल को विश्वपादी दस्ता पेशित कर रहे हैं। पूज्य उपाध्यात को ने निवस की कतीती पर वपने पृष्टिकोस धीर कार्यों को ररकन की ग्रेरका धीड़ें !

कोई बनाव जपने विवेद सक्य के विज्ञा स वन सकता है न जन जनता है। कुछ तस्याये केवन धान्तीवन के साहार पर जबती है। परन्तु वह कोस्तु के बैत के समान विवेद सक्य न हों। के कारण कुछ नभा महीं धारी। प्रार्थसमाव ना स्वेद प्रार्थ तमाव के यह निवनों ने वर्णित है। स्वके समानने की धानस्यकता है।

इन नियमी ने तीन बातें विशिष्ट हैं, जो तीनो धलन श्रस्त भीर मिलकर मार्थलमात्र तथा ग्रन्य सरकाओं ने भेद करती हैं, पहिले वो नियम ईंग्वरवाद से सम्बन्ध रक्षते है। सत्तार ने प्राथ कक्षिकाश मनुष्य र्देश्यरवादी है भीर देश्वरवाद के पचासी मेद हैं, पर-तु झार्यनमाज भीर स्थानी दयानन्द की का ईस्वर-बाद अपने दन का निराक्षा है, हर मनुष्य इस निरामेपन की नहीं सममता है। दूसरे ईश्वरवादी जीव मीरस्ष्टिको ईश्वरके लिए ही सम्बद्ध हैं इंद्रवर के श्रतिरिक्त इनका बन्ध जबोजन नहीं मानते. आर्यसमाजकी पृष्टि में सुष्टि का प्रयोजन जीव है ईश्वर नहीं, यह बडा भारी भेद है। जिनकी यदि अपेका करवी जाय ली हुम भी ग्रन्थ मधाव-सम्बग्धें के समान हो बार्येंगे।

# आर्यसमाजकाआधार-भूत दृष्टिकोण

- स्व श्री प गगाप्रसादबी उपाध्याय, एम ए --

सस्या न बाह्यण बस्था, यह वार्थ-वाणिक एव ताबयेतिक सस्या, कांको वेशि सपेद नेटुंबे, चीनी, अरावती, दिन्तु, हक्ष्मी तथी मतुष्यो को सस्या है। वो बायंतनाची इस द्ष्टिकोण को नहीं समक्षता यह प्राथनमाय को उक्षतिशोल नहीं बना सकता। प्राय वार्यवस्याकी घरनी में रूपायं को सीक्षा साथस्याज के निवयों से न लेकर हिन्दू परस्य भो से लेना है। उसका मस्तिक उन्हीं परस्याश संबन, है। यस शार्थमपाक साथी माओ लीवड में फसी रहनी है जिसमें सनातन द्वस की सनेक गाडिया फसी हुई हैं।

आयसगाज के नियम आध्यमाज का मुख्य नक्ष्य है। उमी दमीटी से सम्य सब मतव्यन्त की मोचना

स्वलब्रका विवस पर विशेषः—

# सूरज तो उग आया लेकिन '

( ले - लाखनसिंह भदीरिया "स्रोमित्र" )

- E\*3-

सूरज तो उद धाया लेकिन, किश्जो पर णीतन-स नये है।।
सूरज के जुनमें की जुसियों, किश्यको नहीं मुक्त बतवारे?

पर उनने के सदेशों ते, कोई जब तक मन नहलाय?

यननो ते निस्तते प्राश्वासन, सपनी पर प्रतिक-स लगे हैं।
सूरज तो उन आया लेकिन, किरणो पर प्रतिक-स लगे हैं।
सन्तरिक से उनन्की किरसे सभी सरिजी पर तम सोया,
सभी टरोच रहा गय जन-जन, सन्तिवार ने कोवा-कोवा,
पारी का होता स्विजन्यत्वन, राजो पर प्रतिक-स लगे हैं।
सूरज तो एवं साथा लेकिन, किरणो पर प्रतिक-स लगे हैं।
सूरज तो एवं साथा लेकिन, किरणो पर प्रतिक-स लगे हैं।
साथी ने सब कुन्न दें साला, साथक की स जली रीति है।

बुक्ति स्वार्धकारा से विंव, हुधान बुक्त नहसूत मुक्तिका, विल्लीकी गलियो से वाये, निक्ला, नहीं बुजुस मुक्तिका, क्लानेको मिल रहानियन्त्रसु, परयो पर प्रतिबन्ध तये हैं। सूरज तो उन धाया सेकिन, किरको पर प्रतिबन्ध तये।।

क सिवो के अक्षरी ५र कन्दन, सुमनो पर प्रतिबन्छ लगे हैं।

सूरक तो उम बाया लेकिन, किरणो पर प्रतिबन्ध लगे है।।

भागीरक के बाब कये हैं, बागीरको स्वय उमझी है। सबर-सुतो की राख सकाबिन, दो दूरो को सरस पही है। अन्दूय-फूसी कर रहे सावयन त्थिती पर प्रतिवश्व लये हैं। सुरख तो सब सावा लेकिन, किरफो पर प्रतिवश्व लये हैं।

हागा। वनीटी से मोने की परखने हैं, मान में कसौटी की नहीं जब आर्य समाज के सिक्षान्ता के लिए कसौटी मिल गई ना जहा कही बाहे किमी पुम्तक मंक्यों न हा कोई। ऐमी बान मिले जो इस कमीटी पर ठीक न उत्तरनी हातो उसे त्यागना ही पश्चेगा। स्वामी दशान-द जी न इसी दृष्टि से आर्यमशाज के नियमा के भीतर न कही अपनानाम डाला न अपनी पुस्तनो का । इस विशय में बाधुनिक आचार्यों में ऋषि दयनन्द का नाम निरासा है, सब की अपन नाम का प्रमोधन है, महात्या बुद्ध भी अपने सिच्यों को कहते हैं कि बुद्धकी करण आखो, गीता मे बीक्रध्य जी भी इसी बात पर बल देते हैं मद्याची भव" बीता, लेकिन ऋषि दयानन्द तो कही भा य्म बकार का दूरस्य सकेत की नहीं करते हैं। यदि आर्यममाजी अपनी श्रद्धा के आयेश में इस प्रकार की कोई प्रवृति उत्पन्न करेगे तो महन केवल स्थामी वयानस्य जी के मन्तव्यो के बिरुद्ध होगा अधितु इससे आर्थ-ममाज की उल्लेखि में बाधा पद्देगी।

स्वामी दयानन्द जी न मत्याथ प्रकाश के अन्त में 'स्वमन्तव्याम--तब्य प्रकाश' के नाम से एक परिशिष्ट दिया है जिसका प्राय आर्थेसमाज का सिद्धान्त समग्रा जाता है। पर-सुबह भूल है, यदि ऋषि को ऐसा अभीष्ट होताता वह मत्रव्य अमृत्रव्य के साथ 'स्व शब्द का प्रयोगन करते। बहाभी स्वामा दयानन्द जी ने एक महत्वपूरा प्रवृति का विगदमन किया है वे यह चाहते हैं कि लाग अपने मिद्धान्ता की खोज मे ऋषि दयान-व की अन्धी पैश्वी करें । 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' है क्या ? बस्तुत, यह है एक कुन्जा ऋषि द्यानन्द के ग्रन्थों का समभन के लिए या वो समिक्तिये कि वह कोच है अन सन्दो का जिनका स्वामी दयानन्द जीन अपने अन्यान्य प्रन्यो ने प्रयोग किया है। एक सब्द के अनेक अथ हो सकते हैं। कड़ी पारिमाधिक कही लाक्षचिक रही धात्वयं, परन्तु अव्यो का अय ती प्रकरण से लेना होगा। इमलिए स्वामी जी ने भ्रयन ग्रन्थों की बुन्जी 'स्वमन्तस्यामन्तस्यप्रकाम' मे दे दी है। सम्भव है कही उसके विपरीत

(शेव पृष्ठ ५ पर)

( बताक के माने )

#### प्राकृषिक किहान कौर काड्यार्टनक विद्यान के समन्त्रय की जिल्लासा—

श्वापि महर्षि दयानस्य सरस्वती ने बो की बाहब को एक वज घे वित किया जिसमें उन्होंने लिखा कि "कमेटी और कई फाजिल मात्रवास की यह राय है कि नीजवान सावी को बुरोप में मुफीव सनत व हिश्फत शीखने के लिए भेषना वरूरी नहीं है क्षचापि श्री बाइज ने उन्हें सपने विचारो से प्रवस्त कराते हुए लिखा कि "को मेरा क्याल या कि वह यरोप या वर्मनी से सीखना वा दासिल करना चाहने हैं तो यह बिल्कुल दरहत है कि उन्हें अपनी मदद आप करनी चाहिए विस्तु कई बातें ऐसी होगी तो हमारे पास भाग की निस्वत बहुतर और जो धापके लडके हमारे यहा आकर उनकी माहयत मालुन करके उनके बनाने का तरीका सीसकरमृद्ध बना सक्षेत्रे । इन सकसद के लिए खड़ा तक हमारी क्षानत म है, हम उनकी मदद करने के लिए तैयार हैं भीर इसके सभा-बजे म हम भाप से या भापके लडको से वे लुबिया सीखने की तैयार हैं जो इन्ह बदबह प्रार्थन फिलानफी धीर धापकी तालीन के हासिल है और धाप से भीर हिन्दुस्तान के दीगर श्रवलमन्द असहाव से जिनके पास इसानी धीरखदाई राजका हमारे मीजूदा स्ट्रम दानो भीर फिलासकी की निस्त्रत बहतर तीर पर बाहिर कश्ने भीर समभने की कुजी है ए। लीम हासिल करन के लिये तैयार है।

याने वादच ने पन से स्वदेशस्य प्राकृतिक विद्वान प्रचांत प्रीतिक विद्वान प्रचांत प्रीतिक विद्वान के उन्नित ने स्वयन कराया स्वया साध्यास्त्रिक ज्ञान की जो स्वनिक उपति हिन्दुस्तान ने है उनकी उपलब्ध जनने देशस्य नम्पुक्क एवं बंतानिने है हो एसा परस्वर प्रकृत्व देश कि एया प्रवास वातिक प्रकृति करात प्रवास वातिक प्रकृति करात प्रवास वातिक प्रकृति करात विद्वार की स्विध्यक्ष करते हुए तिखा है कि पीया कि इस हिन्दुस्ता स्वास व्यवस्था स्वास विद्वास हो स्वास कराते हुए तिखा है कि वी स्वास कराते हुए तिखा है कि वी स्वास कराते हुए तिखा है कि वी स्वास कराते हुए तिखा है स्वास कराते हुए तिखा है स्वास करात हुए स्वास कराते हुए स्वास करात हुए स्वा

# प्रो. जी. वाईज के पत्र महर्षि के नाम

🗕 खा. कृष्णवाक सिंह्य 🛶

दोनो की भाषिर-उल-समर इतसे फायदा होना।

वर्षन निवासह व्यक्ति भारतीय आयों को फिती प्रकार के सक्का नहीं मानते हैं वरिक सपने आप को दूरानन कार्यों का वस्त्र ही स्वीकार करते हैं। वैका कि पत्र की मिन्न वरिकार से सुव्यव्द होना है— 'कर्माने' के को दोनन और मैं आपको कैर नृतिसमक्ते, वरिक हुक आपके हक्षीकीचवाआय पाई है, न किर्क सास कुन के रिकार से विक्त कहानी सीर पर की 1"

#### नेसुरछ हिस्ट्री के यूरोवियम प्रोकेसरों का विचार-

प्रो वाईक ने प्राकृतिक इतिहास के यूरोपियन प्रोपेसरी के विचारी से बनमत कराते हुए महर्षिको लिखा कि-- "नेचरम हिस्ट्री के सुरोपियन श्री सरो का क्याल है भीर व इसे वे फायदा सावित करने की कौतिक करते हैं कि इसान बाली वाले दरिन्दो की जिनकी दम भी भी, धीलाव है। -- बर हकीक्त बहुत यादमी बन्दर ही है, सिवास इसके कि उनके बल भीर दुम नही है। वे लोग प्रपने लिए साप काम नहीं धौर न सोचते हैं,वस्कि बन्दरी की तरह वरखद पर बैठे हुए वीयर बन्दरों की नकल करने पर ही इक-विका करते हैं।"

काने उन्होंने किया है कि

— में निहासत एइम महे हुए दिन

का महार का को तमनीम करता ह

का ही कपड़ा होगा धनर कोशा वह
धाराफनकमा घोर जान करी। गो-एइसान को हाकिक होगा को वो

बसीम जनाने में हिन्दुस्तान में धारा

धारी उनमीस है सब भी वहा

पार्थी उनमीस है सब भी वहा

पार्थी उससीस है सब भी वहा

खनाने की किसीय है। इसे समाज कर रखा होगा। <sup>9</sup>

#### काम्म ध्यय के लिए विकार—

प्रो चाइय ने लिखा कि हिन्दुस्तानी नव युवको कम खर्चे पर क्लाको तत्त का प्रथिक खर्चे के लिए हम तैयार हैं वैसाकि उहोने लिखा है कि---

"अमर ऐसाही मानवाहै जो में भायों के लिए भवतो शरायत-ए-खर्चको उनकी हासत के भुतादिक कम करने को तैयार हा शाकि वे सडके भी हमारे पास द्या सकें जिनके बारुदेन समीरी जिलना रूपया भ्रदा नहीं कर सकते। — हमसे वो कुछ सकेगा, इस मार्गीको अपने वहाँ सैने के लिए भीर सदद करेंगे क्योंकि इमे इससे सहानी कायदा हासिल होगा भीर हमारी बवाल है कि हमारे धपने नौषवान सबके उनके घाला श्वसाब भीर साचरको ते फायदा उठायेंने भौर वे इमारे खडको के लिए एक काबिल-ए-सब्सीद विसाल होगे। "

याने तिवा है कि 'मैं उस दिन की प्रतीक्षा करता हूं जबकि पायों के प्रसा धावरणों धीर परिव मिसाल से हमारे जमेन नीजवान जी उस प्राप्त के स्वत्य हमें हमारे जमेन के लिए निहासत देशकहा है। — इस लिए प्राप के प्रार्थना करता हूं कि प्राप्त के सार्थना करता है कि प्राप्त कमेटी की परवाह न करें। कसरक-ए-राय प्राप्त कीर पर सही पत्त का पर सही पहुंचा करती, धारा के स्वे हे ए एक सक्त कितना ही होशियार धीर पुक्कत कितना ही होशियार धीर पुक्कत करती सार्थ धने से, सबसे हर एक सक्त कितना ही होशियार धीर पुक्कत करती सार्थ पर सह सिन प्रप्त में नी सार्थ प्राप्त के तकरीन कर दें।

इसलिए धाप अपने तुलवा की मेरे पास धेदने में साम्मूखन करें। हम उनको उनकी अध्यक्त पर ही वेते को संशर हैं।

न्मुचि व्यानस्य की भारतीय लक्ष्युक्रमां को कछा कोस्रक के प्रविद्यार्थी जर्नन भेजने की नीत नड-कछ क्यों प्रती ?

वैसाकि स्वामी जी के बजी भीर अर्मन के जो की बाइस के पत्रो के बध्ययन से यह साफ बाहिर होता है कि महर्षि भारतीय नवसवकी को अपनी में कलाकोशन की शिक्षा वाने के लिए धेवना चाहते वे शाकि स्वदेश कलाकीश्रम तथा प्राधिक स्थिति में सुद्द हो सके और देश की वर्धमुखी उन्नति हो सके । उधर अर्मनी के विद्वानी जारतीय नवयुवकी से भारतीय फिलासफी तथा प्रध्वारि-मक विज्ञान को प्राप्त करके पारलोकिक अभ्युदय प्राप्त करने की प्रवल विकासा थी । भारतीय लवयुवकों के विदेश जाने से कम से कव सर्वे की व्यवस्था भी भी जी. बाइज ने की और कमेटी के निर्शय को उचित न मानकर उन्होने महर्षि वै प्रार्थनाकी कि साप सवस्य ही नीजवानी की हमारे यहाँ जेज देंचे हम सम्बक्त ब्यवस्था करेगे ।

उपयुक्त सम्पूर्ण पत्रीय विचार बनकर ही रह नवे भीर इन विकारो पर कोई यया भंबो बना नहीं बन सकी, इसके वई कारण ही सबत है। प बुग्वेडिटर मी शमक और ने एक विभिन्ट तथ्य की ओर ध्यान ज हुन्ड किया है जिसके कारण महर्षि धपनी योजनाको मूर्तं क्य नहीं दे सके। मन्यिका हृदय सरश स्वभाव का होने के काण्ला प्रत्येक व्यक्ति पर विश्वास कर सेते वे जैसे मुत्तीवकता-वर्गसह, मूजी इन्दर्शण अनेक व्यक्तियो पर विश्वास किया ग्रीट उन्होने सम के शोधवास महस्ति के त्ताच विश्वासम्रात किया और विरोध भी किया।

शक्त प्रकरण में प्रमुखिकार की का विचार है कि प्रोजी वाहक के भावेदन के प्रयम उद्धरण में बिस्त कमेटी बीर विकिष्ट व्यक्तियों की सम्मविका ककेत किया है। उन में एक विकिष्ट व्यक्ति सासा ग्रुक्तराव्य

(बेब पुस्ट 5 पर)

कृष्टि से लेकर साम तक वेद मानव सीवन के लिये सत्तु प्रीर्शा कोशारहाहै जब कभी मानव क्सन के नर्सकी धीर जाने लगता है तब वेद ही उसके उत्थान का माम जबस्त करता है। यह सकल चरा-चर वशतू एक बुढ के रूप के दृष्टि-नस होता है जहां मनुष्य को कदम कदम में समयों से अभागा पहला है। चतुर्दिक् विध्नवाद्यावें एक बान्तरिक व बाह्य अनु सनुष्य को निगीर्छ करने के लिये बातुर दिखाई देते हैं। बहाएक धोर काम क्रीध मदलाव मोहतमा मस्सर-इन वहरिपुद्यो की बलवती पैकाषी सेना मन पर माक मण कर उसे विकित करना चाहती है वही दूसरी नवनवीन व्याधियाँ शारीर को जर्ज रित करने का उप-कम कर रही हैं। कही सनावध्टि है तो कही अतिवृष्टि। असे कोई मदी पहाडो की प्रचन्त सिमाको की विदीर्श करती हुई अपने लक्ष्म की म्रोर बढती जाती है उसी भाति मनुष्य को भी सर्वविद्य वाधान्रो को ध्यस्त करते हुने जत बाह्य सत्तुओं को परास्त करते हुवे कीवन के उत्तुव जिकार की ओर कडना माहिये । मनुष्य को कशी मी, श्चान वाले समर्थे से मस्त होकर क्तं वच्युत नही होना चाहिए ।

वेव चरवान् का आवे नहीं कि
मनुष्यं मू कमरपुण है सत कभी
भी निरास मत हो, निरम्तर माने
बहता जा जाना हो का गिष्ण वसाने
का, हनेका बाद रख- "महि त्या वहका मति" दस प्रकारक ने कोई
ऐसा नहीं जो तेरी वसानी कर कहे।
साते प्रकारत हो कि प्रमण्डन ने
सातें दा प्रवारत हो कि प्रमण्डन ने
सातें दा प्रवारत हो कि प्रमण्डन ने
सातें दा प्रवारत हो कि प्रमण्डन ने
सातें दा जाविष्य हो। वसी भी
राकसों के जत्याचार को सहन न
कर "जुद्दुद्द सा सहन्तृतिकत्र" है
भी ? जूराकशों को कद से उसाव

कर्मनाथ वेब का विज्ञुत विद्वात है सकर्मण्य व मान्यवादी व्यक्ति की वेब सानव कोदि में ही नहीं मानता वर्महीन परितः वाद एवं कारत्वाद नहीं चारत के उत्त्यात को रासातत तक पहुँचावा है सत साच सावश्य-करा है वेद के हस कर्मक थी-"नहिं वे व्यक्तियच्या प्रकार हु

# शान्ति स्थापना हेतु युद्ध आवश्यक

— खॉदेव श्वर्मा बेदालकः र —

पञ्चाक्टरव कुबित् सोमस्यापानितः" अर्थात धरती घर के सब मनुष्य मेरे अभिपात तक को भी नहीं रोक सकते कार्यक्र मेंने सोमरस-बारस्स या परमात्मा के अभिनरस का यथेच्छा मान कर सिमा है।

भारत देश में बनकेश धर्मांचार्यों ने मन्ति भीर प्रहिना पर बहुत बल है परन्तु उन्होने श्रहिसा के जिस भव्य स्वरूप को प्रस्तुत विद्यार्था, उसे मुलाकर उससे सबधा भिन्न व्यक्ति भावनाके स्थान पर कर्महीन निर्जीव भवित तथा प्रहिता के स्थान पर कायरता फैला दी। शब्द किंग दिनकर ने भी तो वही मान्यसा प्रस्तुत की वी "श्रमा सोभती उस भूजन को, जिसके वास नरश हो" धाहिसा कायरो का नही मूरमाओ अस्य होता है। वैदिक वीर तो उद्-भोध करताहै। "इन्त मे दक्षिणे हस्ते जयो मेसव्य आहत "मेरे दाहिने हाथ में तो क्में है और बाये हाव से दिजय एवं की बन की सफ-

बाज ससार ने प्रत्येक व्यक्ति युद्ध की विभीषिका से बचकर शांति का बम्त पान करना चाहता है फिर भी बुद्धों की सक्या इसरोक्तर बढती दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में यही कहा का सकता है कि वे युद्ध तब तक समाप्ता नहीं किया आराता। बान्तरिक युद्ध हो या नाह्य इन बुद्दो का एक मात्र कारण है-धासीरी बृत्ति । इन बासुरीवृत्ति नाने राक्षसो कासहार करने के सिवे क्या युद्ध धावस्थक नहीं ? जिन दिन भूमण्डल मे बाधूरी वृक्ति नष्ट हो जामेनी, युद्ध समाप्त हो जायेश धौर युद्ध श्रमाप्त हो जायेया तो श्रान्तिहो जायेनी। यस हम इसे इस रूप ने

धी नद्द उकते हैं कि शांति का मूल पुत है। इसी पुत की विरक्तरता का उदरीय सामयेद वारच्यक काण्यक के उदरीय सामयेद वारच्यक काण्यक के उदरीय मन एवं ध्यवंगेय की पत्तम काण्य के दुन्द्रीय स्वर में दृष्टि मौजर होगा है। वेद का साम्येव हैं 'विरकी विष्युची नहिं विवयन्त्री निवयन्त्री निवयन्त्री निवयन्त्री निवयन्त्रि निवयन्त्री निवयन्ति निवय

बीर दुख्य कहता है यदि मेरा जन्म पृथ्वी से प्रायक्त सन्तरिकाय जान प्रथ्वी से प्रायक्त सिंद्धान त निर्मवामो योऽस्थान हे दिए प्रवत्ति की क्षमते कमुता करता है उसे प्रन्तरिक से भी निवास प्रणा। बीरे कि बीर हनुसान की प्रारम्भ

ते सपनी सनित स्थित का बोस नहीं
वा बाद में नील जानवन्त ने उन्हें
स्थित का परिषय कराया वा उमी
धाति मनुष्य वी सपनी स्थार सखित
को नहीं पहुंचान पाता उम समय वेद
ही मनुष्य को सोते से जानाकर
कहता है कि तेरे सादर सबीन सबित
स्थिती है, उसे पू पहुंचान और आवे
बढ़। इस सखित को पश्चान कर
बह सुरवीर कहता है "सहमिन्द्रों न
पराजिष्य इद्देशन में पूरवे बतस्थे
स्वावन" सबीन मैं दुव है मेरे
समस्य स जात् मृत्यु भी नहीं दिक
सक्ती।

इस प्रकार सक्षेत्र में हम कह सकते हैं कि वेद से पदे मुख्य सकते से मुकाबला करने के सिये प्रेरणा-दावी भावनार्थे निहित हैं सास्ति व भहिंसा इसका नाम नहीं कि बात-मायी झत्याचार कर और हम कायरों की भांति सहन करते गहे हैं। बुष्टाका दमन करना ही प्रहिसा है। धगवान् कृष्य ने जन्म से मृत्यु व्यन्त बूच्टो का सहार किया एव सल्युद्धो क द्वारा युद्ध करावा सेकिन उन्ह युद्ध का प्रवतक नहीं माना जा सकता चन्होने तो पाण्डवो की सहायशा से दूष्टो का सहार का सच्**वी क**ैति स्वापित की बी स्नत सच्चे सर्थों स शॉतिदूत थे। हम कोगो कामी वैदिक मावना के स्वरूप को समभने हुये मादिकाल से अक्षे आ रहे देवा-सुर सम्राम से बचन ना प्रयस्न नही करनाचाहिये प्रत्युत सच्ची माति के निमित्त युद्ध का ग्राव्हान करना चाहिये और हमारा धादक बाक्य बीता का बहु वाक्य होना चाहिय-

परिकासाय साधुना विनासाय स दूटकृत्यम् ! सर्मसस्यानार्चाय समदायि पूर्वे पूर्वे ।।

## आवणीयमं व जिया--खाळ जयम्सी मनाई

स्वसीर 10 सवस्त (काल) स्वास्त्रमाय के तत्वावधान में कस्त्र साधसमाय में विर मं प्र स्विधालाल स्वयं ति एवं साधित क्या गा ना मारोह को साध्यक्ष पूर्व नवर परिवद सध्यक्ष ना मुस्तिह तैवर ने की।

इस बस्वर पर प्राय्तमाय के प्रवान कर्तात्रेय प्राय्तमाय के प्रवान कर्तात्रेय प्राय्ता के कर्तात्रेय प्रविधानात्री के प्रेर्स्थार्थ के विकास प्रकान वाना तथा प्री वृद्धिप्रकाल प्राय्त हा क्ष्यापालसिह व प्रीदेव सर्मी प्रार्थ के प्रवास काला व्

विनिध्य विद्यालयों के बालक— कालिकाओं तथा सर्वधी रामचन्द्र स्राय सन तराव व स्वामी केचलान द जी के श्रवन कादि हुए ! स्नत ने स्नावस्तान के मणी रासासिह ने स्नावस्तान के मणी रासासिह ने

# बोलते

ऋषि खयानस्य और हिन्दुरम

30 जुलाई के बाब पुनगठन मे रो सरर के विचार उदयुक्त विषय १र पद । सामा बनवा उनके संबा शामी सत्यवकाश आ के विचारों ने मोट तौर पर कोई विकेव भातर दिखाई मही पक्षा । कि लुहमे इतना हमरण रखना होवा कि हिन्दू काश में बनारे धम धीर सास्कृतिक वैभव का जो सबतोधानेल ह्यास हुआ या उतका मूल कारण भी स्वामी जी ने सावत्य से इटने तथा हिन्दुवादी पाचण्डो, श्र हिश्यासी तवा ही माना है। यो इस तवाकवित द्विन्यू के स्वाधिमान की चनाकर उसके मृत्राय प्राणी ने चीवनवनित का समार करने का सनेक्थ प्रशास शिवाणी, पूर गोविन्दसिंह शांदि महापूर्वी ने किया कि हिन्दू हि दुत्व के साथ हमाग हनाया, निरामा हमारा परावध को उन्या दास व मतक प्रविधादननी अधिक जुड शह हैं कि उनके साक्षार पर हमें म सीकाई प्रवसाही मिल सकता है धीर न भारतीय समाज को ही पुन जनायाचा सकता है। अत हमे स्वामी ज्ञान न के स्वर मे स्वर मिसा कर बायत्व को पून प्रतिक्ठि।पित करने काही प्रवत्न करना होगा है यदि हमने हिन्दु व का तनिक भी इ दा पकडा टा साबदकर बाट गोलव-लकरकाद भीर विश्व हिन्दू परिषद का कथ धारणात हमारे समे पह बायकी। धना नो इतना हा।

—हा भवानीमास मारतीय

## महापुरुषों बर क्रोसहम प्रकेष

लगना है डा स्वामी सत्वप्रकाश की ने चाहता है। स्वामी विवेकात द की अन्श्री करह से नहीं पढ़ा है और किसाएक केख मै अटिया ब्रुबने सरी हुए हैं।

स्वामी विवेकानाव को हिन्द हीने में महान नथ वा । व होने कहा था - भारत ही ससार का छानिक

गुरु है मीर ईसायत भाषत के कुछ थोड से ही विचार पर बाझारिस

ऐसे विचारी बाना महापूर्व किसी साय धन का पोषक ही सकता

महापूरवा की यदि हुए सम्मान नहीं देसकते तो उन पर काचड तो न कहें।

> --- वेदप्रका कथ्रिया F 49, कीतिनवर विस्मी +15

#### स्दिनार ते अपने को नाथे रखने वे सुस्ताय क्वी आखे खोछको

#### বাতা তথ

बावपूनगठन यत्र सन्ध भाषः से लिखना है पर तुबह नदीन ज्योति हेन हैं थी व जो साहब धावेषरापुरा माम्बिकता क लेख रुमाल के हात हैं साथही साम विद्वानों को भीता हा सबके शानी 30 7 87 के साक मे डास्वामा श्राबत्यप्रकालकी का लेख श्री स्वामी विवेशानन्दती के वे निश्न विकारीका जा विक्रम किया है बह समार की धावे को के हरने यथा वपन प्रमान है स यक्त किस है

स्वतंत्रका सन्ति। व्यक्तर

## समजो पर अन्धिकृत कब्दों की सक्ताता वें

वेल की अनुक समार्था पर धनार्थे व धसामाजिक सत्वी न धनशिकृत रूप से काले किए हुए हैं। साथ समाच सजमेर ऐंसी मनाओं की जानकारी बाध्त करना

भ्रय सञ्ज्ञानों से निवेदम है कि उक्त समजी की सूचना विवरण सहित हुने भेवने का कथ्ट करें।

(क्षेत्र वृष्ट उन्हा ) भेषी या समयात्मक हो या प्रभाव से

प्रमन्त हो नवा हो असमा निस्थ ज्ञी कुन्जी है **होना चाहिए।** स्वयन्तव्यायन्तव्य कावही भूल्य है। इसको श्रावसमाय के निवसी स उत्तर कर बूसरी की भी में रखना होगा।

स्वनन्तस्थाव तब्य से नीचे और उनकी धपेकानील ऋषि के साथ समस्य चन्य है। जहा उनका शाक्षय उत्पर की दो इसीटियो पर न इसे यहा उसकी मान्यता उतनी हो कम हो जानेगी। स्वामी दयान द जी हे सिद्धाःसीकामणवयद्भी प्रकारसे हरे तकता है। माथनगाता श्राम यह भूज करता है वह इन कतौटियरे मे चेद नहीं कर सकता उ उसके लिए आयसमाय के नियम, स्वमन्तन्तामा तल्य ऋषिके धन्म ग्राम ऋषिक स या पर ब्यास्त्रान ऋषि कं विश्वत 🗺 सुनी सुनायो गायाये ऋषि के व्याक यानो को सुना सुना कर उनके उत्तर वनाई हुई युम्तक सब समक्का सबक भी बाती हैं यह एक समस्या 🐯 जिसका अ " उहार विशेष स्थान

देश्वर जीव प्रकृति सम्ब धा ४०७ कोूण (2) वेद के सावजनीन शक्ता आध्यवेशीक प्रकार की गीति (3) अ बसमाज का सावदेशिक स्वरूप वे ऐंद्वी बहुते हैं जिनको प्रत्येक आय सताबी को धपनी दृष्टि में हर समय राजी चाहिए। महर्षि दशन व का पच प्रत्थन हमे इस स्रोर सफलता पूचक बढने की सक्ति प्रदान करता रहेमा ।

#### (ब्रेप पृष्ट 4.85)

एन ए ने । कला की राख निकाने के सम्बंध में बमनो से विशने पत्र भी बाबे वे, उन्ने ऋषि व्यासम्ब है लासा भूल राजको भेजे ,वे।

भीताकि हम उपर वर्णित कर चुरे ह कि महर्षि तरल स्वधाद के कारण प्रत्यक व्यक्ति पर पुरा विश्वास कर नेते थे। इसी कारण से महर्षि लाना यूनराज पर पूरा विश्वशास करते थे। साला मुजराब भी उत्पर से वयने की महर्षि बसामस्य का

सनुमानी और बक्त प्रकट करते थे. परन्तु भी तर से वे स वि के प्रत्येत नहरवपुरत काम ने बाधा चलका काती ने 🏿 असे भी कश्यानिधि पुस्तक सर भ व जी में मनुबाद करने के लिए न विने सहता सून राज का सनक यार निका कि बुध संतक सहाने इत क्या की नहीं किया। चोकि एक बहुन ही महत्वपूरा काम वा ।

पंचित्रत की के जनुसार ''बस्तुत वे ऋषि दयान व कीर शायसमाज के कार्यो पर लियरानी रक्काने के लिए ध क्ष की सरकार की <mark>श्रीर के निक्छ</mark> वे। अस्यवान देशो निक्रिके प्रकृत पविषयोर बुद्धसम कार्यो स नाबक भना विश्वि गरकार वह **स**कती थी कि भारतव 🖣 जगना जावार ठकनीकी गप्त वर्रे ।

(सेष पह 2 का)

धाय बनाज न धनेक देवताओं इन प्रकार जीव बमाज के (१) को क्रिक्ट क कार्या निकार हो शिक्तीय स्थिति क्रीक ही चित्र 2 उपावना तिलक ने था उसे हिन्द शम की **्याख्या में शामिल नहीं किया है** जसा सावरकर ने शिक्षा है। 'इसमे सन्देह नहीं कि शायनमाच भी नेदो को प्रमाण मानता है विन्यु संस्की वेदो की व्याख्या घन्य हिन्दू विद्वामी की न्याक्या से सम्भा भिन्त है सीए त्रिते थाव समाज बेदो का श्रम मानवा है यह हिन्दू श्रम से सबका समय है। इस प्रकार देवों के सम्बन्ध ने दीनों के वृष्टिकोची में इतना स तर है कि एक प्रकार से यह कहा बासकता है कि कायसमाब कट्टर वा भीराचिक हिन्दुसी के वेद का नहीं मानसा इस प्रकार वही के बारे के उनके विचारों ने केवल क्रमरी सन्ता-नता है बास्य विकानही '

-- WHEEL

#### वैदोऽखिलोधर्मञ्जलम् वैद ही समस्त धर्म का मूल है।

सन्य को ग्रहण करने भौर भ्रसत्य के छोडने में सर्वेश उदात रहना चाहिए —महर्षि दवानन्द

दयानन्दाबद 162

सुष्टि सम्बत 1972949087



पाक्षिक पत्र

"बार्य हमारा नाम है, वेद हमारा वर्म। ब्रो३म् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म।"

अभय नक्तमभय दिवान सर्वाद्याशामम मित्र भवन्तु ॥

श्रभय मित्रादभयम अमित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात ।

**कृष्यन्तीविश्वमार्यम्** सकल जगत को ग्रायं बनाए

हमारा उद्देश्यः समाज की वर्तम

समाज की वर्तमान एव मविष्य में पैदा होने बाली समस्याधी को दृष्टिगत रखते हुए धार्यसमाज का पुनर्गठन करना है।

भाद्रपद शु 6 सबत 2044 बार्षिक मू 15/- एक प्रति 60 पैसे

# वक 13 प स-43338/84 II चनाक्षमियो द्वारा भी विशोध

बर्ब 3 रविवार 30 धनस्त 1987

🗣 बनातन धर्मके सन्य प्रमुख व्यक्तियों के भी बार्य समाज के बारे मे ऐसे ही विचार है। वे उसे एक सर्वेचा नवीन हम मानते हैं भी प्रचलित हिन्दू सम के विषक्ष है। पश्चित ज्यालाप्रसाद निथ हारा द्वारा विकित तथा व्यकेटस्वर प्रीत बम्बई द्वारा 1905 में दयान व तिभिर भारकर नामक एक पुस्तक प्रकाशित की गई है। जैसा पुस्तक के नाम से स्पष्ट है कि उसमे स्थामी दयानन्द द्वारा रश्वित सत्यामप्रकास का अपन्धन करते हुए लिखा है कि दयानस्य ने जो मन्त्रकार मर्पात तिनिर फैलाया उसे दूर करने के निए बहु पुस्तक लिखी गई है इस पुस्तक म यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि स्वामी दयान द का यह कथन कि उड़ीने किसा नवीन ग्रम की स्थापना नहीं की भ्रमपूरा है। स्वाभी की की इस थोवस्था का उपहास करते हुए ज्वाला-प्रसाद मिश्र सिखते हैं कि—''क्रीसी विनित्र बात है कि एक नवीन धरी की स्वापना करने के बाद भी इस बात से इकार किया जाता है कि पूरानी मान्यक्षाओं की तिसाँजित देकर नई प्रारम्भ की गई। शास्त्रों की पूर्व-तवानहकरने का प्रयत्न किया। प्रतिमा पूजा भाड, तपणमन्त्र, अप तप सबको असत्य घोषित कर दिया गया। नियोग जसे धनाभार का समयन किया थया । सब जनह ग्राव समान की साखानें बोल ही गई भीर बाह्यणो का पोप बताया गया । वरा व्यवस्था और प्राथम व्यवस्था मष्टका गई। भूदों को वेद पढने

# हिन्दू बनाम हिन्दू धर्म

— পালাহী হ্লার্থ পার্হা —

( गताक से आगे )

क्ता अपना पृथक भाष्य किया गया। इन बकार प्राचीन प्रवासी और भान्यसम्बो को पूरी तरह उखाड फेंकने के लिए कोई क्सर बठाकर नहीरखी 📶 और इस उद्दश्य से सत्यार्थं प्रकास, ऋग्वेदभाष्य भूमिका धादि अन्य प्रत्थ लिखे गये। यह भी चीवित कर दिया गया कि ईश्वर पायों को क्षमा नहीं कर सकता। उसके नाथ का जप अपरने से काई लाभ नहीं है। जीव, मुक्ति से वापन लौटकर बाता है बादि अनेक सपने सिद्ध त प्रतिपादित कर दिये नये भीर इस पर भी दमान द का कहना है कि मैंचे (कसी नवीन सत की स्थापना नहीं की । '

धागे दयानन्द तिमिर भास्कर के नेकाक प्रश्न 18 पर प्रश्नते हैं कि 'क्याइस प्रकार के अपूठ की कोई। सीमाहै <sup>?</sup> नवीन सम को स्वापित करने के लिये बयानन्य भीर स्था कर सकते थे ? उन्होंने अपने सत्याय प्रकास के घन्त में सपनी नात्यताची भीर गन्न-थो की बामिल कर दिया है। इसनिए मह पुस्तक शर्वात तिमिक्त भास्कर जो सत्याथ प्रकाश का पोल खोलने के लिये लिखी गई है, इन गत्तव्यो और विश्वासो का भी खण्डन करती है। परिणामस्बद्धप इन मान्यतामो का भी माधार नष्ट हो वाता है क्योंकि न वे वेदों के प्राधार पर है और न ही बुद्धिमानु विचारको

को स्थीकार हो सकते हैं। अपने स्थय के म तक्यों का स्थय वायरणा करना ऐसी है जैसे प्रयन पुत्र को स्थय राजा घोषित करना। यह श्रम विर-यक है, इसन कोई साथ नहीं है। यह सब मोजा की गुगराह करने के जिये स्थिता गया है।

पहित यदनमोहन मानवीय जिल्ल होने हि वृ विश्व विद्यालय की तथा-पनाकी आरिजासन।तन सम करक प्रमुख नेता थे उनकी सम्मित से भी ध मिक दृष्टि से भागसमात्र सनानम हिन्दुकी परिभाषा में नहीं जाता है। पडिन उभापति द्विवेदी द्वारा रायत "धनातन धर्मीद्वार नामक पुस्तक जो मालबीय जी की स्वीकृति से प्रकाशित की वई, इसमे भी हिल्ह धम की जो बिस्तृत ना यतायें दी नई है वे स्पष्ट रूप से शायसमध्य के सिकान्तों के विपरीत हैं। इतना ही नहीं स्वयं मानवीपत्री ने सपनी भूमिका में निश्वा है कि सनातन धम के सिद्धान्तों का यह सम्रह्व छन सब सम्प्रदायों के लिवे मान्य और स्वी-कार है जो सनातन धर्म की परिश्राचा में सते हैं और इस प्रकार यह पुस्तक हमारे नवयुवकों के लिय धार्मिक किसानेन भीर हिट्ट बस काप्रवाद करने क काम में उपयोगी सिद्ध होबी। यब कै लेखक ने स्पष्ट रूप बायसमाज भीर उसके सिद्धा तो का खण्डन और उसके सत्यापक ऋषि दशान द की कड़ी शब्दी में निश्वा का है। उन्हे 'नेदविनासक तक कहा है और सिखा है कि स्थामाजी ने न केवल बेदो का ही विनाश किया अभितुधर्मके नाम पर धनेक धौर काटे कोमे हैं। शर्मोद्धार नामक **घडवाय में स्वामा दयान"द के म-तब्यो** भीर सस्याथ प्रकाश की विस्तार से समानोचना की गई है। वेदविनाशक (धर्यात स्वामी दयान द) घीर उनके समालोचक 🗗 (धर्यात लेखक पहिन उमापति द्विवेदी) के बीच एक काल-पनिक संसार के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि स्य भी बयानन्द न मूर्तिपूजा के विषद जोतक दिये हैं वे वेद तथा सन्य हिंदू शास्त्रों के विवद हैं। एक स्थान पर द्विवेदीजी लिखत हैं कि ईश्वर की मूर्तिया केवल पत्थर या मिट्री मात्र है भीर पवित्र नगा जल केवल पानी या बल है 📭 अरंग केवल मुख व्यक्ति ही इन्हसकता है।

देहु छी जस्त्र स्याचा-स्था का निर्णय—

देहती हाई कोर्ट ने माम समाय को पूचक सार्थिक सबटन न सानकर जहाँ एक कार्नो और सर्वेशानिक भूत की हैं (जिसके निक्क उच्चतम न्यायालय में भावसमाज की प्रपाल विचारासीन है) वहाँ दूसरी थोर देहती हाई कीर्ट के न्यायाधीयों को विचन होकर यह न्योकार करना पदा कि प्रत्यक हिंदू धार्यिक दिए हैं भी हिंदू धम का अनुधायी हो यह साथ वयक नहीं हैं। उन्होंने हिन्द के दा प्रथ किये हैं एक को केयल सामा-जिक और ऐतिहासिक दिंदे हैं ही

(शेष पृष्ठ 4 पर)

का रास्ता खोल दिया गया। वेदो निवेशक: दसात्रीयद्यार्थ

प्रधान सपादक : रासासिह

सपादक .बीरेग्ड क्रमार ग्रायं

फोन कार्याः 21010



# हमें क्या हो गया है ?

षीर्षक देखकर चौकिये नही । धारमासोचन हेतु जाग्रह कर कर रहा है । स्व राष्ट्रकलि मैथिलीयरता गुप्त की 'भारतभारती' में उल्लिखित से पक्तियाँ सहज ही याद आती है कि —

'हम क्या वे ? क्या हो गये ? ग्रीर क्या होने ग्रभी' ।

' भावो मिलकर विचारे, देश की समस्याए सभी" यहा मैं देश के स्थान पर "बार्यसमाज" करना चाहुना। महाँव दयानन्द सरस्वती ने 7 अप्रेस 1875 ई को बस्बई में झायंसमाज की स्थापना की थी । स्थापना के बाद आर्यसमान का अत्यन्त तीव्रता से विस्तार हुआ। बहुत शीघ्र ही भारत के बड़े नगरो में मार्यसमाजे स्थापित हो गई। स्वामी बी के निधन के पश्चात् प गुरुदत्त, लाला लाजपतराय, प लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हसराज, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल प्रभति महान् यायं नेतायो ने इस सगठन की अपने-प्रपने ढ ग से सक्षम एव सशक्त नेतृत्व प्रदान किया और आर्यसमाज देश का एक प्रमुख कान्तिकारी विचारधारा बाला सबल सगठन बन गया घौर उमने सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, साहित्यक तथा राशीय क्षेत्र मे आमूलचूल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। इसके बाद भी स्वामी दर्शनानस्दजी, स्वामी घ्रावानस्दजी, स्वामी स्वतंत्रता नन्दजी, धनश्यामसिंहजी गुप आदि महानुभाव समय2 पर नेतृत्व प्रदान कर दिशानिर्देश करते रहे । तब तक मार्यंसमाज की एक धाक यो, एक शान थी, एक झावाज थी, एक पहचान थी। जब कोई आर्यसमाजी किसी कोर्ट मे जाकर गवाही देता था तो उसकी गवाही सही, प्रामाशिक एव सत्य मानी जाती थी । आर्य समाज का अदना सेश्वदना सभासद या कर्मचारी भी सिदान्त निष्ट एव स्वाध्यायशील होता थां। बास्त्रार्थों की धूम रहती थो। लोग ग्रायंसमाजियो के चरित्र, ईमानदारी देशमत्कि, सत्यनिहा एव सिद्धान्त प्रियताका लोहा मानते थे। श्रायममाज संघवीं मे जीवित रहता था। सोना बनकर निकचता था।

परन्तुस्वाधानताके कुछ वर्षी पश्चात ही धीरे - धीरे सगठनात्मक शिथिलता आने लगी। स्वाध्याय की प्रवति कम होने लगी । सिद्धान्तनिहा डगमगाने लगो । चनाव राजीनति एव ह्रथकण्डो का आर्यसमाजो में धडल्ले से प्रचनन होने लगा। पार्टी बाबी, गृटबन्दी को बीमारी फैलने लगी तथा कई ग्रायंसमाजो में पौराशिको, गैर आर्यनमा ही विचारधारा के लोगा का बोलबाला होने लगा। कई स्थानो पर स्वामी दयानन्द के अनुयायियो के स्थान पर स्वामी विवेकानस्य के भक्ती तथा अन्धविश्वासियी. मृतिपुजको यहा तक कि जैनियों का भी समाज के पदाधिकारियो. में वर्षस्य होने लगा। नाम के आगे जातिसूचक कुछ नही लगाने श्रयवा शार्य लगाने के स्थान पर व गौरव से जाति सूचक जाति, उपजाति और गोत्र का प्रथोग करने लगे। ऋषि के भक्तो सद आर्यजनो की उपेक्षा होने लगी। उन्हे सदम्यता से भी हाथ घोना पह गया। कई आयं नमाजी पर गैर आर्यममाजियो का कब्जा हो गया । कई सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद होने लग गए। कोई आर्यसमाज मे किरायेदार बन कर अथवा पुरोहित बन कर धुस गया और फिर धीरे धारे मकानमालिक होकर बैठगया । कभी इस धडे का सहयोगी तो कभी उस धडे का सहयोगी बनकर आपस मे भिडाने भीर खुद लाभान्वित होते रहने का लुक्त पठाते रहे।

आर्य समाजो का यह अगडा ऊपर के नेताओं से भी पहुँच गया। जिला उपप्रतिनिधि समाझो फिर प्रान्तीय प्रतिनिधि सभावों में भगडे होने लग गये। एक दूसरे के विक्य कोर्ट के बरवाजे बटखटाने लग गये । हाईकोटों में मामले गये । रिसीवर नियुक्त हए। आर्थन-िंदरों के ताले लग नये। सीले लग गई तथा दोनो ही पक्ष हाथ मलकर रह गये। यहाँ तक कि हमारी शिरोमिए सभा "साबदेशिक बार्य प्रतिनिधि सभा" भी इन भगडों से अञ्जी नहीं रह सकी। वहां भी गृट विशेष का आधिपत्य हो गया। धौर सविधान के नाम पर रातोरात प्रतिनिधि समाध्यों के सगठन को भगकर धापनी पसद के था अपने चहेते पदाधिकारियो की तदबं समितिया नियक्त कर दी गई । आर्यसमाज की प्रतिष्ठित सस्यायें गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, बन्य बढे बढे गुरुकूल, कॉलेज और सस्यान भी इन विवादों के सवाडे बन गये। अपार धन और वाक्ति का मुकदमो मे ही अपव्यव होने लगा। वेदो के प्रचार-प्रसार आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों के प्रचार प्रसार की भ्रमेक्षा हम कोरे सस्वागत हो गये, वहार दिवारी से बन्द ह गये। जिनके हाथ जो जहा जितना लगा बस उसी पर कुडनी मार के बैठ गये और धपने तथाकथित विरोधियों की मनुशासन के नाम पर अववा अपने अन्य बहमत के झाधार पर भयवा ख्वामदियों और चापलुसी की वाहबाही के वक्कर मे आकर अपनी ही दुनिया के हाल में मस्त रह कर अनेक आर्य जनो को हमेशा के लिए मार्यसमाजो से दूर कर दिया। कई अलग होकर दो चार व्यक्तियो ने मिलकर ही नाम मात्र की समाजे प्रारम्य कर दी।

यह एक कर्रु सत्य है। जाक आयंतमाज सस्थाओ और भवनो तक ही तीमित रह गई है। उन सस्थाओ ने भी कितना प्रम्यर ही अस्यर असतीय एक अनाचार है यह जानन बाले ही जानते हैं, या समक्रनेवात ही समक्रते हैं। समाजे लकीर पिट रही है, जन साधारण से वे सबंबा कट गई हैं। उनका प्रभाव आयंजनो तथा बायंसमाज के पदाधिकारियों पव नहीं रहा। किन्ही के व्यक्तिगत प्रभाव प्रथा आबा दिखाई के कारण यम तम थोडा बहुत प्रभाव रह गया है। यह प्रस्वन्त भयाबह एव चातक स्थित है।

साज कई सायसमाज तो लावारित हो गई है समया उनके भवनों को सम्मालनेवाला कोई नहीं है विश्वेषकर प्रामीए क्षेत्रो प्रमान कोटे कस्त्रों में तो ने खण्डहरों का रूप धाररा कर रही है। कई स्थानों पर साय समाज में मुकदमें चल रहे हैं। जो हमारे लिए चिन्ताजनक हैं,कुछ लोग धार्यसमान के क्षेत्र में प्रसिद्ध प्राप्त कर राजनीति में चले जाने है धीर आर्य समाज की क्षला वेरे हैं।

हुम 'कुच्नलो विश्वमायंग्' का लक्ष्य लेकर वले थे। आर्यसमाज के प्रयाह ''साहस उत्साह को वेसकर अभीरका के पादरी ने जिन आर्न्दोलन को महान धालि को पहां महा था। महान जीवित जोर कातिकारी आन्दोलन कहा या। आर्वा जीवित जोर कातिकारी आन्दोलन कहा या। आर्वा का अवा उच्छो कैसे पड नई। आर्व्यसमाज मे नाना प्रकार के अन्धविववासो पास्चक कुरीतिया पहले से ज्यादा बढ गई है। सामाजिक, सारकृतिक एव मानवीय मृत्यो का हाप्त तै औ से हो रहा है। राष्ट्रोण वरित एव नितकना में पिरावट आई है। सामाजिक, सारकृतिक एव मानवीय मृत्यो का हाप्त तै औ से हो रहा है। अप्रवाद प्रयोध वरित एव विश्वस्त्वारी का बाजार गर्म है। देशभक्ति भूलादी गई है। ऐसे स्वयं में एक हा संगठन ऐसा है वो कुछ कर सकता है वो महत कुछ कर सकता है वह है ऋषि का प्यारा संगठन ''क्काच खंडना'ज '। का हा सु म्हा के सपनो के बार्यवन बनकर बाज पुन प्रयने वर्ष के प्राप्तो के बार्यवन बनकर बाज पुन प्रयने वर्ष के प्राप्त कर सके।

जो बोले सो अभय-वैदिक धर्म की बय

–হাভাভিছ

#### 1883 में सजनेर में मृत्यु हुई श्रीर 1401 में नहींच दवासम्ब के भिजन का कार्य देश से हजारी मील विष्वत रेखाके सुदूर दक्षिका ने बारम्थ हो नवा । भृत्यु के 20-25 वर्ष के जीतर ही बेस्ट इडीन से केवर दक्षिण प्रक्रिका तक में आर्थ-श्वमाज की नतिविधिया भारम्भ हो मधी । फीबी नवाना और टिनिशांड

नेटाल में बार्यसमाब की स्थापना करने वाले वे दीन-हीन कसी ये (दुर्वी उत्तरप्रदेश भीर विहार के.) जिन्हे स बे ज सपने उपनिवक्ती मे हैती में काम करने के लिए के अबे बे। इन कुलियों में न तो बाह्मण वे म हो सिक्षित व्यक्ति । एक जीयाई हो बहाज पर ही ईसाई बन गये थे। मेष भी उपनिवेशों में आकर ईसाई बन वाते, यदि 'सत्याचप्रकश्य' भीर सस्कारसन्ध वहान पहुच पाते। एक मात्र सस्या ग्रावंसमाज है जिसने विषयत रेखा के दक्षिए। माम के उपनिवेशों में हिन्दू कुलियों को ईसाई होने से बचाया। यह काम न सो विवेकानन्द मिल्लन कर सकता था धीर न कोई सनादन धम की समा। इश्वर 20-25 वधीं से जबसे हिन्द्रक का कुछ सस्थाए और कुछ राजनैतिक पार्टिया इन देशों में पर्देच गई हैं हिन्दू विधटन का काय प्रारम्भ कर दिया है। प्रायसमाज के प्रति द्वय की भावना उत्पन्न करदी है भीर हरि-जनोकापुथम सब्दन बनाने का प्रवास किया है, अथवा एकमात्र धायसमाज ऐसी सस्था यी जितन हिन्दो मुनराती सीखन के लिए विद्या-लय धारम्भ किये, जन्मना जातिबाद का बीभ-वपन नहीं होने दिया, जिसने कन्याची के लिए घट्यवन-ज-ध्वापन का सुयोग और सैकडो वर्षो से चली धाने वाली रूडियो को दूर करने का क्षीटा ला प्रयास किया।

हिन्दू भाषना विषटन की प्रतीक है। पूजा पढ़ाति भीर भास्थाओं की धनेकताको के कारण हिन्यू विवरित है — हिन्दून राष्ट्रका नाम है और न सम का भौर न संस्कृति का। सस्कृति सन्ठन-सूत्रक हाती है। द्विन्यू विकृतियों में विश्वास करता है धतः हिन्दुस्य का आन्दालन विश्वटम् भीर विकृतियों का जान्दोलन है। वैविक सस्कृति समानता भीर सन्दन की बस्कृति है। ऋगोद का स्नातिस

# नये समाज में आर्यसमाज की अभिका

#### — का स्वामी सरयद्रकाशको सरस्वती !---

सूत्र सज्ञानम् सूत्र कहनाता है : समानो भन समितिः समानी समान मन सहिंचित्तमेशायुन धौर नमानी भाकृति, सभाना श्चदयानिव 1 - ऐसे शेष समानता बीर सगठन के बोतक हैं । समस्त हिन्दू संबदायों का इति 🗕 हास हमारे विषद्भ का इतिहास है घौर इसलिए हमारी माज मिसीजुली सरम्भित (कम्पोबिट कल्बर) है। हमे यह सस्कृतियों के मिलीजुली होने पर बायत्ति नहीं है। बापत्ति तो हमे उस सस्कृति पर है जो मनुष्य मे शेदमाण उत्पन्न करने वासी हो-वणी और बपोडो भीर सर्वतिकताओ पर निर्भर रुरने वाली हो जो स्वयं-नरन के नये-नये द्वार खोलने वाली हो । इस-लिए हिन्दू सप्रदाय निष्प्राता ही नहीं देश बीर राष्ट्र के शिए वातक भी रहे हैं ।

स्वामी बयानस्य ने अप्रदायबाद के इस नम्न रूप की 'सत्यायप्रकाश' के एकादक समुल्लास मे चित्रित किया है। स्वामी दयान-द ने प्रपने जीवन मे 20 − 25 बर्जी के परिकास में बन्दिरी, वठी चौर सम्प्रदायी को जो भ्रष्टाचार दाशी स्थित अपनी भाषा से देखी भी उसकी बालोचता की। मायसमध्य ने प्रयास किया कि भारतीय संस्कृति का यह भ्रष्ट रूप विदेशों मेन जाने, किंदु पिद्धले 25-30 क्यें के हिन्दू आयोशन वे भार्यसमाज का इस प्रवास की विफल कर डाला है। विञ्चले तीस चाशीस वर्षों में हमारे देख मे भी और दन देशों ने भी बहा भारतीय है हिन्दुयों की सबस्वा विषडी हैं, सुधरी नहीं। सनमय 900 नवी देविया, नये भगकान का धवतारी पुरुष, नय-नये चमस्कारी द्वारा प्रलोधन दिलाने वाले बाचार्य धवर्तारत हो यबे हैं, जिनके सामने भी कीके पह नये हैं।

इन सब का बतिफल यह हसा है कि भारतीयों के समाज वे सर्वेत-क्ताचरन सीमातक पहुच नवी है।

कीतंन, रतवने, नये रूप की पद-यात्राए भीर अधिकवासी कानये रग में प्रस्तुत करने वाले नवे नवे पूर-कम भीर पुरस्थरण हमारे लिए एक समस्या बन गये हैं। राजनैतिक सन-तनवाद में निर्वाचन का प्रत्येक का प्रत्येक प्रत्याची किसी न किसी ज्यो-तिवी, चविष्यवक्ता भीर तात्रिक के हाथों में नाच रहा हैं। ऐसी धवस्त्रा मे धार्यसमाज मबिष्य मे क्या भूमि-काए निभाएमा, बहु हमारे सामन एन पुनौती है क्या शताब्दी समरोह के बाद हम सब मिलकर अपनी इन समस्याक्षो पर विचार करने का प्रयत्न कर सक्ष्मे?



धार्धनमात्र को धपने कावीलन की धविष्य में कल्या नकर बनाने के निए कुछ प्रश्नी पर गम्भीन्ता से विचार करना पडेगा।

- (1) दितीय युद्ध के बाद विज्ञान नकनीकी, उद्योग साधनो और सपकं साधनों के कारख विश्व में एक नये समाज का सनै कर्न कविष्यंत हो रहा है इस प्रगतिकीलता में बाय-समाय कितना हाय बटाने को तैयार
- (2) समस्त मानव को नैति-पुराने थावार्य, सवतार, पीर पैगम्बर कता और घास्तिकता के एक अच पर बाडाकर देने का भी न्दुस्य स्वापन महिष ने देखा या नया प्रार्थसमाज उस स्वपन को सच्याबन।ने के लिए ँजागरूक स्रौर प्रयत्नशील है<sup>?</sup> कही ऐसातीनहीं कि कॉलास्तर में आव

समाज हिन्दुयो का एक सप्रदाय नाथ बन कर रह आयेगा?

- (3) हिन्दू बहुत दिनो तक तो धर्मा-तरए के (धश्रवा मुद्धि के)पक्ष मे यवा, किन्तु श्रव वह मुसलमान श्रीर ईमाईयो को धर्मान्तरित करके फिर से हिन्दू बनाना चाहता है। क्या उसके धार्य समाज को सतीय होवा ? धर्षातुनया अमृत्तिपूजक मुसलनान बाईसाई, जोईसाई, बौ धर्मपरि-वर्तन करके जन्मना जात-पात के भवको से और प्रतिमापूजन संबुक्त हो यया है फ़ौर जिसने समाब म प्रतिष्ठावान स्वान प्राप्त कर जिया णा, फिर से हिंदू बनकर पूर्वावस्था म (पुरानी जात-पात मे) का जाय, तो क्याइससे हमे प्रमन्तता होती? वया समस्त हिंदू नमाज उसे सम्मान कास्थान देगा?
- (4) बाजका युवक स्वय्नहीन है भीर उच्छावल भी, समबतवा उसमे निराशा है भी । वह आश समाज ने दूर हन्ता जा रहा है धीर माथ ही साथ वह देण के किसी प्रत्य कियात्मक गांव में साथ भी नहीं दे रहा। ऐसे युवक की उत्साहपूरा सफल पुरोगम देने में भया आबसमान सफल होगा?
- (5) देल-विदेशों में ग्रार्थ समाजो की स्वापनाता हुई, किंतु सभी तक आर्थक्षमाज न तो नीक्षो की अपनी स्रोरमार्क्षत कर पासा सौर न गौरागों की फ्रीर न पीत राष्ट्रों के व्यक्तियो को । ऐसाक्यो हुमाऔर इस दिला में आयं समाज को शब क्या करना है ?
- (6) देश में सोकतात्रिक निर्वा-चन पद्धति शसफल हो नशी है। इस धसफलता का प्रभाव द्यार्थ समाज की ह्योटी-बडी तभी सस्याधी पर पढा है सत्ता, प्रश्नता और विश्त, तीनीकी बाकाक्षाओं ने भारतीय समाज के साथ-साथ क्या भाग समाज को भी कलुवित नहीं कर दिवा<sup>?</sup> वया ब्रायं समाज इस महत्वपूर्ण वटक पर विचार करने के लिए बावरूक है ?
- (7) प्रारत की विचित्र राज-मैतिक बीर सामदायिक पश्चिमितवो ने भी विकट समस्यापे प्रस्तुत कर

(क्षेत्र पृष्ठ ४ पर)

# पत्र बोलते हैं

# लोग सचाई से डरते हैं

स्वामी मत्यप्रकासवी क लख की दोहरी प्रतिश्वि पदी। महापुरुषो पर कीचड न फडें

पढकर ऐसाल वाकि लोग सच्च।ई से बढ धवशत है।

---आर्था सत्यवति जर्मा बुद्ध की हाड, भरतपुर

# आप क्यों परेशान होते हैं ?

2 अवस्त के आयमित्र में आर्म समाज करदहा बाजार बहराइय के सदस्य था रमस्यन्द्र गुप्त का सन्या-दक के नाम पत्र पढ़ा। श्रीसृप्य को इस बात का बड़ादुख है कि 2.7 जून का द्रदल्लन मे प्रदर्शित चित्रहार मे 'परिवार नामक फिल्म का ऐसा दश्य दिखाया गया था, जिसम एक हिद्देवमदिर मे मिन के समझा एक श्राधिनेत्री क्षाय नस्त दक्षा से नृत्य करतो है। मुक्ते बार्यसमाजी व धु की इस मन स्निविकादण कर तो ग्रदश्य युख हुया किन्तुवे व्यथ मे हाई मको लेकर परेकान हा ग्हे हैं। जब बहुमस्यत् मूनिप्त्रको को ऐसे दृब्य देखकर थीना नहीं होशी तो हम •यब मे ही उसके लिए क्या वि ता करें भीर प्रमय बात ता यह कि देवम तियो के साथे नश्य नृव दिखाने क लिए दूरदशन को हम क्यो निन्दा करे। क्या बक्षिण भाग्त के सक्डा मनियो मन्दिशे से देव के भाग वंश्या तुल्य देवदासिया खु-गारी हावभाव विखानर बदलील नत्य मही करती । तथा बहुसक्यक मित्रपुजको न कथी देवदासी प्रयाका माविरोध किया है<sup>?</sup> क्या कर्नाटक म यसम्बा नामक दवी के मन्दिर के ग्रामीण बालाधी की देवदासी बन कर चिरकास तक दुराचार पूर्णे व्यतःत करनेवाल धम व्यवसायियो के खिलाफ भी कभी मृतिपुत्रको न अरा-बाज उठाई है। क्या ये लाग झपने

धीरसचातो यह कि बहुसक-यक दिन्द्रमाकी भावनामाको कोट पत्रचान की जो सामका हमारे मित्र को है, तो मैं उन्हें बना दू हिंदुधों के बहुमान्य पौराणिक धर्म मे तो नाचन गाने को बॉर्शिक स्वी-

काहिद्नही मानत ?

कृति प्राप्त है। इनक न्वन यों के राजा इन्ह्र के दग्दार म रम्मा, मनका, उपक्षी झादि प्रव्याराए नावती और साती हैं। इनके मान्य वेबता शिव स्वत तावडव नृत्व करते हैं। देवी पावती लास्य नृत्य करती है। महर्षिका सम्मान पानेवाले नाश्य मूर्निकी नावते और वाते हैं। यधिक क्याइसके धर्ममें तो सबव किन्नर, चप्सरा विद्याक्षर ग्रादि नाचनवालो की विभिन्न योनिया ही कल्पित की गई है। वहातक कि इनके प्रमुख धराध्य विष्णु भी मोहिनी का रूप धारण कर नाचते है घौर धमुरो को ही नदी लक्ष करते अपितुषरम इद्रियजनाक्रकर के भन मेभी विकार त्यन्न करते इसके मान्य देवताची क गाउरा इंदर्ग भादश राकर स्रथम हर अपन अक्लील भाव भरिसा युक्त नृत्यो से विश्व मित्र जैन संयमी ऋषिता की तरस्याभगकर देशी है।

जिस धमाक माय देवा देवतायो का ही अब मृत्य गीन झ।दि सं परहेब न हाता हमारे बाब भाना दुग्दाहन पर दिखाय गये ऐडे दुश्य स क्यो व्यथ में परेशान हाते हैं।

— हा भवानोनाम बारतीय

#### हिन्दू बसास.

(सेव पृष्ठ 1 का ) हिंदू हैं। जैन मोद्ध भीर सिका भादि जैन, बौद्ध भीर सिख भादि जो केवल सामाजिक और ऐतिहासक द विट से हिन्दू हैं घथना केवल हिन्दू थित कत कानून अवर्गिहिन्द् कोड बिल के प्रमुसार हिन्दू हैं। उन्हेन्त्र।यालय ने हिन्दू श्रम को सम्प्रदाव नहीं माना है।

इतलिए यह सचमुख धारचर की बात है कि बेह्न की न्यायालय ने हिन्द के दा ग्राम स्वीकार करते हुए बैन बौद्ध धीर मिखी के विपरीत छामिक द्ष्टि से केवल बार्य समाज को ही हिन्दू सर्गका एक सुधरा हुआ सम्प्रदाम किन प्रकार घोषित श्रिया है ? अव्याक धार्यसमाज के पक्ष म यह सिद्ध करने के कही अधिक सबस तक ह कि सनावनी या पौरा-पौराणिक हिल्र धर्म का अंगया सम्प्रदाय नहीं हो सकता विसाहन पूर्व सध्याय में स्पष्ट कर जुके हैं।

# नये समाज में...

(सेव पृष्ठ 3 का) दी हैं क्या भाग समाज उनके प्रति तत्स्य धीर उदामीन न्हवर सच्ची सेवाकर सकता है, अवदाउसे इन दिकामे उचित नत्त्व भी देना है?

- (8) पिछ्नी वती आयसमाज के इतिहास का सस्था युग की । क्या प्रमुख से किये सस्यावे हमारे लिए माच केवस समस्याये हैं (एक प्रकार सिर-दद) गृहकुल कालेज बाधम, इत्याधि ? क्या यह ठीक है कि वे सस्थाए हमारे सधिकार सौर स्वत्थ से बाहर निकल गयी है और इनसे धार्यसमाज के मिलन को कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा ? क्या इनके चमाने में हमारी सन्तिका धप॰यय नहीं हो रहा है ? हमारे भाषस के अभिने तो इनके बारण नहीं बढ रहे? क्या इन्हें सरकार को सीय देना चाहिए या इनका सावजनिक टस्ट बना देना चाहिए ?
- (9) दश देशातरो मे बायमिगन का कार्य सुचार देग संबदाने के लिए बैधिक विश्वनरी तैयार करने के केन्द्र व्यवस्थित करने का काय क्या हमे हाब में लेना हामागा ? देश के बाहर कार्यकरने के लिए हमे धन, काय-कर्लाग्रीर विशेष माहित्य की ग्राव-

स्वरुता होनी। इस काम को हम की विस्तार दे, यह बात हुने साधनी परेगी ।

बहुत सी कमओरिया होते हुए भी भाज बार्ब समान देश भी सबसे मंत्रिक सुसर्वदेश संस्था है। माथ कशोडो दपये की समिति इसके पास है। नई हजार शायसमाज मदिर हैं। धनेक सिकास स्थाएँ हैं। निवसपुरक प्रत्येक साथसमाज मे एक ही प्रणाली के साप्ताहिक (रविवास-रीय) सत्सम होने 🌓 बहा एक सी त्राया, एक सा प्रम्यिहाम, एक सी स्तुति-प्राथना होती है। (निवेसी मे भी वे सच पढ जाते हैं), एक ही पद्धति संविवाह संस्कार बीए मृतक सस्कार (और भी सन्य सस्कार) होते हैं। इतनी एक इत्यता विसी भारतीय हिंदू सम्प्रदाय में नहीं है। हुमारे यज्ञ और संस्कारी की नरल प्रवास पर-लिखे साधारण हिन्दू परो मे भी लोकप्रिय हो नवी है। हमारे पुरोहित समस्त वर्ग के व्यक्तियों से से हैं (हिंद जीतगत से रहित)। इन्हे हम पश्चित, पुरीहित वा मानान कहते हैं इनमें धनेक धन्छे किशित वेबज है। जब ये दिव भागे में संस्कार कराने बाते हैं तो इनमें कोई नहीं प्रख क्षा कि तुम जन्मना किस वर्गक हा।

#### म्राय समाज अजमेर द्वारा प्रकाशिन साहित्य

- प्रो क्याज्ञय आर्य द्वारा लिखन पुरसके । देश सम और हिन्दू समाज को बाय समाज को देश — मूल्य 0 >0 वैसे
- 2 ह्मारी राष्ट्रीयता का बाधार-मूल्य व 1 00 3 बाचार सहिना — मूल्य 0 50 वैसे
- 4 दी साय समाप्र हिन्दू विदाउट हिन्द् इत्म (य से जी)-विशेष रियातथी **बर क** 75 00
- 5 बार्यसमात्र हिन्दू धर्मका सम्प्रदाय नही मूल्य 50 व धन्य प्रकाशन
- ं मार्वे समाज (हिन्दी) मूल्य संजित्द 20 00 क प्रजित्द 16 00
- ले, लाला ला**बप**तराब 2 धम जिला (जाम 1 से 11 सक) पूरे सैट का मूल्य वं 32-00
- 3 दयानन्द कवा सबह यूस्य र 3 00
- 4. परिचय निर्देशिका (समस्त देश-विदेश की बाद शिक्षण सस्याप्ने का परिचय)--- मूल्य व 12 00

# सत्यार्थ-प्रकाश ग्राम्य माला १५ भाग

( प्रश्येक समुल्लास पर स्वतंत्र दुवट )

- 1- ईशाबर का नाम अनेक
- 2- बावन माता-पिता 3- विका धौर चरित्र निर्माण
- गृहत्याधम का महत्व
- 5- सम्वासी कीन भीर कैसा ही ?
- 6- राज्य व्यवस्थाः 7- ईश्वर भीर वेद
- 8- व्यवसाधी उत्पत्ति
- 9-स्वव भीर नरक कहा है ?
- 10- चौके चूल्हे में धर्म नहीं है 11- हिन्दू की निर्वसता
- 12- बोड बोर बेन मत 13- बेद धीर ईसाई नत 14- इस्लाम भीर बेदिक धर्म
- 15- सत्व का प्रषे तथा प्रकास

विशेष — सभी ट्रैक्ट मार्थ अमृत के चौटी के विद्वानी के द्वारा लिखित हैं एवं ग्रन्थमाना का सम्यादन शार्व समाज सजमेर के प्रधान हो, बता-वें बजी बाय ने किया है। बन्बमाला के पूरे सैट का मूल्य 8/- क्ये है।

इपयुंक्त बीवंक से भी वीरेन्द्र बी के दो धारावाही सम्पादकीय लेख बार्व नर्यादा ने प्रकासित हए हैं। में भी बोरेन्द्र वो के इस कवन से कत प्रतिश्वत सहयत है कि हजारे ही कई बिरोमण नेता राजनीति के प्रश्न पर एक साम दी नानी की तनारी करने का दुस्साहस करते हैं। एक स्रोर वे हिन्दू हिलो को बातें करते हैं हिन्दू धर्म, समाच और उसकी सस्कृति को हानी पहुँचाने वाली सरकारी नीतियों की यदा-कवा श्रुल कर धालोचना धार्न समाज धीर अन्य बार्ववनिक मची से करते हैं जब कि दूसरी चीर कार्यस के श्वासक नेताओं से दूध और मिश्री की तरह पुत्र निस कर रहने की भी चेव्हा करते हैं। इसी तथ्य को ब्यान मेरख कर 19 जुलाई की प्रार्थ वर्वापा में जन सत्ता का एक उदारच दिया वया जिसमे कहा वया था कि एक पूर्व शासद और इका सम-भंक बार्य समाजी नेता से प्रेस काफेंस करशक्कर हरियाणा के मुख्य मन्त्री बी देवीलाल की बालीचना करवाई वर्ष और कहा बया कि उनके सत्ता मैं बाने से हरियाला ने उपनाद

पनपेका ।

केरे विकार के दलवत राजनीति से पुषक रहने वाले धार्य समाज को देवीसास, प्रजनशाल, बसीशास के पारस्परिक ऋगड़ों से कीई मतलब ही नहीं होना चाहिए। हमें तो मह देखना है कि जिन समझ ने आर्य समाज के हिंस सुरक्षित रहे, वहीं हवारी ब्रह्मसा का पात्र होना i विवत में भी ॥भारे नेताओं ने ऐसी ही वलतिया की हैं। काश्मीर के गुड्यमन्त्री फाइन्ड प्रस्टुल्ला के असम कार्यकास में हुए देवी में हिन्दुयी के जन-धन की पर्याप्त श्रति हुई। विद् वस समय राज्यपाल की सस्त्रति पर हा, फारूक की सरकार की वर्त्वास्त करने बा न करने से बार्य समाज काक्याचेना देना का<sup>?</sup> फिर भी ऐसे बयान दिवे गये और समाचार ख्याये गये मानी हमारे नेताची के पराममं को मानकर ही उस समय फा-क्क को काश्मीर की बदुशी से हटाया शया । हमारे लिये यदि फारू गलत है तो उनका स्वान सेने वाले पुलशाह मैं से सप्टें हो गये। जय तो गुसकाह ने बद्का मुस्तिम शोपें मे करीक

# आर्यसमाज और राजनीति

--- डा भवामीछाछ भारतीय --

होकर मुस्लिम साम्प्रवायिकता को अंसा स्पष्ट समर्थन दिया है इससे क्या फाक्क के स्वार रहेंथे की प्रस्ता नहीं करनी होगी ? वस्तुत सार्थ समाज के नेताओं को ऐसे सामनो में पर्याप्त तटस्वता बरतनी होगी!



को बात भी देशेनाम भीर फाएक के बारे में कही वर्द है, वही बाझ के मुख्यमन्त्री थी एन ही रामाराव के जियम में भी कही था सक्ती है। इभारे पास इस बात के प्रमाण है कि हमारे कतिपय किशमणि नेताओं ने सांझ की तेलुगु देखन सरकार की धानोचना की **मी** I जहातक हमे जात है कि रामाराव ने जाने धनजाने भी बार्य समाज या हिन्दू जाति का कोई सनिष्ट नहीं किया, फिर हम झामें समाज के मच से उसकी बाक्षीचना कर क्या केवल केन्द्रीय शासको क प्रति हो अपनी आसंबित को सिद्ध नही कर रहे हैं।

सहा एक बात स्पष्ट कर वे समक केनी चाहिए। नेवल चारत के प्रधानमन की साट करने, उन्हे पत्र मिलन घणवा छनते सावसातत आद कर से तेने सम्ब छे हो साय समाज या बुद्दार हिन्दू समाज की सम-स्वाधी ना समाधान नहीं हो जाता पत्रकारित धोर सातक सीमातीव कर से चतुर, ज्यादहार कुलज और

लोकसमही होते हैं। वे सूनते सक्की हैं किन्तु करते घपन सन की हैं। बत कोई इस खुश फहुमी में क्यो रहेकि उसके सुभाव को मान कर ही प्रधानमन्त्री ने पहले का फारूक को किसमिश कर दिवा था। ऐसा साचने बाले क्या यह जानते हैं कि श्रव जो काश्मीर में नेशनशा काम न भ्रीरकागस का वठ जोड बना है भीर वाना मिल कर वहा शासन कर एही है, यह भी उनकी राय से हा हुबाहै। इचर हमारे नेतायी का प्रतिनिधि मण्डल नदीन विका गीति में सस्कृत की स्थिति को लेकर मानव ससाधन वस्त्री नरसिंह राव से निका और समकी चिक्नी भुवडी वालो ने माकर यह मान बैठा कि नबोदय विका प्रणाली और दम योज दो की विका प्रकृति में संस्कृत को उसका प्राप्य मिलेवा भीर उसके विकास को हानि नही होयी । नवीबी के प्राप्तासन की मानकर सतुष्ट हो जाना विवा स्वध्न देखना ही है। इसके सम्बन्ध मे तिका बास्त्रियों का ही मत है प्रमास है। वे ही हमें बतायने कि नवीन शिक्षा प्रवासी में बस्कत को कोई महत्व नहीं दिया गया है। मन्त्री का तो काम ही बाश्वासन देना होता

भी बीरेश्वभी , ने जुनाई 1986 में साथ समाज हारा बनाई की समस्या पर दिल्ली में बुलाई गई भी दिख्यीय बैठन का भी उद्देश्व दिख्यों बेठन का भी उद्देश्व दिख्यों बढ़े को खरोत के साथ यह कहा गया था कि 15 सप्तव 1986 तक प्रजाब के उप्रवाब के प्रवाब देखान के जिले साप्ताप ने कोई कार—यन के जिले साप्ताप ने कोई कार—यर कमम नहीं उठाया तो साथ समाजी १९३९ के हैदगाबाद सोर १९४६ के सत्याय प्रकास सा-टोलन कोंगे विवर्त की चुनपाइंदि करेंगे । ऐसा सहने वाले सीर ऐसे प्रस्ताय पाड़ करने

बाले वस्तु स्थिति से सबबा प्रपरि-बित तथा स्वप्नलोक के दासी ही है। १९३९ धीर १९४३ का जमाना लद गया । उस समय द्याय समाज को महात्मा नारायण स्वामी स्वामी स्वनन्त्रानम्दजी, महाप्रय कृष्ण जी, तवा राजगृह ध्रेन्द्र शास्त्री जैसे निष्ठावान घाय नेतायो का नेतृत्व ब्राप्त या जो सर्वात्यना ग्राय समाज के लिये ही समर्थित थे। उनकी निष्ठावे दिशा विभवत नद्दी यी भीर म वे शासक का सत्ता च। दनुस ही थ । उन्होंने वदि टैवराबाद के निजाम यासिंध के मुस्सिम लीगी मुख्यम शी सर गुलाम हसैल हिदायतुल्ला की तरकार को चुनौती दी तो साय समाज के श्रपने दश खम पर ही दी भी 🖟 वे भाज के उन नेताओं से कर्तर्श भिन्न कोटि केथ जो आर्य समाय के सव पर भी धर्जनसिंह जैसे सामान्य व्यक्तिस प्राने पर अपनी त्रीयाश्रमः मर्याबाको भी भूम व उनका स्वानत करने के निये पत्रक वांबडे विद्या देते हैं ।

साथ नेनासो को जान केना चाहिए कि अब १०३९ और १९४८ का समाना सीटने बाला नहीं है। उसके बाद तो साजाद चारल ने न तो साथका बारका आन्दोबन ही तफन हुआ और न पनांच का हिन्दी रका सा-दालन ।

पनाम समस्या तथा उपवाद का समाक्षन बोजने में बन बाज सर्व-समय सरकार और पुष्तिक तथा मुरसा केवा जी स्वस्तक हो रही है चौर अपने सापको असहाय बौर निक्याय महसूत कर रही हैं सो भला साम समाज इसमें नया कुछ कर लेती? उसकी विसाद ही नया। उद्यवाद के मय से साम प्राप्त में तो सार्य समाज की सारी गतिविधि ही उप्य हो गई है।

धरने क्वन की समाप्त करने के एव अब्ब प्रदेश हिंदू सम्मेलन के न्यानियार खाँघरेवन में दि 12 जुलाई की विये ज्ये एक धाई नेता कं धम्बतीय खायण की घोर सक्त नरता पाहता है। इस भाषण के बीराव यह कहा ग्या कि विरोधी यस खाम्प्रदाविकता को नवाना व रहे

(श्रेष पृष्ट 6 पर)



## कुमपत्ति महोदय-गृहकुत कांगठी विश्वव विद्वयालय <u>इतिसार</u> कार्य्य ज्ञुनगठन



BRT R RJ/AJ-165

# रोटी से ब छी आस्था

श्री ज्योतिमय के नाम व उनके लेखन से बाप अपरिचित नहीं होंगे। इनका नाम वर्षों से दिल्ला प्रस की पितकांधी (वरिता मुक्ता बावि) में इनके तथाकविन लेखन के कारण पौराणिक व बाय सामाजिक होत्र में बढ़ा विनाद रहा है।

अब गत कई महीनो से श्री
क्ष्मीतिर्मंग समूह के निए लिख
रहे हैं और जा लिख रहे हैं असे
ब दिल्ली प्रस के उनके द्वारा
लिये गए लेखा में उसके विश्वासी
से एरस्पर 3 और 6 का सस्य प्र
है। हमारे निजी मन के श्री
उम्मीतिमयजो के विवासी
में यह प्राव्यन्तिनक
परिवान उनका जावस्य प्राव
विवास समझस ममूह से बुढ
जाना हा होगा।

श्री स्व रेण विजेष मवाण्याना दिनिक हिंदू के विषय में भारते विरिष्ट पत्रकार श्री कमना दाना सक्तर के स्तभ्र जमूना के किनारे से में पड़ा नी होगा कि रेडडी जा ने किस प्रकार मि जिल्ला के नित्यानुमार अपनी आस्था मुस्लिम लीग से जाड कस्मीर से लीग का प्रापेणक्य करने का वार्षित यहुए। कर निया था।

खाइए । अब आपको आरी सम्माजिक सन के एक ऐसे बुद घर लेखक से मिलाए जो मार एस एस ने अ रुएस पाकर सार्थ समाज का कायाकल्य करन के के लिए कमर करों हुए हैं। ये सहानुमान सच की कुपा दि से कई बार बिनेशा की मर का जुक भी उठा थाए है और परियन सदस्यना भी प्रमान के रुप के एस एक बार प्राप्त कर चन्न है सम्प्रपति ये सच से प्राप्त प्रगा की झार्यनमाज से रह है ।

वीरे इ.ज.र्ग

# आर्यसमान और... उन्हें अपनी आंख

(बोच पष्ठ 5 का)

हैं। बात बहुत कुछ सत्य है चड तेकर भीर बहुगुणा जसे व्यक्तियों ने मुस्लिव साम्पदायित्रता की छोर से भवास खें पूर्व रखीतका साम्प्रका विक वयनस्य के लिए सना बहुमत की कोमा है। पश्लु मैं पृद्धना चान्ता हू कि घल्पमधीय साम्प्रदायिकता को बढावा देन में सालक दल ने ही कीन कमर रखी है फिर कवल विरोधी नेताको को दीव देना नेकारहै। 30 शाच नो बोट क्लब पर अ योजिस रमी में प्रबद्धना बुखारी भीर सैयव सहाबुदयीन ने जिस प्रैंकार नियममन चिया उस पर क्या सरकार ने कोई काथवाही की ? अप काश्री इमाम ने जामा भसजिद के दरवाले बाद कर निये भीर भ्रयने सनुपायिकी मं उत्तजन फनाने का प्रयाम किया भी क्या दिनी प्रशासन ने बुखारों की माया क झागे मत्कर निरंपर श पुलिस संधक।रियों के स्वाना तरण करन का धाश्य सन उसे नहीं विदा<sup>9</sup> तो केवल विक्षिति नो ही साम्प दायिक तृष्टि करता के लिये दाव बना एकामी द्राष्ट्रकोचा है कायस तो 1916 की लखनऊ काबन में डी प्रथम बार जो मुस्लिम साम्बदाधिकथा ाती बहुबाब सक व्यक्तीहजा है ≥। प्रविदय मे कटा तक की उसे अथवान ही

इसी याख्य न स क नैन लाल को बलगर र जगीति न उपर उठने कर कर के स्वाप्त है स्वर को यह है निहिश्याचा का यह चुन क आ नेतीलाल ने दलगत राजन नि न्या उठकर हो जबा चा स्वया उह बनी कमूनपृत्व विजय निक्वती विज्ञा जकी कि इस बार उही निली।

साथ समाप्त क लिए समी ल ल एक मे कु है जात तक कि म र प्रति उनके सम्हार में कोई विशिष्टता न न्यिक रिस्टें। इची प्रश्न पर को दूसर पर करोया न्येत ना नै प्रस्त ने ने स्वत्र नो सहरे कि जय सम्ब स्पाधना नो सामक दल ही करेगा स्रोग्न कि सिंहा न्येत सम्ब स्वेत कुद्व पर ही सपना प्रविष्ठ का सम्परार स्थाना।

# उन्हें अपनी आंख का श्वश्वतीर नजर नहीं आवा

ईरान के बामिक प्रमुख मिया वायतुल्ला खुदैनी ने मेरठ के देगों के लिए मारत सरकार को मरता करते हुए दानों से मरे मुसलमानों के प्रति अपनी सहानु भूति प्रगट की है। यदापि उनका सह हुन्य हुमारी समझ पुत्र प्रगट की है। यदापि उनका सह हुन्य हुमारी समझ हुन्य का सरासर उन्लंभा है। पर-सु इस तथ्य की हुन ज्येका की कर द तथ्य की हुन ज्येका की मीत की बिल चढ़ाने वाले खुमनी को मेतर के दानों से मरे मुसलमानों के प्रति सहानुमुद्दित दवांने का प्रधानतर प्राप्त नहीं हा जाता है।

प्रायनुत्ला लुमनी की अनु— बाई में देरान देराक से गत कात क्यों से युद्ध लंड रहा है। में दोनों देश हो मुस्लिम देश हैं। भीर दस युद्ध ने लाखो मुस्लिम अपने प्रास्तों को गया चुके है।

नर मुस्लिम बेधी के मुनलमानों के प्रति किखा तहानु अति दिखानेशालों में एक करेला हिंगा नहीं है। बिक ऐसा स्व भाव तो प्रत्येक मुस्लिम राज्ञ का हो रहा है यहा तक का पाकिन्नान जसा देश जो पठान मुजाहीर व विध्या मुझी के परस्पर चुनी जम का मैदान बना हुआ है मेरठ के दोों के लिए भारत सरकार की मानो जना करते बक्न किक्क माना में लज्ज भारत सरकार की मानो जना करते बक्न किक्क माना में लज्जा मनुभव नहीं करता में में लज्जा मनुभव नहीं करता में में लज्जा मनुभव नहीं करता में

--वीरेन्द्र वार्य

डा यादश ध्याणस्य डोधयीठ के अध्यक्ष सियुक्तन

आयजगत के सुधिनद्ध वि द्वान एवं लेखक श्री डा बाबू लालजी यादव एम ए पी एवं डी डी लिट अध्यान संस्कृत विभाग श्री वार्ष्णेय कालेज ग्रासीगढ को दयान द वदिक श्रोधपीठ के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया है।

डा यादव । सक्टूबर 1987 से अपना नया कायभार समालेगे।

~ प्रशासनिक अधिकारी

# आर्य समाज अजमेर में वेद प्रचार सप्ताह ममाया गया

इस अवसर पर श्री राम चंद्रजीएवं श्रीझनतरावजी कं धक्तिपूण भजन भीहुए।

# पं. रूजुनाथ शास्त्री का निधन

धजमेर 18 अगस्त । ही एवी उमा विद्यालय के भूतपूर प्रधानाध्यापक प मजुनाथ शास्त्रो का गन दिवस हैदराबाय में निकल हो गया । स्व शास्त्री कसर से पीडिन थे। उहीने उक्त विद्या लर्वेष्य बीस यद तक प्रधाना ध्यापक के पद पर काय किया

आयसमाज के प्रधान आचाय श्री कसात्र य धाय मत्री एव प्रधानाचाय श्री रासासिह ने श्री शास्त्री के नि.उन पर शोक सब दना व्यक्त करते हुए उनके परि

पत्र भेजा।

भी रतनलान गग सं प्राय प्रि ८स अजभेर से मुद्रिन कराकर प्रकाशक रासासिह न आयसमाज भवन केसरगज अजमेर से प्रकाशित किया।

^~ 611018

**वेदोर्गक्तलोधर्मवृत्तम्** वेद ही समस्त सर्म का मूल है।

सत्य को सहरा करने और असत्य ने क्षोइने में सर्वदा उत्तन रहना पाहिए

--- महर्षि बयानस्य

वर्ष - 3 मंगलवार, 15 सितम्बर, 1987

ववायन्दाब्द • 162 सच्टि सम्बत् 1972949087

अक · 1 व प स -43338/84 II

1 1

। भोश्यु । पाक्षिक पत्र

भभव मित्रादभयम् अमित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात् ।

"बार्य हमारा भाम है, वेद हमारा धर्म। बोइम् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ।।"

व्यक्तोबिश्वमार्थम् मकल जगत को धार्य बनाए

हमारा जब्देश्य :

समाच की वर्तमान एव मबिष्य में पैदा होने वाली समस्यामीं को इच्छिगत रखते हुए आयंसमान का पुनर्गठन करता है।

भाइपद कु 8 सवत 2044 अभय नक्तमभय दिवा न सर्वा प्राच्या सम मित्र भवन्तु ।। वाधिक सू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

# आर्यसमाज अजमेर का 106 वाँ वार्षिक अधिवेशन एवं निर्वाचन सम्पन्न

राजस्थान की तकते प्राचीन व विकास अध्येतमाण, धन्नपेर का का 106 वा अधिवेतन श्री दलात्रीय आर्थकी सध्यक्षता मे रविवार दि 5-9-87 ई की जात काम सम्यक्ष हुछ। । बल खिब्बेनब क मंत्री औ रासासित औ द्वारा विवत वर्ष का काम विवरण प्रस्तुत किया नया । इनके बन्तवन ग्राम समःज किकान बस्वामी की प्रगति-वस किया की व्यवस्था एवं प्रोश्नाहुन, धार्थ नाहित्व का प्रकासन, आर्थ पूनर्गठन का प्रकाशक, बैंकिक सरतय बाधम पुरकर, मुमानान प्रवारिकी सभा, बशानन्द बाल सदम, कारी धन्तर्जाकीय विवाह, केद प्रचार, विभिन्न इत्यको एव पर्वो के सार्योजन प्राप्ति के सन्धन्त्र में कार्य विवरण प्रस्तुत किया । वार्षिक कार्य विवरण के प्रत्यवत थाय समाव !के द्वारा सर्वानित वार्व बमात्र विका नवा, व्यानस्य बाल-सदन, बुसासान नागरी प्रकारिको सभा, बार्च बस्तु भण्डार ब्राहिकी प्रवर्ति से भी सबस्यो को धरनत करावा : धार्यंसमाज के धन्तगत संकालित द्यानन्द काँसेज, की ए वी स्कल आदि विभिन्न 13 जिल्ला सस्वाधी का कुन वार्विक स्वय 79 लाख क्यारे, पढनेवाले छात्रों की शुक्रा 7 हजाए तथा उनमें कार्य करनेवाले सध्यापके, प्रावशायको एवं कर्मचारिको की सक्त 380 रही। इन विनत वर्षके साम भ्यम एव सानामी बच के लिए बजट को सर्व सम्मति से स्वीनार किया बना।

बन्त में श्री दत्तात्रीय भी धार्य ने सभी सवासदों से श्रीवस्त्र में भी प्रती प्रकार सहयोग वेले रहने का माह बान किया । नृत्री रागासित ने सक्ती अञ्चानुभाको के प्रति हार्दिक सामार न्यक्त किया।

प्राप्सायिक में ब्र अध्यापक के क्या में सम्मानित



स्यानीय वी ए वी उच्च मा, विशासम, सबमेर के प्रधानावार्थ थी गतासिंह को प्रशिक्षावक सम राजस्थान (पेरेंटन इसामिएकन घाँफ श्वास्थान) द्वारा बंद बस्थापक चयन समिति की अधिकानानुसार सम 1986 87 में उत्तम जिसम कार्व के स्मिए भी ह यहपायक के स्म्य में निभूबित कर शिक्षक विक्स पर सम्मानित सिया वया ।

की रासासिंह को विवत् विनो

विशासन भी प्रशासनीय उपयोग्यामें के किए शहानीर इटानेशनल की क्षोर से जी काल बोहाकर प्रणिमन्दित किया नवा।

निवेशक : बलाजेयमार्थ प्रधान संपादक : रासासिह श्रानामी वर्ष के निए निश्न प्रकार सर्वेतस्थित से निर्वाचन हुए--

प्रमाण सःचार्यंदलात्र क्लीधान, तपप्रकान-स्त्रीठा श्रीमांगृह की, श्री कृष्णराथ जी बाक्से, शर्वी--श्री रामासिंह जी, उपमणी--ग्राचार्व नोविन्दसिक्षणी श्री शिवणन्दसिहजी, बी वेदरत्नश्री साथ, प्रकार-मत्री - की नवीनकुवार नवीं, कीबाध्यक्ष - भी किनानास सर्मा पुस्तकालयाध्यक्ष व द्यातरिक अ केशक - श्रीपी एन. मेहरा।

#### प्रविशित समासद---

की रामपासमित वर्मा, बाचार्व विनवसिंह, भी प्री औ एस कोडी की कृष्णपालसिंह, त्रो देव सर्माजी, त्री बुद्धित्रकाक कार्य, व्यी देवदत्तः तनेजा, और विज्ञनशास आर्थ ।

#### वार्ड प्रतिनिधि —

त्री सत्यपाल विमानिया, श्री मासनचन्द सर्वी, श्री हरीसफन्द अर्भा, श्री लायक्तिसन वर्षा, भी जगदीसपताद भारद्वाज, श्रीमती मनोरमा चाँद, श्री लालपन्य सार्व।

#### व्यायोपसभा--

की ठा प्रेमसिंहजी, भी इच्यारावजी बास्ते, भी प्रोजी एल जीशी : — रासासिष्ठ (नवी)

## अमर स्वामी दिवंगत

झार जगत के मूर्जन्य विद्वान, शास्त्रार्थ महारथी महात्सा समर स्वामी की यहाराज का 4 सित की नाश्चियादाव से देहाबसान हो सवा। वे बन काफी समासे नने के कैसर से पीकित थे।

उल्लेखनोय है कि स्वाबी जी महाराज रीग सच्या पर पर्वे हुए भी 'निशास के तट पर' नामक सास्त्रार्थ सम्रह के सपादन व प्रकाशन मे

आर्यंतमात्र के प्राण्, ऋषिकर के सच्चे सेनाकी, पीराश्मिक क विद्यानियों को सास्थार्थ क्षमर ने पराजित करनेवाले महास्था ग्रमय श्वामी जी का निवन मार्थ चनतु की मयुरणीय वारि है है

महात्याची को 'बाव' पूनवंडन' परिवार की विनग्न आखाजली मादर समर्पित है ।

संपादक :बीरेन्द्र कुमार आर्थ कोग कार्या : 21010 सम्पादकीय ---

# घेराव जोशी का नहीं.शंकराचार्य का करिए

"पीठ शकराचार्य" के पद-स्थान की लेकर काची पीठ के पूर्व सकराचाम स्वामी जमे-इ सरस्वती बत एक मन्ह से जिनाद की केन्द्र करे हुए हैं 1

इस सदमं मे जहाँ एक और स्थामी बबेश्द सरस्वती का नहुना है कि उन्होंने पद-त्यान प्रपत्नी इन्ह्या से किया है, नहीं हूमरी बोर पूरी के शहरायार्थ स्थानी निरंतन देवजी का कहना है कि उन्होंने स्थव यद नहीं खोडा प्रपितु उन्हें बनानुनिकाला नया है । नयो निकाला मधा ? इस पर उनका कहना है कि स्वामी जवेन्द्र सरस्वती सती-प्रवा के ब्रीट हरिजनो के मंदिर प्रवेश के पक्षांतर हैं और उनके यह विकार पौराणिक सर्व के विरुख है।

उपर्युक्त सदर्भ वे हमारा वहना है कि बाँद स्वामी अवेन्द्र सरस्वती को अपने उक्त विचारों के कारल पव-स्वान के लिए बाध्य होना पटा, तो वे बधाई के पान हैं ! इसके साम ही वेबोराना के क्य क वर सती काण्ड को लेकर राजस्थान के मुख्यनस्थी कोशी का चराय करनेवाणी महिवासी को हुनारा मुकाब है कि बन्हे पराव बेचारे जाती का नहीं वास्तविक संपराधी पूरी के शकराचार्य का करना चाहिए ग्रीर प्रबुख अनी की चाहिए कि अपने तुष्ट्व राजनैतिक स्वाचों के लिए मतीप्रका जैसी कूरीति की प्रोस्साहन देने वाली भारतीय जनता पार्टी का वहिष्कार करें।

क्यकार सतीकाड शक्रमान के बार्वसम्पनियों के लिए भी कंप्सा का विकय है । धीर जनकी प्रकमन्त्रता का परिचायक है ।

#### काय खनाज और श्विन्जी

किसी भी देश की अवस्थाता व प्रगति के लिए किसी भी एक सम्पर्क साथा का हाता शायक्यक है महर्षि दशायन्य इन तथ्य की सवमते वे ।

त्रभवी यातृत्राचा गुकराती थी। नेकिन उन्होने हिन्ही को शपताया, क्वोकि एक मात्र हिन्दी ही समस्त देश में सम्पर्क शादा का काय कर सकती है।

स्वामी की की मृत्यू के के पश्यवात आर्थनमात्र हिन्दी के प्रसार प्रचार मे, समनी रहा। सहर तक कि प्रजाब में उसे सपने हिन्दी प्रचार के कारण सकालियों का कौम आजन की बनना पड़ा है

भागनवन की एकता हिन्दी से ही सम्बद हैं , बदि इस मत्य को दयानन्द की तरह स्वतः न मारत के प्रशासक भी समझ जाले तो साज देण टूटने की परिस्थितियों ने न होता।

--वीरेस धार्यं

(तेष पृष्ट 5 का)

यह ब्रिरोह कालसा परम्पांधी का कहाई से पालन करने बाका गुरुद्ववाशे का पुरुषयोग को बुरा समझने बाला और बर्बनसिंह राजी द्वारा स्वर्ण मन्दर में खिये सीगों को बाहर निकाल जाने की कमबीर को किसो का समर्थेक छीर निर्दोष स्त्री-पुरुषों को छ छायू छ हत्या करने के बजाब अपनी हिट लिक्ट के अमृसार खास-खास सीमो को निकाना बनाने पर चनता है। इस लिस्ट मे पाच बनरत और दो कर्नस है। इनमें राजनितिक और पत्रकार है। हिन्द समाचार समय के विकास कुमार चौपडा का नाम सबसे उत्तर है और मेरे जेंसे लोड भी हैं। रिवेरो के अनुमान के अनुसार वस्वरों की सकता 30 के 100 के

इन गिरोही की हवियारी की पूर्ति मुख्यत पाकिस्तान से होती है। यन स निस्तानियों की हथियारी का बूक्य चुकाना पडता है। सामिस्तानी बैको न इकेटी दालकर ये श्रम इकट्ठा क्रिकरते हैं। सातकवाबियों में पाकिस्तानी जेमों मे प्रक्रिक्षण दिया जाता रहा है।

चातकवावियों में प्रधिकाल किसान वरिकारों के हैं धीर उनमें कुछ स्मातक है। प्रशिकांस मेंटिक हैं। बजन से प्रशिक महिलाए हैं बिन्होंने मातकवादियों की बाती सरण दी है वा उनके लिए कार्य

जातकबादी देस के नुकड़ारी का उपयोग सपने इस कार्य के निए जनातार कर रहे हैं। स्थर्ण मन्दिरणी इसके राखुशा नहीं है।

राष्ट्रवादी युवा मुस्लिम,नेता : एम.ए. नकवी

एस ए नकवी, अध्यक्ष इंडियन कुम्लिस वृद्ध कानकेंस अपने राष्ट्रवादी कियारों के कारण गत कई वर्षों से जहां मुस्सिम कट्टरपियां के रोच के पात्र रहे हैं, वही दूसरी सोर उन्हें राष्ट के सभी देश भक्त नागरिको से भारा सम्मान भी प्राप्त हवा है। मेरठ व दिल्ली के दगो पर भी उनके विचार पक्षपात रहित और सत्यता से जोत-प्रोत हैं। हाल ही ने 'प्रसंद्रन' को दिए उनके साक्षारकार का अवसोकन कीजिए .---

🖈 क्या कारए। है कि आजादी के 40 साल बाद भी सांप्रदा-

यिकताका अहर चढता ही जा रहा है?

# इसका श्रोय हमारे राजनीतिज्ञों को जाता है, जिन्होंने बोटों के लालव में साप्रदायिक तत्वो, विवेचकर मुस्लिम समुदाय की क्ट्ररपंची साकतो को प्रोत्साहन धीर राजनीतिक सरक्षम् दिया है. बाज तो जाप देखिए, राजनेंतिक दली से कट्टरपको मुस्सिन नेतृत्व पैदा करने को जैसे होड लगी है सैयद शहाबुद्दीन (जनसा वार्टी), बेड बार झ सारी, तारिक धनवर (काग्रेश-इ ), आजन बा (लोकबल-ब), रशीद मसूद (क्षोकदल-अ)।

🖈 क्या भाष मानते हैं कि भाजादी के बाद मुस्लिम समुदाय सरकार के पक्षपातपूर्ण रवंदे का विकार हमा है ?

# नहीं मैं ऐसा नहीं मानता, हिन्दुस्तान में बाबाबी के बाब इस्लाम जितनी तेजी से पनपा है और उसे सुरक्षा मिली है. बैसा तो पाकिस्तान तथा अरब देशों में भी नहीं हुआ है।

🛪 तो किर क्या कारण है कि मुस्सिम समुवास ने अरम-विषयों और सुधारवादियों की अपेका कट्टरपवी साम्प्रदाविक नेतृत्व को जल्दी मान्यता और समर्थन दिया है ?

 मोहस्मद बसी जिल्ला ने जिस तरह अपनी लतौं पर पाकि-स्तान निया, उससे मुस्सिम समुदाय ने यह आति पृदा हो नयी कि कट्टरपथी नेतृत्व हो उनके हिंतो की रक्षा कर सकता है, नांगें पूरी करा सकता है।

🖈 मेरठ दनों में पुलिस - पी ए सी पर साप्रदायिक होने का बारोप दोहराया गया है ?

# देखिए, वे सब सुरकाबलो का मनोबल गिराने की शासिक है. भाग पुलिस-पीए सी को जालिय तो कह सकते हैं. पर साप्रदायिक नहीं खात्रो, अध्यायको, वकीलो या दूसरे कर्मचारियो को हडतास के दौरान वी ए सा. का जो रनेया रहता है, वही दगों के वीरान भी रहता है वह हमलावर पर हुमले का काम करती है इंटका जनाब इबे से देती है बम का गोशी से। लेकिन यह भी गलत है। लोग अपनी साप्रदामिकता छवाने के जिये जिम्मेदारी पुलिस पी.ए सी. पर भौप देना चाइते हैं।

क साप्रदामिकता से निवटने के लिए क्या किया जाना

# राजनीतिक दक्ष वोटो की राजनीति से बाख आये, सरकाव सप्रदाय विशेष के तुष्टिकरण की नीति छोड़े, राष्ट्र की मुक्य-वारा से जुड़ी सोचवाली प्रमतिशील शाकतों को प्रोत्साहन वे बीव वनसाधारण मे इन सौप्रदायिक, कट्टरपंथी ताक्की की वैनकाव किया जावे बाकी इनसे निबटने का कार्य जनता भूष कर नेगी।

सरवता, सरलाइस और स्पष्टवादिका जैसे सद्युक्तो से धक-इत भी नकवी को हमारी हाविक वक्षाई।

--वीरेन्द्र वार्ये

काशिस्तानी पातकवादिग्रे का विकार होनेकाओं में सी परिवर्तन हुमा है। महरी पश्चिकतर हिन्दू होते थे, पिक्से का सम्ह के क्यासर सिचारहैं हैं।

वृत्तित कमिकार कुतिवस रिवेसी और शास्त्रवाण सिद्धार्थ अक्य दोनो ने बादकवाद को समान्त करने की विका में क्यमी परियम्बताका परिश्वय विकात

ने बहुते हैं कि जिस दिन ने और अनकी पतनी ज परवाकों के बिना निर्मय होकर स्वर्श मन्दिर जासकेने तथही ने नाम सन्ती हैं कि वकाब सपती पहले संसी दिवार में बा नवा है।

# हिन्दू और आर्य में अंतर

माने राम भागं, प्रधान, आयं समाज, महमद नगर (महाराष्ट्र)

"नार्व 'हिन्दू नहीं हो सकता क्यों कि सार्व कब्द की परिधाका महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीची महाराज ने चपनी इति चार्थोई स्म-रत्ननामा क.स 4) ने इस प्रकार निकी है --- प्रार्थ जो खेंड स्मभाव धर्मात्मा, परोपकारी सत्यविद्यानुगा-युक्त भीर भाषांवर्तादेश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको ''धार्य'' कहते हैं। इसी प्रकार कस, 42 में दस्यु (धनायं) धर्षात् धनाडी, घायौ के स्वधाय घीर निवास से पृषक डाकू चौर, हिंसक जो कि दुष्ट मनुष्य हैं, बह दस्यु बहाता है। जेंसे "वार्व " **क्षेष्ठ धीर ''दस्यु'' बुष्ट मधुष्य** को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता है। (स्वयन्त-धामन्तव्य प्रकाश कस 29) I

"हिम्दू" शक्य हमारी सस्कृति का नहीं है । यह निवेशी भाषा धरशी तथा पारसी का है, जिसके अर्थ काला। काफिर धौर चोराबि होते है, जो दस्यू धनाव तथ्य का पर्वाय-याची है, "बार्य सन्द का ही नहीं। इसलिए "बाय"' हिन्दू नहीं हो शकता । भीर भागे देखिये महर्षि वयानन्थकी महाराच बना कहत है ---कार्यो बाह्यकपुनार्थो । पाकिनि सूत्रम् । राजा मागीरथ के समय बहा-शारी भीर बाह्यण का नाम "बावे" था ऐसी व्यवस्था हाते हुए हमारे देख का नाम, बाव स्थान "वावखण्ड" होना चाहिए सो उसे खाट न जाने "हिन्यूस्तान" यह नाम कहा से नि-कता? वाई योना नण ! हिन्द श्चन्द्र का अर्थ काला, काफिर, चार इत्यादि धीर स्थान कहने से काले. काकिर, चार नोयो की जमह ग्रवश देश, ऐसा धर्व होता है, तो जाई इस प्रकार का बुरा नाम क्यो इहण करते हो ? और अर्थातु धार्यकोष्ठ सबवा समित्रात इत्यावि सीर सर्वतक कहने से ऐसो का देव गर्थ गार्थात्-वर्तका सर्वे अही का देश, ऐना होता है। सा माई एवे कोंध नाम

को तुन क्यो व्योकार नहीं करते? क्या तुम क्या ना मुक का नाम की भूत व्य हो। इस लोगो की यह रियति देककर किसते हुएया को क्षेत्र ज किसी की क्या का नाम की होगा, सक्त की ही होगा। मस्तु क्यान करी स्नीर आर्थ तका सार्याकर रो सीर आर्थ तका सार्याकर से सीर आर्थ तका सार्याकर की हुए रो हुए एरन्तु नाक भ्रष्ट तो हुये न होगा साहिए। देखी साथ सबसे के सेरी आर्थना है। सीर्थ साम्ता है।

(उपरेश भवरी व्याख्यान न है~ स्थामी दशानन्द सरस्वती)

इस उपरिवक्ति व्याख्यान से महर्षि के दूस कापता चलता है। इस पर भी को धार्य समाजी सन्जन धान संस्थान "धार्म" (हिन्द्र) निकते हैं भीर पार्वव मार्थत्व को क्योडकर हिन्दू तथा हिन्दूरव का दम घरते हैं, वह महर्षि की प्रार्थना व मान्यता के विरुद्ध बर्राते हैं। ऋषि सिखावी को छोडकर ऐसा जो भएने निवा विचारों के कर रहे हैं बहु महरी भूक्ष पर है। कोश मे हमेशा पर्यायवाची शब्द लिका जाता है। हिन्दू सब्द का एक बाव समाना-र्थंक शब्द दस्यु (धनामें) है जिस को धाप हिन्दू (धनाये) या दस्यु (हिन्दू) शिक्ष तकते हैं। स्याधाप बार्य (बनायें) भीर (दस्यू) लिख सकते हैं किंकदापि नहीं । इस श्रकार लिखना समुचित है, स्यांकि इन दोनो जन्दो के अर्थ शिव-भिव क्षी जाब (हिन्दू) सिव्यमा सार्थक नही भ्रम मूलक है और त्यायने याग्य है। इसलिए बेरा सबी प्रायसनाजी विद्वार्गो, लेखकों धीर पत्रकारी से नम्र निवेदन है कि बहु देव दयान-द के सिद्धातों की युद्धतायूवक अपनायें भीर अपने लेखो और उपदेशो म हिन्दू कटब का खण्डन सीर पाय म∞द का मण्डल इसे सर्वेत किया मे

# 'वैदिक धर्म्म'

– का दृश्विकरजी कर्मों की छिट् –

'वैदिक धर्म्म विश्व व्यापी है, बयो सकीक बनाएँ हम, कल्याखी वासी ऋषियों की, सबको क्यों न सुनाएँ हम। वैदिक धर्म्म प्रेम का ब्रेरक, वैर-वृक्ष का नाशक है, सानव-धर्म-दिवाकर है वह, उज्जवल ज्ञान-प्रकाशक है।

विश्व बन्धुता भर हृदयों में सदाचार की घोर वड़े
'मानवता' के उच्च शिवार पर, सुदृढ धारएगा धार चड़े।
जो वरित्र की कड़ी कमौटी पर, पहले कस जाते हैं,
बहुी बीरवर भाग्तजनों को, सुध सम्मार्ग सुम्राते हैं।

'बाह्यस्य' ज्ञानी उठे, देश का मोह-तिमिर, अज्ञान हरें,
'क्षत्रिय अत्याचार मिटाकर, सत्याचार प्रचार करे।
'वैदय' अभाव दूर कर सबका, शीवन वस्तु प्रदान करे,
'शुद्र' लोक की सच्ची सेवा करने ने अभिमान करे।

कम्मं-योग वे हँस-हँस सकट सहना 'नय' कह्याता है, तजना पढे धम्मं-हित को कुछ, वही खाग' यद पासा है। 'त्याग तपस्या' रुष्ट हो गये, आओ इन्हें मनाएँ फिर, 'त्यागी' और तपस्वी' बनकर, एक बार दिखलाएँ फिर।

शुभ सकरव गुक्त सब मन हो, तन परिपुष्ट धरोगी हो, धन का कोत धम्में-प्रुवता हो जन न विश्वासी भोगी हो। स्वायवाद का भूत भयकर, कभी न विश्व विचातक हो, दानवता का दम्भ न मौलिक भानवता का पातक हो।

ऋषि-जोशित सै सिचित होकर जो कुलवारी पूल रही, वैदिक वायु विकस्पित देखों, भूक क्रूमर-सी झूल रही। जिसकी सुखद सुगन्ध विश्व को, बना रही है मस्ताना मिटने कभी न देना उसको, वाहे दुम खुद मिट जाना।

तायं, जिलके वैदिक सरकृति की रक्षा होन । परमेश्वर प्रायों की आर्थल प्रहम करने और हिन्दुत्व की को की की कि जी र तरवृद्धि प्र- वान करें जिलके वह याने करें, तरकृति और सम्बात का प्रचार करने ये सफल होने । पार्च नेता प्रवत्य को खारफ करें, यही बेद का सदेख है और पुर बदानन , का उपदेख है ।

स्त्रमाठतें पर श्रामिकृत कुठ रें की स्यूद्धकार द देन की धनक समाना पर सनावों व ससानाधिक तत्वों ने सनिवक्क कर के कन्ने किए हुए हैं। साथ सनाव सबनेर ऐसी समाना की जानकारी प्राप्त करना चाहना है।

बार्यं बज्जनो से निवेदन है कि उक्त समाजो की सूचना विवरण सहित हमें भेजने का कब्ट करें।

को३म् कप्: — सत्री

# राजस्थाम प्रतिनिधि सभा का इतिहास

राजस्थान के बार्य जाने की यह आवकर हुई होना कि हमारे प्रात की धार्य शितिक तथा प्रपत्ने जीवन के 100 वर्ष पूर्णकर दिवीय कतान्वी ने प्रमिष्ट हा रही है। इस उपलक्ष में तथा का करवान्य हतिहास शिक कर प्रकाशिक किया बायेगा। धिनहास केवन के लिए को सिंदित हवारी तथा ने गाँठन को है उसका स्वयंक्य मुक्ते नियुक्त किया बार्य है। धार आपके जायना है कि राजस्थान की कार्य समाध कथिकारीनया वश्मी धार्यसमाधों की पुरामी धार्मिक रियट तथा सम्य बालस्थक वालकारी समिकस्य मुक्ते भेळें।

> — शवानीसाल जारतीय थी-3, पदाव विश्वविद्यालयः, चच्चीवद्य —160014

## वेद प्रचार समारोह

सार्यसमान उरवपुर में रिनाक 19 के 23 स्वरत तक वेद प्रचार समारोह मगाँवे गवे, विसमें सार्वस्वत के सुप्रसिद्ध फितक प्रवक्ता की नहारमा सार्व निक्तु की जनावापुर (हरिकार) के प्रचण एस जी विसब विद्वती 'विसर्व' इंग्सैर के मनूर क्वानोप्तेस हुए 1

इती सबसर पर श्रीमती मासती जी श्रमवाल उपप्रवाना के प्रयत्न से महीला श्रावंसमाज की त्वापना भी की वई ।

धार्वसमान साहपुरा द्वारा वद प्रचार सप्ताह भनावा गया ।

--- R = 1

# पंचम् श्री चूडमल आर्थ पुरस्कार स्वामी विद्यानम्द सरस्वतीजी को

हिम्हीन सिटी । स्थानीय नवर आसंसमाज होंल में 9 सागस्त में 16 स्रवस्त रखांबरसन के भी कृष्ण सम्माहमी तक वेच प्रचार सप्ताह के सन्तर्गत वजुर्वेद कक्ष पारावस्त का सफल सायोचन स्थामी सोमानस जी महाराक के साथावित्त के उत्ताहपूर्ण बातावर में सम्माह हुआ । इस सवसर पर सी सत्यपान सरस के सव्योचन तथा प्रतिस्त तथा प्रतिस्त तथा प्रतिस्त तथा प्रतिस्त स्ताव अनुस्ता । इस सवसर पर सी सत्यपान सरस के सवस्थान हुने ।

श्री कृष्य बन्नाहमी के पानन पर्व पर बी प्रकृताद कुनार यार्व हाथ वपने पूज्य पिताची की स्मृति में स्थापित बी प्रमास सात पुरस्कार प्रायंजनत के क्यांति प्राप्त विद्यान स्थापत मिलाने विद्यान स्थापत की जनकी पुरस्क ''वेदसीयादा'' पर स-सम्भान, समारोहपूर्वक विद्याल दिस्तियों में दिया नया। सन्यास्थ्य सन्द्रमान, समारोहपूर्वक विद्याल दिस्तियों में दिया नया। सन्यास्थ्य सन्द्रमान स्थापन या प्रमास सम्बद्ध सन्द्रमान प्रमास स्थापन या सोमप्रकाय की नहीं सात्र सम्बद्ध सन्द्रमान स्थापन या सोमप्रकाय की नहीं सात्र सम्बद्ध सन्यास स्थापन या सोमप्रकाय की नहीं स्थापन या सोमप्रकाय की नहीं स्थापन स्थापन या स्थापन या सोमप्रकाय की नहीं स्थापन स्थापन या स्थापन या सोमप्रकाय की नहीं स्थापन स्

## विद्यालय भवन का शिलाम्यास

डी ए बी खताब्दी पब्लिक स्कूल, जयपुर के विद्यालय भवन का 19 सितम्बर को साय 4 बजे वैद्याली स्कीम के पास, खावनी में श्री बी डी बाली के कर-कमभो द्वारा खिलान्यास होगा।

--- प्रधानाचार्य

#### वेड प्रचार सप्ताह भनाया

आर्यममाज, सुमेरपुर (पाली) द्वारा 17 धगस्य मे 24 अगस्य तक वेद प्रचार सर्गाह मनाया गया !

# आर्य वीर दल का उद्धाटन

13 सितम्बर को खार्यवीर दक्ष, केकडी का उण्वाटन श्री सरववीर शास्त्री, प्रान्तीय सवालक, खार्यवीर दस, राजस्वान के कर-कमली द्वारा सम्पन्न हुखा।

—अजोक आर्थ

## वार्षिकोत्सव

यार्थनमाज बारा जिला-कारा (राज) का 56 जो बार्थिकोत्सय दिनोंक 8 सफ्ट्र से 13 सफ्टुकर तक आयोजित किया चा रहा है। इस सबक्तर परतक्षिप्त ''चहुर्वेद पारावण सल'', का भी सामीजन का

उत्तव में स्वामी सत्यानक सी, पुरुषुत कन्नक स्वामी कन्नके वेदिक, हरिक्कर, क्षां निर्मेश का कामी कार्य की दिनेश क्रिकी कार्य कारि कार्य की दिनेश क्रिकी कार्य कार्य कि दिनेश

---शनकरण नुप्ता ---शनी

## आर्य खमा ज चुमेरहर का निर्वासन

त्रवान-श्री नदरलालजी गोयल मत्री-श्री गणेश विश्वकर्मा प्रचार नत्री-श्री श्रद्धानद सास्त्री कोषाध्यक-श्री कन्हेबालाल

बार्व समाज बजमेर द्वारा प्रकासित साहित्य

### प्रो क्लाओब भार्च द्वारा छिषित पुरतके

- 1 तेच, क्षयं धीर हिन्यू समाज को वार्च समाज की देन मूल्य 0 50 पैते
- 2 हमारी शब्दीयता का साधार-मूल्य च. 1 00 3 बाखार सहिता — मृत्य 0 50 पैते
- 3 जावार सहस्ता पूरूप 0 30 पत 4. दी साम साम हिन्सू विदासट हिन्दू इंग्ल (ज में जी) — विशेष रियावती
- 5 धार्य समाग हिन्दू धर्म का सम्प्रदान नही मूल्य---50 व सन्य प्रकाशन
- 1 जार्य समाज (हिन्दी) मूल्य सचित्रद 20 00 व. ज्ञाबरूच 16 00 से. सावर सावप्रतान
- 2 धर्मकिसा (भागां से 11 सक) पूरे सैट का मूल्य व 32-00
- 3 दवानन्द कथा सबह मूस्य व 3 00
- 4 परिचय निर्देशिका (समस्त देख-विदेश की आर्थ शिकाय संस्थाओं का 5 परिचय) -- मूस्य व 12 00

## सत्यार्थ-प्रकाश्च ब्राम्थ माला १५-भाग

( प्रत्येक समूल्यास वर स्वतंत्र द्रैक्ट )

1- देश्स्वर का नान समेक 9- स्वयं भीर नरक वहा है ?

1- ६रश्वर का गांग भगक 2- साथस नाता-पिता

2- मायस गाता-ापवा 3- क्रिका घीर चरित्र निर्माण

4- वृहस्थाधन का महत्त्व

5- सम्यासी कीन और कैंसा हो ? 6- राज्य व्यवस्था

7- ईश्वर धीर केब 8- जबत की उत्पत्ति 13- वेद और ईसाई नस 14- इस्लाम और वैदिक धर्म

15-सस्य का सर्वे समा प्रकास

10- जीके पूरहे में धर्म वही है

11- हिन्दू की निर्वसता

12- बोड धोर बैन मत

क्षित्रेष--- सभी दुंबर सार्थ सगत के बोटी के बिद्धानों के क्षारा निविध्य हुँ एव प्रश्नमाना का सम्यादन सार्थ सगाव सजमेर के प्रमान प्री क्ला-प्रेयका साथ न फिया है। प्रत्यनात्मा के पूरे सेट का मुख्य 8/- क्यम है।

6 वर्ष 1986 को प्रश्तका वर-कार के दिवीय जनन समारोह में में मीयुर वा । धर्म पु**ष्ट्**री को 2000 के बाविक स्वी-पुरसों की भीव र्वशाय राजसम्म में सामियाने के नीफे एक्ष्मित थी । राज्यपान विकार्य बंबर रे 23 विषयों बीर बरवनियों को पक्षाकी में अपन विकास में पूरी क्रोजिय में बने के |े बो की क्रोक्कर मेप बची के लिख होने के बाद बढ भी सम्बद्ध के तूनुव बोव से स्वावत हता, क्यो शक्ति देर तक वह ज्योग बूका बीर शास्त्रकें जेनिक पन्-बाधरा के क्रिके हुई । बुसबनान होने के मार्थ एक करन्य वापने वाच पुन निश्रों की सरवा-हो-सक्यर का यीव करने के सिए से अबे वे । एकमाव क्षिम्ब (राज्य में 42 प्रतिबंध हिम्बू हैं) बदाय के लिये हुई व्यक्ति करने बाबा कोई नहीं या।

रवाद एक बार फिर बक्टापन रिवर्ति में वा । वरकाराविह की कांग्रेडी सरकार की वर्षास्तवी गीर राष्ट्रपति शासन, वर्गमुख नोर्चा गौर उसके बाद बकास तक्ष्य की क्रिकेटवी बहिर मार्चक्य वह स्टार यह सम हुमा । देहाती इनाफे में उन्नवादियों का सफाशा करते के जिने सापरेशन बक्रोब हुवा । उसके बाद जीमती शांकी की हत्या हुई कीर रीके रीके विकारी और उत्तर पारत के सहरों वै विक्रों का कारोबान हुवा। इस एक रक्षित स्थिति ने सब सौयोगाध-रांबीन गांबी सबनीते है जुब राहत विसी । फिर बंध सोंनोबान भी इरवारों की योगी का विकार ही mit :

रनाव में क्यांव के सन्य एव बार फिर सूक्तम उद्देश बधा । कविच की निर्मा क्या के व्यक्तमी तम को पूर्व बहुक्त निश्च क्या और 25 सिक्टबर 85 को उचने सरकार नगा थी।

नेह प्राथम कि तमानी प्रवास के स्थान प्राथम कर तेने, जील ही विकास सेहप-जरक परम हारा प्रकार में काशियन होने के पैतन के हीनम ही नवी । वरणाना के वास संपंत्र करफार के निषक प्रमुणने का पहुँच कम मीचिया ना । बजानी वेशियन पर की न तो कही है, ह

# आतंकदाद का राज्य

#### -- শ্বৰণ বাবিদ্ৰ --

है, क्टे फरे सकासी वस जा पक्छ होंमें का बाबा हो और जो कम है। की जी हो, कर्से पक्षी और निश्चित हो, क्यों प्रवासियों हे खाडिस्तानी साहतस्य को बडसून के स्थात कर देने का ब्रांडकार किस नवा।

वरनामा के सिके खू तव कवी मी बातान नहीं पूर्त । जय उन्होंने क्या बातान के जिन वरकों में राज्य का बातान के जिन वरकों में राज्य का बातान के जिन वरकों में राज्य का बातान के जिन वरकों के प्रत्य के प्रत्य के प्रत्य के कि को स्वयं जिल्ला के प्रत्य के कि को स्वयं जिल्ला के प्रत्य के कि को स्वयं जिल्ला के कि को स्वयं जिल्ला कुमा दिवा ( व्यवसा कुमा के के का प्रवार वाला नमा) तो तोहरा-जावल जो ने इक्का पोर जिल्ला का बाता करा। तो तोहरा-जावल जो ने इक्का पोर जिल्ला की स्वयं के प्रत्य का बाता करा। तो तोहरा-जावल जो ने इक्का पोर जिल्ला का स्वयं के कि अपनार्थी वरलाला मो खोड की।

श्लीवने वाणों में महत्वाकाती समित्रिपर मिह ने भो धाव के बिन तक यह बकीन करते हैं, कि पटि-वाला राज के राजकुमार होने के बाठे प्रवाद पर बादन करने का इनका कम्य सिद्ध अधिकार है। वर-नावा प्रपने करामाती विश्वमंत्री क्व-नतिह को हरिकामा के धवनलाश की तरह की पादनीशिक क्लावाकी विकार्य की छट वेकर शर्पने को किसी हरह बचाने में कामधान हो नवे ! समर्बको भौर हाय हिमाने वालों को विपक्ष औ नहुँच है सवाने के लिये वड़ीस के दियाशक में वे कावा बना बीर विश्वानश्चल का सच होने के बाग्य पर ही शाविक शावा गया ।

हरेक को क्युनित कर वे पुरस्कत किया बया, वा तो जयी पर विशा स्वयत्त कार्गवानिक श्वयत्त का त्रवस्त यदा । वे बोब बातवे थे, कि उनकी कित्मत कश्यो देर तक साथ देने बाती गहीं है, द्वांतिए उन्होंने क्या वें वर्षी बस्स का सरहूर उपयोज फिना। पनाव में कभी भी बरताया के अकानियों की अब जीवारे का पर्कार नहीं देखा। धारकवादियों के बढ़ना वो दूर, कुछ वो उन्हें वर-सस्य थी जवान कर रहे दे। धारक-वाद धीर तस्करी का चौजी-वानन का साथ है धीर तस्करी पनाव के पानवीतियों भी निविध्य साथ का साथन है।

इस तरह के मतियों के बरनाका शर-कार किवने दिश टिकती,इसका अनुमान कोइ को बना सकता था। उसके सक्क ने पहतें समय ही सनेक जिलो में एक सामानान्तर सरकार क्ष्मश्री णा रही थी। बेहाती तिकी की कासिस्थान की मान का समधन करने के लिए र"ी करने मे वसक्त होने पर्शे साई एस एक एक भीर का रो के श्रतिवादी बर ने सम्बा काम करने वासी जैसी स्ववि स्वापित करने के लिए 13 शूनी 'मुडीकरख' नहिला चलाई। इसमें बराब, मांस धौर सिवरेट की बुकानें नम्य करना, नाईबो की राज्य से बाहर जाने का हुन्य देना तथा इस बात पर जो र देना शामिक या कि स्कृतों ने सभी वच्चें बासदा **परम्पराधो के बनुसार ही वर्जी** पहनें। खराव की दुकानी, शास की बुकानों और पान बीडी स्टाब्ने की सहस-महस कर देने वे उन्हें प्रचार धीर कडिशद की स्वीकृति हासिल हुई । श्रराब और नीस का कारोबार क्याइतार सिक्तो के डाव में है पाय-बीडी दौर सिवरेट की खपत, शास कटाने जीर वाडी बनाना तकरीयन पूरी तरह के गैर विको में प्रवसित ŧ i

स्वर्श मिनार वे काले हुए गोटिस बीर सम्बन बारी होते के, बिनमें नोमों को हुका विशा पाछा का कि वे स्थय शुश्चिर होकर सावेबी का पासन व करते के

सारीगों का सवाब में। सम्मन ने साफ तीर पर बहु समझी होती भी निव सामने हाबिर होकर सफाई नहीं यो तो भाषके विकास जिस्ता कार्मवाही भी जांचेशी। जिसा को कोई बक नहीं या कि सचित कार्य-वाही का क्या मतसब है। बुके साम यह कहा बाने कमा कि दिन में तो प्रभाव पर सरताबा सरकार का बातन होता या और रांत में साठकाशियों का ।

12 वर्ष 1987 की खिळाचे सकर से घोषचा की कि उन्ह किसी सलाहकार की सकरत नहीं हैं से सरकारी क्षीक्षशरियों की कहायता से हसे चलाने का इतवाम कर सकते हैं।

चुक्यात वहुत बाराब रही। बातकवादी वतिविधियो में बा नई। हर 24 घण्टे में मानतीर पर 5 था 6 को यो को मीड के चाट उतार दिये बाने के स्थान पर यह तक्या दुनुनी हो नवी। रिवोरो इसे स्थीकार करते हैं और बताते हैं 'इन बरनाओं में नेजी बरनासा मुक्ष्यमन्त्रित्व कास में ही आवर्ड की। बादवाली ने उनमे विकायतें की राश की उहे भातकवादियों के रहुन पर इहोब दिया जाता है । कुकि वे सवानक हमशा करते थे हमने भी उन पर अवानक हतलें बोस दिये । चाहिर तौर वर हता-इतो की सक्वा वडी लेकिन साम-शाथ हमने पड़ले से ज्यादा धालक-वादिनों को मारा पक्का धौर है सनवरी 1985 व 86 के बीध डमने 78 धातकवादी नारे पिछने 6 माह (बनवरी से जन , 87) ने इमने 126 मारे ।

कुछ पूल प्रश्न है विश्वका बनाय बनायन के जानने काने वाली जनस्थाओं का बादबा सेने के लिए देना बन्दी है। धाल किसने धालक बादीहैं? वे एक जान धारधों से कुनी हरवारे क्यों करें, उन्हें कीन बनाह देशा है जावि।

मातक्याची मिश्रेह में चार सबसे प्रमुख है जिससे सबसे चीटा नेक्ति सबसे सदरनाक सुम्बदेशसङ्

(क्षेत्र 98 2 वर)

**अस्य से** 123 वर्ष पूर्व नहींव स्थायी दवानव्य सरस्वती ने श्रपने पूर्व विरकानम्य की से सिका हवं बीखा नेकर पशुरा के क्यान किया था। वह विकास सम्बद्ध । \$21 का वैशाय मा । सारे समार में वैश्विक वर्ण के प्रचार का शकला था । फिल्हु अवत पुष्ट कारत हो दक्कीय अवस्था में पराया। महामारत पान वे विरता ह्या चारत 1864 तक पतन की पराकांक्षा पर शृक्ष क्या था। इक्ष्में प्रशिक पत्न और पना हो सकता प्राः इतको क्रम्मीकेक सम्ब स्वा को कुछ बी ही नहीं। ज्यासी की बढ़ाई गरीठीं का पतन, पनाब में सिंखों की वर्णवर, दक्षिण में टीवृ सल्लान की सामाती तथा करर से 1857 के विद्रोध की प्रतिक्रिया ने भारतीय जनता के हुध्य के राज.... नैतिक तत्व को निकास कर बाहर फेंक दिवा वा । सामाजिक विचनता ने हिन्द बारि की थह की खोखना कर दिया या अन्य नीच के नेदमान के शाथ ही अनेक प्रकार की सनिधा तका धन्छ विश्वास से वह वाति इसनी पूर्वल हो नई भी कि कोई धनुमान भी नहीं कर सकता वा कि बहु भी एक दिन दून अपने वीश्य को प्राप्त करेगी । विश्ववाद्धी तथा धनायों के करण भन्दन ने इसे बरा-वीस कर दिया था।

यक्षीं नार्डविनियम वैटिन के सनय सरी-प्रकाके विशेश में कानून केवल कार्ज में ही बा, बस्तु स्थिति कक्क सीरडी थी।

जिल राष्ट्र चाथा क्रिम्ही की वर्ग याच तर्वत्र है, उठ प्रकार इसका कुछ भी सस्थित्व नहीं या। संस्कृत मृत याचा चौषित हो नवी की, कारही और उद्दें का बोलबासा या (बह भी कहीं कहीं)। क्षेत्रीय भाषा में साधारस बनता नात करती थी। अर्थे की क्षित्रका पदा-पर्णभारत वसुन्तराके अन श्रीत में हुआ। लार्ड मैकाले इसके जन्म-दाता वे । सबप्रचम हिन्नी कांग्रेज बवास में स्थापित हथा । वन्दे मात-रम् के लेखक की क्षकिम चन्त्रजी चन्थी प्रचम से बुएट हुए । सब विध्योग दिया तो एक तोप से उन्हें सलानी दी नहीं। स के अर्थ शिक्षा के पवापता से मारबीयों ने सपने सर्ग **ध्रम्**ति तथा चुचि नुनियों के वर्ति

# भरत के वह विस्तृत हैं-महर्षि देशानेन्द्र तथा भारतीय बौद्धिक क्रांति

-औय रामामस्त्रकी **सा**स्त्री-

मुखा फैनते वसी १ सहे खामाव स्वति देशहें तहें स्वीकार प्रश्ने नवे ३ कार्किक यहुकूत्व, के. एन. यस प्रति वन देशहें तमें में सीकित हो वहे । यह हमारे देश की शामिक सनस्था थी ।

स्वामी बवागण्य सरस्वती ने टूटे जारत को धपने हाक सेकर इसे बस-बाग और निर्णय बनागे का प्रत जिला।

नवृधि बवानन्य के न्यास उनका स्थानन्य वाकार्यम् विकार विकार्यम् विकार विकार्यम् विकार्यम् विकार्यम् वाकार्यम् वाकार्यम्यम् वाकार्यम् वाकार्यम्यम् वाकार्यम् वाकार्यम् वाकार्यम्यम् वाकार्यम् वाकार्यम् वाकार्य

'It is a perfectly certain that India never saw a more learned Sanskrit Scholar, a deeper Metaphysician, among Monderful orator, and a more fearless denunciator of any Evil, than Dayanand Since the time of Sanbarasharya'

क्वामीजी में कट्टर वथी परिवा की काशी नवरी में [बहु दे व वर्षे व्यवस्था वी वाती हैं] जह भोजवा की। स्त्री चीर तृत्व, जर क्वाबा मब वेद पढ़ने के परिवारी हैं। वह पारत के इतिहास में पारतीज बनवा के लिए जीडिक धाजाबी दी पीचमा थी। धाजाबी दी दोचका 1925 हैं में गड़ी कट पर हुई, वीडिक सी महर्गि वे बहुव पहुंचे ही कर थी। इक्षका महर्ग्य वाधि- नंदर्भ की बीचवर्ग के रांच श्रह्तक-कार्यी नहीं हैं, जी जम्हींचे नीतो प्रका के लिए की बी 1

काम के लीकड़ इतिहालकार भी के वो काश्यस्ताल में क्रिकार है कि गहरका गर्थी को सर्व्यक्ता शिवा-एक कमने ने वरकारण कहीं निभागा विद रवानी प्रशास्त्र के कपता के शरियकों में यह दिवार व पर दिया होता कि जरून से चाँत गरेत विव्या है। सरियों से दबाई वह बनता में यह विव्यान हुया कि कर्न के हुए उपल क्षा प्रशास कर सकते हैं। यह प्राप्त कर सकते हैं। यह प्राप्त कर सकते हैं।

वहुय दिनों के सामित होन के कारण स्त्रम पारतीय वह जनुमाद 'नुनों नीहें दे कि हम सास्त्र राष्ट्र हैं देहासक मही, स्वामी ने कब विवाद का उम्मूचन किया तथा प्रतास देवर मंचार्य प्रधान के स्वाद स्वृत्याक में यह सिंह देवरा कि हमूंदर कम-वार्ती राज्य था। वन्हींना रोगायों की गामानती भी वी है।

विश्व समय यूरोप में कार्यमार्थ यह सोच की नहीं रहा का कि सर्क-हारा को का राज्य होना चाहिए, रजके पहुँचे स्वार्थ में क्रिक्टा की राजार्थों का राखा विचा। पुरसुम विचा प्रेमोधी बारा स्थानी जी वे तम कामी की ऐस बांध पूरी, जनार पीर्वन रिका कामात से हररा चान-ति के समाधकार की स्थानकी की व

व्युक्ति के 10 में सम्मांक के एक स्थार की व्यावकात करते. हुए वाहर्ति के निवार है कि प्राथा नहीं प्रधान का प्रसार, प्रथा, प्रसार व्यव-हीर होगा गांबिए? विकास पुर सम्मे को वह विकास प्रशिक्ताचे विकास है?

स्वामीकी की एक जीर देन राष्ट्र को है जिसे क्या नहीं बुबावा का दक्षण कि स्वामीका ने गौकिक पूरवर्षों को पहले का आदिक आपों के तिय स्वान, उन्हें के आदिकहम प्रकल कहुत में । इन्हों स्वाम बोचने की महिना कानों ने होती है।

दी एम न तकानी ने सकते टार्फ (वनरर ज्ञन्य में लिखा है कि एक प्रकार जात. (रिटावर्ड) वण्डन ने स्वाची की हे पुछ कि मैं जीनती केवा कर तो स्वाची की ने उन्हें कहा कि सारन क्या वाहियों (तथा करिया जावियाशियों) में किसा का प्रवार करें । यह फिल्का वाहर-पंत्रमा थी । तरि इक्का माधन किसा था होता की साथ जादकार को वर्षस्य वथा अस्वाचेंद्र की दि-पर्ति नहीं कार्य होता की प्राय

विकास रक वात का आजी है कि बन-बन कार्रित हुई है जो उनके सहते वेग्यक आगा के संवेदीहिंद नार्ति का कराएक विवाद हवा है :

विकासी के न्यूने सबस राम-सात, क्यां की मार्थि के सूखे कार्य मेरिन की मार्थि के मूखे कार्य नावर्य ने दिवार केत्रा में मार्थि उत्तम कर दी की । दीक कार्या-मार्थ के मूखें संस्थानी कार्या-मार्थ के मूखें संस्थानी कार्या-सार्थ्यों में त्राचेश क्षेत्र में कार्यि कर दी की, इसके बांधी की की कार्या-तार्ममा एक ताल्यों की कार्या-

-- पटमा (बिहार)

वेद ही समस्त धर्म का मूल हैं।

सत्य को बहुसा करने और ग्रास्थ के कोड़ने में सर्वया उकत रहना चाहिए --महर्षि स्थानन्द

सुष्टि सम्बत् : 1972949087

**दवानन्दाब्द** • 162

वर्षे . 3 ब्रधवार, 30 शिलम्बर, 1987 वक · 15 वं स -43338/84 II

पाक्षिक पत्र

"बार्य हमारा नाम 🐉 वेद हमारा धर्म। को३ण हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ॥"

सभय मिनादभयस् अधिनादभय ज्ञातादभय परोक्षात् ।

कुष्पम्तीविश्वमायं न सकल जगत को आर्थ बनोए

हुमारा उन्हेरव : समाच की वर्तमान एवं मविष्य में पैदा होने बाली समस्यार्थो **को दिस्टिम**स रसते हुए पार्यसमाण का पुनर्गठन करना है ।

भश्विन इ. 8 सवत 2044 क्षचय नक्तमभय दिवा नः सर्वा माका नम मित्र भवन्तु ।। वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

## सावंदेशिक समा का महत्वपर्ग निर्गय

# घसपेठियो पर प्रतिबन्ध

मार्वसमाज की सिरोमिश सार्व-देशिक बार्व इतिनिधि सवा के सम्मुख गत पाच वर्षों से बार्य समाज की वर्तमान स्विति शवा प्रविष्य के सम्बंध में सभा द्वारा श्राप्त*र्व* बत्तात्रीय ग्रार्थ के सथोजन ने नियुक्त उपसमिति की रिपोर्ट विचार(धीन थी। इस बार 18 व 19 सितम्बर भी नेवल इसी की शिकारिको पर विचार करने के लिए सभा के प्रधान स्वामी मानदवीस जी ने बतरव के सदस्यो तचा कुछ प्रमुख बार्य दुद्धि-जीवियों की एक विशेष बैठक आग-जित की। भीए दोनों दिन रिपोर्ट के प्रस्वेक बिन्दु पर विस्तार से विभार-विनिमय किया गया । जिसकी विस्तृत कानकारी हम 'आर्थ पुनवंठन के मानामी अक मे देने ।

20 तितम्बर को सतरव वे श्रीपचारिक रूप से यह विश्वय पन त्रस्तत किया नया । जिसमे जन्य बिन्दुस्रो पर ब्रनेक निर्वयास्मक निष्टि-चय किए नए निन्तु उनमे सबसे एक उल्लेखनीय निर्णय यह का कि भविष्य मे ऐसा कोई व्यक्ति प्रार्थ-सभ सब् या प्रधिकारी नहीं बन सकेगा जो ईश्वर के स्थान ने जड वा किसी व्यक्ति विशेष की ग्राराधना करता है मृतक भाद्य करता हो, स्थान विशेष की ठीव नानकर बाता करता हो या जन्मजात जात-पात और खुबाछत ने विश्वास स्थवा व्यवहार मे उनपर झाचरश करता हो तथा अन्य किसी अवैदिक कार्यमे लिप्त हो।

कई बर्जी से घनेक धार्य पुरुषो द्वारा ऐसी शिकायतें प्राप्त होती पही है कि अनेक स्वानो पर बार्य समाब भौर उसकी विकाश सस्यामा पर ऐसे व्यक्तियों का नियत्रशास ग्रधिकार वह रहा है, जिनका आर्थममाज के मौलिक सिद्धाती पर पर विश्वास नहीं है और जो मूर्ति-पूजा, जूतक शाद्ध व तीर्घ जैसे अर्थ-दिक ग्रीर गार्थसमाज व अध्वि दयानद के सिखातों के विपरीत कार्य करते रहे हैं।

सभा में यह भी निश्चिय किया गया कि अविच्या ने आयंसमाज का सदस्य अनने के लिए जो प्रार्थना-पत्र दिया जायेगा उसमें सदस्यता के इन्छुक व्यक्ति के लिए उपर्नुक्त भारतय की घोषश्वा करना श्रानवार्य होना ।

उपसमिति की बन्द धनेक सिफारिशो को भी सैद्वातिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है। जिसका विवेचन प्रम कानाबी बंक ने प्रस्तत करेंगे ।

#### मृल-सुधार

'ब्रार्यं पुनर्नंडन'के 15 सिलम्बर के जरूने पृष्ठ 2 सपादकीय'की 9 वी पक्ति मे प्रेस व सपादकीय विभाग की मिली-बुत्ती प्रसावधानी से 'सती-प्रचा' के पश्चात विरुद्ध सन्द स्थपने से पह नवा । क्रुपनः पाठक सुद्धार लें। -सपादक

# पंजाब में हिंसा रुक सकती है बशर्ते.....

वीरेम्द्र कुमार ग्रावं

र्यजाब से मिली कबरो से पता चलता है कि प्रवास की स्थिति बस पहुले से कही बेहतर है। बचाप कर भी श्रतिदिश उन्नवादियो हारा किसी ना किसी हिंसारवंध कार्यवाई का समा-मार निवाही एहा है। परंतु फिर मी में श्रम पहले की तरह मुलकर नही केस पा रहे हैं। और यह किस्पुट हिंसा जनकी असहायता और क्रोध की मिली-जुली प्रतिक्रिश की परिवासक मान ही है ।

पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री भी सुर-बीत विह बरनामा का यह कवन कि अनके सासनकाल ने उन्नवादियी हरस मारे वर सोवो की सब्दा ते राष्ट्रपति सासन के दौरान मारे वए सोनो की सक्या कड़ी ज्यादा है, सत्य हो सकती है। भौर भाकडे भी उनकी इसदलील के पक्षाने हो सकते हैं । लेकिन जो ची हो ग्राज का पजाब बरनावर के समय के प्रवास से कही बेहतर प्रवस्था मे है। पजाब के राज्यपाल श्री रे व पुलिस प्रमुख भी जुलियस रिवैरो के सम्मिलित सव्प्रयासी से ही यह सब सभव हो सका है। भारकवादियो की नतिनिधियों पर अकुत लगा है सीर उनकी व्यापक रूप ने ते वर पक्क भी नई है।

**भुक्त भोग ऐसे होते हैं, जि**नमे शोषने-सबभने की सामध्य नही होती वावेसद सबसकर भी सपने तुम्छ स्याभी को इंग्टिनत रखते हुए वास्त-

विकता को नकारने की कोशिश करते हैं। और कुछ लोग ऐसे भी होते हैं ओ तस्वीर के उचने पक्ष की अपेक्षा कालिमायुक्त पक्ष की बोर देखना श्रविक पसद करते हैं। तथाकवित कुछ राजनीतिको व पत्रकारो को धाज के पजाब व बरनाशा के पजाब में कोई भी अतर नवर नहीं मातः । भौर यहातक कि भुक्यप्रविक्षे के बयान का हवाला देते हुए वे स्थिति की चयकरता का बासूसी उपन्यासो जैसी भाषा मे वर्णन करते हैं ! वयकि यदि भाग मुख्यत्रस्थिते के बयान की सक्य वन्टि से देखने का प्रवास करें तो बास्तविकता सापके सामने सा

यह बयान भी उन्नवादियों के ट्रते ननोबल का ही परिचायक है भीर फिर बद्दक के इर से बयन देने वाले प्रथियो की विश्वनीयता सिको मे रह ही कहा गई है।

पजाब का भाहील बदल रहा है। मौर भाशाकी कुछ धुधली किरणें विचाई देरही हैं। जरूरत है केवल कुछ बुद्धिमता पूर्ण कदमो की-शांति की सरज निकल मानेगा।

पवाब-समस्या एक बटिल राज-नीतिक समस्या है। परत् किसी राज-नैतिक बातचीन से पूर्व बाताबरण को को उपयुक्त बनाना ही होगा। श्रतएव पहला काम हिंसा को रोकता है। श्री (शेष पृष्ठ 6 पर

विशेषकः इसानेय धार्य

प्रधान संपादक ' रासासिह

जाएगी। दरझसल मुक्य प्रवित्रो का संपादक : वीरेमा कुमार कार्य

🗪 कार्वा : 21010



## वार्यसमाज हो मुद्दीम पुनौती

# पुराणपंथियों की जड़ें उखाड़े चिना सती जैसी अमानवीय प्रथाएं बन्द नहीं हो सकती

सत 4 सितान्यर को राजस्थान के विवसाना बाद में हुए इस कबर सती काट को लेकर एक दिनों देव में एक जबरदस्त बहुत फिसी हुई है। वाहों एक बोर बुद्धि-प्रोहित्यों का एक बड़ा बुद्ध प्रधानन्त्रीन व बंध निस्कु कुत्रथा का विरोध कर रहा है बहुई हुन्दरी बोर कुछ तहां क्वियु एक्टिंग प्रधानाय बुद्धि-प्रीहित्यों क राजनेता ऐसे भी हैं वो सामोक्त बताकर धार्मिक स्वातन्य की हुत्यों देकर हो जन्मित प्रथम देने का सवराध कर रहे हैं।

तती प्रचा मर्वेदिक है वैदिक झारनो में इसकी कहा तेल मात्र की चर्चा नहीं निसती। भीर न ही जाचीन सारत ने सती होने का किसी पटना का ही उवाहरण मिसता है। क्या नहाराना इक्सरक की परिनयी पतिस्ता नहीं की?

गांत पात खमाकत और मृतक थाड वैसी धनेक कुरीतियों का ज'म वाता वैराखिक समाज ही सती प्रया जैसी कुत्रवा का जनक रहा है।

अपने स्वाब के निए वेवाधि शास्त्रों के कमनो को तौट मरोडकर पेश फरने के जान में पीराशिक सवाब अपना कोई साबी नहीं रकता है। कहते हैं कि राजा राममोहम नाम कोर साम समाज सुआरको से प्रराणा प्राप्त कर लाड विस्तिनन बेटिंक ने बंद सती प्रधा विरोधी कानन बनाया तो तत्कासीन पीराशिकों ने मूल्येय के निम्न मन को सती प्रधा के पक्ष में प्रस्तुत किया

> हमा नारीरविक्या शुक्तपीराज्यमेन शक्ति। व निक्रम् । सभ्ययोज्यनीया सुरत्तर सारीहम्दु सम्यो बोलिगर्से ॥

ऋम्बेद---मुण्डस 10 सूबत 18 मण 7

मत्राय को अपने पक्ष ने करते के लिए इन लोगों ने नत्र के अन्त से विद्यमान अब के स्थान पर असी पाठ करके उत्तका निम्म क्षर्य विद्या

सुफ्ली का सकारा यह है कि वह वैश्वध्य से बचने के लिए गुगदीप बमा उसका श्रवन लगा बिना श्राब में श्रासू लाए रोन कोक से रहिस् प्रसम्म बदन राजाभूवरा श्रारण कर श्रीम (का चिता) पर शारीहरा कर।

परन्तुलब किसी प्रबुढ महानुभाव की तका पर वेषपाठी विद्वानों से इनका पठ कराया गया और अब जाना वया तो इन महाधूतों की पोल लज वर्षे। मत्र का तही सब यह है—

बुपली वह होती है जो सुहानित रहती हुई जवन मजनादि सौर वृत के से सदा नीरोन रहे हुआ ने स्क्रमात न कर सेत सारक करे सच्चे साम्रचल सरात करें सीर भागे वाली नोम्स स्वान को अन्य दें। और इस प्रकार तभी से सती प्रचा निरोधी कानून लागू हो गया।

हम सदय में यह भी उल्लेखनीय हैं कि महर्षि दशनन जी का ही धन्य येद अभी के मनान उपयुक्त मण का सही धन्य करने का क्षत्र अभ्य हैं। वस्तुत राजा रामसोहन ने तो माण कानश डारा सती प्रचा को रोकने का अमाम किया परन्तु महर्षि ने वेद सादि सादनों के साधार पर एके सद्यामिक भीवित कर एक भहान काम किया था। जिसके सिए समस्त महरी ख्रवाब को उनका साभारी होना चाहिए।

वतम न में सती प्रया की खिटपट घटनाओं ने अधिकाल चटनायें राजस्थान में चटित होती हैं। राजस्थान को शुक्र होरेर वहाँ महर्षि हसानन्य

बैंके सह्यक्ष अवाज क्षुकार्क के जीवन के प्रविकास समय तक उनके सानिक्य में एके का सीमान्य प्राप्त क्ष्मा है वहीं बूतरी चौर हती के एक करने व्यावस्य को सती प्रका वैती प्रकृत्वतीय कुरका क' वानिक इस्त कुकुर कर कुक्र कर के मुक्त के क्ष्मीयन कुक्र राचिकें स्त्रीकी सिस्त्रीन के की स्त्य देने का पुनीस्य भी प्राप्त है। ये स्वामी जी हरिजनों के मनिर प्रवेस के भी निरोधों है। व्यावसर है तो में पीराशिक निरास्त्री के हीं। किर हुक्साकों और पायकों का परिस्तु च तनक्य करने वाली सक्से पूजनों क्षारा विध्वत में निवती परस्त्रार को में की स्वाप्त कर सक्से हैं।

राजस्थान के कुछ, राजनैतिक वसी के नेताओं ने सपने शुद्ध राजनैतिक स्वाचौं की बातिर सती प्रवा को ग्रपरोझ क्य से बढ़ाका देने का वंत्रीर क्पराध किया है। बनपुर जिला भाजपा ने ता बाकायदा एक प्रस्ताव पास कर राज्य सरकार से वह धनुरोत किया कि वह रूपकवर के देवर समुर तवा इस कांड के लिए धन्य वीची व्यक्तियों को विद्यप्तार करने की कारवाई न करे। राजस्वान जया के प्रध्यक्ष की कासवी के भी इस सवज में इसी प्रकार के विचार है और उल्लेखतीय है कि वे विवरामा में सड़ी प्रविर की स्थापना के श्रामित्रात से अपन्ता संजिम सक्ष्मीन मकाश राजनुक्ती को प्रवान कर रहे हैं। लेकिन भारतीय बनता पार्टी की अविक भारतीय मुक्किया मोक्स की उपाप्त्यका और विद्यापिका श्रीमती विश्वा पाठक स्वय एक सहिला होते हए भी महिला हितो के विपरीत इस बबंद प्रका का सामिक और नागरिक स्वातक्य की बुहाई देकर औषात्य सिद्ध करने का दुस्साक्का करती है। ऐसी नारी नारी बाति पर कलक नहीं तो कीर क्या है ? काम करमावी हैं सरकार सरी मन्दिर नहीं बनने देना चाहुनी है स्वोक्ति इससे सरी की महीमान्यन प्राप्त होवा ? फिर सरकार यह क्यो मल जाती है कि भारत **अर्थ बन्ती पर किन पहली स्टर्म के के महिल्क हुए शवयन जहा-जहा** पिरे श्रद्धासुमो ने उन स्वानों को शक्ति बीठ कहा और वहा महिमानही तक्ति स्टब्सा देवी की धराधना बाज की की जाती है जहना परिक्रमा सादी विवाह बादि सूम सवसरी पर उस सत्य माव की पूजा प्रतीक रूप मे करते हैं ?

सती माता और तट चड़ने की धावना कराने के लिए प्रनाकर सरकार सविधान की चाडना एवं मूमणूट प्रश्लिकारों का हनन और मोनो की बादनाओं पर कुटाराबाट कर पढ़ि है।

राबपूर्व रिजयों इ.प. बौहर करना या पति के तथ वक मरना एक आपन सम हो तकता है। परन्तु किर की वे वा कोई तथावित वकी (पति के साथ जन मरने वाली) सती म होने वाली महारानी सक्वीवार्ष व मुहारानी दुर्वावती से समूल नहीं हो सकती !

धानसकाथ की स्थाएका मृहिष स्थानन्य सरस्काने ने समाद क्रमुत्ता, ते मुरोदियो और पावत के उत्पुत्तन्त के हिम्द की बी. महास्तु सावकृत्ता के बहु कर्तन्य हो सक्ता है कि सह तही तक्ता हैती. सुरक्षा नहां को इनार्य संगोर का साविक्त सहस्तु कर हकते विवाह एक चोरकार स्तिमांत पक्षाप ।

## अल्पसंख्यकों की परिभाषा की समस्या

आयरितीय राजनीति में यह एक परम्परा सी हो चाह है एक समा बुक्तने की जब भी भारत की एकता तथा राष्ट्रीय एकता जम्बित होते हुए देखा बदा। 211 अपस्य 1986 है को इस तथा की एक मीटिंग चुनाई वहां। इस तथाने ऐसा महबूस किया की अस्य सक्यको की मही व उचित परिचाल सी जावे।

साईनोरिटी (अल्पसब्यक) लेटिन कक्द "बाईनर" (Minor) तवा "ity" के सीमव्या से बना है। जो एक दूबरे मे पूर्ण हैं। तब्बा मे कम होते हुए भी वो एक पूर्ण सब्या बनाते हैं।

घरपसक्यको की परिभाषा कही भी पूर्व रूप से नहीं दी गई है। बीसपी सत्ताव्यों के मध्य प्रत्यसम्बन्ध भी सही परिभाषा न ता विदेती सब्बन्ध, ना बारसपीय की सन्ति बीर ना राप्ट्रिय के द्वारा दी गई है। बहुत तक से समुक्त राप्ट्र स्वयं ने बी धरपसब्यकों की सही परिपाषा देने का कब्द नहीं किया है, इस सम्पन्नक्यकों को परिप्र पित नहीं कर सके हैं।

भारत का सनिवान बनाते समय भी प्रत्य सक्थकों की धारणा को परिमाचित करते समय कठिनाई मनुकन की गई। इस सम्य के नावजूद हमारे सनिवान निर्माताकों ने इस बोर अधिक निवार (व्यान) दिया। किर मी इस बारणा को सन्तियत तथा नहीं क्या से परिचत करने का प्रवास नहीं किया नथा। सनिवान सभा के सदस्य भी दी हो कृष्णामाचारी ने उच्च निक्षिक्त वर्ष को मल्यसक्थकों भी सज्ञा थी।

कानुनी व्यवस्था अस्पसस्यकों के बारे में सविधान ने प्रस्प-सख्यक सब्द को बहुत कम स्पष्ट (प्रयोग) किया गया है । और ना ही इसके ग्रन्सबंत किसी वर्ग विशेष का उल्लेख किया गया है। ग्रत्यनक्यक 29 और 30 में किया ब्रह्म का प्रयोग सविधान में केवल दो धाराओ बया है। यहाँ भी इस सन्द का प्रयोग परिभाषा की र्राष्ट से नहीं किया गया हैं। यहाँ इस धारा में कल्पसंख्यक अब्द को एक उपत्रीचेंक के रूप में प्रस्तुत किया गया है न कि विषय वस्तु के रूप मे है। सविधान की धारा 366 जो विभिन्त पारिमाधिक शब्दों के झर्च को स्पष्ट करने के लिये काम में ली गई है। वह इस प्रकार के 30 शब्दों का श्रव स्पब्ट करती है। विन्तु इसमें भी ग्रस्पसस्यक शब्द को सम्मिलत नहीं किया गया है। यहाँ तक की सनिधान निर्माता भी इस झब्द को बारस्नुश की शब्द से प्रयोग करने में विचलित हो जाते हैं। यह इस का रए हो सकता है कि देश का बटवारा मुस्लिम लीग इ.रापोषित ग्रस्पसङ्घको के बाधार पर किया गया था। ग्रस्पसङ्घको का प्रकृत सर्वोच्च न्यायालय के समक्षा सर्वप्रथम 1957 में केरल गिक्षा विधेयक के समय उठाया गया था। सर्वोज्य न्यायासय ने इस तक्य की व्याख्या इस प्रकार भी । ब्रह्मसस्यक शब्द को सविधान ने परिभाषित नहीं किया है । भीर किसी सक्षिप्त परिभावा के सभाव में यह कहा जा सकता ह अन्तसक्यक सभुदाय वह समुदाय है जिसकी सक्या समाज की कुल जनमध्या के आधे से भी कम है। इस 50% की ब्याइया इस प्रकार की गई है कि यदि विश्वे-सक राज्य विधान मण्डल से सम्बन्ध रखता है, तो इसका तात्पम उस राज्य की जनसङ्या के 50% से है और सचीय ससद ने मधिनियम का प्रश्न आता है तो सारे देश की जनसक्या के अधार पर निर्धारित होना चाहिये ।

#### शस्पसस्यक का जीवंक

देश की सर्वोच्या न्याय पालिका द्वारा दिया गया सुन अधिक सरक भीर अकारिएत्य है। किन्तु इसमें भी कुछ बाधार्ये था सकती हैं। यह सम्भव है कि किसी पाल्य की जनसम्भा में निभिन्न वस जिल्हे हुए हो भीर कोई एक समुदाय पाल्य की जनसम्भा के 50% प्रतिकत से अधिक मा हो तब इस दक्षा में उस राज्य के तभी वर्ग अस्पष्टक्यक होने का वाथा कर सकते हैं।

सिवान में प्रस्प सब्बक सब्द को स्पष्ट परिवादा पाने में प्रसप्त होने पर प्रका यह उठता है कि देश में प्रस्पसक्कों को सौन बन ता है (प्रस्पकक्का वर्ष किसकों कहा जाता है?) यह दिव्यकों ए इस मध्य की व्यवहारिक परिवादा को हूं ह निकालने के सिये मार्च दर्शन करता है।

वैता कि पहले कहा वा चुका है कि सविधान में धारा 29 और 30 सारत के सल्पर-स्थाकों के हितों की रखा करने की गारत्दी है। धारा 29 में कहा गया है कि नागरिका वा कोई को वर्ग जनतमें कोई विशिष्ट पाया कि सकति हो जो हो नागर रखने का स्रविवार होना भीर दूखते घारा सर्पत कारा अविवार होना भीर दूखते घारा सर्पत धारा 30 के सनुमार अरपत्यक्षका के अधिवार को कि वर्म व भाषा पर साधारित है। वे सपनी पमन्द की जिल्ला मन्द्रवार स्वाधित कर सकते हैं। यद हम इन दोनो धारामा को सम्मिनित करें तो समझ वातर्प्य वह होग कि भारतीय सविधान में तीन प्रकार के सल्य-सब्बाकों के हिता की रखा की दह है। यह तान प्रकार के सल्यक्षकों के हिता की रखा की वह है। यह तान प्रकार के सल्यस्वका साथा, सर्म सक्वित पर साधारित हैं।

मावा और धर्म के बाधार पर भेष तमम मे बाता है। किन्तु मस्कृति के बाधार पर भेष करना, कठिन प्रतीत होता, है। यदि हम सस्कृति के बाधार पर धर करका कर्ष का परीक्षण करें तो भारत मे परन्य करने के बाधार पर प्रत्य कर कर्ष का परीक्षण करें तो भारत मे परिच कि का प्रकार की संस्कृतियाँ प्रकारत है। बात यह निक्चय करना कठिन हो जायेगा कि कौन अल्पस्थम है। बार यह निक्चय करना कठिन हो जायेगा कि कौन अल्पस्थम है। बीर कौन बहुनक्यन हैं। किन्तु आपा और धर्म ऐसी दो बस्तुर्रें है जो किसी समुदाय की सिक्तुर्त के निर्धारण करती है। बार यह कहता अधिक ठोक होगा कि कारतीय प्रविद्यान में के बाधार पर प्रमुखा हम दोनों के बाधार पर प्रमुखा की आपता दी गई है।

भारतीय विचान 15 क्षेत्रीय भाषायों को मान्यता प्रदान करता है। धौर हिन्दी नो राष्ट्रीय ध्रमता मरकारी कामकान की भाषा के रूप में मान्यता देता है। कई राज्यों में प्रकासनिक उद्देश्य से क्षेत्रीय भाषायों के स्थान किया गया है भीर उन्हें स्कून धौर कतियों म प्रथम भाषा के रूप में परवास भाषा के रूप में परवास पाषा के रूप में परवास पाषा है। इतसे प्राचा के प्राचार पर प्रमन्तवस्थक वर्ष का जम्म हुआ है। सविधान की विचय बस्तु के धनुमार सल्यस्थक को नी भाषा इन 15 भाषाओं से किसी एक भाषा का होना धावस्थक नहीं हैं। दूसर मान्यों में भाषा के धावार पर राज्य स्तर पर धान्यस्थक का तात्यय सविधान भी धारा 29 के धनुस है। इस धारा में यह चहान गा है कि नावरिकों का कोई वर्ष विवाद सावार है। वह धारनी इस भाषा की बनावें एक सकता है। वही उनकी सक्ष्मा कितनी भी क्यों ना हो।

#### भाषाभी समूह

वर्तमान भारतीय सबस्ये में यह कहा जा सकता है कि कोई एक प्राशा बीतने बाला तमूह किमी बाल धर्म का ही हो यह धालवरक नहीं है। उदाहरण के नियं बलाश में बगाना मात्रा, हिन्दू मुस्लिम, भीर पहा तक की ईसाईयो द्वारा भी बोली जाती है। इस प्रकार के समूह किसी क्षेत्र विकेष में धार्मिक वेद के साल-साम सम न भावाई हित भी एक सकते हैं। इसीमिय कहा बाता है कि यदि धर्म भारतीयों को तम्बवत रूप ये विभक्त करता है तो साचा क्षित्वकत भारतीयों को नियाजित करती है। धरैर यह विभाजन एक बुबरे पर "लीपाफोती" करते हैं।

भारत ने हिन्दुत्व बहुसक्यक वर्ष का धर्म है तथा मुस्लिम सिक्ख और हैंसाई तीन वहें घरनाव्यक्षक वर्ष हैं। 1981 की जनगणना के प्राक्त के घरनार हिन्दुधों की जनगळजा 82 64% मुस्लिम 11 35%, ईगाई 2 43% सिक्ख 1 96% तथा ब्रन्थ 1 62% है। इसका तारामं वह हुधा कि भारत में अरुगळ्या का प्रतिक्रत 17 36% हुल जनसक्या का है। किन्तु कहानी वहीं बस्प नहीं हेती।

#### एक सापेक्षिक बारला--

a consider and			
जम्मू कश्मीर	_	मुस्सिम	64 19%
नश्रद्वीप	-	मुस्लिम	94 84%
मेधालय	-	ईमाई	52 62%
नागार्ल व्य	-	ईसाई	80 21%
मि <b>जोर</b> म	_	ईसाई	B1 81%
पंजाब	-	सि <b>म्ख</b>	60 75%
	(क्रेश क	छ्र (पर)	

# सत्यार्थ-प्रकाश का ऐतिहासिक सहत्व

—प्रतापसिक सास्त्री—

वास्तव में सत्यार्थ जनाज के फ्राम्यन से प नुस्कत के समान अनून्य राल प्राप्त किए वा सकते हैं। धार्म नमान के नेता 'मन्नाट समानार पन के सम्पादक क सानाक स्व प वनदेव वो लिखान्ती के प्रावश तो घांछे से प्रशिक धकारल सत्यार्थ जनाज का मुन्यपाठ ही होते के, उनका सत्यार्थ जनाज प नहल प्रस्यान वा। अपने जीवन वे स्रानेक समस्याध्यो का समाधान जन्होंने मह्यार्थ प्रकात के स्रध्यमन से किया।

मत्याच प्रकास में बहुत से लेकर जिंतनी पर्यन्त ऋषि जुनियों के वेद प्रतिपादित सारपूत विचारों का उपह है। वेदादि सत्य सारचों के साम्यन्त विना सत्य सात की प्राप्ति सम्मय नहीं है। उनका सममने के सिप्ट स्त्याचें प्रकास कु जी (बाईड) का कार्य करता है। उनका सममने के सिप्ट स्त्याचें प्रकास कु जी (बाईड) का कार्य करता है। उनका सम्यन्त के साम जिंदि तिय सत्याचें प्रकास नामवाय बचा है। महाचारत के साम नष्ट हुए विकास को महिंब स्वानन्य में इस स्वयं बन्ध में प्रकट किया है जिससे पाचनाय वैज्ञानिकों का निष्या समियान मुठमाया जा सकता है और सारवीयों में स्वाप्तिमान की भावनाए पैदा की जा सकती है। सत्याचे प्रकास को पढ़े दिना कोई की व्यक्ति सुचित स्वानन्य भीर सार्यसमान की विचा सार तो, कार्यक्रम को भई प्रकार नहीं समक्ष सकता तथा सन्य विवास सत्यतान्तर सार्वे विद्वानों के उपवेशों में, पुस्तकों मं, प्रतिपादित निष्या विद्वानों की पहुतान नहीं कर सकता।

क्षाय तमाल के मन्तालों पर जितनी जी कनाए किसी को हो सकती हैं
वे सब नत्याल प्रकास कर निर्माण कर के स्वत्यान कर तेने पर स्वत ही
गम्म नच्छ ही जाती हैं। ऋषि द्यानन्व कुन नमी बन्धे पा मारास स्वार्थ
प्रकान में निवता है। यही कारत्य हैं कि वैदिक बन्धे का प्रचार करने के लिए
मरवार्थ प्रकास पर स्वामी वेदानन्व की जैसे सार्य स्वतान के उच्च कीर्द के
मर्यासियों ने प्राच्य-टीकाए लिखी हैं, जिन्ह पकने से स्वयार्थ प्रकास के कीर्दि के
मर्यासियों ने प्राच्य-टीकाए लिखी हैं, जिन्ह पकने है। सत्यान फकात के कार्य्य
ही सार्यनामक एक प्रान्दोलन प्रतीत होता है। स्राज्या से पूत्र सत्यार्थ प्रकास
ने पढ़ने पात्र ने प्रवेच प्रवत्य स्वतान के दीवाने के। क्षात्र की स्वार्थ प्रकास
ने पढ़ने पहले पहले हैं हो स्वतान प्रवास के स्वयार्थ
प्रकास के प्रवत्य प्रकास के प्रवास प्रकास के स्वयार्थ
प्रवास को विद्रोही पुरत्य समझ जाता रहा भीर साम स्वास है।
स्वतान प्रारत के रेडियों साकासवायी, टी थी सादि के नाम्यम से
गीता जुनान के उदीक का प्रवास हो सकता है किन्दु तत्यार्थ प्रकास के
समन्त्र जन्मी का प्रमारण करते ही सापने साव्याद्याध्याध्यक्ष भीवित किए जाने
ना प्रवास की मन्यन है।

नानार पत्नों से आपन पढ़ा होगा कि रामकुत्तार माखान को सकती अरव का नरकार ने केवल मात्र इमलिए जेल से डाल दिवा क्योंक ना स्ताप प्रकास का आध्यसन कर रहा था। वकराईए नही। सत्यार्थ प्रकास बैचांकि जाति का स्ताद है, इस सन्य पर ऋषि स्थानर के जीवे जी

िक्सी की दिस्मत् न हुई कि महार, कर छके । किन्तु ;क्किक के ,विक्कान के बाद विकासित निर्मित्त प्रमासित पदी प्रमासित की कामात्र की की में क्षोणा प्रमा के बासाति नहीं प्रमासित की सम्मति के प्रमासित की स्थाप के मैं कि कि कामात्र के प्रमास के प्रमुख काम पर पासकी सन्दाकर हुए कुन्ते, प्रधासित के बीक्क के पित कि कि कामात्र की बीक के प्रमास के प्रमुख काम पर पासकी सनेक सोची पर तुक्त स्थार पर काम आध्यक्त कर विद्या । प्राप्ती के न्रवते क्षमा बेखकर वन् 1902 से खन्ने प्रकृति स्प्रमानित काहर प्रमास की कामात्र की प्रमास काहर पासनीतिक वह काहर कि किया काहर प्रमास की सामात्र काहर प्रमासित काहर की सामात्र करते हुए एक वन्याची द्वारा ही प्रिरंक्ति सम्मार्थ प्रकृति स्वार की सामात्र की

इस प्रालारान वन्यासी है, वर्ष के प्रभारक ने रूव सत्यार्थ अकाज के कुछ उदाहरण देकर यह सिव करना चाहा कि भाव समाज एक वस्यानकारी राजाहीह सत्या है। वस्त स्वाला के अक्त कर प्राल्व कर के स्वाल एक वस्यानकारी राजाहीह सत्या है। वस्त स्वाल एक वस्यानकारी राजाहीह सत्या है। वस्त स्वाल प्रमुख्य प्रत्या कर कि स्वाल प्रत्या कर कि स्वाल प्रत्या कर कि स्वाल के प्रवाल से प्रवाल में में प्रवाल में में प्रवाल में मान में मान में मान में मान में मान स्वाल मान स्वाल मान स्वाल स्वाल में मान स्वाल में मान स्वाल में मान स्वाल में मान स्वाल स्वाल में मान स्वाल स्वाल में मान स्वाल मान स्वल मान स्वल मान स्वल मान स्वाल मान स्वल मान स्वल मान स्वल मान स्वल स्वल मान स्वल मा

#### सत्यार्थ प्रकाश एक ही व्यक्ति के दो हाय :

आर्थे मुताफिर पं नेक्याम ने कहा ना — लेपार्थ प्रकाब उस मनुष्य के समान है जो एक हाम मं भीचिम की मोतल और दूसरे हान में रोनी ने लिए आयोग्यायमक पोजन लिए खड़ा हो। यदि उत्तरार्थ भाग शौषांव है तो पर्दार्थ वेव रूपी त्वास्थ्य का सड़न कर रहा है। सबन रूपी घोड़न स्वस्थों के लिए हैं परन्तु खण्डक्सियों प्रौवित और मण्डनक्सी धोहार रोलियों के लिए आयंस्यक है।

#### ब्रिद्धिश संग्कार का संवेह :

कुछ वर्षों के बाद पानियामें ट के सदस्य सर वेतेष्टाइन विरोध ने भी धार्यसमान तथा सत्वार्ष प्रकास की राजहोड़ की प्रेरसा वेने नाला कहकर सबेह प्रकट किया। विरोत स्वय लेखक व प्रकार से, पानियामेन्ट के तदस्य भी में। सासर, प्रकार क लेखक के नाते इनकी बान से वजन था किन्तु यह प्रहार सी समर प्रन्य का कुछ न विचाह सका केवल पानियामेन्ट तथा यन्द समाचार यत्रों में प्रकट होकर नक्कार खाने में नृती की धावाज बनकर रहा गया।

#### रियासत के शासकों द्वारा प्रद्वार :

तन् 1909 ई में पहियाला रिलासत की सरकार ने बहु के 76 साथें संगानियों के विरुद्ध वकारण का एक वर्गीत मुक्टरमा बनाया । इस पुरस्कों से स्त्यार्थ प्रकास को राजप्रोह का प्रचार करने की प्रमुख पुरस्क बताया और इसे जनन करने की जाल की किन्तु रिखासत की सरकार प्रमन्त मही सचा सकी । घार्यसमाज ने इस सरकार का मुकाबना किया । घरानत मे केस चना, सायानय ने सत्यार्थ प्रकास की राजप्रोह की पुरसक् भानों से इन्कार कर विया । पर विरोधी भी चैन से नहीं देंदे । इसी प्रकार की योजनाए बनाते खें !

नुसनप्रानों द्वारा सत्युर्व प्रकाश का ब्रिरोव ।

पैजीय में सर फर्मल हुवैंन, तर तिकन्यर हमात था, तर धोट्रपाव थेते महात्मा हस राज के तिष्य मुनियनिष्ट पार्टी की तरकार के कार्यक्रक थे । सन् 1926 में पजाब के मुख्तकामों में 14वें समुत्यास को विवाकर सत्यार्थ प्रकास पर प्रारोप समाया थि इस वृद्ध में इस्ताम की सालोकना की वह है। सत प्रतिवन्य सनाया वाए। वस विवास खब्म हुई क्या । इस पर इसाम प्रमास समायानी में इस्तासर करके पजाब सरकार की विद्या कि हुम स्थामें प्रकास की एका के लिए हुए प्रकार का प्रतिकादा हैते को तैयार है। वजाब- की तरकार आञ्जातिक सन्भाव कावम एकना चाहती भी मत वह मुस्सिम सोनो के मकल में नहीं बाहें बीर मुस्तुमानों का यह प्रमल भी मसफत रहा ।

#### तिन्य शरकार द्वारा प्रकार :

26 मून 1943 ई में इस समय जन्म सल्यामें प्रकास पर मुस्तिम साम्प्रदान में पून महार फिया। मियन में मुस्तिम निवास चा। प्रीममण्याने निवास प्रकार की निवासिन में कहा कि तालाई मकास पर प्रतिक्या नामित में निवास सल्यार विचार कर रही है। यह मुक्तर साम्प्रदानिकता के वर सम्ब्रे जाने वाले विकास अवास में जो नाहीर और रावविषयी तक फैसा हुसा का, कर्मन कर्मने बना में कानवारी गय वह। शिला प्रकार की 3 मुखाई 1943 को घोषणा करने पर विकास होगा वका—"विन्य सरकार वालाई प्रकार के विकास मुक्तर की कानवारी मां प्रकार की विकास सम्बर्ध में कानवारी मां प्रकार की विकास सम्बर्ध में कानवार स्वाप्रयोग मां करना चाहती।"

#### मुक्तिम सीन द्वारा विरोध :

आ है कर्जन की कहन्योंन व झाका विश्वीचन को नगल से सालय करते की मीडित व कोहाट व करने है सो ही सार्थ जनत् को काफी ठेल पहुची थी। मार्थ मिलते के छावेल पहुची भी। हार्यक्षणा के काफ र पहुची भी। हार्यक्षणा क पहुची सामार्थ की हिए राम के प्रशास के खत तक लाल्क्षणा के किया वर कोहर राम के प्रशास के खत तक लाल्क्षणा के केशा प्रिकृत किया वर कोहर राम के प्रशास के खत तक लाल्क्षणा के किया हुआ प्रवर्धात था कियु तन् राम के प्रशास के सामार्थ की किया की किया की किया की किया की किया की सामार्थ की पूर्ण की किया की किया की किया किया की किया किया किया किया की किया किया किया किया

### शिन्य सरकार द्वारा पून सत्यार्थ प्रकास वर पायन्वी

सिल्य सरकार ने 8 जुलाई 1943 की चौचला के बाद थी 16 मास के बाद अपनि 1944 में पुन चारत रक्षा विधान की छाड़ लेकर सारित व सुरक्षा के नाम पर सपने किन्य मात्रत में 14 में उत्तुत्तान के प्रकार प्रकृत प्रमुख्य पर प्रतिक्रक्षा लाग दिवा! इसकी सभी समाजार पत्रों में चौर निन्या की वई, हिन्दू सगठनों ने भी निरोध करके सरकार की निन्या की, धार्य अगत् मे पुन सम्मत्रती मच वई। 7 गई 1944 को समस्त धार्य जगत मे सत्याचे प्रकार दिवस सगाया स्वा। तिस्त सरकार की पुन सपना निर्मय साम्य ने ना पत्रा

## विविध मत नतान्तर वाले हिन्दुओं द्वारा विरोध :

केवल बयेंचो और जुलकपांची ने ही सत्यार्थ प्रक.क पर प्रहार किए हो ऐसी बात नहीं। हिन्दू भी उनसे पीक्षे नहीं खें। हिन्कुको वे ध्येक सनातन सर्जी विद्यान ऐसे हुए जिन्होंचे सत्यार्थ प्रकास व सार्यसम व के विकस विहार केक्ष, पुस्तक सिंखी, सारवार्थ किए और पराचित होकर सप्यम सा मुह सेकर प्राचयें।

वीराणिक विकार असास प्रसाव निम्म ने 'जमानव तिमार भारकर'
पुरस्तक किसी विसाव सरदासं प्रमान के 11 समुल्याको ना प्रतिकार किसा ।
वार्त्रस्थान के विद्यान प्रमुखीराम सामवेद भाष्यकार के मारकर प्रमान
विकार करारा तरार किया । यह सिमाराम यही नव नहीं हुआ । यह तो
पस्त विश्वास के विद्यालो का सन्या सिमाराम वार्त्र मारकर होता रहा ।
व राजवन वेद्याली, साकुर समार तिह, वादा सस्तीराम, कवार सुकासक साम सुक्रक्रिय, स्वकृत समार तिह, वादा सस्तीराम, कवार सुकासक करते हुए के स्वत्रस्थान स्वार तिहान ने प्राचंत्रसम्बन का प्रचार करते हुए के स्वत्रसम्बन्ध स्वत्रस्थान सामवा का प्रकार किसा एक समार कल्य सरवार्ष प्रकार के उर्दाहरण वेदार इस वण्य को समार कर विद्यान

> पक्षा--वाट वैदिक साई स्कूल, हिसार (हरिः)

#### पत्र बोलते हैं....

## सती प्रथा और आर्यसमाज

मादस्तीय दलात्रेय जी.

राजस्थान ने इतना नर्यनाक मतीकाण्य हो बाय धौर धायंसम् अ सदस्य प्राव पहे यह की हो सकता है? जब तक रोव में आजान और स्व्याय है – कहीं थी, धायं समाव को कार्य धायुरा है। राजस्थान तरकारं एक सती विरोधी कन्नून बनाने वा पही है। लेकिन क्या नेक्क कानून निर्वाण से सामाविक हुरीतिया नष्ट हो सकती है? बारदा एक्ट को ही तीबिये। बाज साठ वर्ष उपरान्त भी राजस्थान से बान विवाह होते हैं। कानून भी तभी सफत हो सकते हैं जब उन की सहस्या ने किये प्रस्ता जनमत हो। राज्यक्ति धीर जनकत्ति मिन कर देशोद्वार का कार्य करे, आज यही रएनेनीति नचर सादी है।

तो फिर हम ग्रायं कहलाने वाले सञ्जन इस प्रसब मे बया करें?

कम से कम दी ए वी कालिय, प्रवमेर के सवप छात्रो की एक टीम एक प्रध्यापक के मेतृत्य में, दिवसला जाकर इस निर्मम हत्याकाच्य की सामाजिक वाब करें जीर इस का प्रतिवेचन प्रकाशित हो। प्रका जो उठते हैं वह यह है—

इस जवन्य कार्य की पृष्ठभूमि क्या है ?

- (2) क्या विचारी विधवा को इस कार्य के लिये मजबूर किया क्या? या फिर
- (3) क्या यह अपनी मजीं से चिता पर सवार 🐩 ?
- (4) क्या उसे इन दिया वया था? (5) क्या उसने विसासे भागने की कोजिस की?
- (5) क्यों उसने । चता से चानने की की श्रव कर्या है। (6) क्यों होने/करने का निश्चय क्य किया चया ?
- (7) निक्चय और किमान्यित में कितना समग्रान्तर या ?
- (8) क्या इस बीच इस हत्या को रोका जा सकता था? (9) स्वामी दयानन्द के इस बत में क्या मन्तव्य हैं?
- (10) हमारा (श्राय समान का) इस बात से कमा कलंब्य है? इत्यावि कृपना मेरे पण को प्रपने प्रतिष्ठित पण में स्थान देगे एव प्रान्य साम्बं पिक्तमानों के बाजह करेंगे कि वह भी हमें व्योचित सम्बग में ताकि देश व्यापी जनस्त, इस सबस में सबस प्रीर सदेष्ट हो; श्राहा है ब्राप हुए बान्योलन को नेतृत्व देंगे;

—के हुवा

## सिनेमा स्लाइडों द्वारा प्रचार

'आर्य पुनर्पटन' कीवपूर्ण एव वैदिकता से भोत-प्रोत लेक प्रकासित करने मे भाषना एक विशेष स्थान रखता है। समाचार-पत्र के ध्यतिरिक्त सिनेमा स्लाइको द्वारा भी धार्यसमाय का प्रचार होना चाहिए।

> -शिवनाथ आर्थं "टेसर" सञ्यक्ष, आर्ववीर दल, देहरादुन

#### धरपतस्थकों की परिभाषा

#### (शेष पष्ठ 3 का)

उपरोक्त शारणी से स्पष्ट होता है कि देत ने प्रास्थवकक सब्द की धारणा एक सारिक्षिक धारणा है पाई नह माजा के आधार पर ही ध्रमणा धर्म के धाधार पर हो। सोची के एक सक्या, मना पृष्ट धर्म के धाधार पर द्विस्तरीय स्थिति रखती हैं। धर्मार यह वनस्थ्या एक दिन्द से तो बहुतक्षक है। किन्दु दूसरी पिन्द से धर्मा खब्दक हैं। प्रारत ने घरण-स्वस्क कोई स्थाई धरणा लोहे है। ये का वेजनक्ष्या पाईक, हामादिक कारणों से परिवर्तन-सीस होती है। यह द्वारण क्ष्मणा भाषाई एकस्थता कभी भी स्थाई क्ष्म से आप्त नहीं हैं। सक्यी है। यह एक निरस्तर अभिता है।

इत सब्बन्ध में गढ़ महत्वपूर्ण है कि दुसारा प्रविधान देख के सभी भागों में क्षेत्रफ की समानका की पारप्ती नागरिकों में बिना किसी केसमार के प्रवान करता है। येक का प्रत्येक मानिक साई वह किसी भी साथ में रहता हो जोते पूर्ण रूप से अपने विकास का स्विकार प्राप्त है।

निकार्य कम में हम नह तकते हैं कि भारत ने बाल्यकाय वास्तव में हैं। कार्यनिक रूप से नहीं उनकी निकेशना निर्माण तथा विकार है। किसी होन्य मिलेश में अब्ब कार्यन के होने के कारता ने इसने हैं। के साथ राज्य से अब्बाद कुम्ब ब्रस्तित्व बनाने रखने के निये राज्य से क्यों पक्षा में माना ब्रम्म प्रस्तुत्व कराने एक हैं।

(बारनेनाइजर से साधार)

#### दयानम्य कालेज धवामेर के घेडरचम्ब दर दिक्की तथा श्रामियोग

दयानन्द कालेज, जजमेर के कृषि विभाग में कार्य-रत श्री षेवरकार जैन (कोटेबा) के विकट कालेज की धौर से सन् 1969 ने न्यायासय में एक बाद प्रस्तुत किया नवा बा कि उन्होंने कालेज कृषि विभाग के यूद्ध सादि के ६-59, 128/- का गड़न किया । विसमे से 7000/- ६ उनसे प्राप्त होने पर ह 51, 128/- उनकी बोर वाकी रहा । गत । श्रि बचों से यह बाद न्यायानम्य में विश्वाराधीन चा विकास दिलाक 27-7-87 को कालिज के पक्ष में निर्णय हुआ धौर षेवरक्त के विकट उपरोक्त राखि की विकी चारी की गई। इस सम्बन्ध में उनके विकट तीय कीजबारी धानियोग भी सन् 1969 से स्थायालय में विश्वाराधीन हैं।

द्यानस्य नीतेषा के पूर्व लेखा लिकिक वेवरचन्य (कोटेपा) जैन के विकट न्यायालय ने कलिय के पक्ष में सनमग पदास हजार रुपने की दिकी दी है। इस सम्बद्ध ने इच्युक सच्चन मानी, जार्थ समाचा विकस समा, सच्चीर से सम्पर्क करे।

## विवराला का सती काण्ड ?

है महा दुखद व शर्मनाक, जो काण्ड हुआ दिवराला में। धर्मान्ध जनो ने घरम करी, इक नारि प्राप्ति की ज्वासा में ।। सीकर के गाव दिवरासा वे जठारह वर्षीय रूप कवर । क्या सती हुई या जुलाई गई, वह प्रक्ला नारी अन्ति पर ।। क्या यही धर्म है नारी का, कोई तो हमे बता दीने । किस नेद-शास्त्र में है ऐसा, कोई तो हमें बता दीने ।। यदि पतित्रत धर्म यही है तो, सब विद्यवाए जल जाने क्या ? जो जलकर सती नहीं होती, वे धर्म हीन कहलाचे क्या? यदि परिवृत्त धर्म यही होता तो राम की तीनो मालाए । भनस्या-सावित्री जैसी, जलजाती यह सब विश्ववाए ।। जो मुबलकाल में सती हुई, वह तो इक बात निरासी थी । इस भावि उन्होंने बीहर कर, दुष्टों से शाब बचानी भी ।। कुछ बाते हैं जो सास-ससूर, यह विधवा की समझाते हैं। वीवेगी ती सुबा मानेगी, मरजाय तो स्वर्ग बतारो हैं।। इस भव व लासच में घाकर, यह सतीकाण्ड हो जाते हैं। फिर बनाके मठ व मेले लगा, पाखडी मौज उडाते हैं।। क्या यही गर्ति है नारी की, क्या उसकी यही कहानी है। क्या 'यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते' शास्त्री की विश्या वांकी है।। क्या यही वीरता युवको की, समवार को ले समझान आहे । काटो क्रीति पावडा को, यदि हो तुम सच्चे बीर बड़ा। यदि शक्ति है कुछ भी तुम में, पंजाब की जाके रक्षा करो । निर्दोषों को जो मार रहे उनसे जुको मारोया मरो।। तुम नही जानते धर्म है क्या, व सत्य है क्या, विज्ञान है क्या ? वह अन्ध प्रचाए मानते हो, नहीं जानते हो इन्सान है क्या ? अब बूढे विश्वर विवाह करते, तथ तुमको आसी सर्भ नहीं। क्या ऐसी बालविष्ठवाची का फिर विवाह करना धर्म नही।। पर वेद-सास्त्र तो विश्ववाकी, सादी करना बतलाते हैं। वे कहते हैं जनने वाले तो चोर नकंमे जाते हैं।। यो कब तक बर्म, दहेज के खातिर नारी जलाई जावेगी । करे ककट की भारत नारि की होती मनाई जावेगी।। ऐ समाज सुवारक वीरजनो, इन हत्यारी को सनकारी । अन्याय, अवस की समेनाक, इन पाप-प्रया को सहारोहै।। यदि यह हत्याए नहीं रुकी, तो मानवता मर जावेशी । "भारकर" इस भीषरा ज्वामा में सारी जाति कहा आहेती ।। इस मीयरा ज्यामा में सारी जाति जल बावेगी ।।

— जनवारी प्रसाद सिद्धान्त वास्कर, 1430, प॰ शिवदीन मार्ग कृष्यापीस, अवपूर । पंचाय में हिला? रेनकी रिवेरी इस दिशा ने बड़े प्रणो प्रशास कर रहे हैं। और सामिक कम से तफस थी हुए हैं। बीर केना सरकार सुरक्षा पड़ी के पास प्रस्ताव को सामू कर ये दो उन्हें सपने समि-बान की पूर्ण बराने में नहीं मदद पिलेषी।

कुछ राजनीतिक व बुढिजीनी जो सरकार को प्रवास समस्या के सिए निजोरन का उदारता देकर उन्न-वादियों से वात्त्रीत करने की सजाह (कुछ 1 का बेच)
दे पहें हैं। यह भी रे ब रिश्ते के
स्विमान की प्राय अक्तिकारों की
सारपार्थी अपना अक्तिकारों की
सारपीयों करने वाली बता है। इससे
राज्य है बाग जनमियों का कोन-कर जनमार्थियों की मानी अमी
के क्या वेकने हे टूट नावेचा । और
स्थिति पहले हैं भी बकार हो
बारपी । सरफार को चाहिस्स कि मानपीकों के मानीकन की निरामें
को सारपी की सारपार्थी मानपार्थ मानपी से की स्थाप की

## आर्य अगत

क्षेत्रिका पार्यं समाज वमस्तीपुर वे जावार्यं राजानव्य वास्त्री की प्रेरणा ठे पार्यं तृता परिवद् का स्ववन कुमार आर्थं व श्री क्ष्यत् कुमार जार्थं-अध्यक्ष, मजी श्री वस्त्र कुमार धार्यं व श्री बनाँदन जार्बं को कीवारम्बा वनाया ग्या। —क्ष्येक प्रकार क्षार्यं (उनस्त्री)

क्ष्मार्थं समाय शामी (राख) का 10, 1, 12, 13 कित को 47 वा वार्षिकोत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुझा। स्वामी वगरीत्वरातन्त्र जी, स्वामी नित्वानन्त्र नी, स्वामी प्रेमानन्त्र की से प्रकास व जी साम्रामण्य की के मुक्तमेनदेस हुए। —वालारास सार्व (सपी)

क्षकोटानामपुर बार्ष प्र तथा ने दो प्रस्ताव पास कर सरकार द्वारा प्रावेतमाय मंदिर को बी ए वी क्ला काहिस्सा क्लानकर बाली कराने के प्रवास का निरोध किया धौरद्वितीव प्रस्ताय में छोटा नागपुर या ज सभा के गठन के बारे में शार्ष वमत् को कस्तुस्थित से धवनत कराने जीर निरन्तर झार्यसमाय का प्रचार करते का सकल्प निरा ।

—क्षणराम केंद्रवार (गर्म)

#### नार्व तपाय अवनेर हारा प्रवस्तित वासित प्री० वसाप्रेय बार्य हारर निवित्त पुरसक्ते

- ्षेत्र, वर्ग और दिल्हू तवाय को वार्य तवाय को वेश —सुरूष 9 50 की समारी राज्यीकता का सामार —सस्म ४ 1 00
- 2 हमारी राष्ट्रीवता का बाबार मुख्य र 1 00 3 बाबार सहिता--मुख्य 0 50 वेसे
- 4 दी धार्व समाच हिन्दू विदावटिहान्दूवन्य (अवेबी)--विकेश रिवायती वर द 75 00
- 5 धार्य समाथ हिन्दू शर्ने का सम्प्रदाय नहीं 11 सूरव----50 क् अन्य अकाका----
- वार्य समान (दिल्की) पूरम समित्य 9 ६७ व., व्यक्तिस्थ 16 00
   मे. लावा नावप्तराथ
- 2 सर्वे किसा (जान र से 11 तक) -- पूरे सैंट का तस्य कं 32 00
- 3 दवानन्द कथा सक्ष्ट-- शुस्य व 3 00
- 4 परिचय निर्वेशिका (समस्त देश-विदेश की गार्थ तिसास शंक्षाओं का परिचय)— गृत्य व 12 00

## सत्यार्थ--प्रकाश प्रथ माला -15 माग

्रित्वेक समत्सास पर स्वतंत्र ट<sup>\*</sup>क्ट**ी** 

- 1 देखर एक गाम भनेक 9 स्वर्थ और गएक महा है ?
- 2 मापर्य गाला पिता 10 भीते भूतहे में धर्म नहीं है
- 3 विका बीर परित्र निर्माण 11 किन्दू वर्ग की विकेशतः 4 दक्षरकारक का स्कार 12 बीक और क्रेस
- 5 संस्थाती कीम बीर की हों है 13 वेद बीर हैसाई बत
- 6 राज्य मानस्था 14 क्लाम और वैविक सर्वे
- 7 इंग्यर कीर वेद 25 शस्त्र का क्रमें संस्था अध्यक्ष 8 व्यवस्था की अस्त्रीत

विक्रीय--वर्षा ट्रॅक्ट वार्य वयत् के गोटी के विक्राओं के हुएए निविश्व एव वन्यवस्ता का संस्थार्थन वार्य वयाच प्रयोग के प्रवान की स्वानेशीई वार्य ने विक्य है। वन्यवस्ता के पूरे बैट कर कृत्य 8/- वर्ग्य है।

श्री रतननाल गर्न से आर्थ प्रिन्टसं, अजमेर से शृद्धिन कराकर प्रकाशक रासासिंह ने प्रार्थसनाय भवन, केवरनय, अवसेर से प्रकासित किया ।

#### वेदोर्ज्यसोयम् मुलम्

वेद ही समस्त धर्म का मूल है। सत्य की प्रहुश करने भीर असत्य ने छोड़ने मे सर्वदा उचत रहना चाहिए — महर्षि बयानन्द

वयानन्दाब्द: 162

सुष्टि सम्बत् 1972949087



"ग्रायं हमारा नाम है, वेद हमारा घर्म। को ३म् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ॥"

समय मित्रादभयम अमित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात ।

कृष्यन्तोविश्वमायं म सकल जगत् को भायं बनाए

हमारा उद्वेश्य :

समाज की वर्तमान एवं मविष्य में पैदा होने वाली समस्यामी को द्ध्टिगत रखते हुए भायंसमाज का पुनर्गठन करना है।

कार्तिक क्र 8 सवत 2044 अभय नक्तमभय दिवा न सर्वा भाषा मम मित्र भवन्तु ।। वार्षिक मू 15<sub>/</sub>- एक प्रति 60 पैसे

# वर्ष 3 ब्हम्पतिवार 15 प्रवट्टबर, 1987 अपन 16 प स-43338/84 II

#### अजमर आयंसमाज द्वारा सता काड को कडा भत्सना

समाज अजमेर की रविवार को हुई सरकार सदस काण्ड में लिप्त दोवी एक सभा मे प्रधान ग्राचार्य बसाचेय मार्थने रूपक वर सतीकाण्ड की कडी अल्सना करते हुए इसे भारतीय नारी समाज के लिए एक कलक सवा समस्त विश्व में भारत की प्रतिष्ठाको धमिल करने वासा ग्रमःनवीय कृत्य बतावा ।

सभामे पारित एक प्रस्ताव मे इन बक्ताफी ने पाजस्वान सरकार द्वारा जारी किए वए सरकारी धण्या-देश का स्वागत किया। परन्तु रूप कवर के सती होने के पूर्व एव पश्चात् प्रकासनिक मंबीनरी द्वारा वरती गई उपेक्षा एवं सकर्मव्यता के विषद्ध कडा

क्राजमेर 5 ग्रावसूबार । स्नार्ये रोचभी प्रकट किया। सभाने राज्य व्यक्तिया के विरुद्ध कडी कायवाई करने तथा सती मदिर न बनने देने

का भी धनुरोध किया गया । सभा म इस बात पर चिना प्रकट की गई कि बाल निवाह खुबाछून दहज प्रवा मृत्यु भोव तका सती प्रथा जैसी

# आर्यसमाज शंकराचार्य को सती प्रथा पर शास्त्रार्थ की चुनौती दे

ग्रजमेर 5 ग्रक्टबर। ग्रजमेर माय समाज क भवन ने मायोजित म्राय सज्जनो की एक सभा को सम्बाधिन करते हुए धाबाब दलात्रय जी बाब ने बाब नमाज की विरोमणि सभा सावदेशिक प्राय प्रतिनिधि सभाको पुरीके ज्ञकराचाय स्वामी निरजनदेव को उनके सती प्रमा के वेदानुक्त होने के दावे को घसत्य सिद्ध करने हेत् शास्त्राय की चुनौनी देने का सुमाव विया।

**बाचाय** जी के मत मे उक्त बास्त्राय जयपुर या दिल्ली में होना चाहिए ताकि सम्बन्धित राज्य राजस्थान की जनता इससे विशेष रूप से लाभान्वित हो सके

सामाजिक कुप्रयाची एव बुराइया के विरद्ध पहल में ही कानून बने होने के बावजूद भी सरकार द्वारा समय पर कः रगर कारवाई नहीं की जानी है जिससे इन सामाजिक कुत्रयाद्या को प्रोप्तमाहन मिलना है। एक ग्रन्य प्रस्ताव द्वारा पुरी के जगदगूर ज्ञकराचाय निरजनदव नीथ द्वारा सती प्रचाका समझन करन पर रोच व्यक्त किया गयाः

#### प्रायंसमाज राची का प्रस्ताव

भ्राय समाज राचीन 27 नित को सब सम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया है ! जिसमें रूपकवर मनी काड की कठोर निन्दा करत हुए सती प्रथा को एक वबर एव भ्रमानुषिक प्रधा बताया गया है।

# जोगी का भेद नहीं पाया



स्वामी दयाबन्द सरस्वता

नादान लोगो ने उस, जोगीका भेद नहीं पाया।।

कोई कहे यत बा इस हारे। विचदाता कह पस्पर गारे।

क्याजानें किस्मत के मारे। सुझा कलमा ले भाया ॥ वाली देते नही लजाये ।

विव का प्याला सेकर माथे। जोगी मेरा प्रम दिवामा । विष का भूट उदायां।।

रोम रोम बन फोडा बोल(। मेरा सेवा के कारश बा चोसा ।

खुब करी व्यारे ने तीला।

'रोम रोम का बना फब्बाटा। कुट पडी धनृत की झारा ॥ एक बँद दे नास्तिक मुनि का । सारा मोह बहाया ॥ बार बार नर जीवन पाऊँ । बार बार विवदान चठाऊँ ॥ ष्टरत तो भी मुक्छने तेरा । जाने नही भुकाना ।। – बुद्धदेव विद्यालन्द्रार

उसका उसे चढावर ॥

# मार्लाक की मभिव्यक्ति

मातुकी ममता बिलखती छोडकर तुम भाग कर निकले। बाँटने संसार को धपना, सहज बनुराग निकले ! चार लोंगो का समर्पेश, विश्व को क्यादान देगा? था किसे मालूम, जैसी तुम घधकती ग्राग निकले ।

रात के उस जागरए। की, अर्चनायें हैं न थोडी । प्रात लाने की तुम्हारी साधनाय है न योडी । भोर की तरुए।।इयो पर विश्व की आख चिकत हैं---यामिनी में रोशनी की रश्मिया तुमने निचोडी !

> तम किया है कार जिनने, यह किरन की ज्योति लाये. विक्य को पीयूष बाटा पर गरल के चूँट पाये, है किसी में इष्टि जो, व्यक्तित्व की वह दीप्ति देखें। किस तरह से तुम सुबह के सूर्य बनकर मुस्कुराये !

द्याग को ऐसा सहेजा, कान्ति फूँकी वी निराली <sup>1</sup> वैद की अपलती ऋचासे जिन्दगी तुमने जला ली । साधना भालोक की अभिव्यक्तियों में लय हुई यो-तुम जले तो भोर बामा, तुम बुमें तो भी दिवाली !

—सासनसिंह मदौरिया 'सौकित्र'

निर्देशकः वस्तात्रेय वार्व प्रचान संपादक रासासिह संपादकः बीरेन्द्र कुमार भागं

**क्र** कार्या : 21010

## 

ऋषि दयानन्द ने भारत के स्रक्ति जून्य शरीर ने भपनी दुर्घर्ष शक्ति अविचनता तथा सिंह पराश्रम पूक दिये हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उण्यतम व्यक्तित्व के पुष्प वे श यह पुष्प तिह जन में से एक था जिन्हे दूरोप प्राय जस समम भुता देता है जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी घारणा बनाति है किन्तु एक दिन यूरोप को घपनी भूल मानकर उसे याद करते के जिए बाधित होना पडेगा, भ्योकि जबके धन्य कर्मयोगी, विचारक ग्रीर नेता की उपयुक्त प्रतिभाका दुरुंभ सन्मिष्यण था। दयानन्य ने झरपुश्यता वा झलूतपन के अन्याय को सहण नहीं किया और उसमें अधिक उनके अन्यत् अधिकारों का उस्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुमा । भारत में त्वियों की शोचनीय दक्षा की सुआरने में भी दयानन्य ने बंडी उदारता और साहस से काम लिया । वास्त्र में राष्ट्रीय भावना और जान्ता जागृति के विचार का किशास्त्रक रूप देने से सबसे अधिक प्रबल यन्ति उसी की वी । वहनिर्माल और राष्ट्र सगठन के अत्यन्त उत्साही पैगस्यरों में से था।

# सम्पादकीय दयानंद देश हितकारी, तेरी हिम्मत की बलिहारी

धावामी दीपावसी धव्यांत् 22 ध्यक्तूवर 1987 ई को सबस्त विकर में सारानमात्र के प्रवत्तक तथा स्वराज्य स्वभाषा स्वदेशो, स्वसस्कृति के प्रवस्त ध्यमदाता पुषपुरूष प्रश्नि क्याज्य सरस्वती का 104 वा निर्वाख विकस स्वम्न समारोह पुरुष धायोजित होगा। 30 ध्यक्तूवर 1883 ई को ध्यवेर स्वित विजय कारों के प्रवाद कारों में प्रवाद स्वाध के रादिक होगे पर जब वीपमाविका पत्र के वीपक जगमण। उठ थे उसी सत्य प्रकास का सरमूत पुज बहु महामानव गावती मन का जाप करने हुए हे ईस्वर तेरी स्वस्त पूज हो कहते हुए परलोक बाती हुआ था।

बाज महर्षि भौतिक सरीर से इस ससार मे जीवित नहीं है परन्तु उनका यज्ञरूपी जरीर सबैंव बागर रहेगा। इसमें कोई अतिक्रयोगित नहीं कि अब तक मुख्य चाद रहना द्यानन्द तेरा नाम रहेगा।

गान्ट की बतमान विश्वम परिस्थितियों से अविक् एक स्रोर सती प्रवा स्कृतास्त्र बात विशाह दहेन अप विकास साथि सामाजिक बुराईवी पून सिंद उठा पदी है दूसरी और भाष-ताद प्रान्नीयनावाद जातिया सन्द्रवायश्व द साथि के नाम पर देक से सन्तास्त्रवादी तकते हुमारी राज्यीयन का चाट पहुचा रही है नया उसवाद एक स्नातकवाद की साथी का स्वस्त्र

#### सामाजिक चेतना

बियात 4 सिवान्यर 87 ई को राजस्थान के सीकर जिले के दिवराला गांव में कानकर नामक महिना का तथाकिशन जो सारिकांड हुआ और उनके बाद सारे देव मं पन-पनिकामों में जो इसके पक्ष और निरक्ष में माहीन बन और उनके बाद राजस्थान तरकार को भी अधिक्य मंसरी प्रशानि कि हुतु कठोर सध्यादेक कानन की माही माहीन सरकार के उठाय ना करमी तथा स्वायदेक कानन की माहीनना ही हुई जिमने अनसाधारण पर स्वस्व प्रमान नहीं पना।

देश में सनीअवा निरोब कानून तथा इसी प्रकार के धन्य नामाजिक कुनिनियों बान-निवाह देहें मुत्यु प्रोब छग्न-छून महिला नरमन साम सबकी कानून तो पहले के हो ने दुए हैं परतु वन कोरे कानू ते से ही यदि समाज मुखार हा बाना तो भारत से धान ऐसी सामाजिक स्वयन्त्र स्थिति के हुन्दिन नही देखन पड़ने और महाचि दयानव्य जैसे महान समाज नेनी को जीवन से 18 बार जहर के प्यासे नहीं पीने पढ़त तथा जन म सपने प्रायों की साहित नहीं देशी पढ़ती। सेक्य सरकार और कोर कायून कुछ भी समाची नहीं होने मक्के यह तक कि जनमाधारण से सकार तमाधारीक बोरों पर चल पहा है विदेशी करिक्या भी देत की सीमाओं पर मिक्क्य होकर हमारे प्रस्तित्व को प्राचान पहुचाना चाहती हैं और ऋषि द्वारा सरपापित धार्मकामत कभी कानिकारी कागठन भी प्रात्मक्ष आर प्रमाद का सिकार होकर तिक्यात को चुना बेठा है ऐसे समय उस महान करि का स्मरण सहब ही हो घाता है। ऋषि ने आप भाषा प्राप्त अप भीर सायांचित के रूप में जिस राष्ट्रीवता की प्रनुचित भी थी तथा राष्ट्र के स्वाधिमान को जायन करने के नियु बेदों का प्राद्यार लेकर जिन ऋपिन का सजनाद फूका बाय करने के नियु बेदों का प्राद्यार लेकर जिन ऋपिन का सजनाद फूका बाय करना का मार राष्ट्र ने मनदा कानिन ताने हेतु तथा प्रप्राचार जिटाने व नैतिकता के हाल को रोकने हेतु उसी ऋपित के बिनुन को पुन निनादित करना होता।

ऋषि के हम पर सामाजिक आर्मिक राष्ट्रीय सास्कृतिक मानसीय इंग्टि से सृकृग एहमान हैं। परसारमः हमे ऋषि के ऋएः चुकाने की सामध्य प्रश्न कर जिनमे हन मन्त्रे साम बनकर महुर्थ रयानस्य और साम सामक के सदेग को जन-कन एक पहुचा सकें। यही हमारी ऋषि को सक्की स्वदाजित होगी।

— रासासिह

## की आवश्यकता

नेनना जरन-न हो तथा इन स माजिक कुतिरानों के प्रति निरस्कार जनेसा तथा ही राग के माय पैदा न हो तथा डके की चीन अपने प्राप्तों की प्राहुनि देकर भी मीर नकता निरोध महन कह वर फूक तमासा देखते वाल क निकारी प्राप्त नहीं आवें तथ तक समाज भी सही राहने पर जाना प्राप्तन्त किंदिन है। चोर निनासक भावणी अवसा निरोध प्रस्ताव पारित करने प्राप्त के ती प्रकारपारिक जरावनों का प्राप्तेक्षत करी की

करने मात्र से ही इन सामाजिक बुराइयां का मूलाध्येदक नहीं होता। बेद के साथ कहना पड़ना है कि बोट की रावनीति से समाज की बुराइयों को पनमाने में बहुगी ही जदाश किया है। सबी केवल सहस् मोचने हैं कि हमारे द्वारा धानोनगा करने महचना नहीं बात कहने पर हमने कोई नाराव हा जायेगा ध्ययना अनशत हमारे खिलाफ हो जायेगा।

काल । आप समाज तथा धन्य समाज सेवी सगठन मिल्लनरी धावना से सकिय होकर इन सामाजिक कुरीतियों के उन्मूचन में प्रयत्नक्षीय हो ।

स साक्ष्य हो कर रेग सामाजिक कुरास्त्रा के उत्भूषण व अवस्था है। सत में जैमा कडीर ने कहा है — कडीरा खंडा बाज़ार में लिये बुगडा होय प्रव घर वालो सासका चले हमारे साथ !!

—रासासिह

## भारत में जाति ध्यवस्था और डा. अम्बेडकर

डा भीनराव धन्वेडकर एक विद्वान विचारक वे यह स्वीकार करने में हमें कोई प्रतिवाद नहीं करना चाहिए। यद्यपि किमी विचारक के किन्ही विचारों से आप असहमत हो नकते हैं। घरणु इतना तो अवस्य है कि उसके विचार तकों पर आधारित और मौतिकतायुग तो होते ही हैं।

हा सम्बेहकर ने भारत मे प्रचलित कातिबाद (बाति व्यवस्था) पर बडी बम्मीरता स जिन्तन किया था। इस मदभ मे व्यक्त सापके निम्न विचार विशेष रूप मे उल्लेखनीय है

भुभ नह समय बाद है जब राजनीति के कि रखते वाली कार्ता सारती तोग भारत के नौग कदो पर तीची क्षापित किया करते थे, धीर हम के स्वाव पर भारतीय नाष्ट्र के नाम के सम्बाधित विश्व वाले पर बन देते थे। भर मन के समुमार वह कहना कि हम एक राष्ट्र है आगि के बिटिश्त हुक भी नहीं है। हमारा जातिया में विश्वक समाव एक राष्ट्र की हो सकता है? किननी जत्दी हम यह स्वीवार करलें कि हम सामाजिक व मनौवैज्ञा-निक बीटकोएत स क्षमी एक राष्ट्र वहीं है उतना ही हमारे हित म होता। स्वाणित हमना सामाम होने पर ही हम एक राष्ट्र के कप ने बक्स सकते हैं। सीर तथी इस उहेग्य की प्रास्ति हेतु चिन्तन क प्रयस्त कर सकते हैं। इस उहेग्य की प्रास्ति हेतु हमे उपुक्त राक्य ध्रोतिरका की सपेक्षा ध्रीहक परिव्यन करता होगा क्योंकि उहीं का समाज क्योंटी 2 वानियों ने विकास नहीं है जब कि पर तके जीन वार्तियों में विकास है। यह व्यवस्था राष्ट्रीवता की भावता के प्रतिकृत है। यह जातीन भावता भावतीय तारिय सामाजिक जीवत में अस्तास की भावता को निव्य हमा बातीय राष्ट्री के बीच हैगा वे चनुता की वार्तिया को वार्तिय हमा का वार्तिय राष्ट्री के बीच हैगा वे चनुता की वार्तिय का महत्त्रों का दान का ना का वार्तिय राष्ट्री के बीच हैगा वे चनुता की वार्तिय करता होगा । व विक्ता का वार्तिय राष्ट्री के वार्तिय राष्ट्री के वार्तिय होता की वार्तिय राष्ट्री के वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री के वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री की वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री का वार्तिया के वार्तिया के वार्तिया के वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री का वार्तिया के वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री के वार्तिया करता किनी वार्त्य राष्ट्री के वार्तिया करता किनी वार्त्य राष्ट्री का वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री के वार्तिया करता किनी वार्त्य राष्ट्री का वार्तिया के वार्तिय राष्ट्री के वार्तिय करता किनी वार्त्य प्राप्ति के वार्तिय की वार्तिय के वार्तिय के वार्तिय के वार्तिय की वार्तिय के वार्तिय

देश के सभी प्रबुद्ध बनों को डा धम्मेडकर के उक्त विचारों पर वसी-रता से ममन करना चाहिए। — वीरिक्स झार्क



# ऋषि दयानन्द क्या चाहते थे ?

— वितीस वेदालकार —

प्रिय महीदव

सायका वन मिला। प्राय चाहते हैं कि श्रुपि बयानन्य क्या चाहते के—हव विषय ने मैं जपने निचार निव्यूं। अपने क्षा चाहा मार्चा के स्वयूं। अपने को ग्रेष्ट्र भी प्राया है कि ग्रंपित विषया हो प्राया चाहान क्षा निचान के निव्या होता वो क्यांत्रित में चीतु एता उत्तर देने ते पहले कुछ देर होने से प्रवाद । चाहाना हो जन का निच्य है। कितने ऐसे लोग हैं जो स्वय् अपने मन का विष्यो है। कितने ऐसे लोग हैं जो स्वय् अपने मन का विष्यो है। क्यांत्रित वर्ण स्वर्धित क्यांत्रित क्यांत्य क्यांत्रित क्यांत्रित क्यांत्रित क्यांत्रित क्यांत्रित क्यांत्य

ऋषि दशानत्व क्या चाहते थे— सकत यवार्ष उत्तर तो वही दे सकते थे। परन्तु उनका सीवन वरित्र पढने से तथा उनने द्वारा धवित सन्तों का पारायस्त करने से उनकी चाहना के सम्बन्ध से और मन में जो स्त्रारसा नगी है, उसका सकेत में सबस्य कर सकता हूँ। सायर बाप के पत्र का प्रगोजन भी गढ़ी है।

ऋषि रमानन्य स्था चाहते थे—इस प्रस्त को एक सक्तिप्त उत्तर को प्रत्येक बार्यवसायों के मन में सक्ष स्कुरित होना, यह हो सम्बद्ध हैं 'कृष्यत्वो विश्वसार्यम्''—अर्थात् तारे ससार को साथ बनाको, यही महान ऋषि के यन से थी। कुछ साई सायद यह बहुना एकन्य करें कि पुर विराजानन्य ने दीक्षान्त के उत्तय बहुम्यारी व्यानन्य को वैदिक समें के प्रचार का जो उपयेक सीर सारोव दिस्स था, उसी वो पूरा करना ऋषि स्थानन्य के सन की कामना थी। यरन्तु यह उत्तर सो प्रका को सावश्यक्ता के स्वितक सत्त कर देशा हैं।

बेरे भन को किएकान से एक प्रका सनातार हुनेता जा है — प्रोत वह यह कि बना व्यक्ति के निना समर्थिट की कोई सत्ता है ? क्या इकाई के निना कभी ज्याही की करनान की वा सकती है? क्या वर के स्रमान ने बाहर का कोई पूर्य है? क्या व्यक्ति में नुसार किए निना समाज ने सुसार तक्यन है? इसनिए सारे विकल को गुसारों का टेका सेने के बजाय व्यक्ति को ही मुखारोंने की बात नहीं बाए तो व्यवहारिकता की स्रिट से क्यांचित्त संस्थित संसीचीन हो।

परन्तु इस बुनियादी बात वे भी मेरे अन को सन्तोव नहीं होता ।
गुक्ते जनता है कि म्हणि दवानन्त व्यक्ति को देवन सार्यमन्त वेशन्त प्रतिवि ता कह ही सीमित नहीं रखना वाहते वे। व्यक्ति समाज ना प्रतिविक्षा कर है। व्यक्ति समाज पीर । ग्यू तीनो बन्योग्वाधित हैं भीर इनको धनन-थनन करके देखना चीन्ट की मूमि-सता का परिचायक हैं। 'आये समाज' ने धार्म बन्द विव्यक्ति का परिचायक हैं। 'आये समाज' ने धार्म बन्द विव्यक्ति का वाचक है तो समाज सन्द रहे जम परिचायक हैं। आपे समाज ने समुद्ध का वाचक है तो समाज सन्द रहे जम परिचायक है। मुक्ति दवानन्त के मन में व्यक्ति, सनाव धीर राष्ट्र में तीनो सवा एक साव उपस्थित रहे हैं, मसु धर को भी धलभ नहीं हुए, मुक्ते ऐसा असीत होता है। अपनी इस बारख के समर्थन में ने प्रतिव तिमा असीत होता है। अपनी इस बारख के समर्थन में ने प्रतिव तिमा असीत होता है। अपनी इस बारख के समर्थन में ने प्रतिव तिमा असीत होता है। अपनी इस बारख के समर्थन में ने प्रतिव तिमा असीत होता है।

श्रृष्टि बवानन्तर ने इस देव को प्रायमित के नाम से प्रभिद्दित किया है विस्तर की बार्य प्रवय से सक्वीधित निया है। निस्तरनेंद्र वार्य वस्त्र मुख्य से सक्वीधित निया है। निस्तरनेंद्र वार्य वस्त्र के स्तर किया कारत के प्रत्येक सामार्थिक की बार्य वस्त्री क्षेत्र कानागा चाहते के। बार्यान्तर्व के निवासियों का बनं उन्होंने वैदिक सर्थ बताया और थाना प्रार्थ भागा (वस्त्रीत द्विन्ती, सरक्त नहीं) साम ही अपने बारा क्ष्य स्तरार्थप्रकाश के सामार्थ्युव समुख्या स्तरार्थप्रकाश के सामार्थ्युव समुख्या स्तरार्थप्रकाश के सामार्थ्य समुख्या की उन्होंने महामार्थ्य कानीग सहाराय गुक्तित्व दे सेक्टर विस्तरी के राज्य धानवास तक की पीरियों का उन्लेख मन्तरे वार्य

राजाघो की वसत्विल भी दी है। इस प्रकार अब मैं धार्य गंजाघा की वसाविल, भारतवर्ष का नाम प्रार्थवर्ष धर्म का नाम से विक धर्म प्राप्त ना नाम आर्थवर्ष धर्म का नाम से सम्बोधन देखता हु, तब बेरे मन में इस बात के लिए सन्देह नहीं खुना कि वे एक देश एक धर्म, एक भाषा और एक जाति के प्रवार्थ तो है। धाय गंजाघो की वशा-विल देते का तार्थ्य इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि वे इस देश में वृत्त वैदिक धर्मावस्थी धाय राज्याधा का राज्य देखना चाहते वे। को वर्ण के विक के पराधीनता से कितनी मानिक वेदना ऋषिवर दयान्त को होनी भी इसकी कल्पना होन सारांच का अध्यान के साम त्यांच का सारांच वे। सारांच के प्राप्त के साम ताल के सारांच होने वाल सकते हैं। परन्तु स्वराज्य-प्राप्त मान से ही वे सन्दुष्ट होने वाले नहीं वे। स्वराज्य के मान सुराज्य भी उनका ध्रेव था। इस सुराज्य के सु को चरितार्थ करने के तिए हो तो नामरिको का धर्म (बेट्ट) वनन की उन्हों में देशा थी।

जब व्यक्ति के इन विचार की कोर मेरा ज्यान जाता है तब 
प्रुक्ते तचता है कि 'क्षण्याने विचयानय' के बजाय पहले क्रायांतन की हो 
बक्ते क्रयाने सर्व स्वरूप से अधिनिष्ठित करना उनका तात्मातिक उद्देश्य 
चा और क्षायांनित स क्षायों का राज्य स्वापित करन के पचवार मजकर 
और बलाइय बार्यानत के माध्या से स्वाप्त करना का पचवार 
साम्राज्य या क्रयानता विचयमायम् के मध्य की पूर्ति करना चाहने स 
विचा अपहिन्य' के वे जय-जबत् का नारा लगाना उजित नही सम्बद्ध 
के, क्योंकि इकाई के बिना चहार्ट की प्राप्त करना व्यवहार्षिकता गही है।

शायद मेरे इत विश्लेषण को कुछ लोग अग्रेगी के Chaunivism (उस राष्ट्रवाद) मध्य से, जिसे माजकल की र जनीतिक शव्यावती से राज-तिक तास गानी की तरह मुख्त निया करते हैं समितिक करें पन्तु मैं समस्ता हूं पंग्लु मैं समस्ता हूं कि ऋषि द्यागण्य के व्यक्तित्व का करण-न्या इसी उम्र राष्ट्रवाद की मास्ता से मध्यत था। यदि स्वन्धित माजकता के क्षांभूत होकर हम ऋषि के व्यक्तित्व में से हम उस राष्ट्रवाद को निकाल में जेमा कि अनन पुरस्ता र विश्ववादी और प्रध्यास्त्रवादी आयंगमाजी तेता किया करन है, तो मुझे लगता है कि ऋषि की मानसिक भाषता का वह सम्बवहारिक और सुभी बाकजन होगा। ऐसा कह कर मैं ऋषि के व्यक्तित्व को सकुषित नहीं करना चाहता, निन्तु उसे यचार्ष की भिरित पर स्थापित करना पाहता ं।

पग्नु सम्मादक जी ऋषि क्या बाहत के—बह प्रकृत तो अब बया-बीता हो तथा । अब तो आप पुक्र से यह पुक्री कि आयंसमात्री करा बाहते हैं या देववागी क्या चहते हैं ? आज के स्वाय परावस्य पदलोनुष पर्यस्पर पदली उच्छानले स पद सदा सप्यरंत्व धावंतमात्रियों को हम आत को स्वा विन्ता है कि ऋषि क्या चाहते के ? या पहले जबेजों के दात और सब अबेजों के दान आरत्वानिया को हम बान को क्या परब ह है कि ऋषि का स्थान नया बाया ऋषियों की हम पूर्वि का करा होता ? राष्ट्र जाय आड से सबकों प्रकृत स्वाय संप्रयोजन है।

भीर सम्पादक जी सच क<sub>र्र</sub>—िनस महापुरूष के गीत नान तोस गही बनते भीर जिनकी जरराप्त तक का स्पर्ण करके साज के स्वनाम-धन्य महतो महान् राष्ट्रीय नेतान्यण साज भी राष्ट्रीयना के मन्त्र मार्मियक हो सकते हैं—जह ऋषि दसान्त्र यदि साज की निश्वित से पुन् भारत ने सा जाएँ तो उन्हें स्वतन्त्र मारत्य सरकार के किमी भी विभाग म खोटे से खोटे बनक तक की नौकगी नहीं बिन सकेपी, क्योंकि उन्हें जयं जी नहीं बाती भी ! इसलिए यह नात्र पूष्टिए कि ऋषि क्या चाहने वे या हमारे राष्ट्रीय स्वाधिनान का तकावा क्या है? हमसे केवल यह पूष्टिण कि हम क्या चाहते हैं? हमें न ऋषि से प्रयोजन है, न ही राष्ट्र ते, हम केवल ध्यने व्यक्तियह स्वाय से प्रयोजन है।

# विश्व ज्योति ऋषि द्वानन्द

.प मननमोहन थी शिकासामर, हैनरावान



बीनावजी का पवित्र ऐतिहासिक वित्र प्रतिवय की शांति एक बार किर वपनी भूरी साल सवस्रव और पौरक के ता था मता है। आरख राष्ट्र वे बनावे जाले सलेक प्रकार के पक्षी में बीपावजी का सफ्ता ही विकोद स्वाल है। स्रतिप्राधीनकालील से कारिकशाव की समाजस्य की तिषि

नवान्नेपिट पत्र दिषि (व्योहार दिवस) के रूप में विकास है। जवसस्वेपिट का प्रथ है—जब नवा सस्य-कर्सण इप्टियक करना प्रवान जयों फराज से यक करना । 'इम विका नवे सम्प से यक्त करने क साथार जब से मुख्य ने इसि सार्ट्यण की है तजी से जबा झा रहा है। इसि के द्वारा अन्धान्य की सांक्रिकता होने से वह पत्र जनमी पुत्रा के कप में भी प्रसिद्ध है।

पौराणिक माहित्य में अन-गम्पति की प्रविष्ठात्री देवी को नारुमी नाम से पकारा गया है उनका बाहुन उन्तु को माना है। वेदनिया नाम से पकारा गया है उनका बाहुन उन्तु को माना है। वेदनिया के लोग हो जाने पर जब बारत देन ने पौरागिक हुए था गया उन्त के किएत उन्तु वाहिनी सक्यों ने के पूक्त की भी बही तिथि उन्दु रहें। वस्त्री नया है और कहा एत्ती है यह न समक्र कर बाजों ने करियतमृति बनाकर परा-पून-चताजों से उनी की पूजा बुक कर दी। फिर भी हम क्याक से पुगरों ने हतना धावस्य सकता किया कि सक्सी के उपासक सम्मान उन्तु के बोध करी की अपा उन्हु के हो अपासक सम्मान उन्तु के बोध माना करता है। उन्तु का जहान रत को ही याना करता है भीर धन का धाना जाना भी करेकमार्केट ही होता है।

प्रायों का एक-एक पव किसी विशेष इस्त के लिये उदिए है इस लिये उसका सम्बन्ध किसी न किसी विशेष वर्ग के साम स्वापित है। समाव-बिकान में चार तत्व प्रधान हैं विधा सन्ति सन्धान्य और नेवा। विधा-सम्प्रता सन्हाति-धन के प्रचारक बाह्यएं कह्नाने हैं राष्ट्र हित में धनना एक बहाने जाने तथा उत्तम मामन हारा खुख तानि कावस रखन शाने सन्धि कह्नाने हैं राष्ट्र के व्यापार को वडा प्रचा का पानन-पोवसा करते वासे वैश्व प्रशं चन पर्नाना बहाने वाले व्यनिक मह कहनाते हैं। आवाणी उपाकस (समस्त मात) स्वाध्याय से सम्बन्ध होने के कारण बाह्यए-पद है विश्वयदसमी (परच्यर मात) भावुंख पूजा दिन्यियम यात्रा से सम्बन्ध प्रजाने के कारण सम्बन्ध प्रपान कृषि वासिल्य गोसेवा तथा उनकी प्रक्रिकानी मनुद्रि की रेवा नश्मी में हैं। मो वह वैश्य पद है और होली हुई पव माना आता है।

प्राचीन दैरिककाल में जिम एइति से यह पन नये सक्ष से सक करते के क्या में भनाया जाता था उस पद्धति का सक्ष तक्षणा लोग हो सना है। सोग उसके स्थान पर केवल उसके बाह्य साठम्बर मृहपरिकोधन मृहपरि-प्राचन दीये बचाना पराखे बचाना सिष्णक्ष तथा लाजा (चिवड) वितरण् और पौराश्चिक काल में प्रचलित हुए तक्सीपूजन चूल एव दुराबारादि ही मेच एव नय है। इस सुभ पद पर व्यापाणियों से बुध्या खेलने का सहुत ही इसा रिदाज चल पड़ा है। धरनी पानन सन्हति की रक्षा के चिए इसको नष्ट करने की स्रयस्त सावस्थकता है।

विजयादक्षमी का रावरावक और लका विजय हुआ और दीपावली के दिवस सर्यावापुरवोत्तक राम ने बनवास पूरा कर धपनी राजकानो स्थोधन। म अनेक किया वह चव इतिहास विषक होने से सत्तक है। रावरा-चव पालान (कप्ता) या येकाल (स्रक्री) म हुआ था। इस हका मे जीराव प्रजापन कार्तिक नास (सक्ट्र तवक्वर) म कित प्रकार सक्सव है? को भा हा जब भी पौरात्वक ने लक्ष के स्थोधन में के श्रीराव के आवाद सक्तव में जीराव के साववन में पौरात्वक ने लक्ष स्थापन के स्थापन के स्थापन के अवस्थान में स्थापन के अवस्थान में स्थापन की प्रकार सक्तवन में स्थापन की प्रवक्तन में स्थापन की प्रकारना में स्थापन की प्रकारना में स्थापन की प्रकारना में स्थापन स्थापन की प्रकारना में स्थापन स्थापन की प्रवक्तन में स्थापन स्थापन की प्रकारना में स्थापन स्थ

कल्पनः की प्रसिद्धि होते-होते वर-वर दीपमाला वनको की स्वा, प्रभी से आरी हुँई और इस नवसस्वेष्टि पव को वीपम्म सिक्श वह एक खेरूर नाम दिया गया।

कैंग क्या के प्रतिय डीवेंकर भी महाबीर स्वामी के स्वर्धारिक्ण की भी यह ही ऐतिहासिक तिबि है तथा इसी पावन हिम्ब को श्रद्धम स्वामी राजतीब जी महाराज ने भी क्या भीतिक वेड का त्यान क्रिया था।

किन्त इस दीपमाला की महारात्रि का महत्य एक बन्य वनपरिवतनकारी घटना ने भीर भी बढ़ा दिया है। इस बग में आय जाति भीर वैदिक अह संस्कृति सञ्यता के उद्धारक और समस्त ससार को शान्ति का सन्देश देने वाले सचेता महर्षि दयानन्द को जिला स्मरक्षा किये दीपावली पर अवारा एड जावेगा। इसी तिथि का एक सायकाल विक्रमी सम्बतु 1940 तदनुसार 30 प्रस्तुवर सन 1883 ई मगलबार को भागसभाव के सस्थापक महर्षि दयानन्द की झारमा ने नक्ष्यर झरीर त्थाय कर परमपद प्राप्त किया था। महर्षि अपने बिस्तर पर पर वे । उन्हें दुध में काच घोलकर दिया गया था । यह 16 वीं बार उन्हें विष का प्रसाद मिला था। सब धौतें फट चुकी थी। सादा करीर लाल-लाल फफोलो से भरावा भानो महर्षि धपनी देह पर दीपमालिका संजाये हो । एक परम नास्तिक मृहान वैज्ञानिक गुरुदस विद्यार्थी उनके पास बैठा उन पर टकटकी लगाये था। यहाँव ने मधुर स्थर मे प्राथना की श्वास-श्वास में बो३म<sup>ा</sup> बो३म<sup>ा।</sup> बो३म<sup>ा।</sup> की व्यनि प्रस्कृटित होने लगी और ईम्बर तेरी इज्ह्या पूच हो की ध्वनि में प्रस्त होते होते सुब के साथ ही युव प्रकाशक महर्षि दयानन्द धनन्तपथ मे विलीन हो गया। इसलिये वैदिक सभ्यताशिमानियों के लिये विशेष रूप से कार्निकीय धमावस्या दीपावित का दिन दयानन्द-निर्वाश-पद की प्रधातिथि बन गई। महान ऋषि की स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने तथा प्रतियच उस दिव्य-जन के झात्मोत्सग के पावन चित्र को अपने इदय-पटल पर चित्रित एखने के लिये इस तिथि को दयानन्द निर्वास पथ के नाम से मनावा जाने लगा है ।

तिह समान निभीक प्रकृति वाका यह महापुट्ट उन व्यक्तिओं से था, भिन्दे भारत का मुत्याकन करते समय पूरीप (कृ तिकारक मुख्यम्) धृताने केच्टा करता हुमा ची न धृता क्लेगा। वश्योक पृत्र अनुत्रा उहा (पूरीप) के निये एक सङ्गा चीवा सातित होगा। एक महान् पुट्ट ने किन्तन कम भीर नेतृत्व का समुप्य सम्मिच्छा या। (ह 146)

कृषि दमानन्त हे कारत में बढ़ते हुए हिसकृत और पारकारण सम्पता के ज्ञान को देखा। वे पात कार्ति के सिन्ने देखों को प्रकार क्रमाहरी थे। एका एअपमेहन एस्स की वध्य उन्होंने उनके साथ क्रमाहरीका मही किया। वे साथ पास सम्प्रका साथ झस्कृति क्या भाव सक्न सम्पत्ति के पात प्रस्त में पूच समस्ति थे। इसचित्रे ऐम्परोत्सा का सह ज्ञान की है कि- दयानन्त बहु स्पतिः स्त्री मा, क्रों कि सामस्त्य विस्तृत्ये से चित्रुत्य (अभावित) राज्ञानिको से सम्बद्धीय कर केक्सा। (पुस्त 153)

#### विश्व व्यक्ति ऋषि

(शेष पृष्ठ 4 का)

इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में 🧗 उस महान व्यक्ति का उत्पाहपूरक स्वायत होने का कारए। सरलंखा से नायभ ने बा सकता है कि वह वेदो का अद्र प्रभारक एव बन्त बच्टा महर्षिया महान बाय आति के महर्षियो की परम्परा का अन बा और बीर भावना के माथ प्राचीन भारत के पवित्र बचो का बाधार लेकर कायक्षेत्र में बनतीय हुवा था। उसने बकेले भारत पर बाक्रमस्य करने वालो के निरुद्ध मीर्जालगाया । (पृष्ठ 157) इसीलिये यह ऐतिहासिक तच्य हैं कि- दयानन्द की तेजस्वी भीर प्रौढ जिलाए उसके देशवासियों की विचारधार के अनुकृत थी और उन शिक्षाओं से भारतीय शाब्दीयसाका सबप्रवम जागरल हुमा। (पृ 153)

'सत्य यह है कि भारत के लिए वह दिन एक युग प्रवतक दिन था जब एक ब्राह्मण ने न केवल यह स्वीकार किया कि उस वेदज्ञान पर मनुष्यमात्र का प्रधिकार है जिनका फरन-माठन उनके पूब कट्टरपन्यी बाह्यस्में ने निषिद्ध कर दिला का अपितु इस बाल पर भी बल दिया कि देदों का पड़ना पढ़ाना म्रोर सुनना-सुनाना प्रायों का परम धम है। (पृ. 156)

इन उद्धरलो से वह स्पष्ट है कि-

बस्तुत भारतीय राष्ट्रीय बेतना के पुनजन्य और जागरण मे जो इन समय (ईसवी सन 1930) उस (भारत) देश में अपने पूजरीवन में देख पड रही है सबसे प्रवस प्रश्ला बवानन्द से प्राप्त हुई थी। (पृष्ठ 165)

तो क्या ऋषि दयानाद भारत राष्ट्र के ही उन्नायक भीर आगरूक नेता बे? उन्हे ऐसा समकता विश्व वं सब जातिया के वतमान उत्थान की वास्तविक पृथ्ठभूमि को न ममकना होगा।

- (1) सब राष्टों की उन्नति में ही ग्रयने गण्ट की उन्नति समकता यह ब्रम्मर्राष्ट्रीय डॉक्टकोल बतमान युग के राजनीतिको को महर्षि दयान द की सब प्रथम समूल्य देन है।
- (2) सबको भपने शारीरिक बौद्धिक व भारतमक हितक री नियम म स्वतत्र भीर सामाजिक सक्षष्टितकारा नियम पानने मे परतत्र अर्थात समस्टि के ब्राधीन रहना चाहिये इस प्रकार मे ही व्यक्ति समध्य का सम्बाध होना चाहिये यह विचार भी महर्षि दयान द के दिमाग की ही उपज है।
- (3) जाति रग मन मजहब द बगकी दिव्ट से न कोई बडा है न कोई खोटा है इमलिये सबको समानता स्वतन्त्रता-छातृ भाव का समान अधिकार मिलना चाहिए यह नारा सवप्रयम महर्षि दयान द ने लगाया ।

हमने ऋषि न्यान दको बहुन छोट इय पर भोचा है। बहुना ने उस हिंदू जाति के रखी-काके रूप भंदेखा है। यह सूब को दीपक बनान जैन। है। इस दीपाविल के पूज्यपव पर युग पुरुष के रूप से ऋषि का स्मरूग होना चाहिय । अवसागर म प्रकाश स्तम्भ के रूप म दिग्दिनम्त का भाग दिखाने वाले के रूप में उसका स्तब्ध होना चाहिये।

भारतीय स्वराज्य के प्रथम भन्ध-द्रव्हा —

# महर्षि दयानन्द सरस्वती

(81 में ऋषि निर्वास विवस पर वी गई श्रद्धांजलि)

स्य प बीनबयास की उपाध्याय

विक्रमाब्द 1914 के स्वातक्त्य समर में हमारी पराजय के बाद जब अवाको की विजय क्लाका चालुरून मारत में फहरा रही भी हमारे राष्ट जीवन पर चतुर्विक से मर्गीन्तक प्रहार ही रहे थे और हम धात्मविस्मृत और बारपाधिमान भून्य हो निरीह भाव से अग्रज प्रथ की करुशाकोर की लाना यित ग्रापना सबस्व गवाले जा रहे थे तब भारत के जीवन मे जागृनि शख फ बाने बाले जो महापुरुष श्रवतीण हुए उनमे महर्षि दयानन्द का स्वान पद-गच्य है। उनके पास राष्ट्र की दुरवस्था को देखकर दुखित होने वाला सबे-दनशील हृदय वा रोगो का सही निवन्त और उपचार करने वाले चिकित्मक की बुद्धि की एक सुधारक की लगन और कमठनातथ बुराई से जूमने बाले एक सूरवीर का साहस था और सबसे बढकर वह बाव दृष्टि की जो विक्ल के इन्द्र भीर मोहाव्यकार को चीर कर सस्य का वर्तन कर सके। सत्य सेवाका सम्बल लेकर वे जीवनपथ पर बढ़। पराको की धमकिया भीर समनो की उपेक्षा तिरस्कार भीर भवहेलना कोई भी उनको विचनित नही कर पाया । भारत के पतित और विकृत जीवन को उन्होंने समुज्जवन सुसस-इत एक सरय प्राचीन झ∗दली के साथ जोड़ा तका तमाज ने कुरीतियों से शहने तक। धथना जीवन अध्ठ बनाने की प्ररुत्ता पैदा की।

धार्मिक ऋन्ति को ब्राधारभूत मानकर उन्हाने मूलत उसी क्षत्र मे काम किया । फिल्तु जीवन कर ऐसा छोई क्षत्र नहीं जिसको अछना छोडा । स्वदेशी भीर स्वराज्य का मन्त्र सर्वप्रथम उन्हाने ही दिया । जिनकी विष्टमात्र राज-नीतिक है तथा जो पश्चिम की राजनीतिक विचारधाराम्रो भीर परम्पराम्रो का अनुकरका ही भारत की नियति मानते हैं वे महर्षि को एकपन्यीय अयवा द्वार्मिक नेतर मानकर उनकी भवहेलना कर देते हैं। उन्हें न तो भारत की बात्मा का जान है भीर न महर्षि दयानन्द की महत्ता का।

महर्षि दयानन्द का काम झभी पूरा नही हुआ। स्वराज्य के बाद सो हमारा व्यानोह और बढ गया है। महर्षि ने हमे बताया था कि हम उल्का-बाहिनी की पूजा के स्थान पर उसे बाधन शानकर ऋत की उपासना करें। पर बनावस की कासराजि ने बाज्यस्य मास्कर का निर्वास ही गया। हम दीपायली जनाकर अञ्चलार से सबने का प्रयास कर रहे हैं। सत्य को खोडकर

लक्ष्मीकी पूज में लगे है। स्वराज्य में स्वधम चला गया: ग्राधिक उन्नति की भाकाक्षामे दर दर भीचाका कटोरा लेकर चूम रहे हैं विदेशी मुद्रा मजन ने लालच ने भारत का जनता का धम घट्ट एवं राष्ट्र मध्ट करने बाले मसीही पुजारियों को समन्त्रल देकर उनके सादरातिस्थ में समन को धाय मान रहे है। ग्रावक्यकता है कि महर्षि का बज्ज थोव फिर से भारताकात्र म गुजे≀ क्यामाथ बाध महर्षि के सादेश को लेकर खड बागे? लकी तो दीपावली की राजि जिससे महर्षि का निर्वाण हुआ के सम्बाध में कवि के प्रश्नका सत्य उत्तर मिल सकेशा—

इसे रातक है कि प्रभ तक है

दीपावली हमारे लिये बोर तमाच्छक रात्रि ही रहेगी ग्रवका नवका का नव सदेश और नव चैतन्य लानेवाली प्रतिपदा के प्रभात की पूर्ववाहिका।

## पत्र बोलते हैं आर्यसमाज और पौराणिक घुसपैठिये

—प्रम्युति अञ्चलाधारर्या

माय पुनयठन 30 सित 87 की प्रति मेरे सामने है। अले ही पृष्ठ छ है परन्तु यह सामग्री पठतीय मत्तीय प्रतक एव हृदमोदवेलक है। यह सत्य है कि कुछ पौराशिक धसपैठिये बनकर बाय समाजो से प्रवेश कर चके है जिनका सायमसाज के मौलिक सिद्धानो पर विश्वास नही है। इसलिए मुद्धवातावरम नही बन पा रहा है। सापने साथदेशिक नमा के प्रस्ताव की पहले पृष्ठ पर छाप कर एक नई जागृति पैदा करने का प्रयास किया है आप साधुबाद के पात्र हैं।

श्री वीरे द्व कुमार प्राय ने ठीक कहा कि पजाब समस्या सुप्तार की बार बबसर है। और भी रेव भी रिवेरो इस दिशा में बड बच्छे प्रवास कर रहे है। उपनादियों से नातनीत नहीं की जाती चाहिए जब तक माहील शान्त नहीं हो जाता नहीं तो राज्यपाल एक पनिस प्रमुख के प्रभियान को तारपीडो का मामला बन सकता है। सपादकीय में क्रापने पुराण पथियों की जहें उचाहने का ठीक परामम दिया। यह प्रशियान ऋषि की नगरी धजमेर से चले भीर राजस्यान के ब्रज्ञानियों व अधविश्वासियों को सम्भोड दे ताकि भविष्य में ऐसा काष्ट्र वोहराया न जाय। --वीर भान वीर बाबनगाज तिलकनगर दिल्ली

## आर्य जगत्

#### होटा नागपुर भाव प्रतिनिधि सभा, शंबी के उल्लेकनीय कार्य

31 मई 1987 ई को सवस्थापित सभा से राजी धार्यसमाज की केन्द्र बनाकर बार्यसमाज के प्रवार-प्रसार के लिए बनेक सराहनीय कार्य किए है। यथा-एक पूर्व कालिक सबैतनिक प्रचारक की नियुक्ति रववात्रा मेले मे प्रचार के म्य का खायोजन, गढवा मार्थसमाज को सरकारी अधिक।रियो द्वारा सानी कराने के प्रयास के विरुद्ध किशाल मौन जुलूस, वेदप्रचार कार्यक्रम का विश्वाल भागीजन, जैनामोड मे नवीन बार्यसमाज की स्थापना तथा शांति शासम, लीहरदमा से गुरुकुल के सचालनार्व प्रति माह पान्य सौ रुपयो की स्वीकृति । निर्देशन समा प्रधान श्री जयमगल समी व समा नत्री भी दयाराम पोदवार।

-कार्यालय मत्री बार्यसमाज किश्ननवढ (ब्रजमेर) का वार्विकोत्सव 28, 29 व 30

सिताब्दर को मनाया गया। श्री प रासानिह जी, प्रो बुद्धिप्रकाल जी साथै के उपदेश व श्री सस्वपाल जी 'सरल' के भजनोपदेश हुए।

डी ए बी शताब्दी समापन समारोह, रविवार 15 नवम्बर को प्रात 10 से दोपहर 1 बजे तक तालकटोरा इन्डोर स्टेडियम, नई दिल्ली मे मनाया जा रहा है। भारत के उप राष्ट्रपति माननीय ष्ठा शकर दयाल जी शर्मा ने उसके मुख्य प्रतिषि होने की स्वीकृति दे दी है।

#### बाचार्य की हारा पुरस्कार राशि द्वार्य समाव को जेंट

मार्य ममाज प्रजमेर के प्रधान बाचार्य दक्तात्रेय जी आर्य ने गुरुकूल कागढी विश्वविद्यालय द्वारा उन्हे प्रवत्त गोवर्धन ज्ञास्त्री पुरस्कार से सम्मानित होने के उपलक्ष मे प्राप्त 1000/- वपये की नवद राज्ञि आर्थ समाज, अजमेर को जन-कल्याख़कारी कार्यों के लिए उपहार रूप मे प्रदान कर दी।

#### श्चार्य समाज श्रजनेर का प्रशसनीय निर्णय

बार्वसमाज बजबेर की यह बादर्श परम्परा रही है कि यहा सदा ही बार्षिक चुनाव सर्व सम्मति से निर्विरोध होते है। इस बार भी दिनाक 6-9-87 रविवार को आर्थनमान सबसेर के जुनाव निर्विरोध सम्पन्न हुए। इसका श्रेय हमारे प्रधान मावरसीय दवानेय जी आर्य को है। जिनके प्रयत्नी से एव प्रेरणा से ग्रामं समाज की वितिविधिया निरन्तर साकार रूप धारण करती जारही है।

इस प्रवसर पर वेदरत्न बाय ने चुनाव के पश्चात् एक सुभाव विधा कि 'बाव ममाज के नवनिर्वाचित पदाधिकारियो एव बतर्ग सदस्यो की उपस्थित का एक प्रक्रम से रिजस्टर बनाया जाय । जिसमें मार्थ समाज के माप्ताहिक नत्समी तथा पर्वो पर उपस्थित पदाधिकारी तथा अंतरग के सदस्य हस्ताक्षर करें।" इससे मालम पहेगा कि वार्य समाज की विभिन्न गतिविधिया में हमारा क्या योगदान है। उपरोक्त प्रस्ताव साधारण संभा के द्वारा नवंसम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

इन प्रस्ताव को आर्य समाज अजमेर द्वारा कियान्वित भी कर दिया गया है। प्रत्येक पदाधिकारी तथा अंतरम सदस्य की पचास प्रतिश्वत उप-स्थिति भनिवार्वे है।

#### भी मुसक्तराज मस्सा व स्वामी वेदामन्द भी के निवन पर बार्य समाब का शोक प्रस्ताव

- वेदरल बाबं, उप मन्त्री

मार्गममाज, प्रजमेर ने एक कोक प्रस्ताव पारित कर प्रक्रमात धार्य नता श्री मूलकाराज भरुना के निधन पर नहरा दुख प्रकट किया है। बौर परमपिता परमात्मा से उनकी झात्मा को साति देने की प्रार्थना की है। एक ग्रन्य मोन प्रस्ताव म समाज ने स्वामी वेदानन्य जी वेदवागीम जी के निधन को भागसमाज की भपूरगीय सति बनाते 📭 शोक प्रकट किया। प्रस्ताव स स्वामी जी को सम्बीर विद्वता एवं लेखन प्रतिका का धनी दताका नवा है। मीर मार्थेसमाज ने प्रचार प्रचार के लिए की गई उनकी सेवामी को स्मरण विया है।

#### मव्य ऋषि मेला

ऋषि निर्वास पर्वे के उपलक्ष्य वे परोपकारिसी समा के तत्वाबद्धान के दिनाक 28 सक्टबर से 1 नवस्वर एक शब्द ऋषि मेरी का सायोजन ऋषि उचान, भानासागर सट, भजमेर में किया का रहा है। ऋषि मेसे में पधार 'खे हैं यार्व जनत के म बंग्य नेता बीतरान स्त्रामी सर्वानन्द जी महाराज. स्वामी सत्यप्रकाश जी, व स्वामी घोमानन्व जी, श्री शितीशजी वेदालकार, डा भवानीसालजी भारतीय, त्रो वेदव्यासची श्री रामनाच सहवल, ब्रह्मचारी धार्य नरेत । धजनोपदेशक औ गुमान सिंह रायच व श्रीमती शिवराजवती जी

#### धर्म जिल्ला पढ़ाने बाले जिलकों का प्रशिक्षरण सन्पन्न

भार्य समाज प्रजमैर के तत्वाबधान में पार्य समाज किया सभा के उपमत्री भी नेदरत्न जी गार्व के संयोजकत्व में धर्म क्षित्रक प्रक्षिक्षण कार्व 8 ग्रक्टूबर से 10 प्रक्टूबर 87 तक सम्पन्न हुद्या।

प्राथमिक कक्षाभी की पटने वाले धर्म शिक्षको को बी मानार्य गोविन्द सिंह उच्च प्राथमिक कक्षाको को पढाने वाले धर्म लिखको को प्रो बुढि प्रकाश भागें तथा उच्च माध्यमिक स्तर की कलाओ को पढाने वाले धर्म जिल्लाको की की श्री डा कृष्णुपालसिंह जी ने प्रजिक्षण एव मार्गदर्शन प्रवान किया ।

प्रशिक्षण के दौरान बार्य समाज अजमेर के प्रधान बाचार्य दलात्रेय जी धार्य ने सभी शिक्षकों से निष्ठा पूर्वक प्रधावशाली हुए से धपने कर्तब्य पासन की प्रेरलावी।

ममाज के मंत्री श्री रासामिह ने सभी विद्वानों एवं प्रशिक्षरणार्थियों के प्रति ग्राभार व्यक्त किया। —प्रचार मत्री

#### आर्थ समाज जजने॰ द्वारा प्रकाशित साहित्व

#### प्रो॰ दत्तात्रेय ब्रायं द्वारा लिखित पुस्तकें

वेश, सर्व और हिन्दू समाज को घार्य समाज की देव--मूल्य 0 50 वैसे हमारी राष्ट्रीवता का आधार - मृत्य क 100 आचार सहिता-- मृत्य 050 वसे

4 वी मार्च समाज हिन्दू विवाउटहिन्दूइउम (बपेबी)-विकेश रिवायनी दर ₹ 75 60

बार्य समाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं मुख्य--- 50 द अन्य प्रकाशन

1 बार्य समाज (हिन्दी) मूल्य सजिल्द 20.00 ६, प्रजिल्द 16 00 —ने नाना नाजपतराय

सर्गे विका (भाग । से 1 । तक)-पूरे सैंट का मूल्य व 32 00

द्यानन्द कथा सम्रह— मूल्य ६ 3 00 परिचय निर्देशिका (समस्त देश-विदेश की सार्व शिक्षस्त सरवाओं का परिचय)— मूल्य च 12 00

### सत्यार्थ-प्रकाश ग्रन्थ माला –15 माग

#### [ प्रत्येक समुल्लास पर स्वतंत्र टीक्ट ]

1 ईस्वर एक नाम भनेक 9 स्वर्व भीर नरक कहा है ? 2 बावर्षे माता पिता 10 चीके चूल्हें से धर्म नहीं है

3 क्रिका और परित्र निर्माख 11 दिग्द धर्म की निर्वेतता 4 बहुस्वाधम का महत्व 12 बीद्ध और जैन नव

5 सन्वासी कीन और कैसे हो ? 13 वेद और ईसाई यह

14 इस्लाम और वैविक वर्गे 6 राज्य व्यवस्था 7 ईरवर और वेब 15 सत्य का सर्व सचा प्रकाश

8 बगत की उत्पत्ति

विकेष-सभी दें कर सार्थ अपत् के बोटी के विद्वानों के हारा विधित हैं एव प्रत्यमाला का सम्यावन धार्य समाज बाबकेर के प्रधान हो बलानेयजी बार्य ने किया है। बन्धमावा के परे बैट का बस्य 8/- रुपये है।

श्री रतनलाल गर्ने से आर्य प्रिन्टर्स, अजमेर से यदित कराकर प्रकाशक रासासिंह ने बार्यसमाय भवन, केसरक्ज, अवमेर से प्रवासित किया।

वेद ही श्रमस्त वर्ग का गूल है।

सस्य की ब्रह्मा करने और धसस्य ने बोड़ने वे सर्वेश उत्तर रहेंगा कहिए

—शहर्षि स्थानम

दवानन्दास्त : 162

वृष्टि सम्बद् : 1972949087

वर्ष : 3 क्ष्मवार, 30 शम्ह्रवर, 1987

वक: 17 पं सं.-43338/84 ft

वासिक पत्र

"कार्य हजारा मात्र है, वेश हवारा वर्ष । कोश्म हकारा देव है, सत्य हजारा कर्म ॥"

श्रमय मित्रादत्रयम् अभित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात् । अभयं नक्तनभय दिवा न सर्वा धाशा मम मित्र भवन्तु ।।

**कृष्यमोतिगव**यार्थे स सकल जगत् को भागं बनाह

हमारा उदवेश्य :

तन्त्राच्य की वर्समान एवं मविष्य में पैदा होने बाली सबस्यार्थी को इष्टिगत रसते हुए बाबंसवाज का पुगर्नठम करना है।

कार्तिक इ. 8 सम्बर 2044 वर्षिकमू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

भारत ने भीर विशेषकर हिन्दुओं ने मुर्तिपुषा उनके नध्यकाबीन हास ग्रीर पतनी्रमुखकाल का व्यक्तिक है। इस श्रविवाद स्था उत्ते धम्बन्धिक बंबविकासी है ऋषि दशनन्य ने देश भी मूल करने का भी प्रकार विका यह जी उनकी एक महान देन हैं।

पीराशिक बुन मे प्रारम्न हुई मूर्तिपूषा भीर उनकी भनेक हानियाँ ने हिन्दुवाँ बीर परिस्तामस्वरूप भारत की जिस पत्नन के मार्च पर बाबा किया उसका इतिहास भी तभी से प्रारम्भ होता है। देंबी देवताओं के मन्दिरो ने व केंग्रस भूतिभवक इस्लाम के शासनतीं की निर्वेतिश किया वस्कि **जनके सम्बन्धित मधनिस्तासी बौर** शास्पविक चमरकारो ने इस बाक-मणकारियों की विजय को भी निश्चित कर दिया। मथरा, काती भीर बत में सोमनाय की दन तथा-कवित जमल्कारी मूर्तियो के ट्रकडे करने वाले राजनी को मवियो ने सचित ग्रमार वन पानि तो निली-ही साय में उसके मुद्दी घर सह अभियों को 33 करोड देवी-वेबताओं के इस विकास देश पर तदियो तक राज्य करने का बरदान भी जिला । समयक्ष वेधों के एक गाम निशमनर ईश्वर के रीकड़ो आकार प्रतिस्पर्धी बनाकर चनकी प्रकेष कुछ विक्रत मूर्तियो द्वारा ईक्यर कर उपहास करने का ही हुगारे देशवासियों की यह बीर वह निशा बीर साथ ही अपने इन नासन भक्तो की नास्त्रिकता सिक्ष करने कने काक्यलकारियों को शक्य और सम्पक्ति का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

#### काशी सारवार्थ और गृतिपृका

महीव क्यालन्द हाश याण से 112 वर्ष पूर्विपुता के बढ़ काली ने किया नवा बारगाचे व्यक्तिक नवड हैं एक वटी बहुत्वपूर्ण ऐतिहासिक वटका हैं, मुश्चिषुका के विरोध में उनके पूर्व

## मूर्ति पूजा का अभिशाप

--- ब्राप्तार्थ श्लात्रेय द्रार्थ ---

**की क्रमेंक कुधाए**कों कीर सती ने नावाम उठाई की, किन्दु 'न सस्य व्यक्तिक अस्ति" हमा नवदाश वजुर्वेद कें बूर्तिपू<del>का का निषेत्र कि</del>या गया है दमानम्द की वह कोक्का काशी के क्षिक्कों के किए चकित कर देने वाली एक बुगौती थी। इसके पूर्व किसी वैदिश विद्वाम ने ऐसा करने का साहर नहीं विकादा भीर न मान तक कोई वेद का पढिछ वेदों ने मुखिनुका सिक्ष कर एका है।

#### संसों द्वारा पूर्तिपुका का विरोध

वेदो का प्रमाख क्षे मूर्तिपूजा के विरुद्ध है ही किन्तु हमारे वेस के प्राव समस्य ईन्बर अक्त सतो ने भी उसका कक्षा विरोध किया है। यूद नानक ने कहाना कि ---

"को परवर को बाने देव। उसकी विरवा जाने सेन॥" स्रव करीर की यह उक्ति प्रसिद्ध है --

> ''अरबर पूजे हरि मिले तो में पूजू पहासः। पत्थर से चाकी मलो वो पीस आरम सर।र।"

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध योगी ज्ञानेक्टर के प्रमुखार ईस्वर स्वय कहते हैं कि ---

''क्य सकिय सी कर्म विवेद्वासि देह धर्म" धर्मातुकां से मुक्त ईक्कर की कर्न धारी और से बिहीन स्थिर की बेह बारी बनाना भूकों का काम है। बीच युकाराथ सो यहाँ सक कहते हैं M---

"ज्वाचन टाकिने फोबसी, स्वाच्या पुढे शुःच जोवती *क्या* का जोष कूप जक्कति स्यासा देव म्ह्क्ति भ"

बर्धात जिम मूर्तियो को हम टाफियों से तोडकर बनाते हैं और जिन पत्नरों के हम जीकासद बमाते उन्हीं को ईक्ष्यर मामकर कैसे पूजते हैं ? किवाजी के युक्त समर्थ रामदास की कहते हैं ---

> "धातु पाथातः वृतिका चित्र लेख काच्ट देखा, तेथेदेव कैचा मूर्थ पडशी

क्रमात हे भूकों सोने चादी परवर अकडी और मिट्टी की मूर्तियों में या दीवार के बने चित्रों ने ईस्वर देखना तेरा भ्रम है। मूर्तिपूजा के समयक कहते हैं कि मूर्ति के उपासक उसे ईश्वर' नहीं मानते केवल साधारस व्यक्तियों के लिए ईश्वर कक्ति का क्षाधन मात्र समस्ते हैं इस उर्क का भी इन्हीं सतो ने स्वय श्राहन किया किया है। गुरु रामदास कहते हैं 年—

"बात्मा सोबूनि बनात्म्यास ध्यानी सरती, परिजो

श्वरिता ही घरवेना ज्यामी वेली व्यक्ति वाका, उक्की श्रव्यक्तियमा कासाबीस करूमी,

मृतिष्वान करिला सामसि ते वे एकच एक विसे, धासू बये तेषि धासे विशवास ।"

प्रचाँत प्रात्मिक व्यान खोडकर मन्य सत्थनो से ईश्वर का स्यान

सम्भवः नहीं हैं। मूर्ति द्वारा उसका ध्यान करने के प्रयस्त में हम जो नहीं है उसीको कस्पना ने देखते हैं भीर इस प्रकार अपने मन को भटका कर कष्ट उठाने हैं। सत तुकाराम इसे मुख्यों का सामिक्कार कहते हैं उनके बनुसार —

'दगडाचे देव पूर्वी नक्हते

जनहें सक्तान कामे जेवहा हे सकानी वनदा मानिसे।'

सर्थात पहले देवी की पश्चर की मूर्तिर्मानही होती मी किन्तु अब जनता में ब्रज्ञान फैसा तब इन भक्रानिको ने परकश की बानना गुरू किया। नानक, कबीर ज्ञानेस्वर, तुकाराभ भीर रामदास प्रसिद्ध भक्त सत वे इसलिए इस क्विय में उनके जनुसन भीर निचार निकेष महत्य के है। उनकी तुलना मे माधारक 🚮 क्या वर्डे से वर्डे विद्वानों के तर्क भी निरर्वक है क्योंकि वे जत विद्वान न होने पर भी ईश्वर भक्ति के क्षेत्र मे प्रसिक्त विशेषक के । बाज भी सम्ब ससार ने पूर्तिपृथा एक दक्तिय।नृसी प्रमासमकी जाती है जिसका सबसे सविक विकृत और विस्तृत प्रभार भारत में ही है।

अर्गिक जनत ने प्रोटेस्टेन्ट ईसाई, मुसलमान और धार्य समाओ आदि मूर्ति पुजा विरोधी धमी के प्रजुवायियों की सक्या करोडों से श्रविक है। अस ववि विना मूर्ति के समार के वे बहुसक्यक लोग ईश्वर भी उपासमा और ध्यान कर सकते है तो क्या हिन्दू वर्नेके बनुवाशी ही बौद्धिक बौर प्राच्यात्मिक बच्टि से इतने षटिया है कि उन्हें ईश्वर शक्ति के वार्गपर नवना सीचाने के लिए स्रोटे वण्यों के समान लक्क्डी शीर परवारों के इन रेगनो की भावक्यकता £ ?

(सेच पृष्ठ ६ वर)

निवेशकः वक्तानेव वार्ष

जवापं संपादकः रासासिह

संपादक : वीरेन्द्र क्रुमार शार्य

**कार्याः 2181**8

#### ∹ मननीय :-

--वं० गंबाप्रसास उपाध्याच--

क्षायंसमाज के बारभकास में कुरीति निवारण के लिए बोर सवादया सवनी पदी। जब नई-वई कुरीतिया बढ रही हैं बौर सुदार के लिए वह बोस नहीं हैं। विद्यवा पूर्निवाह का जब तक हैं विरोध होता रहा झांबंसमाजी सकते रहे। द्यव विरोध नहीं के कातून की बोर से निवारती की घोर से । परन्तु विक्रवा सबकी बोर सुब सवकी व सबके में सब भी बही भैद है । बार्ब- समाज की वर्तमान मनोमृति यह है कि हम समाज सुधार का काम पूरा कर चुके। विवाह सादि सस्कारों में बाडम्बर बढते जा रहे हैं। जिनके पास है उन्हें क्षम का वर्धन है और वह उसका प्रवर्तन करना चाहते हैं। निर्मन करणाव्या सनुकरण करने के लिए बाक्य हैं। इस विवय में हैसाई हमसे बहुत आये हैं। और उनकी सामाजिक कठिनाइचा बहुत कम है।

सम्पादकीय.....

## अग्ने नय सुपथा\_\_

अभी-सभी 22 सक्टूबर को देश निरोक्त की लगस्त वार्यश्रमाणों ने सनेक समारोह मामीलत कर "वृक्षि निर्माण दिवल नगामा है। परन्तु साव वे समारोह सीचचारिकता मांग रह गंबे हैं। इन सबसर पर प्रत्येक समाजी समाजी को सारम-निरीक्षण करना चाहिये, सक्ते पूर्व वर्ष के कार्यों का लेखा जोखा करना चाहिये कि हमने वर्ष पर में स्था खोदा है ? क्यां पाया है ?

क्षान भी देख में छुपाँचून, प्रान्तीयता, वावाबाद, जातीयता व्यादे की सकीनंताए बदरतूर जहर जबन रही हैं। बहेन, बान-विवाह, नुस्त्रम, प्रांत्वुन, वन्द्रम हिन पूर्ति रात नीपुनी सिर उठा रही हैं। वेच के राजनैतिक क्ल एक दूतरे की उठाएक तावा सालावारी वल प्रपनी हुनी की वेगकेन प्रकारेश क्वाये रचने में तत्तीन हैं। वेच समें, कीम की नित्ती को कोई विन्ता नहीं है। स्वार्थ हर व्यक्ति के रक्त में बुत मिल ववा है। रिक्त चौरी, बेईमानी, प्रध्यावार, कालावाजारी प्रार्थि का ब्रोहासक दुव्यक्ति का प्रमार्थ का ब्रोहासक इव्यक्ति का प्रार्थ हैं। माना प्रकार के मत-प्रतान्तर, ब्राव्यार पनप रहें हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में ब्रावंशनाज और उन्नके कर्षवारों का उत्तर हैं। स्वार्य हमारों का ब्रावंशनाज और उन्नके कर्षवारों का उत्तर विषय स्वार्य स्व हमने "इन्बन्दो विक्तमार्थस्" का उद्बोध किया है परन्तु आधी सम्पूर्ध आपों में हम त्यस ही धार्य मही वन पाने हैं। धार्यकामा के प्रति स्वाध्य आपों में हम त्यस ही धार्य मही वन पाने हैं। धार्यकामा के प्रति स्वाध्य प्रवास्त्र ती तका, र तेक्यान जैसी विकार महात्या इसपान जैसी त्यान्वर्ति य नुकर्त्त जैसी तिम्ला, नाता नावन्त्रपाय जैसी धाराना वाच के कार्यों के पुलंक है। सान भी धार्यकाला ही एक ऐसी धारा की किरल है, ऐसी धारा के प्रत्य हो प्रवास है को प्रवि धारा वाच्या आधारकार कर से तो, बहुत कुछ कर सकता है। विक्वहित्सू परिचट्ट, विराट हिन्दू समान, हिन्दू मण, हिन्दू पता विनित धार्य सम्टान सम्बद्धा हो दू पुराह, सल्य धौर मूठ के सह-धारत्य के धारात पर करे हो सामारिक धार्यक एकता सने का प्रवास करें परन्तु जततीसका वह वपान भेते की धीव धे वककर कुछ नहीं होता परन्तु अततीसका वह वपान भेते की धीव धे वककर कुछ नहीं होता। धार्यसमाय बके की घोट "सत्य को बहुल करने धीर ससत्य को त्याकने" का धाङ्कान करते हुए एक धाना, एक धार्य एक कोम, एक राष्ट्र की धालार कृति पर देवो की बना का अवृत्यान करनाकर, दुराहमें एव अध-विक्वादों पर करारी, भीत एक सामाय का प्रवास कर कर की की एक मानवास का सम्बन्ध कर के ही भीत हम सामाय का सम्द्र सामा है।

सरा भागें नीरो उठी, बानों और सामें बड़ी। देख की कोटि-2 जनता सामकी बोर निहार पढ़ी है। हम सामस के नेदबान को चुलाकर, दशवन्ती इस बुटवन्ती के सामरे से निकल कर, लोक-कस्पास्कारी 'शुरव' की सोर सबसर हो। यही प्रमु से प्राचेना है।

—रासासि

## हिन्दू धर्म बेदों पर आधारित नहीं है

हुवारी वर्षों से उपेक्षित तथा सताब्वियों से न नेवन त्याच्य घरिष्ठु त्याच्या के पूरस्त्रार का नेव्य सर पूर्व में यदि कियों को प्राप्त हैं व वह एक नात्र ज्यानन है। यह ठीक ही है कि सम्बचर्ती काल में वेदों के माध्य भी हुए उन प्रन्यों में कहीं-कही मुख्यान भी होना एस। फिल्टु उनका तो त्वरूप हुगारे सबस प्रस्तुत किया गया वह धपूर्व धीर विक्रय था। फल्य हुग वेद वर्षाण्य ईम्पर आग-क्में-उपामना, जीवन के चार प्रवत्यन्य — सर्व धर्व काम, मोश वर्षाण्यक प्यवस्था, तथी है धीर-धीर विमुख होकर प्रनेका-नेक सम्बद्धां के आम ने एस पर्य ।

साज जिस ढाचे पर बहु सम्प्रदायभूतक हिन्दू कहा जाने काला समें बढा है, वह वेदों से दलना ही दूर है जितने ससार के सम्ब सम्प्रदाय । साज चाहे सपनी सात्मत्रवचना के लिये कोई कह ले कि हिन्दू धर्म वेदों पर साधारित है किन्तु यह मत्य से बहुत परे हैं। हिंदुशो के मशी मत-मतान्तर और उनके सिद्धांम्मों का भूल पुरास हैं, बेद नहीं 1 इनका ईक्वर, उपासना विधि जप-तप, बर्गाश्रम सस्कार तीर्थ पर्व सब ही पुरासानुमोदित हैं। इनके भवतार जिन्हें यह ईश्वर समकते हैं, वेद के सर्वव्यापक, सर्वन्न, श्रवन्मा, सुष्टिकला ग्रीर कर्मफल दाता परमारमा से सर्वथा भिन्न हैं। इनकी उपासना विधि मर्थात् विधिन्त जब मृतियो की भर्चना, उनका नाम कीर्तन, जप-तप, कथा-बार्ता इन ही कल्पित ईम्बरावतारो पर भार्घारित हैं । भ्रमेक देवी-देवता भूत-प्रेत, नदी, पहाड, बुक्त, मधी इनके उपास्य देव हैं । इनके तीचें स्वान आचारहीन पन्छे-पुजारियों के व्यापार केन्द्र हैं - जहां भोनी जनता को ठगकर यह लोग शपनी जीविका चलाते हैं। हिन्दू पर्यों की दुर्वशा, मान किसी से खिली नहीं है। इन प्रवसरो पर मध-भग बादि का खुला प्रयोग, बहलील बाली-गलीज, शीचड, धूल, जिट्टी का सर्वत्र उपयोग पत्रु-बलि धवतारों का नाट्य सट-लिया के मात्र रूप म पृश्चित प्रदर्शन, बतकीडा यह सब इन पर्यों के कार्यक्रम है। यह नव होते हुए इसे वेदमुखक कहना न केवल वेदों का उपहास प्रणितु उनका प्रपमान है भीर मनादर है। बाज हमारे भोले जिलित-सिवित जिसे मनानन वर्म कहकर मन बहलाब कर तेते हैं-यही उनका रेखानित्र है जिस सक्षेप में उपपर प्रस्तुत किया क्या है। यह प्रभावे ऋषि क्यानन्द सनू-मोदित वैदिक धर्म को 'नवीन' और अपने को 'सनातन' कहते हैं। यह है वेदों की उपेक्षाका कुष्परिस्ताम किसे ऋषि ददानन्द ने सपनी दिक्य सन्टि से देखा।

वेदो पर वैन-बाँड मतो ने कुठाराचात किया, सकराचार्य न जिन्हे प्रश्न से वेदोड़ारूक समझा जाता है, उद्यक्ति नाम वेदो का तिला किन्तु उनकी आह में प्रशाद उपनियाँ, सात्र मार्थ की हिला। यह प्रश्नाक्षरी, हनके यह तत्र की स्वार है। वेद इनके सात्र में क्षेत्र ने स्वार है। वेद इनके सात्र में क्षेत्र की स्वार है। वेद इनके सात्र में क्षेत्र मार्थ है। वेद विचार वेदों में हैं। उच्चु के प्रश्नावत्रयी पर साक्षर साय्य इसी का प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने उपनिचयों के ही बुनि नाय के जिन्हें वह सहाविद्या का मूल कहते हैं, वर्षण प्रमाल कि है। वीचा में इसी सिद्धाल्य का लूल प्रतिपादन करती है।

यही अवस्था वेध्यवयायाँ — धमानुव के विविद्यदितवाद, माधवाचार्य के कि हो में विवाद कि कि स्वादित की है जो वेध्यव बाबाप्यों के प्रवर्तक हैं। उन्होंने भी यन्तन वेशे भी भेग्रवा की हैं हिन्तु विवेद्या प्रपने ही साम्प्रदायिक निदान्तों को दी है भीर हैय सिद्ध करने का यस्त किया है।

धार्वतमान की वेदी से कही जाने वाली कवाधी, अवचनो धौरम्बाइकारों में किता की उपिनद बीर मीता की होती है उतनी बेदो की प्राप्त नहीं होती। उनने जितने प्रमारा उपिनद कीर पीता के दिये को है उनने वेदों के नहीं होते। यही धवस्या धनेक धार्य विद्वानों के लेखों थीर वसो में प्राप्त पाएं। वेदो का नाम धवस्य जिया बाता है किन्तु सभी उपिनद बीर मीता हुयारे मितक पर खाये हुए हैं

कृषि स्वानन्त देववारी वे वेद और कंक्स वेद ही उन्हें स्वत प्रमाख वे अक्ष्मानीवन उसी में निसम्म और रत 'दें। मार्वकामा पर वेद और वैदिक वर्ष प्रमाद का महुत्त उत्तरसारित है। उसने प्रव तक नो कृष्ठ किया है, बक्कि वह अपना महत्त्व प्रकाश है परकु कोई को महत्त्वता को तरिन्द में रवते हुए वह पारी नाम्म है। मह क्षी कन्मन्त है जब हम अपनी सारी शक्ति वेद प्रपार पर केन्त्रितं कर दें। हमने व्यन्ती वीनित विक्र को वाखा प्रमावागों में विभक्त करने इस कार्य को वो कक्कि प्रवाह है—सार्वकान की वीन वर्षणा विविचनता सक्ता ही प्रमारिकृति है

## सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आर्य समाज द्वारा नवीन अभियान की आवश्यकता

— स्वामी प्रस्निवेश द्वारा सती प्रयाका विरोध —

सवास तथाकिनिन मती प्रवा को लेकर पूरे देश में एक बहुस जल पड़ी है इस पर सापकी क्या प्रतिक्रिया है ?

अवास बहुम । वर्षरता पर नहीं बहुम होती है। मैं झाव समानी । और झामेंत्रमाल की तो स्वापना ही सती प्रचा बाल दिवाह नरवित खुझाखूल और पाखड को तमूल नष्ट करने के लिए हुई है। तती प्रचा न तो झाल्यममत है और नहीं विवेकसम्मत । वह तो स्त्री पर पुरव प्रधान समाज के कारता उपस्पन एक मध्यपुर्वीण विकृति है और भारतीय समाज व लिन्नू खर्म का कलक है।

सदाल लेकिन पूरी के सकराजाय स्वामी श्री निरजनदेव तीय न तो इसे पूर्णतया झास्त्रसम्मत भीर वेदों के अनुकल बताया है। इसके समयन मं वह फासी पर तक चढने को तैयार है।

जवाब कैंने भी निरजनदेव तीय का बयान श्रवबारों में पढ़ा है मौर मुझे बेद है कि उन्होंने बकराचाव जैनी महत्वपूण व गरिमायुक्त गई। पर बैठने के बावजूद ऐसा वक्तव्या दिया है कि पूरे हिन्दु धम का लिए जन से फक जायना एक तरकतों हम यह बचान करते हैं कि हिन्दु धम सबसे जयादा तार्विक भीर मानवीय है हुसरी तरक सती जैसी बबर प्रयाको ध-18स्मत बतारी है।

सवाल नेक्नि उन्होंने तो चुनौती दी है कि कोई भी व्यक्ति उनसे गोबधनपीठ (पुरी) में भाकर शास्त्राथ कर ले।

जवास देखिए यब राजा राममोहन राय ने सती प्रशा के विरोध से प्रांत्रधान जनावा या सीर तल्लालीन वायसपाय संड विलियम बेटिक ने सती त्रशा निरोधक प्रधिनियम पारित किया तब भी तल्लालीन पूरातन-परिद्या परम्परापियों और निरक्तनदेव सीव बैंगे धर्मावायों ने देते हिन्दू ध्रम म हल्लाकथ बताते हुए विरोध किया। तब लाड बैटिक ने उन धर्मावाय से सती प्रशा के वेदानुक्क होने का प्रमाश माता। प्रमाश मात्रधा का एक उवाहरण तोड-मरोड कर पेत विया गया। इस मन म पति की मृत्यु के बाद पत्ती के निष्य धर्ममा कर पेत विया गया। इस मन म पति की मृत्यु के स्रम्मना करके दिखादा गया। इसके बाद सरकार ने मृत पाहुनिष्यों मे इस मन को देखा और क्यों ममधकों की धरील को एक रिया। बाद से तमाम तकों कुतकों के बावजूद तल्लानीन पडिन वेदों में सती प्रभा मा समयन मही सिंह कर एक है।

सवाश लेकिन सकराचाय की शास्त्राथ की चुनौती?

जबाब इस तो सास्त्राच की परस्पा का सस्मान करते हैं। रही चुनीती की बात तो पूरी के सकराजाय की निरजनदक को मेरी चुनीती है कि वह प्रपत्ती गुका गोदर्बन पीठ से मिकन कर प्रबुद्धनों के बीच में दिल्ली के रामलीला मेदार ने धाकर सास्त्राच कर लें।

संबाल मान सीजिए यदि ज्ञकराशाय ने सती प्रधा को वेदा में सिद्ध कर दिवा?

जवाब पहली बाग नो देवों से सती प्रभा का समयन सिद्ध हो नहीं किया वा सलता। दूसरा यदि एक जा के रूप में प्रापकी बात मात्र भी कें तो महाँक व्याननक का प्रमुख मी होंगे और शावनमानी होने के बावजूद ऐसे वेद का वहिल्कार कर दूगा विसमें सती प्रथा का समयन मिन्या क्या है। हम बेदों को ब्रह्म मानते हैं मेकिन ब्रह्म स्वरूप मानवीय विद्यन मेरे लिए सलौंपरि है। वेद को भी में हम्तीलए स्लीकारता हूं क्योंकि मेरे विदेष ने उसे स्वीकार किया है। मैं धावनमान से सपने विकेत के साथ घाया इनलिए जो बात मेरा विदेक स्वीकार स्वीकृत्य उसे विद्यन नहीं मानु या।

सवाल लेकिन कुछ, लोगों का विवेक सती प्रमां को स्वीकारता होती?

जमान विश्वक क्षान धौर तक या नमीटा के बाद ग्री मान्य होता है। मैजानिक चेतना धौर तक से मान्य मनृत्य का बियेन धपन धानपास के नामाजिक परिवक धौर प स्थराधों के धनुरूप उन जना है। धौर नह अध अध्यादा रूप न अंता है। सना प्रया नश्वित क्षित्रहर्सा छ्याछन खादि इसा अप्ती में धात है।

मनान समाज से नागी की निर्मान ना नकर ज्ञाण्या की क्या गय है?
ज्ञाव वैदिक माहित्य म नागी की नमाज से परच के ममान रन्नी
प्राप्त है। स्वयर खासी देशान देशान कि कि की का घ्रम रन्नोरम का काम
करना नहीं है, बिल्य बाह्मणी को घटन्यम किसाय और नामाजिक कासों
से स्वयन पहना चाहिए युद्ध-प्रमी बीर निर्माण रामाध्यी से सनायिक कासों
से स्वयन पहना चाहिए युद्ध-प्रमी बीर निर्माण रामाध्यी से सनायिक कासों
से स्वयन पहना चाहिए युद्ध-प्रमी बीर निर्माण के का काम
पूमिका निप्ता मतति है जीन द्वारण के माम कैनई नई सी। यह तो मत्र प्रमु से पूण्या । स्वयनी खट्टा स्थापित करते हुए स्त्री का दक्षी विग दिया
और मध्यपुर्गन पडितो व धाचायों ने स्त्री के लिए विधान व नियम बना
कर उस घर म कैव कर दिया। मनुस्मृति ने तो एक कदम धामे खाकर स्त्री
स्वयन्ता की वकालाव करते हुए लिखा है कि यत्र नामस्तु प्रयन्ते रमल तथ्य देशा। विकित वाद म मनुस्मृति में सी तोड-गगड करके रिजयो क

सवाल कुछ लोगाकातक है कि स्वेज्छासे सनी होने में रशीकी सिंहमाबबती है वह पज्यनीय हो जाती है। फिन्य वह स्वी पर प्रत्याचार क्यों जब तक जबदस्तीन की जाए।

जवाब प्रजीब बात है। स्वच्छा मे नोई न्त्री सली नहीं होनी। यदि किसी लोइणा के धन्दर बचपन से यह पायना हुनी जाए कि सती हुना देवी बनना है उसने सामसे सती परस्पराधा ना बहा-बदा र पुलगान किया गया ऐस में यदि प्रथानक वह न्त्री िक्षण हा जाए और पति विवास में एकाएक धावेक स प्राप्त के विवास के लाखित जीवन की धपेका प्राप्त महत्त्र विवास के नाखित जीवन की धपेका प्राप्त महत्त्र के देवी बनने की बात म हु से निकास दे तब भी उसे समझाने की बजाय उनकी अब-व्यक्तर होने लगे तो इस धाप न्येच्छा जी देशा येंग रे यह एक से ही सती परस्परा को गौरवानितन न किया जाए पति विवोस से विके से हून्य कोई स्त्री भाग्यत्वान न किया जाए पति विवोस से विवेक से हून्य कोई स्त्री भाग्यत्वान न निजय भी करे तो अवे- अवकार की बजाय उसे समझाना जाय व हिस्मत बधाई जाए उनने सामने भागी जीवनका प्रथप कि जा बीचा जाए तो मेरा दावा है कि काई भी सती नहीं हाली। - हा महिमा की बात तो भारतीय परस्परा ने सच्या ताती सावित्र को माना है विमन जिन्दा जनने की बजाय पति का भी बिजा विना स्त्री से स्वान ही विमन जिन्दा जनने की बजाय पति का भी बिजा विना स्त्री से स्त्री सानी है विमन जिन्दा जनने की बजाय पति का भी बिजा विना स्त्री से स्वान ही स्त्री स्त्री सही स्त्री हो स्त्री है विमन जिन्दा जनने की बजाय पति का भी बिजा विना स्त्री से स्त्री स्त्री स्त्री स्वान है विमन जिन्दा जनने की बजाय पति का भी बिजा विना स्त्री स्त्

सवाल कराचाय श्री निरजनदेव तीथ ने तो विधवा समस्या का कारण राज राममोहन राय का पाप बताया है।

जबाब भी निराजनवेष तीय साबिर च हते क्या है? बया विधवा समस्या का एक मात्र हुन पति के शव क साथ त्त्री को साम में भीक देता है। राजा राममोहन राय खेंदे महान समाब सुधारक पर प्रत्येक मारतीय को नव हैं। उनके महान समियान को पार की सबा देना सकराजाय को कोमा नहीं देना। स्वय सादि करूराजाय ने पाखड के चिरुद्ध एक आपक सुधार समियान चलाया मा। समय-मयय पर सामाजिक व शामिक जिक्क-तियों के खिलाफ एस समियानों की जरूरत पडती हैं। इन्हें पाय की मजा देना सनत हैं।

(नवभारत टाइब्स से सामार)

## कट्टरपंथ की गिरफ्त में निर्धन मुसलमझन

प्रमामी पनस्त्वान मही भी मुख्यन दिलतो का खादीसन नहीं बमा है। प्राय नेपानी पाति मुस्तिन देशों से भी गरीव लाव खानी दैनरिवर रिवर देशों रोटा की फिल म गहते हैं। कट्टरपथ उन मध्यम वर्षीय मुसलमानी झरा सुरू विधा गया है जा प्रारम से धाधनिक सौर पत्तिक्यी तौर तरीवा से प्रमावित हात है परानु लोकिक मुख्या प्राध्यात्मिक पूमता पाने व भ्रतस्य होकर हुप्टित हो जाते हैं। यह कहाता है विख्यात इस्लाम विशेषक कैरेश हमिबद हावक का। हान हो से प्रसिक्त वाल स्टाट बनल से खरे उनके एक लख के कुछ भावाब नहा प्रस्तुत हैं —

बुनिया के प्राय मुस्लिम बहुल देश सात्र कट्टपप की गिरफ्त मं है। वे सार देश बहुत ही समुप्तित महसूस करते है। इन देशों में बहते कट्टपप्स पर काबू पाने म दोनों सहाझक्ति स्वयं का स्रक्षम समक्त रही है।

मुन्तिम देशों में बढ़ मं क्ट्रायम का कारणा मजहब और राजनीति के बीच के अत्तर का पणन समाप्ति हैं। यह मोच बब्दाम की मूल प्रवचारणा पर प्राथमित है। मूल कप स रस्ताम में किसी मी ब्राह्मिया ततुव को प्राचीकार क्या जाता है तथा मजहबी मुल्लाणों और प्रायमुल्लाणां को ही। एक साथ राजनीतिक नामाण्यक और धार्मिक नंता म ना जाता है।

इस्लाम ने घायर दो फिरके हैं— जिया और सुन्ती। सुन्तिया की प्रपेगा शिवा ज्यादा कट्टरपयी होत है। परन्तु दोनों हा मबहुव धौर राजनीति के वीच किमी अदर को स्वीकार नहीं करन है। दुनिया के सभी मुनक्वानों म 90 प्रतिकत सुन्ती है। ईरान को खोडकर विश्वी भी देस में विचा बहुमत म नहीं है। ऐसे कई प्रवास्त हैं कि सम्बे इस्तासिक देशों में निम्न वर्ग के लोन हुएँ तरह प्रवासित किए वा रहें हैं। सभी इस्तामी देशों में मध्य वस के लोग ही कट्टापमी हैं जबकि किस्त वस को बहुमत में हैं कट्टापमी के वस-इस दें क्रिकलकर धमनिरमें प्रभातन में खुसकर सास सेना वाहत सा है। मबहुब की बाड वे इस्तामी बेशों का मध्य पस ही सल्ता पर हानी हो तथा उसने मजहब बीर राजवीति को इस हद तक निका विभाह है कि बहा न धमनिरमें ख़ता है न प्रवादन कुछ है तो यह है कट्टमां ब्राडिंग स्वास्त कुछ है।

इसका कारण हमे इस्ताम में निमता है जिमकी स्वापना 7वी सताब्दी में एक प्रपत्न व्यापारी मोहुम्मद ने की थी। उसी ने मजहब और राजनीति को एक-पूचरे से पूरी तरह मिना देने में बुरुवात की थी। उसने प्रपत्ने पजहब का प्रचार निफ सच्चा से नहीं बल्कि सैन्य विजयों और तसवार के बन पर धम-परिवहन करके भी किया।

दूसरी मोर इरोनेशिया थीं कुछ ऐसे भी देस हैं जिल्होंने सकहब धीर राजनीति के बीच एक दूरी बना रखें हैं। इह सम्बद्ध है कि सक्क लोज कुल माति से बी रहे हैं। वसकि ईराज इएक सकसी खरत, मोरकको पाकि-स्तान ट्यूनिसिया बहरीन साथि देखा में क्ट्रूरपक्षी के इक्सर्य कहा की बनता नाहिमाम कर रही हैं। ईराज के बात धीर राष्ट्रपति धनकर सवात तसे लोगो को इस्लामी कट्टरपत्ती का बिरोध करने की मारी किस्ता मदा करनी मती है। कट्टरपत्ती मुस्तमान सम्बद करने म इसलिए भी नही हिए-किचाते हैं स्पोक्ति मतहसी मास्यताओं के धनुनान ऐसा सबस करने से उन्हें जनत का पासपोट मिस सकता है।

(पाञ्चजन्य हे सामार)

## ऋषि कौन

#### -- परिपूर्णानम्बवम्मा -

क लियुग में निक एक व्यक्ति को महर्षि की उपाधि मिली स्वामी दमानन्द भरम्बनी को दम्मिण कि उ होने नेदा को एकदम नमें क्य में हिंदू समाज के मानने प्रम्युन विश्वा। किन्तु इसी धुण में उत्तमं पूच वेदों का माम्य करने वाले म्यादि ककराभास को भा महर्षि नहीं कहा सवा है। स्वामा दमान्द जी ने नमा नी जाक्या प्रमूलपूच रूप म अपन ऋग्वदादि भाष्य भूमिका में इस प्रकार नी है।

जिसमें सभी मनुष्य सत्य विद्या को जानते हैं सबका प्राप्त करते हैं प्रवचा विचारत है धषवा विद्वात होत हैं अथवा सत्य विद्या की प्राप्ति के चिछ जिनमें प्रवत्त होत हैं उनको वेद कहते हैं।

बहुरारण्यक उपनिषय में (2 1 19) 22 बैदिक महाबाह्यए इय का उल्लेख है जिसके प्रमुतार वंद मंत्रा को प्रकट करन वाले या विधि निर्धारक को ऋषि कहते है। इंटिंग से भी स्वाभी दयानन्द कृषि हुए।

पानिकारी निव्य इंटिन्याना जान के द्वारा जो मनो ना प्रथम प्रवक्ता हा मनार कर प्रतिस मीमा तक या जान रखता हो उसे ख्रिष कहते हैं।

गतकाय के प्रनुवार ख्रिया की मात व्यवस्था है सुर्विष देविष वही है ।

गतकाय के प्रनुवार व्यवस्था की मात व्यवस्था है सुर्विष देविष वही कार्याद विद्याद कर विद्याद के मात्र कार्याद महिंद से में कार्याद कर विद्याद कर प्रति कार्याद कर विद्याद के प्रति कार्याद कर विद्याद के प्रविक्त मात्र के प्रमुक्तार कार्य के प्रविक्त मात्र के प्रविक्त मात्र के प्रविक्त के प्रविक्त मात्र के प्रविक्त के प्रविक्त मात्र के प्याप के प्रविक्त मात्र के प्

ऋतुषण राजा थे। ऋतुषण है बाद अनक का दास ही राजाँव मादात है। माधीन जारत में एक से एक महान नरीज तथा असमजरारक राजा हो गये पर किसी को में एन जॉव इनलिए नहीं कहा थया कि वे वेदल नहीं में । योर जनक दे पहा याजवल्य ऋषि वी उपदेश सेन पसे थे। धौर उनके दरबार में रुप्त है कर में रह तमें थे। धौ प्रवस्थकर पीता से श्री कुछान ऋषियों में अवशी किएत में कहा, है जिन्हाने माद्य यद्यन की रचना की। व्यात को नाता में केवस पुनि कहा थया है। व्यावस का सब है अम्पादक। इसी निए गीता से लेकर पुराशों के सनक मम्मादक व्याव महताने जो वेद तथा हासुम के वेदलास से किम्म है। महाभ रत से मुद्दिग्धर को राजन कहा है। महाभ रत से मुद्दिग्धर को राजन कहा है। महाभ रत से मुद्दिग्धर को राजन कहा है। महाभ रत से मुद्दिग्धर को राजन कहा

इक्षर बहुत वच पूज जब भी पुरुषोत्तम दाम टण्डल को राजाँच की उपाधि प्रसिद्ध सन्त तथा महात्मा देवरुहा बादा ने दी श्रव भी काणी के पण्डितों ने मापित का थी। राजनीति वालों को यह उपाधि देने पर। किन्तु नन्त देवरुहा बादा के मधिकार को चनीती देने का साहस नही हुआ।

धव उमी काशी नगरी ने विदानों की सभा ने रावनीतिकों को रार्जीय की उपाधि देना ग्रक दिया है नवः मीन जाने वह महिंद की उपाधि भी बाटना शुरू कर दें। ऐसी उपाधि मेंने बातनी मण्डली ने एक भी ऋषि मी बाटना शुरू कर दें। ऐसी उपाधि मेंने बातनी मण्डली ने एक भी ऋषि मी बादना साध्या एक रावनीतिक प्रयत्न वन गयी है। विद उनमें एक भी वेद का प्रयत्न हो साध्याकार हो तथा न्यामी दयानम्द की तरह विधि निर्धारक हो तो उसे कुछ बीजने का प्रधिवार हाता प्रयाद्या थया वह महम्मक्ती हिंदू धम के विक्रद एक व्यापक साधात तथा वरनानी कराने पर प्रशि है । स्त्री हिंदू धम के विक्रद एक व्यापक तथा विव्यापना करने पर प्रश्नित हो साधि प्रश्नित साधात तथा वरनानी कराने पर प्रश्नित हो साधि प्रश्नित वा रार्जीय की उपाधि क्षम का न्यार उपाधि की सेशी में सा वावनी ।

(दैनिक बाबद्रश् से साभार)

## पुरुषाथं बनाम भाग्य

— बॉंट डेवडार्मा देवालंकार —

कर्म योनि एव जीक्योमि-ये वो योनिया प्रसिद्ध है इसमे मनुष्येतर पशुपक्षी सादि जीव भोगवोनि के बन्तवंत पाते हैं वो केवल पूर्व कर्नी का फल ही भोगते 🌓 उस योगि में किये क्ये कर्मों का फल वे नही प्राप्त करते । कर्मयोनि में मनुष्य की गएना होती है, क्योंकि इस जन्म मे मनुष्य जहर एक गौर पूर्वचन्त्रकुत कर्म फल मोनता है वही दूसरी धोर वर्तमान एव भावी जन्मों के लिए जाति, बाबू एवं भोन का निर्धारण भी करता है। कर्न करना समुख्य का सहन्य स्वाभाविक गुरा है, प्रतिपत्त वह कोई न कोई कर्म धवस्य करता है यदि यह मुख कर्य नहीं करेवा तो मनुध करेवा, लेकिन यह बास्मी नहीं बैठ सकता। इतना सबस्य है कि मनुष्म, कर्म करने में स्थतम है जैसे कि कोई विचार्थी परीक्षाभवन मे बैठकर प्रश्नो का उत्तर सही लिसे या मनुद्ध सिर्क वह उत्तर लिबने ने स्वतन होता है, उसी प्रकार बनुष्य भी मुभ कर्म करे वा अभूभ, वह पूर्ण स्वतंत्र होता है। लेकिन फल प्राप्त करने में यह स्वतान नहीं होता । वैसे परीक्षक सही या गमत उत्तरों के अनुसार विश्वाची को उत्तीर्ण वा बनुत्तीर्ण करता है उसी भाति परम पिता परमात्मा भी हम मनुष्यों के मुभागुत्र कर्मों के सनुरूप सुबाया दृता रूप फल प्रदान करता है। परनारमा की यह न्याय हुपवस्था नियत एव प्रपरिवर्तनशील है।

मोनदर्शन मे भनवान् पराजिल लिखते हैं - कि पूर्व बन्य के कर्म समूह जाति बायु धीर भोग इन तीन रूपो में फलीभूत होते हैं "सित मूलेत-क्षिपाक्तीजात्यायुर्भीना " वर्षात् कर्मका मूल रहने पर उन कर्मीका परिपाक जाति आयु और बीच के रूप ने भाविष्ट्रंत होता है। काई बनुष्य द्यपने पूर्व कर्म के आधार पर क्तमान जीवन से मनुष्य योगि से जन्म लेता है भीर घविष्य में भी मनुष्य, कूला, बिल्ली आदि के रूप में पैदा होगा, इस बोनि विशेष को ही "जाति" कहते हैं। कोई जीन एक नाह तक, कोई 1 वर्ष तक, कोई दल, बीस, पचास भीर सी वर्षों तक जीवित रहता है। इतने क्यें तक जीवित रहना बीच की "बादु" होती है। भीर इस जीवन काल में वह बीच नावा प्रकार की सुख दु बात्मक प्रमुधूतिया बहुए। करला है यह जीव का भीन है। इस प्रकार जीवारना चपने पूर्व सचित कमी के ब्राधार पर सामान्य रूप से जाति बायु बीर भोग को बाप्त करता है। **"मेकिन यह त्रिविध पत्न जीवन का विस्तार है जीवन की चरम प**रिएति महीं, क्योंकि जीवन स्वय एक असन उद्देश्य एकता है। जीवारमा का सक्त **है—" क्ट्रांश्व कानुस्वमोवनुस्वदानम् जीव इत्युक्तते "— विसमे कर्ट्रास्व** आहरूप एव भीक्तूरप पूरा रहते हो उसे बीच कहते हैं जाति आयु आदि विशिध फलो का मोक्तर तो जीव है ही, इसके जनावा जातृत्व एव कर्तृत्व भी उसमे रहते हैं। भीर यह भी शास्त्रसम्मत है-ऋतेश्वानान्त मुक्ति-ज्ञान के बिना बीब की मुक्ति नहीं होती । यहां ज्ञान का धर्व है-सज्ञान का नाव श्रमका झारम तरब का बीध । यह ब्रह्मान नाम ध्रमका भारमबीध कर्मों के बिना समय नहीं भरा अने कर्न तो जीव को करने ही होने । बतएन वह कहा मया है कि जीवन का जुक्क उद्देश्य स्वतंत्र कर्म करना एव भारमगोध

प्राप्त करना है। यदि यह न माने तो फिर सनुष्य को कर्म स्वानन्थ्य एव उसके द्वारा युक्ति पद की प्राप्ति कैमे मधव होगी?

यहा एक प्रका पैदा होना स्वामाविक है कि जब पूर्व कमों के ब्रारा वाति ब्राष्ट्र मोना-पीनो पहले से ही नियत है तब फिर उन्हें बदलने का प्रसास करना सर्वेषा व्यवे हैं वो होना होना वह हाकर ही रहेगा । यदि हमारे काम में पत्नी की प्रत्यु और हमारी पत्नी वे विश्वाह तिवा है तो वह होकर ही रहेगा । यदि हमारी घायु चालीन वर्ष मी पूर्व ते निष्टिवत है तो हम उन्नों वर्ष है विश्व के बी हम हम उन्नों वर्ष है विश्व के बी हम उन्नों वर्ष हो विश्व के बी हम हम हम त्या प्रवाद हम उन्नों वर्ष हो विश्व के बी हम हम हम त्या हम विश्व हम । यत ध्यवी बाहु एक प्राप्य को वरिवतित करने के लिये प्रयत्न व्यवं है ।

इसका समाधान यही है कि स्वर्षि यह ठीक है कि जाति आधु भोग ध्रम्बा हानि लाम जीवन नरए। ध्रादि एक हम धरने पूर्व कर्मों के परिएग्।म रक्षण प्राप्त करते हैं लेकिन हसका ध्राम्य यह क्यापि नहीं कि बतामा जन्म के नये कर्मों से इन एको की इसता में परिक्तेंन नहीं किया वा बकता। यदि केक्स पूर्व कर्मे ही सब कुछ हो और नये कर्मों का नोई महत्त्व म हो तब तो फलो की 'इसता' उतनी ही माननी पबती। लेकिन हम पहले ही कह पूर्व के कि जीव का कर्नुत्व पुण् कभी समाप्त नहीं होता जब वह नये कर्म करेगा तो उनने एक भी ध्रमक्ष निक्तें। ऐसी ध्रमा में पूर्व कर्म के फलो की इसता' में भी परिक्तेंन होना स्वामाधिक है। इसे हम निमन उदाहरण से क्लीमाति समन्न सकते हैं—

मैंने जुलाई 87 ने घड़पापन कार्य कियां प्रयस्त 87 में एक हजार ६ वेदन मिला। यह वेदन मेरे पूर्व माह के कम का फल है। इसे हम भीग भी कह सकते हैं क्यों कि यह वेदन हमाने जुल हु व का विधानक है। घड़ के सुख लाइन के सुख का दिवार के नी राशि को-जो कम संक्रम एक हजार के सुख लाइन कुछाने के विवेध पर्योग्त है—नाई तो जुमा वेनकर एक ही दिन में नमाप्त कर हू भीर चाहे से बुद्धिनता पूर्वक करके दो भीर तीन माह एक के लिये सुख लासवी जुटा सकता है। इस भाति मैं प्रपने पुष्कम मा सुकर्ग हारा एक हजार च से प्राप्त होने वाले भीग को बटा भी सकता है से भीर बढ़ा भी सकता है। भीर बढ़ा भी सकता है।

एक दूसरा उदाहरेख लेते हैं-पैने एक प्रच्छी प्रतिध्वत दुकान से नई माइकिस बरीदी । उबने हुने दो बची की यारव्दी से कि वा वनों तक इसमें काई गढ़बढ़ नहीं होगी । अब वह हुम पर निमंद है कि साइकिस को में कैंचे रखता हूं। चाहू तो वस दिन बाद हो कार से टक्कर मार कर साइ-किछ को नक्ट अच्छ कर हूं और चाई तो उबकी नियमित देखबान करते हुवे पाच और साठ वर्षों तक उसे ठीक रक्ष्यू, उसका कुछ भी नहीं विमवता । ठीक इसी भागित हम प्रयोग कमों से प्राप्त मानु एव चोम को इक्सा में परिवर्तन कर सकते हैं सबमी जीवन एव सदावर्ष्य से मानु एव मन्य को सी एव सो से भी प्रसिक वर्षों तक बढ़ाया वा सकता है। इसीलिये वेदादि झाल्यों ने भी मानुवृद्धि मुखादिवृद्धि के साधन वर्षियत है।

सक्षेप के-"कर्मप्रधान विक्व रिव राखा"-इस सुक्ति के धनुसार हमें धपने कर्मों वे पूरा-2 ध्यान देते हुवे प्रधाने जीवन का नार्य प्रकरत करना नाहिये केवल मान्यवादी बनकर पूर्वकृत कर्मों का सहारा लेना और धाने के निवे धकर्मण्य वने रहना धपने धनिवेक को सूचित करना है। निरत्तर कर्म करने पहना ही सच्चा जीवन है—"चरेवेति चरेवेति ।

#### ऋषि निर्वाण विवस समारोह

कार्य समाज, अजमेर मे वीपावली के पावन पर्य पर युग प्रवर्तक एव राष्ट्रीयता के प्रथम उलायक सर्विष द्यानन्त सरस्वती का 104 का निर्वाल दिवन बनारत हिन्दू विकादिवालय के प्रतियानिकी विभाग के रीवर हो बानन्द प्रकास की घष्म्याता में समारीह पूर्वक बायोजित हुमा विममे जी प्राचार्य दत्तात्रेय प्राप्त, प्रो देवकमां वेदालकार त्रो बुद्धिप्रकाम जी प्रार्थ तथा हो कृष्ण्यानतिह की ने महर्षि के अनुस्म व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रकास व तरे हुए साब-दिवारि होकर बद्धा सुनन व्यक्तित्व एव कृतित्व पर

--- नवीन कुमार शर्मा (प्रकार गत्री)

## महाष-महिमा

त्तावर्गसह वदीरक 'सीवित्र

सत्य से जन्में हुए तुम सत्व में नवमान ! बन गया जीवन तुम्हारा सत्य **का ग्रमिनाम**ी

एक मूचक ने जगाया उन्न ऊहापोह, जन्म के सब कान्ति लाया, सत्य का विद्रोह, बाध पायी थी नहीं, पितुमोह की अजोर। मात की मनता बहाती रह गई हन-नीर

> तुम ख्र्याचे दीली गंभा, वंग मने अद्भान ! वा तुम्हारे सामने, इस विका का कल्बासा ।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में, बाधे समध्य विवेक, तुम भुगो के बाद आये, एक केवस एक ! फान्तिदर्शी हथ्टि कांकी, पार युग के पार ! सच्टि की सुच-शान्ति का सपना लिए साकार!

> देश के अन्तिम पत्तन में तुम प्रयम उत्कान पूर्व के उनते धरुए, अध्याह्न के दिन मान !

वेद की गंगा मरुस्यल में गई भी सूचा ! वा तिमिर वह व्याप्त, भूपर वी न एक मयुवा ! के बुटन के मनुबता के खटपटाते प्राण, कर रहा या विश्व, वैदिक वायु का बाह्यान

> त्म उदय के साथ लावे प्राप्त का पवमान ! पा गये जिससे पुन निष्प्राण भी नव प्राण <sup>11</sup>

बद लिए अभिकाप सारे, तब दिवें वरदान । विका को प्रमृत पिलाकर, खुद किया विच-पान! पूज बाटे विश्व को या सूज के प्रतिदान। हैं तुम्हारे भनगिनत, महसाम पर महसान I

> भूल सकता कींन तुमको देव, अद्वादान ? तुम हुए माँ भारती के कान्ति पुत्र, महान !

## आर्य स्पेशल ट्रेन का मध्य स्थागत

बद्धानन्द दलितोद्वार समा विल्ली के बोर से की रामसान मलिक के नेतृत्व ने बारत प्रमुख एव बचार पर निकली धार्य स्पेक्षस ट्रेन के मात्रियों का अजमेर पहुचने पर आयसमाज अजमेर की और से रेलवे पर स्टेशन मध्य स्थापत किया गया । वैदिक धम की थय हो आर्थेसमाज श्रमर रहे, ऋषि दयानन्य की जब के उदबोधों से स्टेबन मूज उठा।

बी रालामिह के नेतृत्व में भाषायं नोविन्दसिंह श्री नषीन सर्मा की स्वामी तबदानद श्री किशनसिंह भादि भार्य सञ्जनो तथा स्ववसेवको ने इस बायौजन ने सहयोग दिया।

#### सती कोट की निष्धा

ग्राय समाज जीन्द शहर (हरियाएगा) ने सर्वसम्मति के प्रस्ताव पारित कर रूपकंपर सती काड की निन्दा की है । और सती प्रभाको एक बक्द प्रचा बतायाहै।

---समावेच सारजी

#### मातृ मन्दिर रजत जयन्ती समारोह

मातृ मन्दिर कन्या युष्कुल वारास्पर्सी का रजत जयन्ती समारीह 30-31 अवस्थर, 1 नवस्थर 1987 की होया।

-- डॉ वृष्यावसी (ग्रध्यक्ष)

मृति पूजा का (शेष पृष्ठ 1 का) ऋषि वयानम्य सीर श्रुसिवृद्धाः

आंकृतिक मारत के राजारान मोहत राग बादि विन झारिक और तामाजिक तुसारकों ने मूर्तिगुजा का निवेश किया है उनमे ऋषि बसानक का एक जिमेन स्थान है। क्यामीबी में झामिक विके के ही वहीं बारियु राष्ट्रीय कारिया कीर सामाधिक स्वीद से पी पूर्विकृषित की क्षेत्री होतिया कार्य है। उदाहरूस के बिए पूर्ति और सम्मिटी के जिल्हा सवार समा और राजिस का सपन्यप होता है उसे जीवा की दिखाता और सम्म कठिनाहियों को दूर करने सरम्बन्ध होता हु उत्त नामा का दाधता प्रार अन्य कारनाहरू कर है। वहुँ सी रेने उत्तरोग किया वा सकता है। वहुँ सी रेनियार के नाम पर प्रमेक अमाचार समार्थ कर्ना देति हैं। पूसियों को ही वहुँ सर्व कार्य कीर प्रोस्थ का सामन्य सम्बन्ध के कारता क्षेत्र कारनावाली और पूक्तकं सिद्धीय कर वाहें हैं। नामा क्रकार की सम्बन्ध साथ और किया क्षित्य कुला मुक्तिका की मूर्तियों के कारल धार्मिक एकता नब्द होकर परस्पर विरोधी मत बौर सामाजिक मनेकता उत्पन्न होती है जिससे देश को बड़ी हानि होती है। पूर्तियों के जमस्मारों के भरोते विजय के स्थान में आक्रमस्थारियों से पराजय मिसती है जिसके परिकामस्यक्य केन की स्वक्रमधा अन भीर राज्य सब पर त्रभुमो का अधिकार हो जाता है। परभर क उतकी इन्त विकृत सक्ती की यदि कोई हमारे नाम से पूकारे तो हम इसे अपना अपनाम समझकर केलित हो जाते हैं तो नवा पुरुष ईस्वर के बदले ऐसी वृत्तियों की ईस्वर के नाम ते पुकारना या सम्बोदित करना विजया अपनेता वनवा है। गन्दिरों और यूर्तियों के दशनों के लिए सम्बी कावी वालाएँ करते श**हा कोक** दुवा कार कुराना के धारण मारा सम्मा जावा नामाएं करने महा स्वकट्ट कार्य और कर होते हैं तथा दन व सम्मा नर होता है बहुत सदि दूस घरणा तमय और वे सार्वेण दूसरों की जनाई और उपकार से लगाए तो कितना साक होता ! अभियारी ने पढाये घर का नहाता गुलारीयों होटा प्रथमित के देवन तथा समार्थ जनक और सक्का तक कि व्यक्तियार केंग्ने कुक्का ने उपनोत होता है। गाता दिया साह वेशित चुलारी के स्वार्ण में कार्येण मुर्तियों की तेया और तक्कार करना एक प्रकार की हरूमता है। मन्तिरों में मुर्तियों की भीरी भीर तोड भीड़ के कारत आत्मानानि तथा मनावायक दू व भीर क्ष्ट भोगना पबता है। धनेक मन्त्रितों ने वैच दाखियों पृथारियों तथा धन्य ण्य नागना पत्ना हा सनक मान्यरा न वस साख्या प्रशासिकों स्थिति प्राप्त स्वीयों की नुसविधि से क्यांक्लिक लेतात है र मन्दिर के पुन्ति में निल्म कुर्तिका प्रश्नों और सुनार फुलों को तोक्कर कुलियों पर पढ़ाते हैं वे पुन्त तथा बन्य पदावशीय नष्ट ही नहीं हुति विकि पानी के ताब नाशियों में सबकर रोग खोर तुर्गेना उत्पन्त करते हैं। इंस प्रकार मिट्टी में निसकर बन बाद दोनों हुवित हो बारों हैं बारेर ककी-कुली उनके बीडे खादि उत्पन्त हुक्तर रोग फैलाउं हैं।

#### बार्व समाज बच्चेर हारा प्रकाशित साहित्व

#### जो॰ बत्तात्रेय बार्य द्वारा लिखित पुस्तकें

- देश धर्म और दिल्दू सवाज को बार्य समाज की केर-पूक्त 0 50 पैसे
- हमारी राष्ट्रीवता का बाधार-पूल्य व 1 00 बाचार सहिता-पूल्य 0 50 वैत 3
- वी बार्य समाज हिन्दू विदातटहिन्द्रहरूम (वयेजी)-विकेष रिवायनी दर ₹ 75 00
- धाय समाध हिन्दू धर्व का सम्बदाब वहीं सूच्य-50 व
- 1. बार्य समाज (हिम्दी) सूरव सचित्व 20 60 व., व्यवस्य 16 00
- ने सामा सावपतराय
- सर्व विश्वा (बाब 1 से 11 तक)--पूरे सैट का मूल्य र 32 00 वर्यानम्य क्या सत्रह--पूल्य र 3 00 पर्याप निर्वेशिका (बनस्त देश-विदेश की बांगें विश्वास सस्यामों का

#### परिचय)— सूरव च 12 00 सत्यार्थे-प्रकारा ग्रन्थ माला -15 माग

[ प्रत्येक समुल्लास पर स्वतंत्र द्रीबट ]

- 9 स्वयं और नस्क कहा है ? 1 दिखर एक शाम मनेक 10 भी के भूतवे में धर्म नहीं है
- 2 नावर्त्त नावा पिता
- 3 जिसा बीर चरित्र निर्माश
- 4 शहरवाध्यक्ष का महत्व
- 5 सन्यासी कीन कीर कैसे हों ?
- 6 राज्य व्यवस्था

APE SPECIFI

- 7 ईंग्बर और वेद
- 8 जनम् की उत्पत्ति
- 12 बीख और जैन मत 13 वेद जीर ईसाई गक्ष
- 14 इस्लाग बीर वैदिक प्रश्ने 15 सरव का वर्ष तथा प्रकास

11 हिन्दू वर्ग की निर्वेशका

विशेष---शर्ची ट्रेन्ट वार्वे वन्त् के पोर्टी के विश्वानों के द्वारा विविध हैं एवं सन्धनाला का सन्धावन बार्व समाज अधिगर के प्रधाव भी वसानेयजी धार्य वे किया है। प्रश्वनाचा के पूरे बैंट का भूत्य 8/- वन्ते है।

भी रतनसास गर्ग आर्थ प्रिन्टर्स, अजमेर में मुद्रित कराकर प्रकासक रासासिह ने शार्यसमाज मनन, केस्टर्सन, संक्षेत्र के सक्तीसा निमा ।

#### वैदो>क्सिलोधर्ममूलम्

वेद ही समस्त धर्म का मूल है।

सत्य को ग्रहण करने चौर ग्रसस्य के छोडने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। —नहीं बगानस

दयानन्दाब्द 162

सृष्टि सम्बत • 1972949087

वर्ष 3 रविवार, 15 सवस्वर, 1987 अक 18 प स -43338/84 m



पाक्षिक पत्र

"बार्य हमारा नाम है, वेद हमारा घर्म। धो३म् हमारा देव हैं, सत्य हमारा कर्म।"

सभय मित्रावभयम् अभित्रादभय आतादभय परोसात् । अभय तक्तमंभवं दिवा ने सर्वा भाजा मम मित्र भवन्तु ॥ कृष्यंन्तोविश्वमायम् सकल जगत् को ग्रायं बनाए

हमारा उद्देश्य :

समाज की वर्तमान एवं अविष्य में पैदा होने वासी समस्याओं को बुष्टिम्स रक्षते हुए आयंतमांच का पुनर्गठन करना है।

मार्गशोर्ध कु 9 सबत 2044 वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

## तथाकथित भगवानों का षडयन्त्र

यदि किसा न प्रसिक विशेष नहीं करितु बोडी की बतुराई-वालाकी क्यी बादुई सहस्र ज्ञान हो तो वह प्रपंत बाहु से अस्थों को प्रमादित कर केरी की सोतों की अमूटी बना बेना, आम सुह में रक्या अस्वा पानी की तम से प्रस्तित करना आदि।

एसे भनवान अपने देश एव विदेश मे भपने त्यानियत चमत्कारो तथा एसे 🜓 भन्य काण्नामा से अनता जनादन को निक्तास म लेकर उनसे मन बाहा काय सपन्न करान म सफल हो जाते हैं अब इस प्रकार के बुश्वदिक बस पर उनहें जाराम सुख एवं ऐस का जीवन शापन सम्भव हाती किर ने परिचय रूपी कमाई की घोर क्यो व्यान वें। दुर्भाव्य यह है कि अनेक व्यक्ति इनके जाल ने फसते पहुत हैं, भीर इस तरह य कुत्सित केल **चलते रहते हे। विचित्र बात यह है** कि ऐसे तवाकवित प्रपने को भवनान कत्ने वासो की कोई कोई कमी नही होती, एक के बाद दूसरे स्थान बहुता करते उत्ते हैं। इस तरह से वह धार्मिक शोवसा का सिनसिसा जनवरत रूप से चलता बाता है। ऐसे बन धौर भनर्वल बातो का भडाफोड करने वाने भी की परमानद हैं। 57 वर्षीय श्री परमानन्द भपने व्यक्तिस्व के धनी हैं। यदि वे चाहते सो उक्त प्रकार के घगवाल बन सकते व कुछ धाक्त्रयजनक तथाकवित ऐसे ही कार्ग वलापा के द्वारा सन्यों की विमाहित कर सकत वे। धौर उसी प्रकार अपना उल्लू सीधाकरके एखो भाराम का जीवन मापन कर सकते थे किन्तु इसके विपरीत उन्होन ऐसे भगवानी की पोल खालकर समाज के सामने नश्न करने का ठानी भीर यही माग चुना ।

श्री पण्मानन्द की काय सैती बड़ी सरत एव विविच है। वे जा कभी पदन या सुनन है कि में बहयन्त्री भगवान बनन ऐस जाद क करिको दिखान जा रहे हैं तो ये नावाती से खनकी चाला ना द... 2

हैं सममन है कि य घन किस '
स धपना सुद्रा जनान नाते हैं। योद किसी व्यक्ति में घोड़ी सा प्रो जाद कादि (Mage) मी जानकं , व तो नह ऐसी वाड़ों को मरसता से जान सकता हैं। वैते की परसानक्द ऐसे त्याकपित मचदानों का यहां कोड़ यह वर्षों से करते का रहे हैं। वैसे वे ऐसे आक्यर्यनन एक घट्मुत केस विवास सानों को हव काय में पारता होने के लिए एक्सपर्ट बनना होता हैं।

सब प्रकन उत्पन्न होता है कि मनुष्य ऐसे जवबाना के पास बाते ही क्यों हैं ? क्योंकि वे प्रसवस मानते हैं कि जन तकाकवित जनवान में विश्वास्ट करित हैं जिससे उन सोगों के कार्टी एक समस्यावें हुक भी चा सकती है। परमानन्द नें हसत हुए कहा, धुर्माव्यवस मनुष्यो का इन भगवानी म श्रदूट श्रन्थ श्रुद्धा-भक्ति उत्पन्न हो हो जाती है। वे ओन भून जातें हैं कि वे भगवान होकर भी फिर क्यो कर धन हरएा-एव शोषण करते हैं। ऐसा अधविश्वास प्रपने स्वार्थ के काररण होता है। वे भ्रागे कहते हैं ''क्या मनुष्य ऐसी प्रार्थनायी प्रभु से श्रमने स्वार्थ सिधि के लिए नहीं करता जैसे प्रभु मेरे शोग को हटा दो तो मैं प्रसाद बाटुवा अववा 100/-वान दूगा चुनाव मे जीत हो ऐमा 2 करू गा भादि 2।" नक्स वह भवतान को रिक्वन नहीं हैं? यदि मन्त्य मच्चे ग्रथों में भगवान को मानता है ना फिर जो कुछ उसकी इच्छानसार होता है वही ठीक मोर उपमुक्त हैं एसा मानना चाहिये।

परमानन्द इस प्रकार के व्यक्ति , शहे वे साधु 🗗 भ्रथता भगवान कहलातें हो ग्रति विराधी है। भी परमन्त्र न विशेष रूप स देश की एव विदेश नी सनक सात्रायें की 4000 बक्तव्या म विज्ञान क बाधार पर कार्जाए सुनी समकी हैं। श्री परमानन्द न तथा उनके धनेक साथी जिनमें वैज्ञानिक दार्शनिक विचारशील लोग थे, न्यूयार्कं से सन् 1976 में एक पत्रिका "The Sceptical ; Inquirer ' निकासी प्रकाशित की। इस पत्रिका का अध्ययन अनक विद्वाला धार्मिक एव दाञ्चनिक लोगों ने किया । परमानन्दको इस मासिक पत्रिका प्रकाशन हेतु किस बात ने आक्षित किया? वे कहते हैं कि जब मैं ऐसी Murcle में बड़ा विश्वास करता था सवा में भी इस कला मे पारकत होना भाहता था। इस कार्य के मिए मैंने

19 वर्ष वे प्रपना घर छोड विया। किन्तु कोई भी मुरेशनवान की बास्त विकपरिभावान देसका। आस्माहके इस विश्वास के साथवर औट कर माना कि ये सब धोका है मौर Miracle जैसी चीज कुछ भी नही कि ऐसे भगवान बनने वाले मात्र धोला देते हैं और वे विशेष परिस्थिति मे Mircle करना जान जाते हैं विशेष कुछ नही-धोखा है इस । विश्वास एव मान्यता को सिद्ध करने लिए वे उदाहरए देते हैं ''मैं अब 8 वर्ष का था, प्रोफेसर काजीकल्लम जो मेरे पिता के मित्र थे, ने एक बाक्चर्यजनक बेल दिखाया। उसने में, मेरे मित्र को अपने घर पर बुलाया भीर हमने उन्हें अपने चर के टैक बजीचे में स्नान करते पाया । जैसे ही हम उनके पास पहेंचे उन्होने हमारे उपर पानी उद्यास कर फेंका । माश्चर्य कि वह पानी केशा बन गया बाद मे उन्होने वहा कि यह मैं आपकें टैक ने नहीं कर सकता।

माई बाबा को वो जो कि प्रयन हाल के पानी को पेट्रोल म बच्च देने हैं किन्तु अब हमनें उन्हें चैनेन्स दिया कि हमारे बताये हारा ऐसा करके दिखाये तो भूप रहे। तक ता यह कि ऐसे चमकार विखानें वाने स्वय नया हुसरो से जीख-दान मागर्ते है धर्मान सब हाजा ही हाला है।

सार साई बाबा था राज के प्रतिक्ष प्रत्य का स्वाक्ष्यित प्रयानामों में के एक हैं। किन पर पहले वारमानक्ष का भी क्षित्रकार मा। किन्यु वर्ग श्री सका के बाक्टर एक कोंडूर नामक ने सन् 1976 म उन्हें दाने के साथ निक्क करने कहा ता वे हक्ते वक्के रह गरे-सब घोखा। उन्हीं क्षेत्र गुन्ठ 5 पर

#### धाननीय

#### -- प० गगात्रसाद उपाध्याय --

हमारी पढित में वाजिक युन की नावक्तावें बढे देन से जा रही हैं। उन सूक्त विचारवाराओं के परीक्षण की कावश्यकता है को तावारण जनता को अमोलन में शक्ष रही हैं भीर हमारा पुरोहित वर्ग उन पौराणिक रूढियों को प्रोत्साहन वे रहा है जिनके उत्सूतन के लिए 'वस' को सीनित करने की आक्दयककता है।

#### सम्पासकीय—

## नीड का निर्माण फिर-फिर, नेह का ब्राह्बान फिर-फिर

मित वर्ष दीपालिका पर्व (जारदीय नवरस्वेष्टि पर्व) पर प्रत्येक ग्रार्थ समाज "महर्षि दयानन्य निर्वाशीत्सव" का श्राबीजन गरता है। नशीक मृत्युवयी दयानन्व ने भौतिक देह का 30 अक्टूबर 1883 ई० को दीपावली पर्च के ही दिन वरिस्थाम किया का । यत इम दिन याय मधाज निर्वाणीत्सव का बाबोबन कर महर्षि दयानन्द के प्रति श्रद्धासुमन धर्पित करती है। उनके गुरा का संबंध, स्वरंश और स्युतिवान करते हैं। वैदिक परम्परा में मृत्यू दिवस था पुष्पतिकि मनाने की परम्परा नहीं है, संतः हम इसे बलियान दिवस भी क्य बेते हैं और सार्यजना को ऋषि के देस जाति धर्म और सम्कृति की रक्षा के लिए विषयान के काररण हुए अपूर्व वीरव पूर्व बलियान से प्रेरशा लेते रहने, धर्म रखाहित सर्वस्य अपंछ कर देने तथा सात्मालोचन एव प्रात्म निरीक्षण करने का बाह्यान भी करत रहत हैं।

श्राणी पिस्तते दिनो ऋषि का 104 वा निर्वास्पोत्सव मनावा गया। दस्मी आयोजन हुए। मध्दों के धटाटोप से मूलककर की मूल भावना की भुमाकर के दयानस्य की दमा सीर शानन्द दोली का भूतकर देव दाजिक मदावसिया एव मुख् कीर्तन कर समने कर्तव्य की इति थी समझ लेन है इस कारए इन रस्मी भागोजनो से हम नोई नई स्पूरित नया जोश भीर उत्साह समया सरफरोसी की तससा प्राप्त नहीं हो पाती। उर्दू भायर की ये पक्तिया सभवतः मेरे मतस्य की उजागर करेंबी।

> "मुक करता है कि गैरो ने नही कोई गिला गर्म बाती है कि बपनो से जिकापत है मुक्ते। "नक्तर को लेके हाच में फस्साद ने कहा रगरन में है करम मैं लगाऊ कहा कहा?

पूछता रहता है अधुम इस सुजनती भाग से, इक नवेयन के लिए, वह बुक्किस्ता बचेगा नया ?

मारमानोधन के इस ग्रवसर पर हम ग्रपने ग्रन्दर टटोल कर देखें कि भाज हमारा विशास संगठन क्यो क्रियिल हो गया ? गुटबाजियो और दलबन्दियों के रोन हमारे अन्दर क्यो पत्रप रहे है ? पदलिप्सा का चुन हने क्यों बाये जा रहा है ? हमारी प्रभाशिकता क्यो श्रविक्वतनीयता का तिकार हो रही है ? बगारो पर राख जमकर क्यो कोरा धुमा वाहर निकन रहा है <sup>?</sup> नई पीढी हमारी भ्रोर क्यो भाकवित नहीं हो रही है <sup>?</sup> हमारा नेतृत्व स्यो प्रकर्मच्य होकर रह गया ? पौरालिकता हमारे घन्दर भी स्यो कूसपैट कर रही है ? नई पीढ़ी के विद्वान आय समाज के प्रचार-प्रसार में क्यों भागे नहीं भारहे ? हमारा नदाकार भीर भादर्श व्यवहार क्यों क्रकित हो रहा है ? हमारे उत्सवो ममारोहो अलुसो बौर धायोजनी मे समीवता क्यो नहीं बा रही है? इन सब सवालों का एक ही उत्तर है कि हम निर्माण पथ से घटक गये हैं । ब्रायंत्व के सस्कारा ना निर्माण भागजनी का निर्माण, भागं परिवारी का निर्माण भागींचित भावशी का निर्माण, बार्य जीवन का निर्माण । प्रत्यक बायजन जीवित बीर जायत धार्यसभाजका रूप बने। धान, बान, ज्ञान मे निराक्षा धाय पन हो। व्यक्तित्व में चुम्बकीय साकर्षण हो, बार्य सगठन का निर्माण हो। जो रेम, सदाचार दवा करूसा परोपकार सचित्रता, सिद्धान्तनिष्ठा सेदाधाव रग-2 में प्रमाहुमा हो। बात हमें इस निर्वाणोत्सव के निर्माग्यात्सव में बदलने का सकस्य लेना होगा।

### श्रार्य जीर

काका काक्षपन्रार्थ महर्षि वयानन्द सरस्वती द्वारा सस्थापित बार्य समाज ने जहर एक घोर पराधीन भारत में सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में महान सुधारश्यक कार्य किया वह, वही दूसरी घोर स्वधीनता की लडाई ने भी वढ चडकर भाग लिया मा। बार्यसमाज के जिन प्रमुख व्यक्तिया ने परतत्र भारत की वेडियों को काटने में प्रपना सर्वस्य स्वतन्त्रताकी देवी का प्रयंग कर दियाका उनस साला नाजपतराय भी का नाम श्रयमध्य है।

भालाजी ने भ्रपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ एक ब्रायं समाजी प्रचारक के रूप में किया था।

दनके जातिकारी सिन्न श्री विपिन चन्त्रपाल ने निका है किलालाजी को मैने सबसे पहले 1887-88 म एक ग्रायममाज युवक प्रचारक के रूप मे देखा था-लालाजी बार्य समाज को अपनी माता और महर्षि वयानव्य को अपना सर्म पिताकहा करते वे।

कालाजी समंतोमुकी प्रतिमा के वनी वं । प्रसिद्ध पत्रकार श्री करोहकन्द तर्मा बाराधक के शब्दो मे-- "लाला लाजपतराय एक ही समय नेसद कुछ वे। सिक्षाशास्त्री भी, राजनीतिस भी, नेता भी नागरिक भी, विचारक भी ग्रीर प्रचारक भी।"

भाष एक उच्चकोटि के विचारक वे। इसका प्रमाश आपकी पुस्तक दी धार्य समाज है, जिम सकट का सामना भाज बार्व समाज कर रहा है, उनकी भविष्यवारगी प्रापने अपनी पुस्तक में बहुत पहुले ही कर दी भी। आपने लिखा बा-"मैंबहा यह बाहता है कि सार्य समाच सबसे पहले हिन्तुको के लिए कार्य करे और बाद में बन्य सलार के लिए वहार्म यह कभी नहीं चाईंगा कि

भावें समाज हिन्दू भ्रम के विभान समुद्र में जिलीन हो जाय । हिन्दु भ्रमं वा भीर भन्य किमी मंजसके विश्वीत हो जाने पर मुझे बढा मेद होता। श्राव श्रमाज कर स्वतन्त्र अस्तित्व उसकी उपयोगितामा के लिए बावश्यक है।"

भीवन के अतिम वर्षों म लामाजी झाय समाज के प्रति बोडे उदासीन हो नवे थे। भौर उनकी उदामीनता उचित भी थी। उचित क्वो थी ? इस सदर्भ भी विपिनचन्द्रपाल के निम्न कव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

"लाला लाजपतराय बडे मण्ड मार्यक्रमाजी थे किन्तु उन्हे धण्डो किय नहीं मिले ये। इस सस्या के बहुत बोड व्यक्तियों ने इतना भारती बिलेदान किया होना जितना लाका साजपतराय ने किया किन्तु उन दिनो पजाब के धार्यं तमाणी नेतामो ने पणाच के नर्वनर को नह क्हा था कि लाना साज-पतराय का हमसे और साथ सवाज से कोई सम्बन्ध नहीं । नालाजी को जिल्ला बु ब अपने नित्रों की काबरता पर हुआ उतना नौकरकाही के दसन से नहीं।"

बार्य जाति के गीरन, ऋषिवर के समर क्रिम्य, समर इतारमा सासा साजपतराय कोडनके बित्रदान-विक्स 17 नवस्थर के श्रवसर पर पडितराज अनजाय के निम्न सब्दों में श्रद्धांचित तावर समित है- तोसे एल्पैर विश्व रूत्या भीममानौ निदाणे, मालाकार व्यस्ति श्रवता वा तरोज्यपूर्विट ।

सा कि नक्या कनपितुमिह जावृतेच्येन वाराम जारा सारान्यि विकिरता विभवततो वारियेन ॥

धर्मात हे माली भगकर मुलशाने दाली वर्जी के दिनों में पानी के छोटे-कोंग वड़ों से नीचनार उस बुक्ष को बो दुने कीवनदान दिया। उसकी सुलका बुमलाक्षार जस बरसावी हुई क्याँ ऋषु की अनुबोर बटाए नहीं कर सकती। नवी कि इस सुकाम समय के वर्शन बुम्हारी क्या से ही हो रहे हैं।

--विरेश कार्य

## परमात्मा का स्वरूप

शाः स्थाप्ती सस्यप्रस्थाशः सरस्यसी (वार्य समाग्र सम्बेर में दिया वेद प्रवचन)

नम्म सम्मयाय च नवीशवाय च ननः संकराय च वेवलंडाय च ननः तिर्काय च विक्तराया च चैन्द्री च वर्त नेपन च संवाध, व वेर्ताय, वक्तरा, विकाय, विवयंत्राव की नीप कियर के बाये हैं, तथा धांच निनट की सहमा में 20 25 नाय पेरनारांग के बारो है।

स्त्यार्थ प्रकास ने परमात्मा के सनेक नाम महींच दयानन्य सरस्वनी वे वसाने हैं। परमात्मा के नाम मुक्त को स्वनाय बताते हैं। व्याद्मान देने पर व्याद्माता, न्याय केने पर न्यायाधील कर्म बताता है तो स्वाम्नेची वहे स्वय्य बक्ता हैं, वे मुख बता रहा है। धार्य समान में काने, गोरे पीसे तीनों का बमान रहा है थीले चीती, काने हस्त्री व गोरे समरीनी है।

पंचारवा के सभी शाम उसके बुल कर्ण स्वधाय को बताले है। नहीं हैं निर्मुण तथा है संमुल का परिचायक है व्यक्ति वसुल भी है तो निष्मुण भी हैं सहाँग स्वामी व्यावय बहुते व्यक्ति वे किन्द्रोले स्पष्ट किया कि परमात्मा नि-पूर्ण भी है तो संमुख भी जैसे प्रकृत्य भवतार नहीं तेते हो निष्मुण क्या बनाता है। प्रमु शुक्र विश्वयानक हो यह देश्यर का सनुल क्य बनाता है आय धर्मा-वसमी वेशानुकूल वेद नजी पर साधारित सर्मुल व्यावनाते है।

स वस्येण्यकृत्रमकावमवरण मस्ताजिरः मृद्वयूपायविद्य । कविभानी वे पिष्टू स्वस्पूर्यायीवास्त्रपायोज्ञानं स्वयामक्कार्यतीच्या समाप्य ॥ अन्याप्त मर्वाप्य नार्वाप्त नार्व नार्वाप्त नार्वाप्त नार्वाप्त नार्व न

कवे निवर्षं प्रतिकृत्ववयम् प्रपति कान्ति वसक-मनीची तथा न्ययम् होचे वाला है। संपत्ति परमारमा प्रपने साथ बना है वसे किसी ने नहीं बनाया वह स्वयम्भ् सर्वात स्वय होने वाला स्थ्य ही है वह परिणृ है।

न की वस्मते का कोई दिवस है न उसके जनमते वा कोई दिवस है। ते हुए कैपने राज्ये से नहीं निकास नकता वा में तुम्में सही निकास नकता । किया ते राष्ट्र में सही निकास नकता । किया ते राष्ट्र में सही की अपनात है। परमास्ता वंध्य है मकता । किया ते साथ की किया वाचा नहीं अप मनता । आई नीज है? आय वह है को कही भी बैठ कर पूजा कर सके क्योंकि उसका परमाता वहाँ है। प्राय सीमांक की आदि कोई मी दिस्ती भी समय पूजा कर मकता है जबति आर्थेंस्प क्या की निवंध है जिस की विकास में स्वीक किया किया की निवंध है के मी किया निवंध के सिवंध की निवंध की किया निवंध की परमार्थ में स्वीक की परमार्थ मा किया है पूरा है अपनी क्या परमार्थ की किया की किया है स्वीक की किया मा किया की किया है स्वाम वे प्राणी परमार्थ मा की की की की की की की की की किया है प्राणी करना आहा है पूरा है अपनी की की की विधेषता पुनर्मीयान व्या परमार्थ की निवंध की निवंध

वेद पारावण की विधि वेद मन्त्रों के नाथ आद्वेति देने की पढ़ित सावेदार पढ़ित है। वेद पारावर्णक मार्च हैं। वेद का पारावण साववान है की ने क्षिप पड़्नों काला को वेद पाप्यास करना शाहिय। वेदन मिले तो कोई दुस्तक के भी डक्का पारावस सुरूक हो। वेद पाप्यासण से प्रवेद बड़ा नाम सस्कृत को ज्ञान है। वेद की कवी विशेषता है वो है प्राप्तिनता, वेस का कोई स्वतंत्र हैया नहीं जब केद न हो जब जार्बासतों प्राप्तिकता का इत वहा पर अधिकाल का है जहां कि की हैं पुरत्य ऐसी व वी तिकास तालन की है न हो। स्वाप्ति व्याप्त कहते हैं जहां से वीनिमी तक वेद व वय के चारों तरफ समस्त माहित्य हैं। दक्षन निरुक्त उपनिषद व्याकरणादि की रचना वेद को समम्मे के निये की गई। हमारी धास्त्रा हैंक्यर में, हैक्यर की सुष्टि में, वेद के जान म, ईक्यर की व्याप्त मा सवा रहा। घात्र विकार-ईक्यर का मा जान वेद च उसकी बनायी लुटि वे हैं। ईक्यर म विक्याद कर दे केयर से सुष्टि की सुष्टि को निष्या सममें वह नासित है। ब्रह्म सत्याद वसता विकार से वेद विस्तृत्व उसता निष्या से वेद विस्तृत्व उसता निष्या से वेद विस्तृत्व उसता निष्या से वेद विस्तृत्व उसता मिन्या से वेद विस्तृत्व उसता है।

बेद का पहला सन्त्र है कीरणा क्येंला। हे मेरे ईक्चर त् मुझे सन्त व इस का सब है सन्त पहुचेंद का पहला मन्त्र है रामाध्या तु मुझे इस व जब वे मैं तुसे इस व उन के रिवेध बाद करता हू। परमास्वा में मृष्टि में सन्त के माय-साथ उन्ता है। सन्त पत्री विवाहोमकस्य में प्रपताह जागी है

पहला पथ इस के निये व दूसरा पद उर्ज के लिय है। भ्राउम् अभ्यादा नयं पहल्टिये।

उचोग में इम रूज्या मान है। तबसे पुरावा बेचिक बल्त यब (जी) है जिसके पात यब (जी) मीधंड है वह यबकता घर्षण बदमान हैं। हमरा बल्त धान है वस मान की उपलिस धान है बन मान की उपलिस धान है विचक्त पात धान वह धानवान विकले पात यब है व यवमन्त व जिसके पात यो है वह पोमनाक है तब। जिसके पात धान है वह धानवान है है वह कुमबान है वह धानवानक हैं। तब। जिसके पात धान है वह धानवानक हैं। तब। जिसके पात कुछ (बाम) है वह कुमबान है, हुजारबान नहीं है।

कृता-वास कारा। वद की दिन्द त तुन के जीतिन साधन य**ण** (जी) ईश कृत (वास कारा) है, तथा वद के अनुसार सुख का आ-तरिक नाधन बुढ़ि (नेशा) है।

को देश या नेका वेच वेदगाणितर व्योगासन तयामा तव वेक्साने नेकाणित कुस्त्याहा हुन बुढि पाहिय, सागत में तीमनस्य पाहिये, त्यार चाहिय । समानो तत्र समिती समानी केसलस्य मन तह विकायगढ्य समान सन्त्रम निमन्त्रवे स तमानेत यो हिनयानुशीय तथा —

> सगञ्चध्य सबदध्य सबोमनासि जाननाम् देशा भाग यथा पूर्वे स जानाना उपासते।

हमारा बोलना कार्य करना व विचार करना शक्सा हो, हमारे घर ने सारे काम विश्वकर गतेव्य म करें। वर वाहता है हम एक नाथ बोले धच्छा बोल मीठा बाले, यह बोन खोज मध्य क्यांगिंध शृक्षुवाय भद्र पब्येग् स्वक्षीत्र हम वाना से सम्बद्धा मेंशे धाखा से बच्छा देवे, स्वयवद्य का मत्र है झा-मृ सुजुतो क्यां शह्म खुना क्यों सह स्वोक्त शुवात ह

प्रस्तुति । नदीनकुमार सर्मा

## चिता सें लौटाकर पुनविचाह कराने वाली ऋचाएं

सह रेक्कर प्रयम्भा और सदया होता है कि आक्ष की हिल्कुओ में बहु वाका वा रहा है कि सती-अवा निर्देश्वस पर ते तस्त्रोकत है और शुक्र बहुअवक्षित पढ़ी हैं। शिरू सती-अवा ही नहीं, हिल्कुओ के तसाम इत तरह के विक्वासो को यदि शास्त्रों या सब्य प्रमाशों की क्योटी पर परस्ता बाए तो वे स्विक्ष से यदिक प्रमाशया ही उहरते हैं। नेकिन कोई पूर्ग वा मूख 'फतायेष/समुख शास्त्र में ऐमा कहा गया है से सुक कर किसी भी सामविनशोदी विकार को क्यों के लिए प्रमतित कर सकता है।

क कि सती की सबधारएं। स्त्री के विश्ववा होने ते बुधी हुई है इसलिए देखना यह होगा कि हिन्दु सस्कृति के सादिकाल वैदिक युन ने विश्ववासा का क्या स्वान वा। सबसे पहले तथ्य यह है कि युन ने विश्ववा होना कोई दुर्वान्य करूक या विपक्ति नहीं माना जाता वा। एवं समाव ने विश्ववा को केवल विश्ववा रहकर भी जीने का स्रविकार या। एक श्वेत्वीय ऋषा ने ऐसी स्त्रियों का उल्लेख हैं।

नेकिन यह कही भी झिनवाय न वा कि विश्ववाए विश्ववा ही रहे। उन्हें पुनर्विवाह का प्रक्षिकार था। भवववेद ने ऐसी पुनर्विविवाहित रिनयो की 'पुनमू क्ष्टा नया है। ऐसे पुनर्विवाह का ठोस प्रमाण इस तरह विश्वता है —

का पूर्व पति विख्यामान्य विन्यते परद् । पद्मोबन च तावजद च वातो न वि योषतः ॥ समानलोवो भवति पुनपू वापर पति । योऽव पद्मोदन दक्षिणाज्योतिक दयाति ॥ श्रव्यवेदन २,5 27 28)

"जिंक स्त्री का पहला पति था यदि नह दूसरे स विवाह करती है धौर विदे वे पति पत्नी प्रवीचन (प्रचमेल सोचन वा माठ) के लाक देत हैं तो वे कभी असव वहीं होते। हूसरा पति अपनी अंत दूसरा विवाह करने वाली पत्नी के साव उसी ओंक को प्राप्त करेगा ""

इससे यह चकेत प्रवस्य मिलता है कि पचौदन के रूप में पुनविवाह का कोई सामाजिक मुख्क प्रायम्बित मुख्य दिया जाता था। निन्तु यह एक टोकन' के भगवा कुछ न था।

कुछ लोगो का ऐसा मत है कि ग्रामनवेद मं विश्ववाद्यों के पुनर्विवाह का प्रकारतर से एक भीर उल्लेख हैं —

> उत्त यत पत्तवो दक स्थिया पूर्वे श्रवाह्मगा । ब्रह्मा चेदचस्तामग्रहीन सं एवं पतिरेक्षा ॥

बाह्यण एव पतिल राजन्यो न वैश्य ॥ (5,17 8 9)
"विसी नारी के दस स्रवाह्यण पति सी हो चुके हो किन्तु यदि बाह्यण स्वसे विवाह करे तो बड़ी उसका वास्तविक पति साना वायेवा। बड़ बाह्यण

ही उसना पनि होना । (पहले) क्षत्रिय या बैध्य नहीं। यादिन्य प्रमाण होना के बावचूद वेंदिक साहित्य में विश्वता पुनर्विषाह के उत्लेख स्वित्त प्रधिक नहीं पाए जाते क्यांकि तत्कालीन तत्वाच स्वानोत्पत्ति त्यों का चरम साफ्ल्य माना बाता। उसके लिए उसका विधिवत विवाह करना धावस्थक न या। स्थाकि तब नियोग नामक प्रया भी निवाह कितनी ही समाच्य और प्रचित्त वो। स्थिति के प्रन्तर्श्व निस्त्रतान विश्ववा (बा नवु तक की पत्थी) बापने देवर वा उच उद्देश्य के सिए आश्रव किसी क्यम नवदीकी रिस्तेवार से सतान प्राप्त कर सकती की। निर्मोण-प्रचा खे प्राप्त किया गया पुत्र वराक पूत्र से ज्यादा बेंद्रकर समझ बाता था।

ग्रामिन-मुगल की सम्बोधित करते हुए क्ष्मेद में एक सबह कहा गया है "सुन्हें उस तरह कीन बुलाता है बीचे सिक्सा सबसे देशर को बुलाती है है की सा सुप्ता सिक्षेत्र देशर (10, 40,2)। इसके बेगर से दिकाह का नियोग का स्पन्न करते नहीं मिनता लेकिन निक्स्त (3/15) वे इस क्याना की ब्याब्धा में देशर को हुसरा पठि माना गया है।

बंद्रक्य, सती-प्रथा और समाज में विद्यवा के पुनर्स्वीकार के बारे में एक महत्यपुत्र उल्लेख स्वयंवेय में भिसता हैं, विद्यमें नियोग प्रथा का वो स्पष्ट हवासा है ?

इय नारी पतिस्तोक वृक्षाना नि पक्त उपरक्ता मस्य पेत्र । सर्व पुराक्षमनुभावनरती तस्यै अवा द्रिक्त के सिष्ट् । उदीक्त नार्योष जीवनोक नातासुनेतपुर तेव पहि । इस्त्रवामस्य दिखिलोस्तवेय स्युजनित्यमणि स वसूत्र ॥ स्ययम दुर्वोत नीयमाना जीवा मृतेस्य परिकोससानाम् । स्ययम यत् त्रवसा प्रावृत्तसीत् प्रावतो स्याचीमनय त्रवेनास् ॥ प्रवानत्यक्रय बीवनोक देवाना प्रवानमुक्तवरती । स्यय ते गोपतिस्त चूषस्य स्वष्टं कोकमधि रोहनैयम् । स्यव ते गोपतिस्त चूषस्य स्वष्टं कोकमधि रोहनैयम् ।

इत ऋषाधों का सदर्भ इस तारह है प्राचीन धर्म का पालन कर पहले सन्त्र में विधवा अपने मृत पति के साथ नेट बाती है। तब दूतरे भन्त्र में उसका देवर वा सन्य कोई निकट का सम्बन्धी खेते किता पर से उठने के लिए कहता है। तीसरे मन्त्र में बापसा घर से बादा बाता है और सन्त में प्रोचे प्रस्तु उससे विवाह की कामना करे उसके बारे में कहा जाता है कि नहीं तेरा पति है।

प्राचीन वर्ष का पासन कर परिस्तेक की कामना करती हुई यह स्वी मृत पित को त्याव कर तेरे पास माई हैं। इस वर्ष को पासन करने बाकी स्वी तो तू सर सतार से सतान की र वर्ष स दे। हे स्वी । तू वो दंश पारि के पास सेटा है उठकर उसके पास से चर्म मा। सतार ने नीटकर तेरा पारिवस्त्य करने वार्थ ति की वर्तान के प्राच्य है। व्याचान की प्रीर चीवितर ने बाई गई और मृत, मनुष्यों के बीच से बापस लाई नई पुत्रती को मिन पुनर्विवस्त किया देवा है। वो बोक्जनित विस्पार दे किया है विस्त कर की पोर नो सामी हर स्वी वो वहा समझ लाया है। हे बाचमा स्वी । जहार को बुद वानती हुई सीर देवताओं की राह पर काली हुँ, यह जो तेरा बेशति (तथा पति) है उतके प्रेम कर। इस तथ सत्ती हुई, यह जो तेरा बेशति (तथा पति) है उतके प्रेम कर। इस तथ हस वोशति को स्वव का पाष करा। ।

### प्रतिनिधि प्रार्थ

--देवनारायस भारताज

कुछ प्रशिक्त बनो या बनो नहीं, मानव हो सक्के बन जायों। निधि दयानन्द के बन न सकों, प्रतिनिधि हो सक्के बन जायों।।

म्हाव-मुनि पबित सन्त मनीधी, मानव के बिनिख विशेषसा थे, यदि मुन मनुज हो मिट जाये, तो व्यर्थ हुए विश्लेषसा थे, ॥ जीवित की क्षोभा माभूषसा, मृत हुतु व्यर्थ परिवेशन के। सनुसासन स्नेह सगठन बिन, सब मर्गहीन सम्बिष्ण के।

स्वामी समान यदि बन न सको, सेवक ही बन जाघो । निधि दबानन्द के बन न सको, प्रतिनिधि ही सच्चे बन चाघो ।। सत युन जता द्वापर बीते, सब सार्य वर्ष का सा प्रकाशन कत्तपुग के सारम्म कान तक, या नेद यह का ही विकास ।। सत्तभेद द्वेण उपने ऐसे, हो गया महाभारत विशेख । कही ययानस्य ने प्रकार के, या रोक दिया ने क्यत हास ॥

ऋषि के प्रमुवाबी बस न सको, स्थायी ही सच्चे बन जामी। निधि दयानन्द के बन न सको, प्रतिनिधि हो सच्चे बन जामी।।

#### रामायस पर एक प्रतिक्रिया ऐसी जी

## राम और सीता

– चीलारान गोबल –

टी वी वीरीयल रामावस्त में बीता का विवस्त को किया क्या है उससे सती के जुमें की क्यापी सहावता विवस्ती है। मेरा जुम्मल है कि दूरतवन इसके साथ दूसरे विचार को कि बक्तियकन की रामायनेर सालीकार में दिने गए हैं, की प्रसुद्ध करें।

यिवं बनावी लेखक की इच्छा है कि बादू बतो के हिन्तू कीरतो वर कटाक के मूल में बाना जाहिए विवमें हिन्दूकानों बीरत युव्ध प्रवान तमाव कामीन न उनकी विकार रही है। जावकर पुराने कान के कियों ने प्रीरक को नीचा रिवार है। जावकर पुराने कान के कियों ने प्रीरक को नीचा रिवार है। जावकर पुराने कान के कियों ने प्रीरक को नीचा रिवार है। इसकिये लेखक ने जोक कर विनयों हिन्ती प्रभावी लेखकों ने तिकार ताम में रखें हैं जिखते जातिक रात्मावण राज्य पर कठोर प्रात्नीचना की है तथा द्वार में रखें हैं जिखते जातिक रात्मावण राज्य का प्रत्ये का हो है। इस जोक में सीवा का जा विचया उत्तर है वह बास्त्रव ने हृद्ध विचार है। इस बोज में सीवा का जा विचया उत्तर है वह बास्त्रव ने हृद्ध विचार है। इस बाज में कियों ने कोटी मोटी नहानियों में स्वी के वरित पर आवार किया है उस काम में कवियों ने कोटी मोटी नहानियों में स्वी के वरित पर आवार किया है उस काम में कवियों ने कोटी मोटी नहानियों में स्वी के वरित पर आवार विकार है।

सीता की पुनराइति से कभी भी गुलामी व मीथ रूप का आपनाही होता है। उत्तने सपने दिवाल स्वेच्छा से जो तहीं था निर्णय निरुष । वह भी सही है कि कमी 2 राम के मोहनी रूप से धार्कित हुईं। लेकिन वो चाहती भी की पिता के राज को ठूकाने तथा बन जाने के सारोकों का पामन न करें।

राम के पिता के झावेशों का भीतता से पालन करनें पर उसकी सक्का लगा लेकिन उसकी विश्वास या भी उसके साथ होने से राम्र अपनी वीरता पर गीर करमौर राज पानें के लिए भयोध्या वापस लोटेवें। इसीसिए वह राम

के साथ बन में भी थई। सेकिन राम ने इस रुख पर ध्यान नहीं दिया। इसके जगरान्ता इडाकरूब में राम बीच जन्मुको व वनमवासिया सं मोह कण्ने लगे।

छीता विसने रावष्ट्रमारी का बीक्न विवा उचने वह वनवाय-मीत की जिल्ली ने ज्या दिवा था। तका उसने रावस्तु के साथ वो ि राम वैमा नवस्तुत नहीं या फिर मी मनुष्य से उपर वा साथ राम सहा। वह एक पर्व किना ने रही तथा वहा के वैषय का आनन्य दिया। राम अपने जननी तीरा की सहायता से सीता के सामन्य के समय के को कर तका तथा रावस्तु पर विजया। वहा वहा तथा रावस्तु पर विजया। वहा के राम के पाल माई उसने कोई हु क्ष व पक्षताया प्रयट नहीं किया। जब मनुष्य अंट ने उसको जिन्या जनाने का सामेब दिया तो उसने वहाँ दिवा तो तथा है से देखा। वह वह स्वाधिमान से मरीत तथा उसने मही दिवा तो उसने वहाँ दिवा ने तीनाह मिनाई ते देखा। वह वह स्वाधिमान से मरीत तथा उसने महीन मनुष्य अंट प्रशंस के सामने मुखे नहीं नहीं।

वंकिम चह्न के लेख उनकी किसी पुस्तकों ने मासाती से मिल सकते हैं।
दूरवर्षनं को तो केवल उनके बाह्यार पर टी वी लेख तैवार करणा होगा।
यह सालेख व प्रदक्त मावी पीडियों के मिए बहुत ही उत्साह वर्षक रहेगा।
कालि से सायामी नाम ने राज्य करेगे। सब समय सा नवा है जककी
धीरत के स्वाधिमान को बचाया जा सके जिसकों बहुत हुद तक वालियकी
तथा तुस्तीयास वंदे सोगों ने कापी पुरस्तान पृष्टिमार है। यहा तक की कवान
स्रोरत को सरने वालि के साथ जनना पड़ा। वब तक जिन्दमी ने कवान स्थार है उनके साकर्येश की पूरा बोनना चाहिसे सीर स्वर्थयी सुख के लिए बनियान
न कर देना चाहिए।

## दयानन्द वैदिक शोधपीठ, ग्रनमेर

महोदेव, व्यानन्त वैदिक साधपीठ प्रवमेर स्रोध्न ही बैदिक विज्ञान, सर्म दर्गन सम्बद्धित सिक्ता, सिक्य एव इतिहास-अचारिका एक वाम्यासिक स्रोध-पिक्क के प्रकाशनाय इनस्करूप है उत्तमनोटि के तोध-निवन्धा के लिए समुस्ति विकार नो ब्लाइन है उत्तमनोटि के तोध-निवन्धा के लिए समुस्ति विकार नो ब्लाइन के लिए समुस्ति विकार नो बिकार के लिए समुस्ति है यो जोध-निवन्धा दिला कि स्ति के प्रकाश के पास पश्चित को सम्बद्ध के पास पश्चित को सम्बद्ध के पास पश्चित को सम्बद्ध के सम्बद्ध के पास पश्चित को सम्बद्ध के सम्बद्ध के पास पश्चित को सम्बद्ध के समुद्ध करने सम्बद्ध के सम्वद्ध के समुद्ध के सम्बद्ध के सम्बद्ध के समुद्ध के समुद्ध

सरक्षक बाचार्यं क्लात्रेय प्रार्वे निदेशक प्रधान-सम्पादन (बा) बाबूराम कास्त्री साचार्य एम ए , पी एच की , की सिट. श्रोपेसर एवं सध्यक्ष

#### छोळ बस्ताव

अर्थ सवाज प्रजेषर ने अपने सभावर तथा हैदराबाद सत्यायही जी मुलबन्द तबर के बिताक 29 अस्ट्रबर को हुए प्रशामिक निवन पर दुख प्रकट किया है और परम पिता परवास्मा से उनके आस्मा को चिरवाशि एव चटु गति प्रवान करने की प्रावेना की है।

#### सम्मेखन

धार्यसमाज बासवाडा में 6 नवस्त्रर से 8 नवस्त्रर तक बनवाडी सम्मेलन का भाषोजन किया गर्वा। इसी प्रवस्तर पर आयं प्रतिनिधि सभा राजस्वान की जतरन सभा का प्रधिवेदान 8 नवस्त्रर को सम्पन्न हुया । इसमें सभा के धलाक्वी समारोह सस्त्रमधी प्रनेक महत्त्वपूर्ण निर्मय विष्ट नए।

#### ञ्चन विवाह

आयसमान किसा सभा क उपमनी बी बदेरन मार्थ की सुपुनी सी मजुला का विवाह शिमला निवासी कि विनव से 4 नवस्वर की सानद सम्पन हमा।

'धाय पुत्रगेठम' परिवार की थीर से नवदम्पति की हाविक सुध-कामनाए ।

#### बार्व समाज शिक्षा समा, अजमेर

#### **ऋावश्यक्**ता

अध्यापक १. दितीय ग्रेड अग्नेची, एम. ए. बी. एड. २. जुतोत्र ग्रेड, बी. ए. बी. एड. ३. बी. एस. सी. बी. एड ४. हायर संकष्टरी, एस. डी. सी. साबेदन यत्र पांच क्यये के फार्स पर मंत्रों को सात दिन में नेजें।

सनवानों का पडसन्त ; बास्टर ताहब ने उन्हें एक लाख दें के बहा किर भी जुन सवा गयेहतना ही नहीं परकानन्य स्वय में भी साई बाबा को सन्दें का राजकारा किन्तु के तो उनका (नरमानन्य) नाम कुन कर ही चस्त्रे को के । से तो अपने 5000 मकों के बीच से साजम में ही कुछ करते 'छते से। परमानव ने सन्दें का पाइणों के सिविष्का सनेक परिकार्य-गई प्रवासित किसे विमने भी साईबाबा की पील एक श्रीस

[एक 1 का केव अही में विषय में बताया। वे थी माई बादा को सम्में इस मुण्यात सम्में ने दहा धोकेशाल कहतें हैं। स्ताना ही नहीं परमानन्द में तो इस मतक्का के निष्ठ कानुनी कार्यवाही भी थी। सांतिक कया कहें, वाई सांत्र को यह प्रकाशित करहें। एक्ट के विषठ नीट म दांचे में चतीटा यदा क्यांकि ने स्पन्न क्यांकि ह्या-पत्नी से माना सन्तर दसे ह्या-पत्नी से माना सनाव्य स्व





भी रासासिह के नेतृत्व में धार्म स्पेशल ट्रेन के स्थापताथ स्टेशन पहुँच धार्यअन

## शार्य समाज शिक्षा सभा प्रजमेर की बैठक सम्पन्न

रवानीय व्यानन्द कांत्रेज, हो. ए वी. स्कृत, विधासाम संस्थान क्या धन्य वस विभिन्न विकास बस्वाभी की प्रवन्तकारिसी सन्या मार्न समाथ विका सभा की कार्यकारिएती की एक विशेष बैठक रविवार 1 नवम्बर, 1987 ई० को सभा के प्रधान न्यायमृति जस्टिस भी बी. पी. बेरो की धव्यक्षता ये दयातन्त्र कॉलेज संजापार में सम्पन्न हुई ।

धार्य समाज शिक्षा बचा की प्रकश्च समिति ने तीन साव के नवीन भवन निर्मास एव दयानन्द कांसेज मे सजमेर विश्व-विचालय को स्थान देवे के प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान की ।

इस बंठक में बी ए दी मैंनेजिंग कमेटी, दिल्ली के बाध्यक्ष प्रो बेदध्यासची, श्री दरवारीसास व श्री रागनाथ सहयस तवा बारवर्ष के कंप्रेन देवरान धार ने भी भाग निया।

### वयानम्ब कलिंब ट्रस्ट स्थापित

बार्य समाज विश्वा, प्रकोर के बन्तर्गत संवासित दयानन्द कालेज तथा बन्ध विक्षां वस्थाओं की अवस सम्पत्ति की सुरक्षा हेत् ह्यानन्द कालेज दस्ट की स्थापना की नई है। दस्ट के सात दस्टी सर्व सम्मति से शामजद किए गए हैं। जिनमे न्यायमूर्ति जस्टिस बी वी पी बेरी, ही ए. वी मैंनेजिन कमेटी, दिल्लो के प्रधान प्रो वेदव्यासची व मंत्री की दरवारीसालची, को दलातय वाब्से की रासाबिह, केप्टेन देवरत्मकी शायं, बानई, को मेजर प्रभावर बाक्नेओ के नाम शामिल हैं।

रविवार ! नवस्वर को हुई ट्रस्ट की प्रथम बैठक में सार्थ समाख विका सभा की सम्पत्ति की सुची प्रस्तुत की गई जिसमें समभग चार करोड के छोटे-मोटे भवन हैं। बैठक में इन सभी का रख-रखान, नक्या व रजिस्टर सुव्यवस्थित रक्षने का निश्चय किया गवा ।

### वाष्ट्रिकोट्सव

धार्व तमाच विश्वान नगर हारा तृतीय वार्विकीस्तव व यक्षेंद्र पारायल यक्ष प्र से ६ नवस्थर तक वनवान से मनावा तथा ।

—केक्स कुच्छ साहबी

## हैदराबाद के सत्याप हियों की संगोध्ही

ग्रजमेर । नवस्वर । ग्रार्वसमाच ग्रजमेर के तत्वाक्षात में वैक्षराकाव के सर-। बहियों की तमस्याओं के विषय में विचार-विवर्श करते हेत एकसगोष्ठी का बाबोजन समाज अवन से किया गया। संमोष्ठी ने भी बहादल स्नातक (बनसम्पक प्रतिकारी सायदेशिक मना) ने सरवात्रहियों की समस्याधी के समाधानाथ प्रयने सकाब दिए ।

गोष्ठी में सबधी फैन्या व धनी व बढीलाल, बाह्यपरा, जवरलाल बनवन्तरिष्ठः, जनसावप्रसाद व स्वामी देवारावजी सादि बरवायही सम्मितित हए।

सवासन भी नदीन कुमार सर्मा ने किया ।

#### बार्य समाज प्रजमेर हारा प्रकाशित साहित्य

- 1 देश, धर्म कीर हिन्दू लगाव को आयं समाज की देश---यूल्य 0.50 पैसे 2 हमारी राष्ट्रीयता ना बाक्षार - मृत्य ६. 1 00
- 3 प्राचार सहिता-- मस्य 0 50 पैसे
- वी बाब समाज हिन्दू विदाउटहिन्दूइउम (अपेजी) —विशेष रियामती वर ₹ 75 00
- 5 ग्राय समाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं भूल्य-50 ए. धन्य प्रकाशन -
- 1 प्राय समाज (हिन्दी यत्य सजिल्बा20 00 क प्रजिल्ड 16 00
  - -- ने लाला नावपत्रराव
- 2 धम जिक्का (भाग 1 स 11 तक) पूरे सैट का मूल्य ६ 32 00
- 3 दबानन्द कथा संप्रह--मृत्य र 3 00
- 4 परिचय निर्देशिका (समस्त देश-विदेश की बाव किसास संस्थाओं का परिचय)---भस्य व. 1200

### सत्यार्थ-प्रकाश ग्रंथ माला-15 माग

[ प्रत्येक समृत्यास पद स्वतंत्र ट्रेक्ट ]

- 9 स्वर्व और गरक कहा है? 1 ईंग्बर एक नाम धनेक
- 2 धादर्श माता पिता 10 वर्षि भूतहेने धर्मनही है
- 3 जिला भीर परित्र निर्मात 11 हिन्दू धर्म की निर्वेशता
- 4 गृहस्थाश्रम का महत्व 12 बीड बीर बैन नत
- 5 सन्याची कीन और कैसे हों ? 13 वेच और ईंगाई जत
- 6 राज्य व्यवस्था 14 इस्लाम बीर वैदिक धर्म
- 7 ईस्बर और वेद IS सत्य का **धर्म तका प्रकास**
- ८ बयतुकी इत्पत्ति

.विशेष-- सभी ट्रॅंबट सार्थ जनतु के बोडी के विद्वानों के हादा किश्वित एक बन्दाला का बन्पाधन बार्ज स्थाय ध्रवमेर के प्रज्ञान हो. यद्याचे व बार्स वे किया है। बन्बवाका के पूरे सैंड का बुल्प 8/- रुपहे हैं।

#### हुस्तकाचन स्था स्टीवरी विश्ववि

#### वेदोश्वलोषमंग्रुलम्

वेद ही समस्त धर्म का मूल है।

सत्य को श्रहण करने भीर असत्य के स्रोडने में सर्वदा उत्तत रहना चाहिए —महर्षि दयानन्य

दमानन्दाब्द : 162

सुष्टि सम्बत् · 1972949087

वर्ष: 3 सोमगर, 30 नवस्वर, 1987 जक 19 प स-43338/84 II ा क्रो३म् ।

# গ্রাম্ব দ্রীক্রিছি

पाक्षिक पत्र

"क्षायं हमारा नाम है, वेद हमारा चर्म। कोइम् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म।"

म्राभय मित्रादभयम् अभित्रादभयः ज्ञातादभय परोक्षात् । अभय नक्तमभय दिवानः सर्वाद्याशासम भित्र भवन्तु ।। कृष्यन्तोविश्यमार्थम् सकल जगत् को बार्य बनाए

हमारा उद्देश्य :

समाज की वर्तमान एवं भविष्य में पैदा होने बाली समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए द्वायसमाज का पूनर्गठन करना है।

मार्गकोर्षे ग्रु 10 सबत 2044 वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

सती प्रवा विरोधी पश्यात्रा में-

## अजमेर आर्यसमाज का जत्था भी भाग लेगा

धनमेर । सती त्रण तथा नारी उत्तीवन के निरोध में बार्य जगर् के पूर्विद्ध हानानी स्तामी श्रीनतेष के नेतृत्व में दिल्ली से दिबराना तक प्रायोजित पदयाना में भाग समाव प्रजयेर का भी एक 51 सदसीय जत्या भाग लेगा। इस श्रास्य का तरिवचय धानामें दलानेय मार्य प्रश्लान, सार्व समाय प्रजमेर की प्रप्लान, सार्व समाय के प्रयादिकारियों की बैठक में तिया सहा।

यह कातव्य है कि स्थामी सम्नि-

वेस के नेतृस्य में यह हुनारों आर्थ सत्यादियों एवं सार्ववीरों की पर-याना दिल्ली के 5 दिनम्बर को प्रारम्भ होकर 23 दिनम्बर को दिवराना पहुंचेगी । हमने समितित गाय परमात्री-गण्ण सरीप्रमा तवा गारी उत्पोदन के बिरोध में बन सारारण तथा महिलायों के प्रति सम्मान एवं कल्याण की भावना गाप्तत करते हुए सरकार से 'क्यकनर काण्ड' में सम्मितित दोशों व्यक्तियों के विच्च कठोर कार्यवाही करने की परवोर माय करेंगे । कार्यसमाब, प्रजमेर की श्रीर के श्री रासासिंह मणी, धार्म मसाज, प्रजमेर के स्वोकन मं एक मिति का धी नक्त दिन्दा नया है। श्री रासा-सिंह ने घजमेर क्षेत्र के अरबे वे सम्मितित होने के इच्छुक व्यक्तियों के धाय समाज, धजमेर से सम्पर्क कन्त्र का मुनुरोध दिन्दा है। धजमेर का जस्या पदयाना वे जयपुर के सम्मित्त होना।

जल्मे के सत्याप्रहियों के व्यय का बहन प्रायं समाज, प्रजमेर करेगा। पदयाना कार्यकम-स्वामी प्रक्ति- वेस के पत्रानुमार पर्ययात्रा का गाय-स्त प्रकार है। 5 दिसम्बर को पद-यात्रा जन्या दिल्ली है चककर 17 दिसम्बर को धामेर पहुचेगा। 17 दिसम्बर को 5 बजे साथ धामेर से चलकर 18 दिसम्बर को सुबह् वयपुर ने, सती विरोधी विशाल समा के झायोजन में सम्मितिता। 19 दिसम्बर को जयपुर के उपनगर विश्वकर्मानम्म रे पद्माव। वहा से धामे जीयू, मन्योरा, धानीतज्ञ होते हुए स्वामी अद्धानन्व के विलदान दिवस्व पर 23 दिसम्बर की मुबह दिवराजा में प्रकार के विलदान

## सचाई सिर पर चढ़कर बोलती

· बीरेख कुनार बार्व —

विशव प्रसिद्ध लेखक एव विचारक बनींड वा का कथन है—"वब बोलना चुनिया का सबसे बडा मजाक है।" कितना वारतिकताकुण है—जनका यह व्यव्या ! प्राप्त के युव वे सरय का पृणंतया लोग हो गया है। लोग सब बोलने में, लिखने में परते हैं। प्राप्त प्रस्य का धालम्बन लेला एक बवा 'सहमा मौदा' हो गया है। किन्यु फिर भी कभी-कभी मुख लोग धगनी मतरात्मा की भाषाक पर तरय को प्रस्त करने पर विश्व हो जाते हैं। ऐसे ही एक सज्जन दर्शनेष्ट की मसिड चर्च के स्वाधिकारी वा बीनकिस

श्री श्रीनिकस मानते हैं कि ईसाई सर्मे सन्बन्धी था जनकारिक बातें ईसाई सेखक निवाते हैं, वे सरप पर सामारित नहीं है और अस्तिविकता से उनका दूर ना भी नाता नहीं है। वे रुग सेखनों को ऐसे सर्वप्रचारक मानते हैं, जो सपने उद्देश्य की पूर्ति

貫り

हेतु नाना प्रकार की युक्तियों व तकनीकों के द्वारा व्यपनी धार्मिक चमरकारिक बातों को येन-केन--

प्रकारेश सिद्ध करते हैं। श्री जैनकिन्स घागे कहते हैं कि वस्तुत ये सारी चमत्कारिक बार्वे

### ईसाईमत और विशप जोन राबिन्सन

हैंसाई धर्म व ईसा के तथाकथिए करियमों के विषय में प्रश्निवाह पैदा करने वाले विषय डा जैनकिन्स से पूर्व इंग्लंग्ड के ही एक ग्रस्य विकास विकास जीन राजित्सन ने भी । 62 में 'प्ररतेस्ट ट्रॉवेंड नामक प्रपनी पुस्तक मं स्रोक तर्क पूर्व प्रका इस तर्का में उत्तरे के।

भी परिस्मान निवजे हैं कि वर्तमान बेबानिक जुग में चौचे धारमान में निवत तथाकरिता देंबर के प्रति धारमा उत्पन्न करना स्टब्स नहीं है। विवय महोदय धार्ग तिखते हैं कि मानव को धार तथाकरित त्वर्षीय पिता को मानवता से अपर उठना होना और यह मानना ही होगा कि देंबामतीह महेह चौचे धारमान पर नहीं तथा

यह सत्यानेची विचार अन्य साधारण ईसाईयो की माति यह स्वीकार करने पर भी उबत नहीं कि ईसा स्वय ईस्वर प्रथमा ईस्वर का इकलीता पृत्र था। और विचार की डीक्ट में बाबा जाहन स्वया प्रतात हुस्था का स्वयं से अवतरण होना केवल कार्ट्र भी का विचय ही हो सकता है।

विकार 'मरियम के कुमारी 'रहते मा बनते' की मान्यता की भी एक करोज करनात समस्ता है। इस तदर्भ में यूझे जाने पर उक्का कहाने 'जले ही जोग कुने जारितक कहे, किन्तु मैं हम प्रकार के विकशात 'रखने में समसर्थ है। बार्सिल में इस तम्बन्ध में जो प्रमार्थ एवं साक्षिया अधित की गई हैं, यह सम्प्रीत्त हैं। किया कि ईसा त्वाम वस्तास्था था।'' मात्र एक दोग हैं और इस सदर्श में चर्च का इतिहास तो अस्यात प्रयाशह है। आप कहते हैं कि मणदान के नाभ पर जो अस्तिकित एव अहते चमत्कारों की वार्त की जाती हैं व ह सब धोखा है, सैनान नोगों की करा-रत है। इसकें अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

वा जैनिकन्स को अपने उपयुंक्त कातिकारी विधारों के बारण ज्व की तबाकिया अमक्षमा के न्द्रूर-पवियों की आसोचना का भी गिल्य होना पढ़ा है। अपनी इस मानोचना की प्रतिक्रिया में बाक्ट साहब ना कमन है—''अनका है कि अमें के विषय में जीम सच्चाई को आख बन्द कर स्वीकार करने के बात करत है, और यह अस्पन्त भवानक स्थिति है।''

क्षाशा है कि प्रबुद्ध जन और विशेषकर हमारे ईमाई बन्धु दुग्हुम के विश्वप डा जैनकित्स के तर्कों पर क्षाधारित उपर्युक्त विचारों पर सम्बीरतापूर्वक विचार करेंगे।

निवेशक : बसात्रेय वार्य

त्रधान संपादक : राखासिह

संपादकः वीरेन्द्र कुमार श्रायं

कार्या 20011

#### हमारा लक्ष्य

—ः पं० विहारीसास सास्त्री — स श्वह कामये राज्य, न स्वर्ग, न पुनर्भवत् । कामये वु सत्त्राना प्रामीनामाति नासमाप् ।।

भावार्थ - हम न राज्य चाहते है, न स्वर्ग, न मोक्ष, मात्र अधिवद्यास से पीडित जनता को स्वस्य सत्य मार्ग पर हमे लाना है।

सम्पादकीय---

## अफसोस! इन्हें तो खून करना है दयानन्द की उम्मीदों का

श्रामेतमाय के इतिहास में एक तमय ऐता था जब बेदो के प्रवार प्रतार, बेरिक इस के हुन्दुर्श गर्नन तथा शास्त्रायों के चर्चे एव व्यविक्तासी, दुराइमी पर कराती चोट मारने का वातावरण गरमाया रहना था। आर्थतमाओं में वेद प्रचार की हुम रहती थी। उपदेशक, श्राचीक तथा खम्मातीमाथ एक निराना रीवानावन नेकर महर्षि के तदेव तथा आर्थतमाथ के मतस्यों को पहुचाने में एक समीकिक सानन्त का प्रमुख करते थे। लीग बेदीपरेश भुनने को उतावने रहते थे प्यारक्षे रहते थे। राष्ट्रीय जीवनशारा में आर्थ समाज ने कान्ति का विद्युत्त कावाया जावरण और बेताना का श्राचनाव कृता। मचंत्र यही बात पूजा करता थी—

'बाय हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म। बोरम्' हमारा देव है सत्य हमारा कर्म॥''

ऐसे उदाष्ट्ररण मिलते हैं कि भार्यसमाज का भदने से भदना सेवक भी भावश मुन-सुन कर तथा उन वातावरण में रह-रह कर पनका सिद्धान्तवादी हो जाता भा भले ही वह कम पटालिखा क्यो न हो । नत्सको मे भी भीड करती थी। देर रात तक खुले मैदानो मे भागंगमाजो के जलसे हुआ करन थे। माय विद्वानी कविया भजनीको तथा प्रचारको म बिना दक्षिशा कालोभ किये विशनरी भावना रहती थी। सब दुख सहकर या जान की बाजी लगावर वे बार्य जन बार्यममाज की बान वान और शान को कायम रखते थे। श्रायों मे परस्पर प्रेम और सत्य का व्यवहार था। मनसा वाचा-कमगा वे एकरम रहते थे। पर धरासोस धाज महर्षि दयानन्द मरस्वती के इम सदेश को भूलादिया कि वेद सब सत्य विद्यामी का पुस्तक है, वेद का पढना-पढाना सुनना-मुनाना सब आयों का परमधम है। आज नमाज की क्या स्थिति है ? कहते हुए बहुत दुख होता है। गत दिना धार्मनमाज मे उक्तर प्रदेश के एक 85 वर्षीय पराने आर्थ सन्यामी श्री स्वामी बहुगतन्द जी (बिंदकी) स मिलना हमा। उन्हाने मेरी बात सुनकर एक पुराना उर्दू गीन मुक्ते बताया जो आज हमारे हाल पर मटीक उतरता है। मुक्ते विश्वाम है कि वतमान आर्यजन इम कविता म व्यक्त भावो से प्रेरणा ग्रहणकर स्वय धार्य बनकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार म सहायक वर्नेंगे।

समाजों में मगर प्रव रात दिन तहनीर होती है, न वो तहरीर होती है न वो तहरीर होती है। रवा गदन पर वो घिषयार की शमशीर होती है। जो होती है तो हर एक बात वेताशीर होती है। न वो लेखक एहे हमने न वो तककार बाकी है, कि इस गुलसन के गुल मुरभा गये, प्रव खार शकी है। यही लीडर रहेती हो चुका विस्तार वेदो का इन्हें तो खन करना है दयानन्द की उम्मीदों का ॥ 1 ॥ जिन्हे ससार ने ससार क उपकार करना ना, जिन्हे दुनिया में बैदिक धर्म का विस्तार करना था। बनावी धौर धकुती का जिन्हे उद्वार करना या, जिन्हे निज देश भीर जानि का बेडा पार करना था। उन्हे देखो तो बाहम वसंरे पैकार बैठे हैं, अजूद धपना मिटाने के निये तैयार वैटे है।। 2 ।। यही लीडर रह तो हो चुका विस्तार वेदो का इन्हे नो खुन करना है दयानन्द की उम्मीदो का। अमाना रक्य करताथा कभी वह प्यार था हमस, द्यमं के बाम में हर एक मानिजो बम खार वा हमन । बजब ग्रब ग्रायों म वो उलफत नहीं मिनती, न को श्रद्धान वो हिम्मत नहीं मिलर्ताः निकलते वे जो हम वेदो का घलम रखकर, फरिक्त भी फिदा होते व उस पर जोश मजिर पर जला देते थे पुश्मन के बरमन की क्नम रखकर, हटाते ही न थे पीछे कभी धार्गकदम रखकर ॥ 3 ॥ यही नीडर रहे तो हो चुका विस्तार वेदो का इन्हे तो खून करना है दयानन्द नी उम्मीदो का। ऋषि विस्मत से ध्रमर भारत में फिर एक बार घ्रा जाय, ह्यो ग्रनवर मुनाफिर ग्राके फिर एक बार दिखलाये। हमारे इस दम्भ को देवे और इन भाजार आर जाये, तो सब कहता हूँ गैरम विलाही मौस मर जाय। पदो की लालसा से रोज लडत ग्रीर लडाते हैं भ्रवायें ज्ञामका की हैं समर सेवक कहाने है ॥ 4 ॥ यही लीडर रहे तो हो चुका विस्तार वेदो का इन्हें तो खन करना है दयानन्द की उम्मीदो का।

-- राक्षासिह

### धर्मपरिवर्तन के लिए विदेशी सहायता

इन नब्य की पृष्टि म धनेको प्रमासा भिल कुछे हैं कि विभिन्न विधनी सराजन प्रपत्ती नयाकरित समाज सेवा सम्बन्धी योजनामी की बाढ़ में प्राप्त विदेशी घन (महायता) का 90 प्रतिकृत भाग धमपरिवसन तथा बन्य राष्ट्र विरोधी काश्री मध्य करने हैं।

र्तामननाड का मीनाशीपुरम हो या उत्तरप्रदेश का घाजमण्ड विहार व राजम्यान का शादिवांसी बहुत क्षेत्र हो वा फिर समुद्रनटीय प्रवेश गोआ — दम पैस की नानी खात्रा को ग्राथ देख सकत है।

मानवता कं नाम पर सबैध बच्चों के तबाकषित 'पवित्र यहाँ हैं मानवता कं नां 'हह द्वारा हैंगाई-प्रचारका की एक नई पीछ तैयार करते हैं। मिननी मेन्याना रा खेला-ध्रम पत्र कहा है। इस्ति मेना का एक ही उद्देश्य है-प्रमानिवतन । और क्षमपीय्वतंत्र का अर्थ है राष्ट्रीयता परिवर्तन । इतका तथ्य है -प्रारम्नान । और अपनी इस तथ्य की प्राप्ति हेतु मानव सेवा' क मुद्यांत्र वा प्रयोग कर रह है।

ँक्ष्या नैन्यिय पौर इ.सी. के हत्यारे कभी मानवता के पूजारी हो सकते हैं ? प्राप्त में आप पैकान-डालर का उपयोग धर्मपरिवर्तन और साम्प्रदायिक दमों के लिये होता है। इसके अनेको प्रमाण है। भेग्ठ का नो अभी झाल ही का मामना है।

अभी गत 25 नवस्वर को केन्द्रीय मह राज्य मंत्री की विश्वस्वराम ने लोकस्या म बताया कि वत् 1986 म विभिन्न साराजी ने 434 कराई कराये विश्वमी सहाजान के रूप में प्रारत्न किये । तितारी विश्वास अन्तरीम है यह ! विश्वके अधिकाल भाग का दुल्योन राष्ट्रविरोधी कृत्यों में होता है।

सरकार वन्धुन्वित को जानती है, समक्षती है। समय-समय पर इस विवेशी सहायता के दुरुपयो सन्दर्भी प्रयास की उनके सम्बुख प्रस्तुन किए बए हैं। परन्तु बोटो की राजनीति स कभी धर्म तिन्येवता की दुहाई देने बानी सरकार सब कुछ जानत हुए भी इस विवय ये कोई भी उचित कार्रवाई नहीं कना चाहनी।

नहा करना चहुना। माना वहुन्यति का कथन हु—यांक्रव्यसन पूर्व सात्या व्यसन प्रतीकार कामम् (चतुर्व स 26) सर्वाच् जासको को सात्री सापदायो का मान होना चाहिए, उनके निराकरण की सामर्थ्य पी उसमे होनी चाहिए। किन्तु बेद हैं सिनाम सत्ताप्तारियों ने उपमुक्त पुल्तों का सर्वया प्राथा हरियोंचर हो 'खा है।

—वीरेन्द्र सार्व —वीरेन्द्र सार्व

## विधयः पुर्निवद्याह बेदोक्त

र्यः क्रम्लाससिह

सक्ति विवशः कुलिकांह की परन्य स्वावन प्राचीन है तमांच क्वका स्वित्न अकार स्वतः सामय बुद्धों से ही या सन्त निक्कं में सर्वात् साह्यान, सन्तिय तथा मैं यो में विवोचकर निमोण की व्यवस्था का स्वित्त सामान सा। इस तान्यक में सहींद स्वाधन्त ने पूना प्रमधन के व्यवहाँ स्वयम्त में कहा है कि 'विवाद विवाद का प्रचार केवल सुद्धों से सा। द्वित्ते सर्वात स्वावन, स्वीत्त तथा वैश्वों में नियोच का प्रमार का 'हतान होने पर ची विकास पुननिवाद तथी के किए साम्यान नेदोक्त स्वयस्था की विकास उत्तेव हम इसी सेवा में प्रोचे करिं।

विमना पूर्वाचनाष्ट्र का क्षत्रिकार सक्षेत्रुकं तथा बुद्धिसम्ब-

भीना कि हुन मनन समान से व्यानहारिक क्ये में देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति समने परदी के प्रकार प्राप्त हैं कि प्रत्येक व्यक्ति समने परदी के प्रकार हैं। इसमें कियी प्रकार का कोई दिगीय की मही करना है। उसने कान किया है। उसने प्रकार है। उसने क्या है। उसने प्रत्ये के मरणोपरान्त कुपरा विवाह विवाह करने का मिक्कार पृत्यो समन ही प्राप्त होता है कियु समान में ऐसा व्यावहारिक क्ये में देखने में बहुत ही कम साता है। परदेखर में इस हिन्द मंदान है। उसने प्रत्येक्तर में इस हिन्द में स्थानि वह न्यान को एस प्रत्येक्तर में इस हिन्द में स्थानी वाला में है। उसने प्रवयान नाम मात्रा में को भी मही है। इसी विद्यं संस्थानी वालाम्य में पुना प्रवयान में कहा है कि अब पूर्वो को पूर्वीवयाह करने की सात्रा से जाने तो किया को इसरे विवाह के करने नयो रोका वाले। ' इस महिंक में सुर्वीक के सात्रार पर प्रत्येक स्थी को स्वयति के प्रत्येवराज विद्यं होते हैं। इसी विवाह करने का पृत्यो की तरह समान सिकार प्राप्त होता है वो कि तर्क पूर्वे एक इतिवास है।

बहैंगान तमय में सामाजिक व्यवस्था ऐसी करियंच पर बानक हो गयी है कि पुरुष की एक पत्नी की मुस्तु के पश्चात दूसरी पत्नी दया उसके भी दिवशत हो वाने पर शीवरी पत्नी भी करने का सिकार है। इस प्रकार वह पुरुष क्षपनी इच्छानुसार पुनर्वकाह करके सनेक रिमर्दा प्राप्त कर सकता है बबकि करने के लिए यह व्यवस्था नमान के सिकानुनी टेकेवारों ने मही प्रवास की है। को कि दनी बाति के प्रति चौर क्रम्याद है। ब्राप्त है। वैद्या कि महिन पूना प्रवक्त के हुए हैं 'पुरुष सम्मा द्वानुनार विज्ञानी महि जनती दिश्यों कर सकता है। देस, काल पान और सारण का कोई बच्छा नहीं 'पहा। वस्त्र बहु बच्चान कही ' क्षा वह ब्रव्यं नहीं 'इश्याल हु स्व ब्याय एक ब्रव्यं कुर्यं के किमाज करने के लिए स्वामी बी ने स्थि तिला त्या

सहर्षि कालक से सक्य में विकासकों की शहुवावका भी भीर उनके कर काम के व्यक्ति का नवहार सम्बद्ध गई का उन्होंने इस निवास करना वृद्धि के मारण मो बोजने ना प्रयास दिया और दह पाया कि देस में बच्च विवास की साम प्रयास है प्रीय स्थाप कि देस में बच्च विवास का साम कर की विकास की सक्या काम के कि विवास के प्रयास के कि विवास की सक्या की क्या कमी दल्ली म होती । इस निर उन्होंने बालविवाह नी रोक्स वाला कि क्या कमी दल्ली म होती । इस निर उन्होंने बालविवाह नी रोक्स वाला विवास को क्या कमी दल्ली म होती । इस निर उन्होंने बालविवाह नी रोक्स वाला विवास को क्या कमी दल्ली का साम का निवास का नुक्त पार किया और विदेश का किया की स्थापना की हिसा समान अधिकार आदि का क्या करने की स्थापना की हिसा समान अधिकार आदि का क्या करने की स्थापना स्थापना स्थापना की स्थापना स्था

श्वीं का मृतपति के लाय असकर भस्य होना वैदाविकास्त्र विकश्व-

कार्यतीय सस्तृति में श्वी को बहुत ही सम्मान प्रवान किया बना है। वीता कि महुम्मुति में रहा बया है कि वहीं श्वी की पूजा होती है अवीत् रक्तार होता है जेवों पुक्ष देवू प्रवान त्या के सामन्त्र के की का करते हैं। कियु जिल पर में श्वियों का स्कार नहीं होता वहीं कर किया निप्पत्न हो स्वती हैं। और वित्त वार में सम्बा कुप में श्वी सोचानुत होकर हु वा पाती है स्क्रु जीता कर किया है महात है। वित्त कुत में श्वी सामन्य उत्ताह और सम्बन्धान के अर्थ (दूपण) रहती हैं यह कुप सर्व महारा एहता है। हत स्क्रु-स्वामके की सर्वमा। सामे पुष्मों मा साहिए कि सरकार सौर उत्ताव के सम्बन्धन की सर्वमा। सामे पुष्मों मा साहिए कि सरकार सौर उत्ताव के इस प्रकार वहीं महन्ति मनु ने दिवयों को अपूर्व सम्मान प्रदास दिया है वहीं वर्तमान समय में उन्हें अपमानित कर तथा अमानवीयता के द्वारा असिन से सू चू कर जनाकर घरनी भूत दिवा या रहा है। यह एक महान् दुर्भाग्य एक धननक का सूचक है। वैदिक्ष बाद सक में नहीं सी किनी ऋषि मुनि ने यह स्ववद्या नहीं वी है कि पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्री को उसके साथ जिसा में बाह कर देना चाहिए। इसके विपरीत वेदादि धास्त्रों में मंत्रीन मृत्यु के उपरान्त्य सदि वह स्त्री चाहे तो पूर्नाविवाह अथवा नियोग कर सकती है।

वचिप सायगाचार्य ने प्रचवनेद 18/3/1 के खाझार पर सती प्रचा नो वेदिक छिद्ध करने का प्रवास किया है तथापि यह उनको खोचतानी ही है। यज में कहीं सती होने का उल्लेख नहीं है। सत्र निम्न प्रकार है—

इम नारी पतिलोक वर्णाना निम्बन्ध उप स्वा मत्य प्रेतम । वर्ने पुरालामनुपाल यन्ती तस्म प्रजा प्रविक्व चेह क्षेत्रि ॥ अपन्य 18/3/।

उपयुक्त मन्य का क्षयं करते हुग प शंककरए। वास विवेदी ने लिखा है कि है मनुष्यी रे यह नारी पति के लोक को चाहती हुई और अपन पुरावन सर्थ के निरन्तर पालती हुई मरे हुए पति को स्कुति करती हुई पुक्को मान्य होकी है। उस स्वी को सलान और सल सही परधारण रूर।

हस नव को महर्म बयानन ने — व था जूल में नियोग प्रकरण ने व्यावकान निया है। इस प्रकार समय नेद 18/3/2 थो कि व्यवित्त पठ नेव से क 19/18/8 में साना है। इस गण का व्यावकान सरपार्थ पठ के चतुर्क समस्तान तथा कर यो हूं ने नियोग प्रकरण ने किया है। इस को ने नहीं भी न्त्री को पति के साथ बसने का उस्लेख नहीं है। अपर्व वेद 18/3/2 का नक तो विश्वास न्त्री को लोक नोक ने रहने का उपयेश से एए हैं चेता कि सामसामाय ने निवा है कि मृत पति के पान की हुई विश्वास स्त्री निवा दिवान पत्र नो उसे उठा कर लीक नोक में के साथे।

च 10/18/8 के माध्य में साम्युलावाय ने प्रास्कतामन गृह्यमुत्र का विनियोग दिवाते हुए लिखा है कि जो विध्या त्यों पति के पास साव्य प्रयक्त का निर्मय प्रयवा निक्चय करके नेटी हुई है उसे उसका देवर, प्रयवा प्रयक्त कोई मृत्य मार्थि उठाकर जीवनोक प्रवाह पुत्र पीत्रों वाले पर में है झावे।

एक प्रकार सायाएं ने सहीं सम्बन्धित 18/3/1 में नाती के पत्न को समर्थन प्रदान करने का प्रदान किया नहीं मह 10/18/8 तथा समय 18/3/3 में उसके दिल्क साथम निवकर सती के पत्न को त्यानना पड़ा सम्बन्धित उस का सम्बन्ध किया है।

#### विषया का पुर्शिकाह बेदोक्त-

डा रामनाथ वेदालकार ने अपने लेख से अवदवेद के एक मत्र को उक्त करते हुए विश्ववा के पुनर्विवाह को वेदोक्त दर्शावा है। मत्र निस्न प्रकार है—-

ज्ञपस्य युर्वति नीयमाना बीका मृतेस्य परिकृतियमानम् । धन्येय यह तमसा प्राकृतासीद्व

प्राचती समाचिमनक तदेनायु॥ प्रचर्व देद 18/3/3

भन का वार्ष करते हुए उन्होंने विकाद है कि जैने निश्चा पुत्ती को वीतिय मृतों के बीच के प्रवाह समझान मुनि से के जायो जाती हुई व्या पुनांच्याह की वाती हुई देखा है। क्यों नि यह पति विरह जन्य हुंच क्य बीर बन्धकर से प्रावृत्त की, इस कारण रहे पूर्व पत्तीत्व से हटाकर हुताप पत्तीत्व सने प्रान्त करा दिवा है। इस प्रकार नेय ने विश्वापों के बुक्यक तथा संस्मानित क्योंचा करते के निश् धारी पुनांच्याह के निश् सनुमोवन किया नमा है। मह तथी सनर्थ कर पत्र भी पत्र नेदों ने करकत्वा नहीं होता है। यहा—व्यानक सन्तेय सन्तेय स्वास्तेय

## 'वैज्ञानिकों की दृष्टि में ईश्वरीय अस्तित्व

डा. देवसम्बं वेदासंकार 👑

स्वातव जाति का इतिहास मानो सुब-बालि एवं वरसहरू की प्राप्ति के प्रवासो का इतिहास है। कोई वी मनुष्य वपनी वर्तमान स्थिति से पूर्णतयां सनुष्ट नहीं खुना, फलत सच्ची सुख जातित को पाने के तिए बनवरत प्रयत्न करता पहुंचा है। यह सालि प्राप्ति की भावना ही मनुष्य को स्थातिनय इच्छापो व महत्त्वकालाओं से क्रवर उठकर कुछ प्रवास्थ कर्य करने को समेरित करती है। इसी सबुम्बास से सबस्न मनुष्य बन्ततीयस्था महान् कर्न पूज, कर्मकोत परमास्थ-सस्य को प्राप्त कर सेता है। परमास्था स्वय तो नित्त्वर कर्म-त्य पहुता ही है साब ही स्वर्षक अधिक मी है। प्रनाद महान दार्शकिक बरस्तु ने ईस्वर को 'प्रायु-प्रयुक्त माना है। प्रभु की इसमें संपत्ता से मनुष्य कर्मा-कथी मानव वीवन, एवं इस दृष्टमावा वजन् तथा इसमें संपत्त तथा की वर्षम्या के पिए खासुक हो उठता है।

मानद जीवन एव विस्व की प्रहेसियों की सुलकाने की प्रक्रिया ने हम इसके नियामक प्रभू को विस्मृत कर देते हैं। यह ठीफ उसी प्रकार से जैसे कि चैतन्य शक्ति को मुलाते हुए हम माया तरीर का विक्लेवरा करें। यत सुध्टि को माननः भीर परमात्मा को नकारना बुरायह मात्र है। आधुनिक युव मे वैज्ञानिको एव दार्शनिको की भी स्पष्ट उद्योवस्था है कि इस समग्रमृष्टि की सोद्देश्य रचना किसी बाज्यात्मिक समा के द्वारा की गई है। सकल चराचर मे एक ऐसी मध्यात्मिक सक्ति है जिसकी चेतना का प्रवाह एवं नैरन्तर्ग सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है। इस्छैण्ड के जेम्सवार्ड एव समेरिका के सी ए स्ट्रोग का कवन है कि परमात्म-तत्त्व ही विक्त की मूलसूतसूति है। सेकिन इस तब्य का निक्परा तो सुष्टि के प्रारम्भ मे ही भारतीय मनीषियो ने अपनी तप पूता बाएरि से कर दिया था। इंजीपनिषद् के प्रथम मत्र ने धासुनिक वैक्रानिको की भाति सुस्पब्ट कथन गाता है —' वूँ शावास्विमद सबँ वरिकञ्च-जनत्था जगत" सर्थात् इस सकल चराचर जगत् मे वह चैतथ्य बहा तत्त्व समाहित है। समस्त विशेषों में एक ही सत्ता सामान्य बनुस्यून है। स्थ्न मृष्टि के भीतर एक सूक्ष्म सला न्याप्त है, यह नृष्टि ईश्वर का बावास स्वान है सारा जीवन, सारा अवत् ईक्बरमब है, मबलमय है। झान्दोस्य उपनिषद् मे भी जरीर को ब्रह्मपुर सर्वातृ बहाका घर बहा है।

नेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम ऋषियों की ऋतभाषा एवं प्रशा प्रसुत बार्गी का तब तक सम्मान नहीं करते जब तक कोई विदेशी उसकी प्रशासा नहीं कर देता। यह तो सस्य है कि हमें सस्य की बहुता करने के लिए सर्देश तत्पर रहना चाहिये कडिवादी नहीं होना चाहिये तुवापि पाश्वात्यो की प्रत्येक बात को वैश्वानिक सत्य मानकर श्रन्थानुकरण करना मुखेता है यह एक प्रकार की मानसिक दासता ही है कि हम पाश्चात्यों द्वारा प्रमाखित क्तिये आने पर अपने नौरन की पहिचानते हैं। जब जापनहाकर आदि ने उपनिषदो की धदभुतता एव अमूल्यता का कथन किया, एमरसन ने नीता की नावभीमता का घोष किया-तब हमने वो धनुभव किया हमारे उपनिषद् ग्रम्थ महान श्राम राशि है। यह हमारे लिए शोधनीय नही है। यह प्राज इस बात की भावत्यकता है कि हम प्रपने सब्बन्धों का भ्रष्ट्यक करें। हैतिरीय उपनिषद् की उद्योषणा है- 'बतो वा इमानि भूतानि बायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत् प्रवन्त्यभि सर्विवन्ति तद विजिक्कासस्य तद् बहुः' ग्रथीतु बह्य से ही नमस्त प्राएगि उत्पन्न होते हैं भीर उसी में विसीन हो जाते उसी की जानो वही बहा है। इसी तच्य को प्रेसीडेन्ट ईसिवट इस रूप मे लिखते हैं कि ईश्वर नवंत्र विश्वमान जास्वत क्षक्ति है जो ज्ञानमय है और समस्त मृष्टि को प्रतिपत संचानित करता है।

श्रव नो ग्राने ग्राने शैकानिक लोग जिन्हे श्रनीश्वरदायी गाना जाता है वे भी ईक्वरीय तता को तक की कवौदी में स्वतंतर स्वीकार करते लगे हैं। उनके मत वे परमाणुशों को व्यवस्थित होकर श्रणु बनने में श्रीर श्रमुखों से जीवित ने निकारों उनसे मानव पर्वस्त उच्च उच्चतर उच्चतत श्रीवित देश बनने तक प्रत्येक स्वर पर एक युवानास्यक साध्यस के श्रीस्तव को स्वीकार करता

प्राथमक है। विकास एक जुबनात्मक प्रक्रिया है निवर्षे जुब्धवास्थित एव स्वस्टित करने तथा गूर्व कमा देने बासा एक बात्मस स्वचितिहत है। उन्होंकों के दिवा निवेंकन एक बारस्थरिक तह्योग नैशकरणे वासी एक गून कार्बित है। वैज्ञानिक संब्द से प्रधाने उन्हों के क्या में परिखत हो सकता है उन्हों ही क्रियान्स्थन का कारख होती है, लेकिन नह क्यां क्या है ? इसे दिवस निवेंब कीन करता है ? वैज्ञानिक लोच इसे रहस्यक्य क्या बाध्यास्थन मानते हैं। सारे जीविक कनत के जुक ने साध्यास्थिक उन्हों निव्यान है निवें कोर्स सन्पुत वैयो तस्य दिवा प्रयान करता है। इस पाति वैज्ञानिक, वार्वनिक प्र दिवक क्ष्यिक्स जीनों एक ही निक्कों पर या जाते हैं कि ईस्वर की शृद्धि सरकता ही जुल बाता है धार यही इसे मुस्थिर एक स्थानित भी करती है।

इस स्थूल जनत् का संचालक, नियामक परमधिता परनारना ही है---इस सस्य की धनुमृति के लिए ननुष्य को योग की भागा ने समाधिस्य होना पश्रें ना । निविकल्पक समाधि वा प्रसप्रशास समाधि द्वारा ही बाच्यात्मप्रसाद धर्यातु सकस पदार्थों का यथातथ्य ज्ञान उदित होता है। भीर इस ज्ञान की उपलब्धि ऋतम्बरा प्रशा से होती है। यह भाष्यात्मिक तत्व या ईम्बर तत्त्व मनुष्य के जीवन की गति का कारल होते हुए भी अपरिमेय है। अन्तर्ज्ञान वा अन्तर किट तर्क से मिश्र है लेकिन सर्क का विरोधी नहीं । अहा तक सवस्य हो जाता है वहाँ धन्तवृध्दि सहायक होती है। इसीलिये तो कठों में कहा है-नैवा तकरें लगतिरापनेवा ' धर्यात चारमतस्य का ज्ञान सर्क द्वारा राजय नही होता। बीता का यह कथन "इन्त्रिवारिंग पराज्याह इन्त्रियेच्य पर मन । मनसस्तु परा युद्धि यौ बुद्धे परतस्तु स - यही बताता है कि इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि भीर बुद्धि से भी परे बास्य तस्य है। केनीपनिषद् के मत मे उस बहा तत्त्व तक न तो चक्षु, न बाखी और न ही यन पहुच शता है। कठी ये मश्र । बाता है "पराञ्चितानि व्यतृशाद् स्वयम्मूस्तस्मात् पराड पश्यति जान्तरात्मन् कश्चित्रीर प्रत्यकात्माननैकदा बुलचक्षुरमृतस्य मिच्छन् ' अर्थात् स्वयम्म् परमात्मा ने इन्तियों की बहिमुंख बनाया है बत यनुष्य बाहर की बोर ही देशता है, धन्दर झाल्या को नहीं देखपाता । कोई बुद्धिमान् पुरुष अमृतत्व की इच्छा करता हुना अपनी पशुरादि इन्द्रियो पर सँयम कर बात्मा को देख पाता है। इस भावि मन्दं व्हि वे ही परमतरन साकात्कार सथव है।

उपबुंक्त विश्वेषण से वहीं निकलों की सुधिर के प्राप्त ने वेश्वमानानु द्वारा उद्योगित तत्त्व को ही यमै सने सान का नीसामिक क्लीकार कर रहा है कि इस स्थयमान स्मृत जबत् का एक चैतन्य नियासक तत्त्व है। कि देखर के नाम से पुकारा जाता है। नीसामिको, दार्की रो एस पूर्व ऋषि नहींपयों का समयेत उपनोच है— "सहा वेद निक्यमित वरिष्टम्"।

#### "हैडनास्टर को सावस्थकता"

सहायता तथा शान्यता प्राप्त आर्थ उम्म शाव्यतिक विद्यालय के लिए यन ए /बी एवं तथा हायर जैकन्यरी कक्षाधों के विक्रण का पाण वर्ष का स्रृत्यस प्रवस जैकन्यरी विद्यालयों में प्रधानाव्यापक के पर पर कार्य करने के पाण वर्ष के धानुवारी योध्य प्रधानक तथा निकासना कार्य वयाची हिद्यालय प्रारंतिकक केवन 1720/- बेतन ग्रु बच्चा 1720-3350 वे धानुवस्त है। विल्लुत सविद्यालय भी, वार्य समाव्यवस्त है। विल्लुत सविद्यालय भी, वार्य समाव्यवस्त्र करें।

#### ऋषि बीधोत्सव मेला

हर वर्ष की बादि इस वर्ष की 15, 16, 17 करवरी 1988 को महाँव दशानन्य कन्म स्वान टकारा में ऋषि नेता मेंबाबा वा खा है। टकारा वाने वाले ऋषि शक्तों के कुम्बाल का वर्ष-शीवम का जबन्य टकारा ट्रस्ट की बोर के नि कुल्क किया चाता है।

## सनातन धमे का स्वरूप

- डॉ (श्रीमति) महारवेता चतुर्वेदी,

सम सनातन होता है जिसे झारए। किया बाता है धाररहा, इसमें धारपत अबा (मृत्युम्हित) सनातन सम ने सारे महुष्यों को एक समझ द्वारपत अबा (मृत्युम्हित) सनातन सम की विकान नहीं है। इसमा समझ है किसी को पीसा पहुचाना सनातन सम की विकान नहीं है। इसमा विकास है- यह सम्बन्ध मुचिन। सर्वाण सब मुखी रह नोई हुखी नहीं।

विचार वैनिध्य के कारण मनुष्य जाति मे धनक मत सम्प्रदाव भीर समझ्य बन गये। सनातन धम किलो का धहित नहीं चाहना। यथा मत्ति अपने सपने सपने के धनुमार लोकहिन के कम करते हुए ईववर मत्ति जन कस्यासामुख रहते हैं। मनातन धम ने ख्य मत सम्प्रदाय व धम वालो पर सम्याचार नहीं किया। धम पारलीकिक है उसके विचय मे एकात बात नहीं कही जा सकती। खानारिक कम सामाजिक कांव धीर व्यवहार समुचित होने वाहिये—

हिंदु हो अ्रमलमाँ हो या मिख हो कि रैमाई। मजहब अलग अलग हो मयण हें सभी भारी। मजहब अमग अलग हो मयर चाल एक हा। स्वदेश तरककी का

प्रयोक क्षम को मानन बाला स्वदेश प्रम एव मानव क्षम स अनुप्राणित होकर हो मबका भला कर सकता है।

बस नेक ख्यान हो।

एक बस्तुका स्वरूप भव मनुष्यों की बार्ख एकसा नहीं देख सक्ती। अत तब मनुष्यों का धार्मिक विवार ममान होना मनुष्य नहीं है। अत ममता नर का इव धाड कर सबना हिन करना वालिये। केवल मनात्मका साथ ही। मग है जिसने म किसी अन्त को "प्रान विसी को दिल्या और अन खाना और नाही किसी क पूजा म्यानो या कको की अन किया।

सहसूय के खय आने वाला मुलनान याता धनकेच्यी मनावन अस से क्षण गामाविन क्षा था न्यके अनु ार क्या हुनाम ही तन्ह डिटुबा म बी धनक कर ते हैं किन्तु कोई प्राप्त स नवता धनक कर ते हैं किन्तु कोई प्राप्त स नवता सही है। जैन बौढ बाव क क्ता तन सम्ब्रान्य धायसमाजी धीर पी । पिछक सब सप्ती-धपनी बुढि पर डा। वास करन है नोई विरोध नहीं होता।

विन्क ननातन क्षम समार क सभी क्षमों का लोत है। सनातन क्षम के भ्रमुसार स्थारह क्षम तथा स्थारह प्रथम है। क्षम के नज नकाग है— स्वित लगा यम भ्रस्तय शीच निव्य निव्य की विद्या सार तथा भ्रम्नोय

> वनि क्षमा दमोऽनय शीच मिद्रिय निव्रह । श्री विका सत्यमकोश्री दक्षक धम लक्षलम ॥ (मनुमति)

ग्याग्हवाधम है ग्रहिमा ।

#### इहिंसा का लक्षरण --

धाहिमा सत्यास्त्रेय ब्रह्मभविपिरियहा यमा । योग न्वन 2/30 केवल पत्तु धावि न मान्ना हा श्रीहता नही है प्रवित्तु वर पान का नाम प्रहिसा है सबभा सबदा सब्धूनानामनिषिद्राह धाहिसा पा (योग दमन)

- # अति---धम का त्याय कभी न कामा चाहिये ।
- अभा— सहनशिक्तः। किन्तु धसामभ्य का नाम क्षमा नहीं है।
- 🗱 दम-सन की वित्तयों का निव्नह करना ही दम है।
- 🗱 अस्तेय—कान्नभिन्नाय कोरी यागस है।
- मीच—वो प्रकार का है शारी कि घोर मानिक ।
- # डडिय निम्रह्—सारी इदियो को स्थाय पुत्रकवस में रखना।

- # धी--बुद्धि बुद्धि बलवती हो ऐस नाय करने चाहिय।
- 🗱 विद्या--यशय दशन ही विद्या है।
- सय—तान प्रशार का है साथ भाव संग्रं अचन नका साथ किया ।
   मवान्तरम तद व हाम ता यम
- अर्ोहृत्य मही बही वचनो संप्रकाशित कर दही संप्रहै।
- अभ अनाध--क्रीध के आधीन होन से अनेक अनथ हात ह अन उसका त्थाग करना चाहित।

#### थम के तीन स्कन्ध

श्रयो सम स्वाधा यज्ञोऽन्ययनतानमिति (छात्रोग्य उप) स्रशात सम के तीन स्काध है—यज्ञ स्राययन दान।

- यक्ष-यक्ष-यक्ष स वायु सुद्धि होनी है जिसस प्रचर भ्रानविड नानी है— यक्षन यक्षमप्रजात देवा (ऋषेत्र
- 🗱 ब्राध्ययन— मध्यन रूप संबाजक बालिकामा को पटाना।
- # दान-विधावदि के लिये द्रव्य व्यय करना कवा-कौशल का उनिन के रियं

**छन लगाया जाय** नथानी नो नहायता कपना द।न न

स्था के इन स्थारह नकाएं। को बारण कन नाला ही प्राप्ति है कह वह किसी देव जानि एवं प्रमंका हो पशुपनी श्रीक मकोड स्वकावन ही प्रपंते कत्तक्य का पालन करने हैं। नन्दर उन्हें प्राप्ति लेकर प्रपक्त नांक करा लेता है। बन्दर स्वयं प्रपन नाटकी व क्यों की निवाकर पीन नुद्धि कमा सकना। बन प्रपन केंद्र स्वयं नहां निवा सकना सानव प्रपन नुद्धि तीम ले से नाना प्रकार का किंद्र मंकना सक धीर रचना नाक का कर सवता है। बेटों न द्यादि मुस्टि में हा नना कीवल का उपनेश दिया है—

भदी बाहर प्रवत्ति सुदोपारे अपूरूपम (वे*न*)

है सनुष्य बो यह काठ समुन के विभारे तर रहा है "सस उन बना प्रत्नक कला नौधन धीर विज्ञान वन्ते हो सिखाय। एव एव वरख काथ विक्यार सब स्थास भारत में हुहधा ज्ञान धार विज्ञान क सुना क ब्याख्या विवना भीर पानी समुद्ध हा वर्गमन्त्र है। इसी प्रकार सानि धीर सुष्यवस्था वर प्रसार भी सानव वर सक्टा है

०नापक धम की परिप्राचा में मानव मान का काम क्षत्र समाहित है। ससार से धनानि का नारणा धम के किंगी चलन है मनातन धम के स्वास्थ्य की समझना ही पर्याप्त नहीं अधिषु उने धावरणा म नालना सा आवश्यक है जिससे प्राक्ती मात्र का निंत मन्मक है व ही ज्ञानन स्ववस्था धानरिक दुर्घावनाओं को समाप्त नहीं कर सकनी विक मनातन धम के प्रसार से ही मानव का घन बनन प्री विक्तान गातिस्य नास्थि रिक्त

पता प्रोफसम । यानी श्यासगज वरन

## पाठको हे निवेदन

#### सबस्यता जुल्क शोध्र भेजें

हमारे धनेक सन्स्थान प्रभीनक प्रथना जापक गृग्नाभवा है। ऐसे मदस्य महानुभावों से दिनम्र निवेन्त है कि पत्र वा बार्णि युक्त मात्र 15/इ छनानेचा बाा शेख्र श्रवान कप्टनर नारि हम साधिवासमध्यासे मुक्त रोपत्र व निर्माप प्रशानन कप्रन प्रस्

सहयोगकी कामनामे।

\_ 1*07.6*70/4

ななななななな およみよ よとょ

39 नवन्वर, 19.

### वसुधेब कुटुम्बकम्

स्य विश्वविनिहितः प्रथमान समेतितः । हिम्बान प्राप्य बहुतः ।( 12 ।) (सामवेद, प्रयमान पर्वे)

हिम्बान प्राप्य बृह्त् († 12 ।) (सामः ऋषि —जमबन्ति = चलती फिरती ग्राग ।

(श्रमञ्) वह (निवर्षिण) दूरदर्शी (बृहत्) महान् (श्रान्यय) बम्बुत्य [की सहर] को (हिन्यान) शें रित करता हथा (हित) बाहे ठहरा ही हुगा है। (प्रमान) बहुत-सा (नवेतित) प्रतीत होता है।

सारम-वर्षन इसी सवान रच्च का वर्षन होता है। वही "विचर्षिण '-गर्वज्ञप्द हे जिय ने इव र " " क्ष्मुच्यक" 'श्री व्यक्ता तच्स ह हितकारी हो सकता है। ' रा ं प के जिस्त पर स्वार हुआ के उत्तर पर स्वार हुआ के उत्तर ना लिए के हैं है इस स्वार हुआ के उत्तर पर प्रवार हुआ के उत्तर करता है। उस सी वित और स्थित – बोनो ध्यस्थ की हैं हितद सी साईता काम करती रहतो है। वह सरोचकार में वह है, सच्च है। उसे उस के कार्य के पत्र वे के नित दिया स्वकता है ? वह पुरान भी राद्य मुख्य है उस का जीवन सम्बोधन का प्रचार है, सचार है। वह बहुती नवी है, बड़ा हुआ गानी नहीं। ''तवेस्वति तस्त कार्ति है, जिसान हो अप्त वाहि सोव है। अप्तता करते करते वह स्वस्त धनव हो नवा है, तिसान हो प्रचा है।

"स्वयम्" यह जन मर्थान् मैं । क्या मैं "विष्यंग्रि" है ? "हित  $^{\prime}$  है ? "विष्यंग्रि" है ? इस महान् बन्धुत्व की व्यापक लहर का साक्षि मैं हूं । इस सहस् कहर को सपनी नति–पति से हिमाता है ? प्रेरित करता  $_{0}$  ?

वेद कहताहै — हीं मेरे हृदय । तूमी तो "हाँ" या 'च" कह । वेद-शाली ! मेरे हृदय की वाली वन जा।

—-प चमूपति (सोम सरोवर मे)

### तूस्वयं हो सक्तिका भागार!

यह दूराशा है कि कोई साथ देगा । बाज लगनी बार्कि को पहचान साथी, पाँव फिल्मे तो न कोई हाथ देशा । निज पाँग रफ्डरप्रती-क्यियान साथी विक्व-विष्यों में चरण झाग बढ़े तो । जब चुनौती के चरण झागे बढ़ें ये— मृद्धि का कुण कुल्फका निजयाथ देशा। साथ तब होने दख्य तुकान साथी।

तुस्य ही निक्त का सामार है रें। समस्ता भवभीत अपरों के लिए है। सिन्नहित तुक में सुबन-सङ्गर है रें! आयमी तो काल को कर से लिए है। तुड़्या दिश्मात है निक ज्योति बोकर- मृत्युका अस्तिर्वेद ही होता नहीं— इनलिए पथ मं विरा सियार है रें। जिन्दिश हो मेंसे को वित्य लिए है। पता भोजपूर, मैनपूरी (उप्र)

#### दरदारी लाल सम्मानित

नई दिल्ली—12 नवस्वर, भारतीय वाल-विका परिषद हारा राष्ट्रीय वाल-विका सम्मेनन के प्रवसर पर ही ए बी कांत्रिक प्रवस्तकर्य समिति के सराठन सर्विक की दरवारी लाल का नई दिल्ली के सीरोपरेट सभावार में नावविक स्विनन्दन किया गया। उप राप्ट्रपित भी कर प्रवास का समारेह के मुख्य स्विषि थे। रज्ञा नवी की कृष्ट्य चन्त्रपत ने भी सम्मेनन की सवोधित किया।

—वनस्वात (विषेष समिन्तर)

#### यज्ञशाला स्थापित

भार्य ममान उदयपुर के तत्वाबधान में हिरन मगरी सेक्टर 4 उदयपुर में दिनाक 24-10-87 को एक यज्ञज्ञाला का प्रव्य उदय उन समारीह सहात्मा श्री भार्यमिक्तुवी महाराव के नेतृत्व में सम्पन्त हुमा। — मणी

पत्र बोसरी हैं---

### बवानम्ब के उत्तराधिकारी उत्तर नहीं देते

सेवलों के बनाव, प्रेय की बायाव्यानी वार्षि कारहों वे महर्षि वयकाव्य के जलों में व्यक्तिय स्थापन अविवास पढ़ गई है। उन्हें दूर करने का प्रसल्प विद्वास समय तमने पर करते रहें हैं। उन्हें पुर करने का प्रसल्प विद्वास समय तमने करते रहें हैं। उन्हें पुर के दे रिक्तिय माद के विद्वास करने क्या कि प्रतिकृति क्या की एक प्रतास के वाल कि कहा हुए कि परिकारिकों क्या की एक प्रतास के विता कि वह हुए करने के लिए कर का में के अव्यक्ति प्रकार के वाल के विद्वास कर का में के अव्यक्ति प्रकार वह काम होना की स्वाप्त की उत्तराविकारिकों सभा के तरावास्त्राम में होने से उत्तर प्रसास कि वह हो। मेरे प्रसास कर का में प्रकार कि वह हुए। यह वाल के के किए बार वार पत्र विवास के किए बार वार पत्र विवास के किए बार वार पत्र विवास के प्रतास के किए बार वार पत्र विवास के किए बार वार पत्र विवास के प्रतास का की वेठक के प्रस्तुत होने वे यह व्यक्ति बड़ेज में दिक्त हुई के क्या के विवास वार तरहत किया सांवास। 7 सामेत के कि किए बार कही विवास के किए वार कही विवास के किए की उत्तर की विवास के विवास के विवास के किया साम तर का का कर कर वार कि विवास के विवास की विवास के व

मही हुमातो क्यो नहीं। यहाँ पत्र का उत्तर देते की औपचारिकता क्योंक कही होता, यहां से और क्या बाजा हो सकती है ?---सबको

> ---विश्वानन्द सरस्वती बी--14/16 मारल टाउन, दिल्ली

### ब्रदर्शन का 'रामायस्' भारावाहिक

स्वय को बार्य कहने वाले दयानन्द के चल्को की दूरदर्शन बारःवाहिक 'रामावरा' के प्रति बांति बास्ता देखकर मेरे नन वे बास्त्रवं एव विधाद के सम्मितित चल्क उत्पन्न होते हैं

जिस पौरास्तिक सन्तीष्टिक चमत्कारों की रामायस वा राजचरित मानस की बालोचना मार्वसमान के नच के की बाती हैं, उन्हीं चमत्कारों से मूक्त रामायस को वे जीन कृति श्रद्धा साथ के दूरवर्शन पर वेस्करे हैं।

स्मरण रखिए । रामानन्द सावर की रामायख 'वैदिक रामायख' मही है, पौराणिक रामायख है।

ऋषि ने हमें हिन्दू से पून 'आवं' बनावा वा ! पौराणिक क्यों से भरी रामायकु के प्रति हमारी आस्था से लगता है कि सायद हम पून हिन्दू बन गए हैं।

— नवीन कुमार सर्मा 487/24, सब्जी मडी, केसरकज, स्वयंदेर ।

#### द्यार्यसमाज की दिवराला परयात्रा

महोदय.

समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों के अनुसार स्वामी वानिनेश के नेतृत्व में सती प्रचा के विरोध में धार्य समाव डारा विस्ली से विवराना तथा पदयात्रा का प्रायोजन निया वा 'रहा है।

मेरे निजी विचार में यह पदयात्रा सस्ती पन्सिसिटी बटोरने का एक साधन मात्र है, 'साप निकल जाने पर सकीर पीटने से क्या लाज ?'

धास्त्रिर के जीव जूदकी समारोह रोकने क्यो वए ?

क्या में झाप (भी बीरेन्ड़) जैसे तेज-तरीर सम्पादक से इस सवर्ण में सम्पादकीय टिप्पसी की झाल. रखू ?

---मांगेराम सर्मा देहरादून (उप)

थी रतनलाल गर्ग द्वारा बार्य प्रिण्टर्स अजमेर से मुद्रित कराकर प्रकाशक रासासिह ने बार्यसमाज सबन, केसरनव अजमेर से प्रकासित किया।

#### वेदो-सिलोधर्म बुलम वेद ही समस्त धर्म का मूल है।

क्षोडने में सर्वेदा उच्चत रहना चाहिए भड़चि दवानन्द

वयानन्दास्य • 162

स्ष्टि सम्बत 1972949087 वर्ष: 3 मगलवार, 15 दिसम्बर, 1987

पाक्षिक पत्र

"मार्य हमारा नाम हैं, वेद हमारा धर्म। मोदन हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ॥"

स्रभय मित्रादभयम् अभित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात ।

कृष्वस्तोविश्वमार्थमा सकल जगतुको आयं बनाए

हमारा उद्वेश्य :

समाज की वर्तमान एवं मविष्य में पैदा होने बाली समस्याधीं को दव्हिगत रखते हुए प्रायसमांज का पुनर्गठन करना है।

पौष कु 9 सवत 2044

जक 20 प स-43338/84 II अभय नक्तमभय दिवा न सर्वा आशा सम सित्र भवन्त ॥ वार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

## विवकानन्द - दयानन्द

स्वामी विद्यानम्य तरस्वती विवेकातन्य के अनुसार मैक्समूलर-

'धार्य जगत' के 30 धगस्त 1987 को प्रकाशित संस्कृत विशेषाक के प्रारम्भ ने 'ब्रह्मदादिन्' ने सिक्षे स्वामी विवेकानन्य के एक लेख का कुछ बग प्रभाषित हुआ है। स्थामी विवेकानन्य ने लिखा है---

"मैक्समूलर का भाग्त पर क्तिना अनुराय है । येरा अनुराग यदि उसका एक प्रतिकत भी होता हो मैं प्रपने को खन्य मानता। मैने उनसे कहा - 'ब्राप भारत कव का पहे हैं ? शारतवासियो की जिन्तन-राश्चिको आपने भोगो के सामने बचार्थ रूप मे उपस्थित किया है।" बुद्ध ऋवि का मुख्य उज्ज्वल हो बठा ।

इस लेखा से स्पष्ट है कि स्थामी

i अविवे।

2 उसने भारत की चिन्तनराणि

को यचाय रूप म उपस्थित किया।

3 उनका भारत पर इतना चनुराग था कि उसका एक प्रतिशत पाकर भी विवेकानन्द भ्रपने भापकी धन्य मानते ।

यह विवेकानस्य का कहना है परन्तु स्वय मैक्समूलर भा अपने विषय में क्या विचार वा यह उसके निय्न मेखा से पता चलता है---

मैक्समूलर के शब्दों में A large number of Vedic hymns are childish in the extreme, dedious, low and common place ' (Chips from a German workshop, Ed 1866 म 27) धर्यात वैदिक सुक्तो की वही सख्या विल्कुल बंचकानी, जटिल निकृष्ट भीर माम्ली है।

जिस उद्देश्य मे मैक्समूल ने वेदो का धनुवाद किया, उसके विषय में उसने भपनी पत्नी को लिखा-

This edition of mine and the translation of the Veda will, hereafter, tell to a great extent on the fate of India It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years" (Life and Letters of F Maxmuellar, Vol I, chap XV, p 34)

सर्थाः नेरायह सस्करण सीर वंदो का सनुवाद भागत के भाग्य को दर तक प्रभावित करेगा (यह उनके धम का मूल है और उन्ह (भारतीय) को) यह दिखाना कि यह मूल कैसा है गत तीन हजार बयों में इस से उत्पन्न होन बाली सब बातो को मुनसहित उचाह फैंकने का प्रकार चपाय है।

भारत सचिव (Secretary of State for India) के नाम 16 दिसम्बर 1868 का लिखे प्रपने पत्र स मैक्सम्लर ने लिखा---

शेष (पृष्ठ 6 पर)

विवराला प्रवातियो पर लाठी प्रहार से बाय जगत मे नारी रोव

### राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के बरिष्ठ उप-प्रधान आचार्य दत्तात्रेयजी आर्य द्वारा विरोध ध्यक्त

आर्यसमाज के वरिष्ठ नेता तथा हरियाएगा के भूप शिक्षा मन्त्री स्वामी अस्तिवेश के नेतरव में सती प्रचा तथा नारी उत्पीदन के बिरोध में ग्रायोजित पद यात्रा की प्रचानक दिवशाला से 25 भील दरी पर ही रोक दिवे जाने तथा महिलाओ और बच्चो सहित वह बाजियो पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज के समाचार से समस्त मार्य खनत मे रोच की लहर सी फैल गई है। स्थामी भग्निवेश द्वारा 144 धाराका उल्लंघन कर दिवरालाकी सीमाने प्रदेश न करने तथा सगभग 100 मार्थ सन्धासियों के नेतृत्व में मायोजित इस अभियान में सम्मिलित लोगो द्वारा पूर्ण शान्ति बनाये रखने के आखासन के बाबजद सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम उसकी निर्वलता और श्रक्षमताका ज्वलन्त चदाहरए। है। एक और सरकार सनी जैसे क्षमानवीय कार्य के विरुद्ध कानून बनाती है और दूसरी मीर इस प्रकार के धार्मिक अध विश्वासों के विष्ठ जनमत जागृत करने के प्रयत्न को बलपूर्वक रोकती है यह दोनो परस्पर विरोधी नीतिया इस बात का सबूत है कि वास्तव मे भपने राजनैतिक स्वार्थ की प्रति के लिये सत्ताधारी दल केवल दिखाने के लिये ही सती बादि करी-तियो का निराकरण करने का दावा मात्र करती है।

कानन भीर व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व सरकार पर है इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जो लोग इस प्रकार की पदयात्रा जैसे स्रपते कानूनी अधिकार का उपयोग करते है उसमे बाधा पहुँचाने बाले सस्यों को रोका जाये और यदि वे हिंसा और तनाव उत्पन्न करते हैं सो उनके विरुद्ध कडी कार्यवाही की जाये किन्तु भार्य समाज

जैसे धार्मिक बौर नामाजिक सुधार अनन्दोलन द्वारा स्वय सरकार की तथा कथित सती विरोधी नीति के समर्थन में स्नायोजिन जन जागरण के इस धामियान का कुछ मुट्टी भर सती समर्थक लोगो ढारा विरोध किए जाने के कारण शानि और व्यवस्था के नाम पर इस प्रकार का प्रतिबंध स्पष्ट रूप से सती प्रवा के समर्थकों के लिये खुला प्रोत्साहन है। इसका परिखाम यह होगा कि कुछ ग्रसामाजिक तया विरोधी तत्व हिंसा और बाशाति का महारा लेकर किसी भी समाज सुधार के कार्यको रोकने में समर्थहोगी। इस पद यात्रा मे भार्यसमाज अजमेर की बोर से भी 51 व्यक्तियों का एक जल्ह्या सम्मिलित है। पुलिम द्वारा पदयात्रियो पर किये गए लाठियो के प्रहार से अपजमेर में इन यात्रियों के सम्बन्धी ही नहीं अन्य लोगों से भी विन्ताभीर रोप व्याप्त है। भार्यसमाज ग्रजमेर के प्रधान तथा भार्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उप प्रधान एव मार्वदेशिक आर्थ प्रतिनिधि सभा के अतरग सदस्य छाचार्य दत्तात्रय जी आय के पदयात्रियों को इस प्रकार रोके जाने और उन पर लाठीचार्ज किये जाने के विरुद्ध एक व्यक्तव्य जारी किया है और राज्य सरकार लवा केन्द्रीय सरकार को सार द्वारा आग्रह किया है कि वे फीरन इन पदयात्रियो पर से प्रतिबंध हटाकर उन्हें अपने अधिकार का बातिपूर्ण उपयोग करने दे भीर कड़ी सर्दी के इस मौसम मे युक्ते मैदान में हेरा हाले महिलाको कौर छोटे बच्चो तथा सन्यासियो के समूह की सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए कदम उठाये।

#### मननीय

-- महाकवि रविन्द्रताथ दैगोर --

महिलाक्रो को सती साध्यी रखने के लिए पुरुषा ने ब्रापनी समस्त सभाजिक स्नीक की उसके विरुद्ध खडाकर रखा है। इसी कारए। महिलाक्रो के प्रति पुरुषों की कोई जवाब वेही नहीं है। इसी व्यवहार से पुरुषों की काषुरुषता ही प्रकट होती है।

सम्पावकीय---

## एक नवीन सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता

माज मम्पूण समाज में नैतिक एवं मानवीय जीवन मृत्यों का तेजी से स्नाम हो एहा है। मामाजिकता की भावना कमशोर होनी जा रही है। स्वार्थ परायलता विकराल रूप बारला कर समाज के ढाने की नष्ट करने पर तुली हुई है। घम के नाम पर मती प्रवा और नर वरिकाण्ड जैसे घोर नारकीय कथन्य हत्याकाण्ड सुनाई पढ रह है। आये दिन बहन वेटियो की दहज भी बलिवेदी पर जीते जी जल मरने की मजबूर किया जा रहा है श्रथका उन्ह अनानवीय यक्तमा श्रीर पीठाधा के जाल मे जकड कर उत्पीदित दिया जा रहा है। बाल विवाह तथा मनमेल विवाह मब भी धक्लो से बाजा गाजो र साथ सम्पन्न हो रहे है। बन्या अन्म सभी भी कई परिवारों मे क्रिश्रणाण माना जाता है। विश्ववाए अब भी अपने दारुए युक्तमय जीवन पर बाठ-बाठ बाँस वहा रही हैं। कई मा और बहनो को बायन, चुडैन भीर पैजाचिनी शहकर पत्यरो से माराजा रहा है अथवा जिन्दा ही प्राग का भद्री में नोका जा रहा है। पर्दाहट कर भी पुन अपना प्रभाव जमा रहा है। य समस्त सामाजिक कुरीतियाँ भौर अधिवन्यास हमारे राष्ट्रीय जीवन को खोखला कर उसे जीगंशीण बना रहे हैं । हम इक्कीसबी सदी के स्थान पर प्रतिगामिता के शिकार होकर पुन सक्हवी और ग्रठारबी सदी की बातें बरने लगे है।

राजनीतिक बिना दूरदिशता का परिचय विए हुए हर बात को अध्यक्ष बताते हे और केदल सतुष्टीकरण की नं ि अपनाते हैं। बोटा की राजनीति इस सम्र जुन प्राय रुढिया को जीवन काक्त अथान करने से सभी हुई है।

इ-हो नामाजिक कुरीनियो और स्वधिवश्वासो के विवद्ध जनसल जासत करन के लिये इस खतरे से सबको सबय और सावदान करने के लिये नारी उत्पीदन तथा सती उत्तर के विकास प्राय सनाव हाग जन जागरण का प्रियान प्रारक किया नवा है। इसके प्रतयता दिलाक 5 दिस्पवर 87 ई से 23 दिस्सवर 87 ई तक पार्य जात के सुप्रिन्य सन्यानी एव प्राय नेता स्वापी यानिवेश तथा नाववेशिक सन्ना के प्रधान स्वापी बानन्य बोध वयन्ती के नेतृत्व म 101 सन्यानियो एव समाज सेवियो डारा भारत की राजधानी

दिल्ली से रूपकवर पहुन स्थल विवराता तक परवाचा प्रारक हुई है विसका समाव के प्रतिकाल करों ने जोर कोर से स्वावत किया है। बार्य लगा का सबसेर का थी एक बस्था 51 सदस्तीयबत्वा इस पद दात्रा में सम्मितित हुया है।

खूबाइत की प्रवनता बहुरों में तो बोबी कम हुई है। परन्तु नौबों में सब भी वनवज खूबाइत की मटनाएँ होती रहती है। विहार, उत्तरप्रदेस, मटम्यवेत तथा बदा-कदा दिखाएं के राज्यों में भी हरिजनों के मकान बलाने या जनकी हत्याओं के समाचार मिनते रहत हैं। उत्तर भारत से साव भी वर्ष बड़े बड़े प्रसिद्ध मन्दिरों में हरिजनों का प्रचल निषद हैं।

सादी क्वाहों में फिजूनसभी दिखावा, सामसीमत, भीड एव प्रस्तीन हरकतो वाल गान, सरात का सेवन सादि बहुन बढ नये हैं। मौवा म तमा सह।ों में भी तरहवी दसनो प्रमम मृत्यु भोज, मोदर, गनीव सादि की हुममाए सभी भी सम्मा सरिताल बनाये हुए हैं।

आवृत्तनं दोना श्वाया तथ-मत्र टोटना फ्राटकृक, बोरा, गण्डा ताबीज, कडा झादि ना प्रचलन भी नेजी से बढ़ ही रहा है। बढ़े बढ़ सीमझालय कुल गये। विकान बो तेजी से बढ़ा परन्तु मनुष्यों का वैक्वानिक एव प्रचित-श्लील श्रीटकोशा विकासित नहीं हो प्या।

श्राद्ध, तीर्यं, मृति पूजां गुरुडमं, इतोशी पूजां, प्रवतार वाद, पीर-पैयम्बरी यमन्नारा की पूजा बादि अन्यविक्यासी को श्रृ खला भी बनने का नाम नहीं ने रही है।

इन विषम परिस्थितियों में शामाजिक कान्ति तथा एक धौर पुनर्जाणरण का आन्तेमन की परमावस्थकता है। आयं नमाज बेंग्ने सामाजिक नुसारवारी सम्जन को किर पून वीवानामन और वित्यत्ती स्थक्य झारण कर इन सामाजिक नुगद्दयों धौर अवविश्वासों पर करारी चोट करनी है। साल्ताचों की पुरातन परम्परा को पून जीवित करें जिल्ले हि पौरागिक पर्विद्यास्य प्रवदा तथाकित धर्माचार्य लगेगा वेदों के नाम पर मनमानी व्यवस्थाएं नहीं दे सके तथा हन बुगह्मा के विरुद्ध प्रकल जनमत आवार हो सके।

## नरबलिकाँड : हिन्दू धर्म पुनः मानवता की अदालत मे

वैने नो सनार के बन्य मजहबो मता में भी अधिवश्चाम और कुमयावें देखते को मिननी हैं। पन्ततु त्वाकियत मानवनावादी (?) हिन्दू अने इन सब म जिन्नेमणि हैं ? आडस्वरों और कुरीतियों के मामले ने बनार में कमका कोई सारी नहीं है।

सभी तक 'सत्ते' नामक कुभवा की चर्चा भी समाप्त मही हो नाई है कि 'गर बनि जैसी दुभवा अपना भीवत्स क्ये केकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो गई है। आपन्ते बतान है कि नत पांच वर्षों में ही भारतवर्ष में अति वर्षे 10 'नग्बनि कार्य' हुए है। इसते हमारे समाज की मानवीयता के प्रति सबदनभीनता का पता चलता है।

महारामा बुढ को यक्ष जैमें पवित्र कर्म की धालोकना करने का स्रिकार मध्यक्तालीन हिन्दू धर्म के तथाकथित टकेदाग ने स्वय ही प्रदान किया सा। क्योंकि इन लोगो ने यक्ष में 'नर वित्र' जै खे धामानवीय कृत्य को सम्प्रविष्ट कर दिया का। मोरध्यन व मकर्यक्ष का रोचक किन्सा भी प्रापने पौराशिक्ष कथा सामना से मदावर सुना होगा।

यत दिनो बेरठ व राजस्थान के शीलबाद्या सहूर से घन के पिपालु दरिदो ने दो मात्म बच्चों की बिल बढा दी। बेगठ के मनीख कार्ड ने तो जमता को भी लाखित कर दिया। वन प्रास्ति के सिए माता-पिदा ने अपने सात वर्षीय पुत्र मनीग को बिल 'वान्ती' को चढा दी।

महर्षि दयानन्द ने धर्म के नाम पर फैले लगी अधिविश्वामो और

कुरीतियो पर खता से प्रहार किया था। हिन्दू धर्म में कन्य मठो व मनहसो की तुलना में प्रक्षिक कुरोनियों और साधीबस्तास पाए बाते हैं। और इनके नाम के मास्त्रिक पार्थ से ही नहीं घणितु सान्यताको से भी इसका एक पुनास्त्रस कर उमरता है। इसिनए व्यक्ति के संशोका वा विवेचन का प्रमुख विवय भी हिन्दू धर्म ही रहा।

हिन्दुयों की पून आर्यत्व की और अग्रसर कला ही ऋषियर का तहय रहा। उनके पत्त्वात् आर्यमाश्रम हे हिन्दुयों को पून आर्य बनाने का बीडा उठाया, परन्तु परिशाम विशेष उल्लेखनीय नहीं रहा। और रहे भी तो कैसे ? कवि के सब्यों में —

एक लोटा हो तो छन सकता,

यहाँ तो कूए ने भाग मिलाई।

पूज्यपाय् स्वामी मरपप्रकाश जी द्वारा हमे उपर्युक्त सदर्श से दो सूच प्राप्त हुए है। सूत्र निम्म हैं

धर्म + मिष्याचारिता = साम्ब्रदाविक वर्न

वैदिक धर्म 🕂 अधिक्यास 🚥 हिन्दुत्व

परमेशवर से प्राचंना है, 'काली' तथा इन जैसे धन्य देवी-वेबताओं के जबकियाल में फतकर 'जर-चीन' बैते ब्रजानवीय एक वर्षेत्र कृत्य करने बाको के हिन्दुल्य को प्राचना से मुक्ति दिसाबे और उनमें धार्यस्य के मान उत्सव करें।

---वीरेन्द्र धार्व

।। को ३म ।।

## आर्य समाज के सामने अपूर्व अवसर

—: प्रो—बाबूलाल गुप्ता :— वता—भूपू संवालक विक्षा विभाग मध्य भारत

सक्का पाठ वस कहीं पूर्व योकनावक वावमकास भारावस्तु ने हमारे ... सामने स्वयम क्रांति की ब्रह्मार तानाई से, वक्कि उन्होंने राष्ट्राया यह कभी गहीं बतावा कि स्वयम क्रांति से इनका तारार्थ क्या मा ईस्ती सम्बद्ध का व्यक्तियों बताव्यों ने हमारे देश में एक महापुरक ऐसे भवका उत्पन्न हुने यो इस सक्क के वास्त्रविक धर्च ने समझ क्रांति के प्रत्योगा माने या सकते हैं और विनक्ते उनवेशों के सनुकृत विंद लोगों ने धाय-स्व किया होता तो इस समय न केवल हमारे देशवस्त्री ही अध्यु सवार के सन्य देशों के नावरिक भी समझ कार्त का उपकोश कर गई होने । उत्तर नहापुरक से लोक का आपने समझ केता उपकोश कर महिल्ला मारे दशान्य सरस्वती से हैं।

अवृधि वद्यानन्य को सभी तक प्राय लोगों ने कैवल एक समाज जुलारक में रूप में ही पहिचाल है त्यवापि मानव जीवन का कोई जल ऐसा नहीं रहा किस पर उक्त नहींय है। प्रकाश बाला हो। महाँव व्यानाव का प्रापृत्वीं के का में का का बाता हो। महाँव व्यानाव का प्रापृत्वीं के का में हुआ जब हुआ जो परतन्त्रता नी वेदियों में वक्त हुआ वा। मार्ग महाँव द्यानाव है वपने समर दूष्ण सत्याची प्रकाश में स्वाधीनता का मुण्याव विकास के प्रवादी परता का मुण्याव विकास के स्वाधी परता का प्रवादी के स्वाधीनता का मुण्याव विकास के स्वाधीनता का प्रवादी के स्वाधीनता का प्रवादी के स्वादी के स्वाधीनता का प्रवादी के स्वादी का प्रवादी के स्वादी के स्वादी के स्वादी के प्रवादी के प्रवादी के प्रवादी की स्वादी की प्रवादी की प्रवादी

स्थतन्ता प्रान्त की प्रवस उल्कराण सीमो के हुएवो में महर्षि बसानव के उनकेंदी में रिवी शामित क्षेत्र के उत्तरन करती भी कि शाम समाव के आरिक्यक काल में विवेशी शासक धार्म कमाव के स्वाहायों को राजदों ही समाव के स्वाहायों को राजदों ही सीमित कर उनको दिख्या की करना चाहा था। कब राष्ट्रपिया सहारमा शामी में कन् 1920 है वे हारक को स्वतन्त्रय कराने निस्त सहारमा शामी में कन् 1920 है वे हारक को स्वतन्त्रय कराने निस्त सहारमा शामी में कन् 1920 है वे हारक को स्वतन्त्रय कराने निस्त सहारमा शामी में कन् 1920 है वे हारक को स्वतन्त्रय कराने स्वतन्त्रय कार्या चा तव उसमें स्वतन्त्रय कराने स्वतन्त्रय कार्या चा तव उसमें स्वतन्त्रय कार्या चा तव उसमें स्वतन्त्रय के सह्योव हो हो स्वतन्त्रय के सहारमित हाकर क्षेत्र पान्य कार्य कार्य कार्य कार्य प्रान्त कार्य क

हुमारा वेश राजकाल की बॉल्ट से स्वतन तो धनाव हो गया है तथारि इस स्कत्वका के जुन म जितनी तीकारित के हुमारे वेशवासियों का चारितिक ह्या हु का है उत्तवा पूर्व ने कोमी हुमा हो ऐसा धनुमान की नहीं सवाया ता ककता। हुमारे इस चालिक साथ पतन का चो हुक्य परिशास हुमार उनकी क्रम्यवार बास हो रोजटे खड़े हो जाते हैं। ब्याच्या जब किसी लेम ने स्रविक् सति होती हुई-मोचों को विचाद दे जाती है तब केवण उसी के जुवार हेतु तास्क्रालिक उत्तव कोमें खाने तपते हैं। बंदे किसी हुमा की मूल ने बाधा सत्ती की कमी के कारश उसके दाते हुमा बाने पर पर हुई पर पानी विवक कर उसकी हुए। स्कान चाहे तो वह सपने उद्देश में करारि क्रमल नहीं हुं। तकता रेड़े ही उक्त उनाव की महामां विवह होते हैं।

हमारे देख वे नर्शनाम तबक वे जो प्रस्थाचार, समाचार, दुरोचार व्यविवारिति को महामारियों सवाय प्रवित है प्रेमतों वर एहे हैं उनका मुस् बराया है राज्यों वे स्वार वर हमारा चारितिक हामा । चारितिक हामा को नामार्थी के संवर यों हमें समावात ही उपनिकति हो बाते हैं परन्तु जिन राखक लोगों के हामों ने देख के सांस्तर की दान प्रोर कर चानीत करों है प्राय निरामर रही है सीर कम तक गहेगी हमारा समुवान समावा की कठिक है, प्रकृति सपनी नास्त्रकों के कारण कोन्न ऐसे सांस्तर क्षात्रका कराया की

चार सिवकायिक बढते ही चमें आवेंने, बन तक उपयुंत्त दूवरां के उत्पन्न होने के क्षम कारण को न समाम जानेगा तब तक उनको नस्ट करना सरक्ष्मा हो रहेना। राजनीतिक स्त्रीर सामिक श्रीचारमत (आर्थ समाजियों के स्त्रितिक) वितने ची नेता हैं उनको करूपना में भी नहीं आ सकता कि हमारे इस बोर चारिनिक ह्यार का कारण क्या है।

ऐसी विकार स्थिति में सार्थ समाय के साथने अपूर्व प्रवस्त है कि वह प्रपने सरकापक प्रहृति व्यानन को करना के अपूर्क प्रथमा स्वक्रप पहिचाने कीए महिल के बताए नए मार्थ का अपूर्वत्त करते हुए न केनल प्रथम हो हिला कोए महिला के साथ साथ सामिक विकास के अपूर्व मार्थ के अपूर्व के कोई विकास के कार्य का मार्थ का अपूर्व के स्वत्य का मार्थ के प्रवस्त के कार्य का मार्थ के मार्थ के अपूर्व कीए एवस निवस प्रत्येक आधे रमार्थ के कार्य कीए कार्य का साथ के मार्थ के आपूर्व कीए एवस निवस प्रत्येक आधे रमार्थ के कार्य के प्रवस्त किया के साथ कार्य का साथ के साथ कार्य का साधारित होगा और स्वत्य निवस के प्रत्युक्त कार्य कार्य का साथ कार्य का साथ कार्य का साथ कार्य कार्य

प्रायं समाजी बम्बुचो को मनुमहाराज का वह शाश्वत उपदेश सवैव ध्यने हृदय पटल पर बकित रखना प्रावश्यक है कि "धर्म एव हतोहन्ति, सर्मों रक्षति रिक्ति 1 हस्मान सर्मों न तत्त्वको, मानो धर्मों ततोबकोत॥'

हक्के वितिरिक्त महर्षि दयानन्त के अनुवाधियों को यह भी शर्दैव स्मरस्य रखना बाहित्र कि वृद्धिः का मुजनकर्ता, पातनकर्ता और नियन्ता एकनेव सर्ववास्तितान, सर्वव्यापक, सर्वा-तर्यांगी, सक्क न्यायकारी परशान्त हैं कव तक हम वर्षे पर साक्य खेते कोई व्यक्ति कितना ही अन्यायी, सरवा-चारी और मक्क न्यों न हो वह हमारा बाल भी बीका नहीं कर सकता।

\*\*\*

## आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार-१६८८

स्वयं विचा ट्रस्ट जवयर द्वारा निर्धारित 1200/— र आपर्य बोवर्सन कारनी पुरस्कार प्रतिनयं दुक्कुल कायदी विवव विचालय द्वारा दिया जाता है। यत सात क्यों ने यह पुरस्कार कमत प्री रामप्रमाव वैदालकार, द्वा अवानीलात प्रारतीय, प विक्यनाय विचालकार, खाच सं सत्यानाय विचालकार, प भगवद्यत वेदालमार, बास्यदत मिद्यात-क्यार, में इसानेय वाल्ले, ला चेतनदास (मरहोग्नरान्त) को वेद प्रचार तथा समाज्य वेवालों के तिए प्रदान किया गया।

सापसे निवेदन है कि यदि सापकी दृष्टि में (कोई सहानुषात धवना सरका भागानी वर्ष के लिए पुरकार के बोग्य हो दो उसका पूर्ण विवस्ता 15 जनकरी 1988 तक भेजने की कृपा करें।

- वीरेन्द्र झरोडा (कुल सचिव) मुस्कुल कानवी विश्वविद्यायय, हरिडार

#### भी देवीदास प्रार्थ का बढ़ोदा मे अभिनन्दन

न्वतीशं ---बहा नारिका वधर में प्रविक्त शारतीय निग्धी प्रार्थ मधा के तत्वाववान में प्राराधित एक सवा में नगर वी प्रमेक सामाधिक व सिक्तश्र सरक्ष्मा के भीर हे चुप्तिक महिला उद्धारक प्रार्थ समाजी नेता की देशों सामाधिक स्वामाधिक स्

## सत्यार्थप्रक्राश का महत्व

— स्थ. थ्रो. १वेशकाट बनर्जी —

स्तार ये निवने धर्म गन्य हैं, जनने से केवल सत्वार्थ प्रकाश ही एकी वृश्यक है, जिससे नजी धर्म-नतों को निष्पक्ष धानोचना और जन्मे धर्म की सीमाखा है। तो धार्मिक सुधारक श्रल के सक्ये प्रेमी हैं, जिसमें रक्षपात का के साथे प्रेमी नहीं हैं, जिसमें रक्षपात का के सी नहीं है, के सूर्व तो रे से युवनात्मक वर्ष विचार करते बीर सब सतसात्मरों से सत्य का ही प्रकाश के बहुने निव्या करता है वह निव्यित हो स्वार्थ की सिक्स के स्वर्ण में निवास करता है वह निव्यित हो हो सीमाखा के बहुने में निव्या करता है वह निव्यत हो हिम्म की सी प्रकाश के कारण सामान को ही य हको भी विव्यताता, प्रोप्त सामार में यो उन्हों साच्छी चीन्ते विक्रती है, उनक नाम भी नहीं सेता। दुनिया भी सब नवहंस किहासों के सम्मन्य में भी मही बान है। परन्तु सत्यावंप्रकाश ही केवल सत्य सीर निव्यता पुक्त के हमा

ईताई नोगों की धर्म-पूरतक, बादबल को देखिये दूससे यहूवी नोगों के पूर्णीहुन पारिमयों को खूब बदी गालियों की धर्द हैं। परस्तु पारकों सोगों के अमं और अबहुर सा कुछ असाग्र नहीं दिया बया, जिझसे पाठकों को पक्षा नव बात कि पारमी जोतों का धर्म और समे-पुनतक प्रमुख प्रकार का है और उनम मृद्ध क्या है।

युवनमानों की मानवीय किताब कुरान को देखिए। "काफिट्रो" को किननी नदी से यानी मानियाँ दी गई है "काफिट्रो" को कतक तक कर के की धाला थी है, परन्तु यह नहीं सल्यामा गया कि-काफिट नेनारे का क्षूत कर है उनके धर्म में मूटियों कोननी है, सक्खा उसके सामिक निदानों की पुनना में इम लाख की किटानी सेन्टना है।

प्राप्तत के पुराणों में भी एसी ही शुक्तिश्चीन बार्ते भरी पत्री हैं। परन्तु ऋषि दवानस्त ने प्रपत्ते सत्याधंत्रमाश में स्वा निया है, दूसरी धीर विशिक्ष कृतिन-त्रमाणों से मंदिक निवास्त की स्वाप्ता की, दूसरी धीर विशिक्ष सत्यतानारों की न्यायुक्त बीर युक्तिशुक्त सर्गक्षा भी की। युक्तात्मक बीर निज्यात शामिक विश्वार का बावर्ष ही स्वाभी बवानस्य में। सत्याधंत्रमकृत से यो लोग विवर्त हैं धीर इसके लिए धार्यसमान में कोवर्त हैं, में लोग मृत बाते हैं कि यह बुल युक्तात्मक कीनार का हो हैं। वो किसी वेस का महिन्तुर दिवने या साहिए सचना किसी महापुक्त के बीवन की धार्माकृत करते हैं उनको तो तुसनारमक विचार करना ही पडेवा। वर्तेमान बुद तुनवारमक नावा व्याकरक और विचार का युग है। ऐसी दला में स्वामीकी ने सामिक विषयः में सुननारनक विचार किया को क्या आपराध किया। यो मनुष्य सरवार्षअकाश के सम्बन्धा से विश्वारक (क्या) बनकर सपनी अध्यस्था देते हैं, उन्हें इस बात का स्मरूक रखना चाहिये--- व हे वह महास्था हो शबना कीई भीर। सत्यार्थमकान ने धार्मिक तसार में कान्ति उत्पन्न कर दी है। इस दुलमात्मक युथ मे, जब साहित्य, इतिहास, वरिशत, विकाम इत्यादि सनी विक्यों में तुक्तनारमक विचार होता शहता 🔭 सरवार्यप्रकाश जानिक विकय में दुसमात्मक विचार का प्रवन मार्थ-प्रवर्शक है। एक दिन सारे सतार को इस मार्च पर भाना परेमा- ज्ञान भीर बुक्ति से मान सेना होगा। धनजान मनुष्य सरवार्ष इकान की विकास किस बुरी तरह से करता है। एक सरवान ने तो इतको निराशासमञ्ज्ञ पुरसक बसला विचा । कारूस इसमे सम्बत-सम्बत्ध दिखाई देश है। परन्तु वह सहस्रकार जून जाते हैं कि वदि इस वृष्टित स्वतनी इक्ट्रांचार्येकी का की विकार किया जाय तो वह भी निरासावनक लिख हो जाउँथे । क्या सकराव्यार्थवरि ने श्रीक, शाक्त, क्लूपरथ, लीर, शाक्तिक इस्कादि सभी वर्गविक सन्वकानी का बच्छन नहीं किया था।

बस्तुन बात सह है कि जो तुप्तासमक विचार का साहस वरेका तसे बावन-पायण नगना ही पहोगा। जिन महाएयों ने सत्त को लोपसा के लिए क्या बारास किसे उन्हें दिव्यावाद की नमीका करती ही पढ़ी। जो नहापुर्व तोणों को जान का अदार दिव्यांन करावेचा उठे निक्या का बावार बीर करना के प्रकार करा है। उदेशा। सत्याधंकरस ससार का दिव्यांन करावेचा उठे निक्या का बावार बीर करना है। जो मुझारक हुएवं सत्त की सुक्यन ने सामा करना करना है। उद्योग कर के सम्बन्ध करना की कर करना है। उद्योग के स्वाप्त की स्वाप्त है। स्वाप्त है। स्वाप्त है। स्वाप्त है। स्वाप्त है।

—प्रस्तुति, इत स्वमेन्द्र शीका, वडोदरा (बुनशत)

## हिन्दुओं को किस कात पर संघटित किया जाय ?

— वॉ० स्वास्त्री सस्यत्रकाश सरस्वती 🕶

के बीजों ने कालपूर्वार में देवा के पूर्वी संवालों में कुलामामा नाम को है ही परवार कालप्रांत आगा। पूर्वी गांवकरान काले का सुक्त मात्रा करा। पूर्वी गांवक में ताम कालप्रांत करा। पूर्वी गांवक में ताम कालप्रांत करा। पूर्वी गांवक में ताम कालप्रांत करा। प्रश्नी मात्रा में नाम कालप्रांत मात्रा कालप्रांत कालप्रां

244

(वार्वतम्बद्धः ' संगत्ते और मनलावें-के)

#### बलिवान विवस के उपलक्ष्य मे-

## युगपुरुष स्वामी श्रद्धानन्द

— बोरेन्त्र कुमार भाव —

एक उसत काय दसनीम सृति (अभावपून साँवय की मतीमा) इससे मेंट करने साती। हैं। साधुनिक सम्मवाय का कलाकार ईमा मसीह की अदि इति सबने के लिए साम्य के स्था में इसका स्वाप्त करता है सौर मध्य नातिक सचि का निक्कार इसमें सत पीटर का क्या है। इसकेड के मतिब लेकर पीडर (जी वाम् में चलकर इसकेड के प्रवासमधी भी में) नि रैम्से मेंबबालक ने स्वामी आदानर जी का सम्बन्ध में 1914 में सिक्वा था।



#### महान शिक्षा शास्त्री —

स्वामी अदानद जी महाराज न धारन के सत्तरिक इतिहास में एक प्रदक्त और नजीन प्रयोग हिया था। वह एक नफ्स प्रयोग था। वह कालीन प्रयोग किया पदित के दिवह दिहोहा एम या - नाव क्लीन प्रयोग किया योजना का प्र-तर का स्वामी जी की विकार योजना को मुक्कुल निक्का योजना कानाम दिया वा सकना है। महर्षि दयानद सरस्वती ने सत्याय प्रकास में विकार के मध्य प्रयोग स्वाम प्रकार के प्रवास प्रकार के किया योजना कानाम दिया वा सकना है। महर्षि दयानद सरस्वती ने सत्याय प्रकास में विकार के मध्य प्रयोग स्वाम प्रकार किए है जनको मुत्रक्ष प्रवोग के लिए स्वामा प्रवासद जी न 16 मई 1900 ई में गुण्युल कामधी की स्वापन की।

स्थामी अञ्चान द वी ने हिंदी माञ्यम से मुस्कृत की पढाई का प्रवास करके राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास म सह बयुण योगदान दिया

#### छन्नास्त विगेषी -

श्रीमधी अताक्ष्यों के प्रारम्भ म जब छ्याछन व ऊचनीच या धान तीज बातव स्वासी जी के गृतकुल में भीत बाह्य प्रशीर प्रछत मेच के पन एक साज पहुते थे एक साथ घोधन करते वे। मनके एक जीत सस्त्र एक जीता घोचन घोर एक-ना रहन-सहन था। सब एक दूसने को भाई भाई समकते वे।

#### स्थायीनता सेवानी व प्रकर राक्ष्मेता --

स्वामी अञ्चान द जी ने राजनीति को धार्षिक काथ नमक कर ग्रह्सा किया। लाखा बाय समाजियों ने उनका अनुसनन कर कामन द्वारा प्रवर्तित असहयोग एवं स्वदेशी आंदोलना ने भाग लिया। हिंदू महासमा स्वराज

सभा और नशनिल्ट न्यों श्रे आय समाज के प्रवेश से बसन बहार नी ह्या गई। खिलाफत सारोक्षन जिल्लाबाला व य प्रान्ति की सबन द्वाय समाजी भावना एक नवीन बेनना प्रनान करने लगी

वहा नहीं दिल्ली के घटा घर पर अप्रजी नगीनों के नमक्ष छाना खोल कर उपस्थित होने वाले स मानी न जामा मरिज के मिन्दर से बेन के मजोच्चारएकक हिंदू मुस्लिम एक्ष द्वारा राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्ति का माव बनाया। प्रमुनमर पृक्षकर नुरु काला नामा नाग्रवह से निम्मितन होकर विखी को घमने वहन सम ज की सहायता का प्राप्तासन दिया धीर जल वये। साहित्य सेवी श्रीर प्रकार —

ब्रपन जीवन क पूर्वोद्ध में स्वामा जी ने वरुपालामांग क पनिक जने हिनी के गीरव ग्राम आर सक्या रूप मं शब्द चित्रित किया अपन पतन ण्य उत्थान को अक्ति करने कायह महाप्रयास माहिय जगत म निरुपम मुबह उम्मीत (उत्) बहाचय मुक्त की आदया प्राचाय गामनेव के सहयोग से बाब समाज एवड टम डिट क्स (अग्रजा) स्वामी श्रद्धान न जीधर्मीदनेत्र हिन्सगठनसरमो मुख जानिका स्वक (अग्रजा) द्याद ममाज के इतिहास की सामग्रा (जिसके आ प्रारंपर उनक सुपत्र इंद्र विद्या व जम्पति ने भाग समाज का इतिहास तिका) तमा सद्दस प्रचारक अजून श्रद्धा टा स्थिरेटर ग्राटि पत्रा म प्रशासित उनक लेखा तथा लेखा मालाए उनके नाहियानुगय के प्रमाग ≭। ब्रमुनमर काबन के स्वागना यक्ष कं रूप में पढ़ा गया ग्रानिभावण नथा शागलपर हिनी माहिय सम्मेलन के सभापति क रूप न पटा गरा अभिभाषण ता नालिक समस्याम्रा के प्रति उनकी जागरूनता के प्रतिविम्ब है। व अग्रजी हिंदी घोर उन के सिद्धहस्त लेखक थे। पत्राची भीर संस्कृत के व संभा ग्रध्यता एवं प्रयोकता थं। कूशन पत्रक।रथा। हिनाभाषाग्रीन्देवनागरी निश्विक प्रचा प्रसार एवं उहें गष्टकाया बनान में उहाने रचना मक एवं प्रचारा सक दोनो घरातलो परंव चन्करकाम किया।

#### कटर सिद्धातवारी

स्वामी अद्धान द बी कट्टर सिद्धातवानी व्यक्ति व कभी भी धपन किसी व्यक्तिनत स्वाब हित सिद्धातों की बीन नहीं देते थ । धपनी हसी मिद्धान प्रियत्त के कारए। ही उन्हें यहा मा यात्री एवं कावस दोना का "याय करना प्रयत्ता था।

प्रसिद्ध गोभक्त न्याला हरदेवसहाय जीन एक बार स्वामी जीसे कहा निय आपको मारने की समकिया मिलनी है। गांधी जी जसे नेना का सामसे रूप्ट है। इसके उत्तर में स्वामी जा ने गरज कर कहा ---

क्या हुआ जा नाधी और स्ट है ? क्या हुआ जो समती भरे पत्र धाते है ? जब परमान्या भरे पास है उनका वर हस्त मेरी पीठ पर है और जब मेरा पक्ष नाय है तो कुफ किसका भय ? मैं देख अस के कल्याल के लिय हुए अकार के विरोध का सामना भक्ष ना।

स्वामीजी अविन भर दल छम एव आप ममाज के लिय तिल निल जलते पहे एव अत में एक दिन र प्टिहित में ही अपन प्रामा की धानि दे दी। स्वामी जवानन्द जी की हत्या का समाचार जब गीहार्ग म हो रह वाधम सम्मेनन में पहुंचा तो नमी न्याच्या एग थे। महा मा गांजी न बाठ प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा वा कि भारत बाता के एक न्यामक और बीन सपुत की दुवा पृत्यु से ऐमी अति हुई है जिमकी छनि पूर्ति मम्बय नही है। जनका जीवन और जीवन की विशेषनाए अपने देक और छम की सवा वर स्वापित एही उन्हांते निर्मीकता और हना के साथ मन्य समहायो पतियो और दीन दुखाओं को सहारा निया।

सानवता के पत्रारी स्वतंत्रना के उनेता जान्ति धी जान्ति के प्रास्त् सहामनीची सिक्ता बाज में हिंटी के प्रवत्त समयक समर हनामा स्वासी अद्धान दंवी महाराव को इनका राष्ट्र की धीर से उनके विजयान टिबस पर बद्धावनत हुदस से कोटिस अद्धावनिया उनकी पावन स्मृति से स्रित (शेष पुष्ठ । का)

The ancient religion of India is doomed Now if Christianity does not step in whose fault will it be ? (Ibid Vol I chap XVI p 378

बर्धान भारत का धम नच्टप्राय है। प्रव यदि ईसाइयस उमका स्थान नहीं जेती तो यह किसका दोव होगा ?

यह है मैक्समूलर की भारत भनित जिससे ग्रमिभूत होकर स्वामी विवेकानन्य ने साबसफीड मे 28 मई 1896 को दीपबर के भोजन के श्रवसर पर वहा था---

When are you coming to India? All men there would welcome one who has done so much to place the thoughts of their ancestors in true light (Vivekanand A bio graphy by Swamı Nıkhıla nand Pub 1953 by Advanta Ashram Calcutta )

थाय भाग्त क**ब मा** रहे हैं ? बहा के लोग एसे व्यक्ति के शुभागमन पर बानदित हो उठेंगे जिसने उनके पूबजो द्वारा सचित ज्ञानराणि को मही रूप मे अस्तुत करने के लिये इतन परिश्रम किया है।

वैक्सपूलर से श्रीसभूत होकर स्थामी विवेकानन्य किस हुए तक श्रमना सन्तुनन को बैठ इसका पता उन्हीं के बाश्रम से प्रकाशित उपयुक्त पश्तक के निम्न उद्धरशो से चलता

He wrote to Mr Leggette on July 6 1986- The British Empire with all its evils is the greatest machine that ever existed for dissemination of Knowledge P 207

श्रर्थात क्रिंगेश राज्य ही बूरा

Hinduism and Islam-Vedantic brain and Islamic bodyis the only hope. We want to lead manked to the place where there is neither the Vedas nor the Bible nor the Koran P 255

प्रवर्गन वेबण्य का निकास्त जाहे कितना ही संख्या बाँदे संबद्धार स्वी क हा इस्लाम की सहायता के बिना बंकार है। हमारी मानुभूमि का हित इसी म है कि वह ससार के दो बढ धर्मी-हिन्दू और इस्साम-को समान रूप से श्रापनाथ । उसका करीर इस्लाम का हो और मन्सिष्क हिन्दु धम का हो । इस सानवना को बहा से जाना चाहते है यहान बेद रहे न बाइबल धीर न सरात ।

बही स्वामी विवेकातात प्रायत लिखते हैं - किसी भी अन पत्थ ने इतना अधिक रक्तपान नहीं किया तथा दूसरों के प्रति इतनी करता नहीं बरती जितनी करव के पगम्बर द्वारा सस्थापित पाथ इस्लाम न । कुरान के वह सिद्धान्त है कि जो प्यक्ती शिक्षाकों को मही मानता उसे मार दालना चाहिए ≀ से कंल कर देना ही उस पर रहम करना है तथा अहिक्त (स्थम) जहां नर (श्रप्मराष्ट्र) तथा सभी प्रकार के भागविसाद मिसने हैं उसे प्राप्त करन का पक्का रास्ता है काफिनों को कल्ल कन्ना । मनुष्य जितना ग्रधिक स्वार्थी होता है उनना ही अधिक प्रवेतिक वन बाता है। यही बात इस काल के विषय संधी सच है। -बामी विवकानात ग्रन्थावली मान 2 पू 352-53

स्वामी विवेतान न क्या कहना चाहते हैं इस का निजय पाठक स्वव करें।

#### नेपसमलर विवेकानम

क्यो न ही उसने जिलना जान का प्रसार किया है उतना कभी किसी ते नहीं किया।

T) the accusation from some orthodox Hindus that the Swami was eating forbidden food at the table of infidels he retorted -

If the people of India want me to keep strictly to my Hındu diet please tell them to send me a cook and money enough to keep him Am I a nation a slave? I stand at nobody a dectation No country has a special claim on me. I belong to the world as much as to India '

प्रयात जब कुछ कट्टरपंकी हि'द् ब्रोने उनके स्तब्धा (ब्रह्मियी) के साथ बठकर गोमास खाने पर मापत्ति की तो स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर काता त्याना विष्कानक न उत्तर दिया -- उन से कह दो कि यदि वे यह चाहते हैं कि मैं विशुद्ध हिंदू क्षीजन करू ता ने एक रसोइये को केज दें भीर उसके बेतन का भी प्रवाध कर दें। क्या में किसी जाति का गुलाम हु? मैं किसी का झान्स नहीं मान या। किसी देश का मेरे अपर विशेष अधिकार नहीं है। मैं जितना भारत का 🞅 उतना ही दुनियाका ह।

On June 10 1898 he wrote to a Muslim gentle man at Nametal - Without the help of Islam the theories of Vedantism however wonderful and fine they may he are ent rely valveless For our own motherland a unct on of the two great religions of the world-

**गेक्तपुलर-प्रक्ति का रहस्य**—

मेमनवृत्तर ने A Real Mahatma of Shri Ramakrishna Para ansa Dev नामक खोटी सी प्रतक लिखी जिसमे स्वामी ब्यानन्द और श्री रामकृष्ण पर हम की तुमना की गई थी। स्वामी वयानन्व के सम्बन्ध मे मैक्समूलर ने लिख?---

Dayananda Saraswati tried to introduce some reforms among the Brahmanas. He was a scholar in a certain sense He published a commentary in sanskrit on Rigyada But in all his writings there is nothing to be quoted as original beyond his somewhat strange intepretations of words and whole passages of the Veda

The late Ramkrishna Paramhansa was a far better specimen of a Sanyasses He seems to have been not only a highsouled man a real Mahatman but a man of original thought Page 7 8

बयानस्य सुरस्वती ने बाह्याणी में कुछ सुधार करने का प्रवास किया। बह किन्ही सबी मे विद्वान था। उसने ऋग्वेद का प्राप्य किया। परन्तु उसके करनो में ऐसा कुछ नहीं है जिसे भौतिक कहा या सके सिवा इसके कि उसने वेद के कुछ करनों या मन्त्रों के विधित्त प्रथ किए।

ध्यक्रम्ब बस्क्हल सन्यासियों के क्या ये कहीं सविक क्रेमा वा। नह केक्स उच्चारमा घसली महात्या ही नहीं या बल्कि उसके चिन्तन ने मौति-फलाभी वी।

स्वामी विवेकानस्य के लिए रामकृष्ण परमध्य एक महापरूप न होकर स्वय क्रियर में - Ramkrishna was the greatest of all prophets form in this world Bhagwan Shri Ramakrishna incarnated himself in India (Biography [93-94])

रामकृष्ण के प्रति मैक्समूलर भी प्रशस्ति ने विवेकान द को उसे ऋषि बदवी देने को विवक्त कर दिया -डी 14/16 मारल टाउम विस्ली

#### आय प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश का निर्वाचन

प्रध न-की इच्छालास आय महामत्री-की भववागदेव चतन कोवाञ्यक -- भी अक्नम सुब

#### कहने को बैज्ञानिक यग यह

कहने को वैज्ञानिक यून यह पर बढता पाचण्ड भपारे । दुर्वी का नी की पावन भू नारी करती हाह नार । महिपासर हैं बढते जाते रहे निरकुत जो दिन रात । भवल रूपकुँ बरो को पाकर होकर करते थान । मुंहा क चु केर सुमण्डित, स्थित कुनकुरों ने सहार।

मानव ही हैं लिजत होत प्रकृते क्या जाने घरभाष । क्या तपकार करेगा टानक जो प्रतिपल करता है काब ।

बृहलकमा होन पर भी अनुरक्षित को उसका मेंद्राह ?
 श्वाम समर्थल की को प्रतिम उससे धन वैभव की चाह ।

ग्रासोकित घर करने वासी उसका ही चलता क्यो दाह ? कब तक हाबायें । उत्तपीवन जीवन होवा जिसका मार ? वशुकुष्या ने मातृशक्ति की

सीचा है करना भगमान । बुर्धावों से कि तु वभी क्या भिल पाया ऊचा स्थान ? पति को देव समस्ती भाई मिला उसे दुख पाराबार। किमी कुकवि ने इस महिमा की निदाके गायें हा बान। इसी शक्ति से वे भी पौषित धले न हो उनको पहचान । वह जग उपका की हरीतिमा.

चारे पात्रावे पराश्रार ।

काः भीमती महाइवेता चतर्वेदी प्रोफसर कालोनी स्थामगैज बरेली उँप)



#### वैदोर्गीयसीयर्श्यम्लम् वेद ही समस्त वर्ग का मूल है।

स्थानन्यावरः 162

वृष्टि सम्बद् : 1972949087

वर्षे 3 बुधनार, 30 दिसम्बर, 1987

बक: 21 प स-43338/84 H

গ্রাছী ঘূর্টাছা

पाक्षिक पत्र

"सार्थ हमारा नाग है, वेद हमारा वर्ग । सोइम् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म ।।"

काइम् हमारा देव हैं स्थाय हमारा कर्म ।।" समय मित्रादशयम् अभित्रादशय ज्ञातादशय परोक्षात । सभय नक्तमथय दिवा न सर्वा साशा नम मित्र भवन्तु ।। **कृष्यन्तीविश्वमार्यम्** सकल जगत् को श्रायं बनाए

हमारा उद्देश्य :

हुनार पर्वस्था समान की वर्तनाम एवं मनिष्य में पैदा होने वाली समस्याओं को दृष्टिगत रक्तते हुए धार्मसमान का पुनर्गक्त करना है।

पीव मु 11 सवत 2044

बार्षिक मू 15/-, एक प्रति 60 पैसे

अग्निवेश की पदयात्रा : एक निष्पक्ष विहंगावलोकन

-- बीरेना कुमार वार्य--

4 लितम्बर को क्ष्मकार के सती के नाम पर सपने मृत पति के साथ विजया जसा विए जाने के फ्रास्टक्स देश में नारी अधिकारों म नारी स्वातस्य को तेशर वो वर्षी प्रारम्य हुई, उसके स्वामी अस्तियेश की पद नामा को उत्पत्ति हुई।

वन 1977 में सामंदेशिक क्षेत्रा है क्षेत्र विकार क्षेत्र विकार के सामग्र का मिना की स्थान के बेदर वर्गे सामग्र की सामग्र की स्थान के स्थान के सामग्र की सामग्र की सामग्र की सामग्र की सामग्र की सामग्र की स्थान के रही हुए दस्त्री सामग्र की सामग्र की साम करते हुए दस्त्री सामग्र की सामग्र क

कि उनने प्रयामा के बहाने ही नहीं साने एक फांतिकारी नेता को पून प्राप्त कर लिया।

पद यात्रा ने नारी अधिकारी के विषय में चकी बहुत को बहु। एक सार्वक दिशा दी, वही इसने मार्व-समाज के सुधारवादी स्वरूप को जन साधारस ने स्थापक प्रचार दिया। भगवे बस्त्रों में आर्थ सन्यासियों के नेतरब में पदयात्रा उन सदूर बामील वनको ने बार्वसमाय का नाद यु वाते निकली जहाँ धपने स्थापना काल वे बाज तक बार्यसमाम का कोई प्रभारक नहीं पहुन पाया था। पर-यात्राने इन क्षेत्रों के लोगों ने ऋषि दमानन्द और बार्यसमाच के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की । पूरे देश के समा-चार पत्रों ने बार्बसमाध्य के नाम की वेश के पान बादमी तक एक शुद्धार-वादी भाग्वोसन के रूप ने पहुंचा विवा ! इच्छियन एक्सप्रेस ने और नवकारत टाइम्स ने तो इस विवय में अप्रसेख भी लिखे । यह म्यापक प्रचार क्या आयंस्थाल के लिए कम उप-सक्षित की बात है ?

राजनैतिक दलो से अपने निहित स्वाधों के लिए सफिय रूप से जुड जाना व्यक्ति कि किसी सामाजिक सस्या के प्रति निष्ठा को सदिन्छ बना देता है। इसके प्रमाशः हमारे पास है। थरलसिंह जैसा कटटर मार्थ-समाजी भी इसका घपवाद नहीं बन सका था। ग्रम्तिकेश भी नहीं बन सके वे। अब उनकी यह गोक्या कि 'बनता पार्टी मे जाना मेरी सबसे बढी भूम वी। श्रविष्य में मैं न तो किसी राजनीतिक पार्टी ने सम्मिलित हो कवा भीर नहीं कोई चुनाव सब्या। धार्वसमाज के प्रविष्य ने प्रचार-प्रसार के लिए एक कुछ सकेत है।

सुधी मिश्रमाला ने 28 दिसम्बद के नक्सारत टाइस्स मे पदवात्रा विद-यक कुछ मबाल उठाये हैं। झापके भत मे हबद-यजादि बादि कर्मकाड मे परवात्रा का भाषग्तादि से अधिक समय भ्यम किया गया । जो धनुचित वा। मश्चिमाला वी से इस विध्य मे सहमत होते हुए भी हम कहन। चाहेबे कि यसावि की भी भवनी विसेचताए बीर बुख हैं। परन्तु स्वामी प्रनिवेश के शब्दों में 'बार्यंसमाज' को 'हबल-सध्या प्राइवेट सिमिटेड' भी मुद्री बन वामा चाहिए।' रचनात्यक कार्यी मे भागन लेकर मात्र कर्मकाकी बने रहना बार्वसमाय के लिए महाबातक सिद्ध होगा ।

सुक्री भिक्तिमाला जी ने धूबरा प्रभन सरक्षत सामवेदी के काबेसी चरित्र का उठाया है। मैं क्रमर कह केब पूष्ठ 6 पर

## पाखण्ड बसा है उनकी रग-रग में

—वीरेल कुमार शार्व—

दिस्ती से प्रण्या संनाचारी के धानुतार 25 विशन्तर की जुनह Li पंत्रियों (?) ने बनुता नवीं को सुद्ध करने के शाम पर 2040 किसोबान (51 जन) सुद्ध तुस्र मधुना ने प्रशाहित कर दिशा।

विश्व देश के श्वस्था लोग पूर्व के वर्षण मात्र दे भी जागी गरीनी के कारल विश्वत है, उसी देश में इस प्रकार दूध की वर्षोंदी करना प्रपराज नहीं कहा जानेया दो और समा कहा शांकिया?

बुद्ध विवासियां दिमाय प्रस राष्ट्रां को 'मब्र' के बैजामिक कार्य के भी कोडने का पुस्ताहल कर 'वें हैं। केम्बिन प्रत्येक प्रदुद्ध न्यस्ति 'यह' के प्रकृत्य को समस्ताहर है। 'मब्र' के दूस के इस प्रपत्मय-नाक्षक की समा-नहीं प्रपितु दिश्य पर से समाव्यक्षित नहीं करना पूर्वता है। मोनाचार्यों ने नहां पासक फैला रखा ग्रीच के नाम पर चारत में ही है। नीम के नाम पर कोई भी पासक

### शंकराचार्य को शास्त्रार्थ की चुनौती

शार्व जनतु के सुप्रसिद्ध विद्वान का ज्यसन्तकुमार सास्त्री ने पूरी के सक्राचार्व स्वामी निरक्तदेव को सास्त्रावं करते की व्यक्तिगत स्थासे वनीती दी है।

सपनी हाल ही ने प्रकाशित पुरितका 'सती प्रथा नेव विरुद्ध' ने श्री बाल्मी ने बकरावार्ष को 'सतीवाह वेच विरुद्ध है! इस विषय पर देश की किसी की वबह बान्यार्थ करने की पुनौती वी है। सावकी बाल्नार्थ सम्बन्धी केवस एक बार्ष है कि सारवार्थ की प्रयास स्मवस्था पुनित के प्रधीन रहे और स्वका सार्थविक्त हो, विश्वते सरावक सत्यों हारा शुष्यावर्थी और सारवीट न की सा सके।

उल्लेखनीय है कि जी सास्त्री ने 'श्रामेव' ने जोस उपासि (Ph.D.) कासी हिन्सू विकविष्यालय से प्राप्त की है। जम साजारख में जमारिक कर वी, सायको भारत में कोई रोजने जाला नहीं है। महेम मोमी थ नास्टी बाजा में उताहरख सायके समझ है। दूव का वह सप्तकाय भी एक स्वयपु पीव-गीठेक्वर आस्करानक पराहन के मंदिक्कर आस्करानक पराहन मूर्वक किए जाने जाने वन सप्तकायों को रोजने के लिए बरकार कोई भी करत नहीं उठाती। बचा ही प्रचक्क होता कि जीर महानन नमुना में दूव कमशीहम करी मूर्व करना स्वक पर पहुच कर उक्ता दूव को सप्त कमजे में केकर इस सप्तकाय के बचा

#### यो शुक्तक — नावन सिंह प्रवेरिक वीचित्र' ---

(१) किस्तिष् धाना हुमा यह सक्ष्य पहचाना नहीं, गाये ऐसा भना या और जुछ पाना नहीं, माना में है कहीं ठहराव राही तू बता--इस तरह ठहरा नहीं मानो कभी चाना नहीं।

(2) सावना जिननी के उतला क्रम निषेता ! बाज मिस पांचा नहीं तो कल मिसेना। ! क्यर्च ही चिन्तित, जटक निश्चास रख तू-सावना से साज्य का सन्बस्न मिसेना।

सम्पारकीय--

## तुम्हारी दास्तां भी न होगी दास्तानों में

मारतीय संस्कृषिक कर से बाज्यस्थामा तथा राष्ट्रीवता के प्रथम उमायम सानन्यकर वृष्टि बयानन्य ने सानन्य मार्ग प्रशास प्रशास के सिए 1875 हैं ने बन्धर्म नगरी में बायसपाय की स्थान्य भी । बायसपाय कभी एक समन्ती हुई मार्ग वो विसले सपस्त सानाधिक पूराई पास्क्रम, सन्ध्रिक्तास, कृठ करेब बीर सक्कारिया सस्पीकृत हो जाने इस प्रथमती थी । सम्बर्गमाय एक सान्योलन का । बार्यसमाय एक सच्चाई थी। सायसपाय एक प्रामाधिकता थी। सायसमाय का प्रयोक साथ समा-सद एक नमारी किरती जीविक साम्रस सस्या होता था। चोर सबकार से भी सह एक संस्था का रीपक होता था।

दरन्तु दुर्शास्त्र से बाजादी के काद इस महान समठन की धरिन श्रमाधित होकर बीरे-कीरे राख से बकते लग नई। बायसमाय सुले मैदान से इट कर सत्था और अवनो की चहारवीयारी में बन्द हो नवा । सत्याको में गैर बाव समाजियों का बाहुत्व हो नया । संस्थाओं के समामन के लिये उसे राज्या-श्रक लेका पढा और फिर धीरे-धीरे सामान्यतया पाई जाने वाली सभी बुरा-इयां इत्वे भी जाने सब वर्ष । कुछ ही संस्थाए इसका जपबाद रही । धन्यवा प्रजातन व्यवस्था बंदरान के स्थान पर धायसमाज के लिये प्रशिक्षाप बन गई। कोरी सक्कारमक सवस्यता सिद्धान्त विहीनता निष्कियता शक्रमण्यता बुटबम्बी, बार्टीबाजी समविद्यीतका, धन यता तथः धनैतिकता धामसमाजी ने प्रवेश कर नई और बाजादी के चालीस वची बाद बायसमाज की नह प्रनित दुक्त सी नई थी। धायसमाधरूपी शलवार की धार कुल्द हो गई वी। हम इसरो के पिक्कमन्त्र या स्वार में स्वार मिलाने वाले और भायसमाज के नाम पर अपना भर भरने अपना शाक्षा जमकाने अपनी रोटिया लेंकने अपनी राजनैतिक बाकांकाको की पूर्त करने वाले बन गये । बाबसमाज को रीजी-रोटी का नाधन बना निया : भाववेशिक स्तर पर जनवन्य एव सनन्यवादी नेशरू होने के कारण हमारा यह प्रवल श्रवल श्रवल स्वास्थितिवादी हो गया । इसकी बाबाज की महत्ता बरम हो गई । स्वामी श्रद्धानन्द प लेखराम जी महारमा हशराज स्वामी दश्वनातम्ब स्वामी स्वतंत्रतानम्ब स्वामी स्रवेदानन्द स्वामी ज्ञुवानन्द की धनश्यामसिंह जी मुप्त बासे नेताओं का सानिध्य प्राप्त करने वासा तथा रामप्रसाद विस्मित भीर भगतसिंह असे

फारिकारियों की चन्य देने शावा, निवास हैदराबाद की कुका देने वासा वार्यसमाय कहा बता गया ।

इस चोर असक।र की देशाने साशा का एक दौर दन कर सार्थ जगत के युवा सन्वासी स्वामी सम्निवेश जी ने 101 सन्वासियों के साथ नारी उल्लोबन एवं सदी प्रधा तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध दिल्ली से दिवराला तक की जनजातररा की पदबाना का ऋत्यिकारी सकल्प नेकर तथा उसे फिनारमक स्वरूप प्रदान कर इस आर्यसमाजरूपी बुक्ती हुई धरिन को पून अञ्चलित करने का सवानाद कुका है और देख के तमाम पत्रपत्रिकाओ, बुद्धिजीवियो जिन्तकों समाज सुधारको तथा देश की खोई हुई चेतना को सत्य का पक्षघर भीर असत्य का बिरोधी बनने का दिशा निर्देश किया है, पायसमाध की जबता से क्याया है उसे अपनी सक्ति और तेजस्थिता का किचित माभास दिया है इसके लिये वे बहुत नहाई और अन्यवाद के पात्र हैं। ब्रायसमाथ के बोटी के वेटा प्रस्तिय ममय पर बहती हुई ग्वा में हाय क्षीने के सिबे उपस्थित तो हो बने और प्रपूरी उपस्थिति जतभा दी पर प्रभी वधास्थितियादी वाधसमाज का सन्दर्भ सकिन नहीं हुआ है । काश ! अन्तिन चडियों ने हवारों की सक्या ने साम-समाजो की धोर से बाय नर-भारी और नेतानख पश्चते बीर इस बाल्वोसन की साथकता को पर जोर समयन देते । पर ऐसा नहीं हुआ। श्रीन सवाम पक्षते ने कि सकत इतनी कम नयो ? सरकारी प्रश्निकारी व्यास्य करे स्थरों में कहते कि कुछ बात है धडवन्दी है इतने कम क्यो ? उत्तर देने वासे देते पर मन ने वे भी अपनते ये कि माजराक्या है।

ईश्वर धीर वेद के नाम पर चलने नामे इस महान स्वक्त के कार्तिकारी विधारशारा वाले धान्तवेश युस्य धन्नि पुत्र मने नगे, तभी हमारा गीरव पुत्र प्रतिष्ठित हो सर्वेगा । वाद रखीं—

बतन की फिक्क करों ए भाषानों मुतीबत विश्व पर बाई है, दुम्हारी बर्बादियों की वर्षाए हैं शतमानों में ! ऐ सम्में तुम छब भी न सम्मते तो, याद रखो दुम्हारी वास्ता की न होनी सम्सानने में !"

— रासासिह

## विदेशों में नारी की स्थिति

नागे अधिकारों के तथकियत प्रयक्ताओं डाग बार बार वह कहे जाने क निवे जाने के कारण भारतीय जननाभारण के मन म यह धारणा इव हो स्वी है कि भारतीय नागे की सपेशा विदेशी नारी अधिक स्वतन्त्र और गरमान्युच्च जीवन व्याता करती है। मिंव सनेक महिला धनक्यों से जुड़ी प्रबुद्ध महिनाभों को वह साल करते देखा है कि भारतीय नारी की तरह विदेशों में नव मनाव गारी को प्रताबित नहीं कर सकता। जबकि स्विति इसकै विन्कृत विषयीत है।

समेरिका को विश्वविकास मयाचार परिका 'टाइस' से अकासित एक रिपोट क सनुसार विश्वों में नारी की दिवारि सारतीय गारी से बेहतर लड़ी है। रिपार क सनुसार विश्व में तबसे सकत देश समक जाने साथे समिता म प्रतिक्व 2 मिनियन से वे मिनिया तक सीरतें स्थान परित सा सोरतों से पिटगी हैं और उत्तरी ही साटाओवाइल्क दुवटनासा-क इसनी ही बसात्कार आदि की निकार होती हैं। एक बी बाई के कब्बानुनार प्रति चार बिक एक बीरत उसके परिचित्र द्वारा मीत के बाट उतार दी बाती है। और इस वसम में निकेष उस्मेवानीय यह है कि ऐसी गारी उस्मीवन की बटनायें कम कर्द किये सोनों में ही नहीं, बरल उच्च विका प्राप्त बीर उच्चवर्गीय सोनो में बी होती हैं।

रिमोर्ट के समुक्तार-धनेरिका ने नारी उत्पोबन ने 'मानविक स्ववस के' मुक्ते की स्वतन्त्रसा पर प्रतिकत्व पैसा नहीं बेना और सङ्घासक ह्रांचा कर बालना भी कानिक है।

पणिका का कहना है कि वहीं का कावान व्यक्तिकांबेर-द्वी समये व्यवसाय में उसनि के विश्वेष कर बढता जाता हैं, स्थो-एके हों उसकी समये प्रची-में मिका पर वर्षका राजने की भावता समयकी होती साती है।

ा तेवा पुष्ट ६ वर १

## हिन्दी, हिन्दू धर्म व हिन्दू : कत्तिपय भ्रांतियां एकं विसंगतियां

"प्रमाद" के राज्यासक भी विश्वासायर विश्वासनार के हिन्दू सर्ग, हिन्दू व हिन्दी विकास कतिएवं विचार विन्तुमों को उठाकर उमका समस्पर्शी विश्ले-करण किया है जो दिन्कुको (बीक, सिक्द, बीग, प्रार्थसमध्य एक हिन्दू राष्टी-यदा के:जिन्दकों) के सिने दिशा बोक्क है। वहां तक हिन्दी लाका का प्रशन है वह भाव रास्त्र के व्यानोह तथा कुविद्यारक्ष की मीतियों एवं तथाकवित क्रमेरियरोग्रस्ता के जाता ने सारक कर विधारित सम्मानपूर्ण त्यान सहस्र नही सह भा पही है इसकी व्यानकार बीच फाट्र की एक सुनता में बाद सकते की शनसः को, प्रावेशिक क उर्दू साथि भक्तकों को, करने में रूप ने सागने साकर कु ठित कर दिया जाता है। दूसरा बाधक कारण यह भी है कि हिन्दी भाक्त को हिन्दू बाधा के साम जोडकर इसकी व्यानकता पर संक्रीकाता का ब्राजरण वडा दिया गया है। प्रान्तीय भाषावें भी इसका सपनाव नहीं रह सकी है। यही कारण है कि ये भाकारों धर्म विकेच के प्रान्तवादी सकी में-शाराको के साथ वृद्ध जाने से राज्दीय अखण्डता ने सहयोग वेचे के स्थान पर प्रकृतावादी प्रवृत्तियो तथा शरम्प्रदायिक तमाको को उत्त्रे रिक्त करने लगी है। बाज हिन्दी बाबा हिन्दू के साथ जुड जाने से सकीर्थता के दावरे म देखी जाने लगी है यही कारता है कि देश के राजनेता भी इस धारीपित सकीर्णता को अपने सही चामे से न देखकर धारीप लवाने वालो का चामा चडाकर इस भाषा को प्रभावी राष्ट्र भाषा बनाने में भय का धनुभव करने लये हैं। हिन्दू के लाग हिन्दी जोड़ने की दुर्मान्यपूर्ण भ्रान्ति ने जन्म उसी समय से से निया है जब से हिन्दू विचारप्रारा को धर्म के धावरण से आवेज्जित कर क्या स्था है। सध्य तो यह है कि हिन्दू धर्म की भाज तक कोई सर्वसम्बद व्याख्या नही हो सकी है, क्वोकि भाधार मुस्पब्ट नहीं हैं।

#### हिम्बुत्क क्या है ?

स्कृत एव प्रतीक पूजा, अष्ट्रदेवनाद, भाग्यवाद, गुनर्जन्म, टोटमवाद, सनेको स्थ प्रम्य (पुरास, नीता, भाववतादि) मादि की विभिन्नतामो ने हिन्दू की परिभाषा करने में बच्ची जटिसतार्थे उपस्थित कर दी हैं। इनमें स्थान प्रतिमान नाम की कोई भरे कीथ नहीं हैं। विशिवता ही हिन्दुमों के विश्व-राव का कारण रही है। इसी से इस पर शाकनए। हुन और शपनी विश्व -वाश करिक के कारका नवैंव पराजन का मुह देवना पटा। इसी विश्व वस ग्रीर विविधतायुद्ध पौरास्त्रिक भारतको 'हिन्दुत्व''की सन्नाउन लोगाने प्रधान की को बाजनता थे। कुल निसाक्तर वैदिका सैवा वैष्त्रम, शाक्त एव **अ**श्चरतीक सस्वानत मान्यताको का विका बुला रूप हिन्दू है। वद्यपि मुसल-मानो ने बाकमरा करने के उपरान्त हिन्दुमो पर हिन्दुस्व का मारोपस भीगोलिक कारएं। से किया यह । जैसे सिन्धु नदी के पार रहने वालो की हिन्दू कह कर पुकारा गया। उपासना पढितः की विनरीतका<del>यक</del> मुनलमानी भी बस्टि में हिन्दुप्रो की प्रति सवा होन बस्टि रही । इस बस्टि का एक कारण यह भी वाकि कही सती⊤ की परपरानुसार वे भी हिन्दुसाकी धाराने विलीन न हो जायें जैसे कि वहां सक, हूग भावि साव और हिन्दुओं मे विश्लीन हो नये। आगयद लाला लाजपत राय ने इसी कारण हिन्दुओं की नमक की खान की सबादी है। अस्तु। आज स्थिति यह है कि चीन तथा बोरोप ने लोग "हिन्दू ' को धर्म नहो मानते केवल हिन्दोस्तान की एक सास्क्र-तिक जारा का मनक्का एवं भारत देश की पूर्ति स निष्ठा रखने वाला स्वी-कार करते हैं"। कहा जाता है कि सरव देती में साज भी भारत से अने बालों को हिन्दू नहाजाता है जबकि भारत में स्थिति इसके विपरोत है। सिक्ष बीड, जैन व आयसमाजी अपने को हिन्दू स्वीकार करन से कसराने F बहाँ तक कि जनवस्तमा में भी इनमें से कुछ वर्ष अपने की महिन्दू निकान क्षमे हैं किन्तु विमही बैंदिक मान्यताची सम्कारो तथा परम्परागत मानुविम-करत के सट्ट बन्धनो यस धार्यनमात्री हिन्दुघो से पृथक होन की स्विति म महीं था पावा है। उल्लेखनीय है कि हिन्तुग्री की पराजय की लम्बी भू बला बक्त तथा विन्यु बाल मान्यताची के कारला मध्यवर्ती काल म ही 'न मैं हिन्दू व में मूर्तिकार<sup>में</sup> की प्रशायनवादी धारा का जन्म नन्न कवियो ने इस कारण दिया कि कही हिन्दू व बुस्लिम होंने का ग्रामकाप उन्हें न मोयना पडें । यहीं

ल्यिति बाज भी बनी हुई है। जैसा कि उत्पर कहा जा चुकर है हिम्दू को सान्त्रदायिक सकीर्णता से जकडने का सुनियोजित पडयन्त्र श्रह्मसम्बद्धे स्था उनके बोटो के लोलूप राजनेताओं द्वारा चलामा आ रहा है शकः साथ भी हम हिन्दू होने का गौरव अपने दूर्वल एव डावाडोश मत्त्रस से नहीं सजो पा रहे हैं। बाज हम वर्ष से नहीं कह पा रहे कि इस हिन्दू है। यह मनोवैदा-निक दुर्गलता जहा सुनियोजित बक्यन्त्र की देश है बहुद हिन्दू को "कर्ब" मान लेनार्किन्तु माधार निश्चित न कर पानाधी है। आरम्बर्सन हिन्दू सस्कृति धर्म क्यों नहीं है ? कारण स्पष्ट है कि इसका प्रवर्तक, बर्म ब्रन्य तमा स्पा-सना पद्धति एकस्य विहीन है हम केमस "धनेकता वे एकता तथा एकता मे धनेकता" का बाकर्षक नारा बुसन्द कर शपनी दुवंतका को तुम्द कर लिया करते हैं। यह दुर्बलता न इस्लाम मे है न ईक्षाइयत मे, पार्वसमाय का वैदिक धर्म इस रिष्ट से धद्भुत भीर सर्वोत्कृष्ट है वहा एकत्व का सार्वकालिक एव शास्त्रत सिद्धान्त विद्यमान है। बेद तो इस बाद का है कि साब का हिन्दू (पौराखिक) वेद पर आस्वा उसी प्रकार की रखता है जैसी अन्य निर्धंक मान्यताची पर । यही कारता है कि विवासन का यह अधिकाप बाज उसे सर्वनाश के कवार पर वसीट लाया है।

एक विभिन्न रिक्षति और है विससी और औ निवासकार की ने हुनारा ध्यान आइब्द किया है वह है को परिवर्तन की ।

अह सरब है कि पहले समय में हिन्युयों में से कोई वी बौद्ध, सिख, जैन व बायसमाजी बनकर भी हिन्तू ही बना रहता था, उसी देख व भौगोलिक स्विति से जुड़ा रहताथा किन्तु मुसलमानो ने हिन्दुक्यो का वर्ग परिवर्तन कर उन्ह देश तथा भौगोलिक स्थिति से पृथक करने मैं श्रदभृत सफलता पाली। धीरे-धीरे वह भोन सापत में फैसने लगा जो साम देश की असम्बद्धता बनाये रक्तने की दिक्ता से दुनियार्थ समस्या तम चुका है। सिख, बौद, जैन वन कर भी हम हिन्दू कारा से जुड़े रहुना नहीं चाहते । इस पृथकताबादी छारा का कारका धर्मपरिवर्तन की वही सकामक गुलका है जिसकी मुसलमानो ने शुरुवात की वी। एक विचित्र स्थिति यह भी देखी नई है कि यदि हिन्दू इस्साम धर्म स्वीकाण कर लेखा है तो उर्जू भाषा की बकासत करने सगता है क्षीर हिल्दी के प्रति उसके मानस में हेच पनको लक्ता है जबकि मुसलमानी भीर ईसाइयो द्वारा हिन्दू बन आने पर भी हिन्दी के प्रति इसकी उत्सुकता कीर प्रेम नहीं देखा जात। है। कारता स्वब्द है कि हीन भाजना प्रस्त तथा वहमन्त्रा से प्रताबित हिन्दू हुए सच्ट से सक्तेशका के बायरे में विश्वय कर रह गवा है ''दैबो दुर्वन चातक' के सिक्काम्तानुसार सब हिम्बू स्क्लेन्द्रित तया मस्कृतिकरण के भावरण से विख्य नहीं रह गया है। सकरता ने उसका ठोसपन समाप्त कर दिया हैं । धर्मगरिवर्सन की विभीविका का मामना धार्यममात्र ने इन्हीं दुष्परिस्तामी को बिष्टबत रखते हुए मुद्धिकरस के भान्ती-लन द्वारा किया वा।

माराज कम यं यह जहां जा नकता है कि काज हिन्दू धारा की वार्ति-कता तथा उसके साव्हरिक एव गायुवादी स्वक्त को धारित्रजा की प्राप्त सवाची प्रवचना से वचावर ठोन धावार देने को वर्दी धावध्यनता है एक धाँ, एक प्रवर्तक, एक देन्यर व एक वर्ष प्रत्य विन्मा स्वीकार हिन्दुस्त का न सारस्वयन मिल तकता है धीर न ही गीरवपूर्ण एकस्त की प्रपराचेय मिलि। यह भी प्रावयक है कि ह्य मौतिक प्रविकारों में ममानता लाने हा स्व-वुल्य करें धीर कस्पवक्रमक, सबस्ँ, अववर्ग नावा कुर्यक्कित मीटो की विचटन-वारी राजनीतिक नीतियों को वलपूर्वक नोट वें जिससे वस्त प्रिचर्तन, प्राप्त-वार, प्रावचाद तक्त जीनवाद के प्रविकार से देन मुक्त हो तके भीर प्रवच्यन के धावारों को वल प्राप्त हो तके।

## भारत की फट का कारण: 'आर्य' और 'द्रविड' शब्द

— स्वामी समर्पछ

भारत में फट के लिये सबने अधिक उत्तरदाता विदेशी सामन वा. यदाप बह भी एक वोरखनन्त्रा है कि एकता के लिवे भी सबसे अधिक उत्तरदाता विदेशी शासन या ।

हमारी फट के कारण विदेशी शासन हम पर आ धमका। देश के जाव-नक नेताओं की बुद्धिमत्ता से एकता की बाय अञ्चलित हुई । विदेशी सासक मान ने ईक्षन और निवेत्ती जल्लाचार भी का काम देते रहे।

चन्त ने निदेशी शासको को भस्म होने से पूर्व ही भागना पढा ।

परन्तु अब विदेशी फूट डामने वाली का स्थान स्वदेशी स्वार्थियों ने ने लिया ।

हिन्दी के परम लगर्बक तथा कम्युनिस्टो के परम तत्र राजगोपालाचारी. मधे जो के निरते हुए दासतामय भवन के सबसे बड़े स्तम्भ बन बये ।

जो प्रोफेसर अधे जी इतिहासकारों के भासनों पर धासीन हए वही 'बावं' त्या 'हदिक' सन्दो के प्रनर्गल प्रथी ने प्रयोग को भारत की छोटी से छोटी पाठवाला तक पहुंचाने में सबसे वह सहायक बन वबे !

मैं दोनो भुजा उठाकर इस अनर्थ के विरुद्ध सखनाद करना चाहता 🖟 । मेरा कहना है कि सारे सस्कृत साहित्य मे एक पक्ति भी ऐसी नहीं जिससे धार्य नाम की नस्त (Race) का धर्ष निकलता हो। इस सब्द का सम्बन्ध (1) याती चरित्र से है (2) याती भाषा से (3) या उस भाषा को बोलने बाले लोगों से (4) वा उस देश से बड़ा इस प्रकार के चरित्र और प्राचा वाले मनुष्य बसते हैं परन्तु किसी बीरे रव बाली ग्रथवा सम्बी नारु बाली जाति से इस जरूद का कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

इसी प्रकार द्वविड कब्द बाह्य एगे के दक्ष कुलों में से 5 कुलों में होता है जिनमे सकराचाय जैसे बाह्यस पैदा हवे।

श्रवका मनुस्मृति के उपलक्ष्यमान सस्करल के बनुसार इविक उन श्रविय आतियों में से एक है जो 'आश्वारस्य वर्जनात अथवा बाह्यसमानदर्शनात बुधनत्वम् नता ।" क्षत्रियोचिन भाचार खोब देने तचा ब्राह्मणो के साथ सम्पन्नं नष्ट हो जाने के कारण बुद्र कहलाये। किन्तु काले रन तथा चिपटी नाक का द्रविष शब्द से काई दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

#### कार्य धीर इविष शब्द

मैक्डानल की वैदिक रीडर मंजा कि आज भारत के सब ही विश्व-विद्यालयो तथा महाविद्यालयो म पढ।ई जाती है लिखा है ---

'The historical data of the hymns show that the Indo-Aryans were still engaged in war with the aborigines, many victories over these foes being mentioned. That they were still moving forward as conquerers is indicated by references to rivers as obstacles to advances '

"They were concious of religious and racial unity, contrasting the aborigines-with themselves by calling their nonsacreficers, and unbelievers as well as 'black skin's and the 'Dasa-colour as opposed to the Arvan colour'

'ऋग्वेद की ऋचाकों से प्राप्य ऐतिहासिक शामनी यह विचाती है कि. इण्डो-इप्यान लोग लिन्धु पार करके फिर भी भारत के अपदिवासियों के साम मुद्ध म लगे हुए थ । इन गत्रकां पर उनकी नई विजयो मा ऋग्वेद मे वर्णन है, धभी भी विजेता के दर गाने बट रहे थे। यह इस बात से सूचित होता

विदेशी विद्वानों ने हमारी राष्ट्रीय सवाबता को वाख्त करने व उद्दर्थ से ऐसे साहित्य की रचना की जिससे हम क्षम ने पडकर एक-इसरे की अवसा दुश्मन समझ कर लडने लगे।

प्रस्तत लेख में विद्वान लेखक ने इन विदेशी विद्वार्थी द्वारा शब्द की मस्मिता की खच्छिन करने वाले व्यायन्त्र का सप्रमाण और विश्तृत विवरण प्रस्कृत किया है।

है कि वे कई स्थानों पर निवनों का धपने ब्राध-प्रवास के बार्ग में बाह्य के रूप ने वर्णन करते हैं।"

"उन्हें यह प्रमुख्य का कि उनमें जातिकत तका शामिक एकता है। वे बादिवासियों को अपनी तुलना ने वज हीन, विश्वास हीन" काली चनडी नाने, दास रव नाने तना अपने भाग को आवें रन नामे कहते हैं।

यह सारा का तारा ही आयोगाना अनगैन प्रमाप है। सारे ऋगोद मे कोई मनुष्य एक मध्य भी ऐसा विश्वा सकता है क्या जिससे यह सिक्ष होता हो कि काली चमडी वाले वादिवासी वे और भार्य रक्क वाले किसी और देस के गिवासी थे।

अथम तो बेव में काली जमबी वासे (कृष्णात्वच ) यह क्षव्य ही कहीं उप-लम्स नहीं भीर नाहीं कहीं गौरत्वच ऐसा सब्द है।

हाँ, 'दास वर्णम्' 'भावंम् वर्ण' यह दो शब्द हैं जिनकी दुर्वति करके काले-मोरे दो दस कल्पना किये नये हैं। हौताकि चारो वेदो ये विशेष कर ऋग्वेद में कोई एक पक्ति भी ऐसी नहीं है जिससे यह सिद्ध होता हो कि 'कार्यम् वर्णम्' इस देश में बाहिर ते आये, और 'वास वर्णम्' यहाँ के मूल निवासी (Aborigines) वे ।

बदि इनके बुढ का वर्णन है, तो वह युढ क्या एक ही देश के रहने वाले वो बसो में नहीं हो सकता, इन दोनों में से एक दल बाहिर से झाया बा और दूसरा सादिवासी दल वा इस कल्पना का एक ही और केवल मात्र एक उद्देश्य वा, भारत मे पग-पन पर फूट फैसाने नासे तथा भारत के एकता के परम कन् अभेजी सातको की दवा वैदिक धर्म होही पावरियो की दृष्टता। ग्रद अञ्चेत्र ज्ञानक चले गरे।

न्या जब भी हमारे देशवासियों की जाने खलेंगी ?

जार्थवर्ष तथा दाशक्ष

सांस जारा

इन सब्दों की परीक्का करकें

वर्ण तब्द का प्रवंदस प्रस्य में Colour है ही नहीं। धातु-पाठ मे रव-वाची वर्ण शब्द के सिये वर्ण धातु प्रवक्त ही दी वई है परन्तु निरुक्तकार ने इस वण सन्द की न्युत्पत्ति नृधातु मे बसाई है। बसारे वसीते (निरुक्त)।

बाह्याए, क्षत्रिय, वैक्य, यह तीन सार्व वर्ष 🐉 क्योंकि सत्य द्वारा धमत्य नाम्न, बल द्वारा धम्याय का नाश्च, छन द्वारा दारिप्रय का नाम यह तीन वत हैं।

इनमें से जो एक बत का बरशा अर्थान् चुनाव कर सेता है उसके वर्शिक का जीवन अपने वर्ष की मर्यादानुसार अस्यन्त कडोर नाप-तील मे बश्च जाता है इमलिये वह बत बार्थ-वर्ण कहलाता है।

जो अपने कापनो सब प्रकार की शक्तिको से श्रीरत पाता है परन्तु स्वेचना पुरुष ईव्योरहित होकर जीक क्ल्यासार्थ किसी बत बासे की सेवा का बस ले लेला है वह दान वर्ण कहसाता है इसलिये शूड़ो के दासान्य नाम कहे हैं। ओ दन हीन है यह दास नही, दस्यू है।

उन्हें बबता कह कर बत वाले जनसे युद्ध करें यह विलक्त न उक्ति ही है। यह ब्रतधारियों नावत हीनों से ह्यान बोरों का अम-शीनों से सवाम नदा से बला प्राथा है प्रीर सदा रहेगा। वह दोनी ही सदा से धरती नर रहे है इसनिये दोनो ही धरता के भाविकासी, मध्यवासी, स्वा धन्तवासी हैं।

ग्रस्तु Abirigines की यह कस्पना विसकुल निराधार है। इसका वैदिक भागमय हो क्या सारे संस्कृत साहित्य में बर्णन नहीं।

श्रव देखना है कि मार्थ मध्य यदि काति विशेष का नावक नहीं सो यह विनवा वाचक है।

इसके निये इसकी म्युत्पत्ति को देखना चाहिये ।

बार जब्द 'ऋ वती' (R: to move) इस धाद से बना है।

(क्षेत्र पुष्ठ 5 पर)

(वेव पृष्ठ 4 का)

पएन्द्र व्ह शादु का वर्ष वृति है इसमा को व्याकरका से जात हुने गया। क्या निक्सत प्रक्रिया के केवाबा चाहिये कि वह बादु वर्ष किस प्रकार की मवि 🐉

इंतर्के निवे दो शक्तों को के सीजिवे । एक ऋतु, शूकरा ऋतु, मृद्ध का वर्ष है परिनित सबय ।

बीम्न फ्यु व्यवस्थि के लिये निवस, नपा हुमा समय,

बर्का ऋदु = जिसके क्याँ होती है वह क्या हुआ सजब,

**बरव् ऋतु — किसने सरवी वर्ड क्ह** बना हुन्ना समय,

बसन्त ऋषु = जिसमे सरदी से धुन्छ कोहरा बादि झानसथ है शान्छादक मुचों का बन्त हो जीए बनबीसोच्छ प्रवस्था हो नह नगा हुमा समय.

इस प्रकार 'ऋ गती' का सर्व हुआ। ऋ ≕ मितगती प्रयीतृ नाप के शाव चसना ।

इसलिये जो पदार्थ जैसा है उसके सम्बन्ध में ब्रन्यूननातिरिक्त, ठीक नपा तुक्षा ज्ञाम कहसाता है - ऋंत इसके विपरीत अन् + ऋत

म इसका विलकुत सम्देह नाजक प्रयास शीजिये

**वर्व**न्तोमित इव (यबु-9)

ने चोडे जो इतने सम्रे हो कि दौडते समय भी उनके पन नाप तोंच के साब बठें, परिमित हो, ठीक तुपे तुसे हो वे प्रहंत कहनाते हैं।

इसी ऋधातु से बावं सबद बना है। इस सब्द के सब्बन्ध मे परिएती का सूत्र है "क्वर्य स्वामि वैक्वो " बार्य

सब्द के वो धर्व है एक स्वामी दूसरा वैश्य :

इस पर वोरोपियन विद्वानी की बात-लीसा देखिये !

् उनका कहना है यह शब्द ऋधालु छै बना है जिसका ग्रम्बं है नेती करना ।

वह 'ऋ क्ष्मी'

बातु उन्होंने कहाँ से दू व निकासी, वह शकाच्य ताव्यय भी देखिये । मार्च का धर्व है स्वामी समना देश्य

बैंक्य के तीन कर्म हैं —

(1) इन्वि (2) नोपासन (3) शास्त्रिक्य।

सो नयोकि सार्व का सर्व है बैंक्य और वैक्य का कर्न है कृषि इसलिये म्ह्यातु का अर्थ है खेती करना ।

वलिहारी है इस सीमाओरी की,

 क्यो जी, वैश्य के तीन कमों में से व्यापार और नोपासन को छोडकर मापने वेती को ही क्यो चुना ?

इसका कारण उनसे ही सुनिये।

अबेजी भाषा ने एक सब्द है Arrable Land सर्वात कृषि-योग्य भूमि । यह जय्द जिस भाषा से प्राथा है उसका धर्व बेती करना है इसलिये संस्कृत की ऋषातुका वर्ष बेती करना सिद्ध हुआ, क्योंकि हिन्दी ने लुकना सब्द खिप जाना है इसलिये Look at this room का धर्च, इस घर में खिप जामो. क्योंकि हिन्दी जावा ने हो का पर्व बेटी है इसलिवे वेद ने भी भी का **प्रवं** वेटी हुगा ।

सुनिए लाल बुभस्कद की।

वह सर्च जो

(1) अवासी (2) रुचि (3) गोपालन (4) व्यापार।

इत चारी ने समाप है, वह है नाप तील के साथ व्यवहार, स्वामी से भूत्य भी नेतन पाता है वह नाप तोश के बश पर पाता है।

'केरी के बोन्य कृषि को नादमा पबता है क्योंकि इस पर लगान नगता 'सम्कृत सभावण किविर' का मानीजन किया क्या है। है, इसीनिए जरोज़ी में भी इनि योग्य भूमि Arrable Land बहुलाती है

बोधानुद्र, श्रदने बाला हुत नापता है क्योंकि उस पर उसकी बाजीविका निसंद है।

व्यापारी के नाप तोल का तो अक्त ही नहीं बढता वहाँ तो नारा कान मेला' 22, 23, 24 और 25 जनवरी, 1988 को नमाया जा रहा है। क्रीभागभोल का है। वैक्य क्षमदाई से कहिए लाला जी लब्बू काने हैं पुरन्त

भागका स्वावत करके भागको भासन पर बैठाएवा छीर प्रति मधुरता पूर्वक पूछेगा कितने और यह 'कितने' वैश्य कर्म का ग्राधार है, इससिए स्वानी भीर वैश्य दोको सार्व कहलाते हैं।

स्वानियों का स्वामी परनेक्षर है,

भार्य का सर्वे है ईस्वर कापुत्र सर्वात् स्वामी का पुत्र सर्वात् परवेशवर का पुत्र ।

परमेक्वर का गुल है न्याक्पूर्वक निवमानुसार नाप-तोल कर कर्मी का फल देना १

जो ननुष्य इसी प्रकार तबके लाग प्रीति पूर्वक कर्मानुसार वधागोग्य व्यव-हार करता है वही भववान के बुख़ों को धारल करने के कार्यस उसका सच्चा सपूत है। परमारका का एकलौता बेटा कोई नहीं। सुब्दि के बादि से साथ तक जिन्होंने नाप तील युक्त व्यवहार किया वे बार्य कहलाये घीर जो करेंगे वे कहसाएवें बाढ़े किसी देश जाति प्रवदा सम्प्रदाय मे उत्पन्न हुए हैं। यह है ग्रार्थ शब्द का ग्रमं । जिनका जीवन सस्य रक्षा, न्यायरका ग्रमवा धन हीन-रक्षा के बतो से नमा-तूमा हो वे बार्य वर्ण के लीय कहलाएगे और उनका चुनाव किया हुआ वत झार्य वर्ण कहशाएगा ।

सम बताइए, कि इसमें गोग रव लाजी नाक सबदा भारत के बाहर के किसी देश से बाना किस प्रकार बायुसा, जिन वृत्तं किरोमिए लोगो ने इस पाष्ट्र की एकता के विध्वास के लिये इन पवित्र सब्द की यह दूर्वशा की है उनसे पन-पन पर प्रतिक्षत्ता लडना भीर तन तक, दम न लेना जब तक यह सक्तान्त्रकार घरती से विदान हो हर सस्य-प्रेमी का परम कर्त्त व्य है भीर राष्ट्रहितैषियो के लिए तो वह जीवन मरख का प्रश्न है। क्योंकि इसी पर राष्ट्र की एकता निर्भर है।

> — प्रस्तुति नवीन कुमार शर्मा \*\*

## आदर्श अन्तर्जातीय विवाह

जनिवार दिनाक 12 दिसम्बर EV ई को स्वानीय सार्व समाज अवन, केमरसब, मे भीलवाडा मे सेवारत उदयपुर निवासी प्रसिद्ध माहित्यकार एव नेखक श्री नन्द चतुर्वेदी के सूपुत्र श्री बादर्स चतुर्वेदी का आदर्स भन्तर्वातीय विवाह महाराष्ट्र वासी श्री प्रभाकर सदाजिय करकरे की सुपुत्री तृष्टि करकरे (हास उदयपुर वासी) के सहब वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। विवाह सस्कार ग्राचार्य गोकिन्द सिंह सास्त्री ने सम्पन्न कराया । सामाजिक कुरीतियो, दहेज प्रथा गावि कृष्टियों को त्याम कर किये गय इस मावर्श गन्तवातीय विकाह के लिए समाज के पदाधिकारियों ने नवदम्पनि की बासीबाँद एवं सुप्रकानाए दी ।

## मुस्लिम युवक की शुद्धि

33 वर्षीय प्रथमेर निवासी रकी धन्त्रुस का स्वेष्ट्या से धर्म परिवर्तन का प्राचैतः पत्र देने पर स्वानीय प्रायः नमाज भवन नेसरगज मे प्राचार्य गोविन्द निष्ठ के पोरोहिस्य मे मुद्धि सस्कार सम्मन हुआ और उसका नाम शहुल बावें

बाद मे पारस्परिक नहमति के बाधार पर एक सावनीपूर्ण नगारोह न कोटा निवासिनी कविता व्यास के साथ बैदिक रीति से विवाह सम्पन्न हुमा । इस ग्रदसर पर नगाज की ग्रोर से भी राहुल गार्व को दैदिक साहित्य भी भेंट किया गया।

#### संस्कृत-संगावरा-शिवर

वेद सरकान, सबवेर हारा 22 विसम्बर से 31 दिसम्बर 1987 तक ----घध्यक्ष

#### गुरकुल बसंत पत्रमी मेला

बुरुकुल महाविद्यालय, कल्वाश्रम (पौढी गढवाल) द्वारा 'बसद पचनी

-- विश्वपाल वयत



शाबार्य दस्तानीय भार्य परवातियों की सम्बोधित करने हुए 1



नारी उत्पीवन के विरोध ने, प्रजमेर के पवसावियों का भी रासासिंह के नेतृस्य मे जुलुस

### पदयात्रा में अजमेर का जत्था

स्वामी शम्तिवेश की 'नारी उत्पीडन' के विचड जन-वावरश के बिए की वई 'विस्ती से विश्वराला' तक की परमात्रा से आर्थतमान, सबसेर के 56 सदस्यो और पदाधिकारियों ने समाज के मन्त्री श्री रासासिह के नेतृत्व मे जयपुर से भाग शिया ।

18 दिसम्बर की सुबह पदवातियों ने समाथ-भवन ने एकतित हो सामू-हिस यस किया । तत्परपात समाय के प्रधान बाचार्य बताये व बार्य की भ्रष्ट्यक्षता मे पदमात्रियों के स्वामतार्थ एक सादे सभारोह का भागीवन किया नया । प्रत्य में बाचार्य जी ने श्वयात्रियों को बाशीर्य चन देशर समाध-धवन से पदयाचर में सन्मिनित होते के लिये किया किया ।

'समाय-भवन' ते पदयाची भी राशासिह के तेतृत्व में एक पुकूत के रूप ने 'नारी उत्पीक्षन' के निकड़ जमकीय करते अजमेर के क्ल-स्टैंब पशुप्र भीर वहा से 'दबानम्द बाक् मिक्केसन' की बस द्वारा वयपुर पश्चक कर स्थानी धान्तवेश जी के अल्बे हैं क्लिनित हो वने ।

सेष पृष्ठ 1 का चुका है कि किसी पार्टी विशेष से श्चमनी निष्ठा जीव देने से व्यक्ति ध्रपने सामाजिक या शामिक सगठन के प्रति पूर्ण मिष्ठावान नहीं एह जाता । सामवेदी मने लाख सफाई हें परन्तु उनका 23 दिसम्बर की सभा संकम्युनिष्ट पार्टीके ग्लीराम कार्यक की समालोचना (1) कर राजस्थान के मुक्त नती जोशी वी वकालत करना साम्रारख माय उन के मन ने उनकी एक ऐसी तक्बीर कः निर्माण करता है, जो एक आर्थ की नहीं काँग्रेसी की है। यह कहकर हम सामवेदी की नक नीयती पर किसी प्रकार का जक नहीं कर रहे हैं

लेकिन हमारे मत ने भी सामदेवी को ऐसे बक्तव्य या बाचरण से स्वय को मलब रखना चाहिए या, जो कि उन्हें एक 'झार्य' के स्थान पर एक 'काग्रेमी के रूप ने श्रविष्ठापित कर दे।

बहरहाल स्वामी प्रनिनवेश के नेतृत्व मे मार्थनमाच ने जो एक बाए पुन अपने कानिकारी और रचनात्मक सुधारवादी अभियान की शुरूपात पदधात्रा द्वारा साग्म्भ की है, उसे शंगातार जारी रखना चाहिए। माना की जानी चाहिए कि स्वामी ग्रम्मिकेस, भाग जगतू ने जो प्रपेकार उनसे लवाई है उन्हे पूर्ण करेंग।

हिं (केट्ट पुरु 2.का ) समेरिका की पश्चननगरि पुरुष की देवी शुम्बत और पिंड के मति निष्टा जावना के कारवा समित्रक की का विकार होती है। वहां का पुरुष भी उनको हीन बस्टि से देखता है। यहां की बौरखें प्रतिका पर बाच न प्राने देने के तिवे प्रपने युक्षी जीवन के विषय में किसी की बहु बतासी हैं भीर मुट-चट कर जोती पहती हैं ।

पत्रिका का कहना है कि प्रमेरिका के कुछ नवे कामून औरतो को उनकी कार्यशासाची प्रकरा नीकरी के स्थानी पर प्रशासना निषके पर ही कार्रवाई कर सकते हैं और पुलिस दोवी व्यक्तियों को पकड सकती है, लेकिन नहरी को जो घर की चार दीकारी में प्रशासना मिलती है, उसके विकट कोई जी कार्रशाई करने ने पुसिस और न्यानपासिका सक्षम गद्दी है ।

उपर्द का विवरता से पता काता है कि बाज के तकाकवित सम्ब विका ने नारी की कितनी वयनीय दक्षा है। विश्व के सावि पुत्र मनु महाराज का बहुमा हैं---

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ॥ मनु 3/54 ॥

जिस पर में नारी को उचित सम्मान विकास 🏖 बहुई देवशाओं का निवास होता है।

मीपानित भारती राग विश्वास्तुत्वानु त्रामुख्य त नयुः 3/57 ह

भीर जिल पर में नारी जाति कोषायुर स्वारी हैं कह बुल करते ही नष्ट हो बाता है।

नया प्राय का पृथ्य मनु के समान से मोई प्रेरशा से सकेवा ? —वीरेम्द्र शार्व

### पं. वीरलेन वेबधमी नहीं रहे

वेदों के सुप्रतिक्ष विद्यान प बीरतेन वेद सभी का का 22 विसन्बर की इन्दौर ने शकरमात् देहावसान हो नया । पक्ति जी चैविक यश कर्मकाण्ड के विश्वशिवपात विद्वान वे । इस क्षेत्र में वे सर्वोच्च स्थान रक्कते वे । उनके निधन में हुए रिक्त स्थान की पूर्वि असम्थन है।

देदश्रमी जी को बाय पुनर्गठन' पण्डितर अपनी विनम श्रहानसी श्रपित करते हुए उनकी भारमा की चिरजाति के लिये प्रमु से प्रार्थना करता है।

#### पं. उदयबीर शास्त्री को परनी शोक

आय समाज के दक्षनों के सुप्रसिद्ध विद्वान प. उदयबीर बाल्बी की पत्नी श्रीमती विश्वावती का 30 दिसम्बर को वेहावमान ही क्या । वह पिछले कई वची से पक्षत्वान ने पीकित थी।

'भाग पुन्तका परिवार की विनम्र श्रद्धावसी मृतका को सादर समर्पित

#### पाठको से निवेदन

#### सबस्यता सून्य सीम नेवें

हनारे शनेक तरस्यों ने मणी क्ष्म अपना बाबिक चुल्क नहीं चेना है । ऐसे सबस्य महानुषायों से विशव निवेषण है कि यह का बार्विक बूल्क बाद 15/-व सनावेश द्वारा श्रीम वेषने का सब्द करें। लाकि हुन प्राधिक स्वस्ता है मुक्त हो, पत्र का नियमित प्रकाशन करते रह सकें।

वहकोद की क्षत्रवा में

given, and the lesson pointed out. But when a band member is caught stealing the second time, he is punished severely, sometimes by death.

#### Some Economic Universals

- 18. No society has ever been found with complete communal ownership of property. Private property in personal belongings is universal Primitive communism thus appears to be another myth.
- 19. At the same time private property in the natural resources of the group is rare in primitive societies. No individual has exclusive "rights" in fishing areas or hunting lands on which the livelihood of the group depends Such property is held jointly, and must be passed on intact. One of the greatest breeders of conflict between the early settlers in America and the Indians was that the Indians followed this more normal definition of property in natural resources, while the settlers followed the special Anglo-Saxon custom. When they "sold" land for a few knives and beads, the Indians thought they were transferring hunting rights only. They were naturally bewildered and angry when the palefaces began to exercise exclusive ownership. The Europeans, on the other hand, felt that the Indians were liars and cheats for not living up to their signed agreements. Another tragic example of cross-cultural misunderstandings that lead to bad blood and war.
- 20. Free giving is a high virtue in many societies, while the desire for profit is often absent. Thrift and frugality, instead of being virtues, are often considered the reverse. Wealth is frequently used for conspicuous consumption rather than for increasing the stock of capital The Kwakiutl Indians of Vancouver hold prestige contests at feasts called *potlatches*, in which a man tries to shame his rivals by giving away or burning up valuable goods. Veblen played on this theme of conspicuous consumption in *The Theory of the Leisure Class*.
- 21. Some individuals are acquisitive, and so "all societies have had to develop techniques to insure a share of the necessities

to all members." Otherwise the greedier members try to monopolize necessities. All societies place limits on the acquisition of property. A recent technique to limit acquisitiveness in American society is a graduated income tax climbing well above

80 percent.

22. No human culture has remained long at the stark survival level on which classical economists most often base their hypotheses. "Economic Man" in economic theory, who always acts on the principle of the lowest cost, the largest take, and maximum efficiency, can be found only in books. Flesh and blood men elaborate the necessities, and begin to look for non-economic satisfactions as soon as they rise above the level of bare subsistence Indefinite elaboration is one of the most striking of universals. Even the Old Stone Age people etched designs on their axes Where is the economic justification for an Egyptian pyramid, a Maya stela, Chartres Cathedral, or the Washington Monument? Think of the progressive elaboration from a shepherd's pipe to a symphony orchestia! Economic theory which leaves out this universal behavior pattern is useless.

### PATTERNS FOR GROUP MEMBERS

- 23. Every normal person needs response from his group. Hermits and recluses are abnormal everywhere.
- 24. The individual needs recognition. Somewhere in the society he must think he has a useful place, even though a modest one, and that he is filling it adequately. This is demonstrated in the status structure of every society studied, and is of the utmost significance.
- 25 Prestige is a major motive for individual action, stronger than money in most societies. In American society we have, until lately, combined the two—that is, defined prestige in terms of money. The great depression, more leisure, and the graduated income tax, have relaxed the pecuniary standard a little in favor of other forms of prestige.
- 26. The individual constantly feels the need for a leader. He wants somebody whom he can trust in charge of his group.

- 27. The individual shows a deep need in every society for friends of the same sex.
- 28. He needs a way to work off frustrations. Continually obeying the rules of the culture burns him up from time to time, and to preserve equilibrium, if not sanity, he must let off steam. Americans have no recognized method for doing this, but other societies provide an official Saturnalia, fiesta, or Walpurgis Night, when taboos are ceremonially suspended, and the sky is the limit. Our nearest approach is perhaps the annual convention of the American Legion.
- 29. In the Victorian era it was fashionable to complain that "uncivilized" people—such as African Negroes or Mexican Indians—did not think logically, and were, therefore, hard to deal with. Only in recent years has it been made perfectly plain that civilized people do not think logically either. The record of the social scientists demonstrates that man is not habitually a logical creature. Shaw once observed that we only use our reason to support our prejudices—but that may be a little strong.

The record also shows that W. I. Thomas, the sociologist, was not far wrong when he wrote of the "four wishes" of mankind a generation ago. Every individual, he said, needed from his group four things: response, security, recognition, and new experience.

### Universals of Government

30 Linton makes a sharp distinction between "group," "government," and "state" A group or society he defines as any collection of people with a social structure. As we have seen, it is the transmitter of culture to the young, and varies in size from the face-to-face band of a few hundred, to all the people in George Adams's continent. The leaders of the group or society are by definition the government, official or unofficial. No society has ever been found without a government—which seems to leave the philosophical anarchists high and dry. The

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> In The Unadjusted Girl

state, however, is something different. It is the term for a society and its government organized as a sovereign power, prepared if necessary to wage war. This gives the state a number of unpleasant powers—unpleasant to the peace and comfort of the individual.

Without war, or the threat of it, we might not have an institution corresponding to "the state" at all. If war is a universal, it follows that the state is one too. But war has not been conclusively established as a universal culture trait. Some societies, like the Arapesh of New Guinea, apparently have never en-

gaged in it.

31. A well-knit, face-to-face band—say among the Plains Indians—holds formal government to the absolute minimum. There is not much for the big chief or the elders to do, for every member knows his place, his duties and rights, and disciplines himself so well that he needs little governing. The most successful nations, observes Linton, are those whose citizens feel toward their country in somewhat the way nature peoples feel toward their tribe. If citizens have this feeling, almost any form of government—monarchy, theocracy, democracy—will work. If they lack it, the finest constitution will be of no avail Looking around the world today, it appears that the Swedish people have such a feeling. The English have it in their native isle. The French have less of it. The melting pot must bubble a while longer before we get it in America, where a hundred pressure groups still are crying, "Me First."

### STATUS AND ROLE

Prepare now for a surprising universal! Quoting Linton.

32. "Individual talent is too sporadic and unpredictable to be allowed any important part in the organization of society." Social systems which endure are built on the average person, who can be trained to occupy practically any position adequately, if not brilliantly. If roles had always to be filled by Napoleons or Lincolns, they would often not be filled at all. But the social scientists concede that in periods of rapid cultural

change, like the present, many talented people come to the fore. This conclusion upsets some of our most cherished ideas about leadership, yet its logic is hard to answer The facts, of course, are only too clear. Practically all societies, for nearly all of the time, do have mediocre leaders. Just look around the town.

33. Status can be either ascribed or achieved. You are born to a social position, or you fight your way up to it. In feudal societies status is mostly ascribed, the son of a noble becomes a noble at birth, the son of a serf remains a serf. In America the accent is on achieved status—which is a technical expression for the success story. Any boy can be president, although it helps to be born in a log cabin. (The popular saga fails to remind us that up to now no Jewish boy, and no Negro has been elected president—but this too may change.)

Ascribed status reduces competition, rivally, and conflict. The citizen is easy in his mind, for he knows where he belongs and is comfortable there. One reason for tension and worry among Americans is the drive to achieve a higher place. Wave after wave of immigrants comes to a city, lands on the bottom with the most menial jobs and lowest pay, and then begins to fight its way up—Irishmen, Scandinavians, Germans, Italians, Poles. In New York, the Puerto Ricans are now on the bottom, even below the Negroes in Harlem They will not stay there, for the culture bids them climb. The process, though it generates plenty of tension, is an essential part of the American way of life. We do not accept an ascribed status.

Let me repeat that the above 33 universals are the result of a rough and ready analysis, drawn largely from Linton Qualification may well be in order as new facts come in to the Arca Studies File. But when all qualification is made, and the proper scientific caution expressed, the anthropologists' contribution is bound to stand out with luminous clarity. What they have given us is a comprehensive and compelling affirmation of the brotherhood of man.

# Cultural Chasm

In this chapter and the next we will tell two stories of the culture concept in action. The first reports a skillful analysis of the cultural chasm between English-speakers and Spanishspeakers in the American Southwest. The second story concerns a camp of Japanese-Americans, transplanted from their homes on the Pacific Coast during World War II, and how a social scientist helped to prevent a bloody uprising.

Medical personnel in Texas, New Mexico, Arizona, California, have had a difficult time dealing with two-and-a-half million Spanish-speaking people in the area. A social scientist, Dr. Lyle Saunders, with the help of Dr Esther Brown of the Russell Sage Foundation, studied the situation for some years on the spot, exploring the clash of cultures, and the great trouble which comes when neither group understands the language, customs, and belief systems of the other. Such things as the following are continually happening:

The Spanish-speaking couple who failed to report to the proper medical authorities the birth of a child, and its death one hour later, and who themselves buried the infant in a box in their yard, were not bad or heartless people. They were, of course, picked up by the police when their deed became known. But they do not deserve punishment. Instead they need an opportunity to acquire an understanding of our ways. They did what all people do in the tiny, remote Mexican community from which they came. They did what for them seemed right, what was customary, what they had learned to do from the people among whom they had lived most

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> See his book, Cultural Difference and Medical Care.

of their lives. But in the United States it was not right, not customary.

A cultural chasm indeed—what is right and proper in one society becomes a crime in another.

There are three main groups of Spanish-speakers in the South-west: (1) Spanish-Americans, who first settled in the Rio Grande Valley some years before the Pilgrims landed on Plymouth Rock. (2) Mexican-Americans who have become United States citizens. They speak the soft Mexican Spanish, but their children are increasingly bilingual. The culture of this group is a mixture of Spanish and Indian (3) "Wetbacks," who have waded the Rio Grande to become migratory laborers, illegal immigrants, and most welcome to United States farmers with crops to gather.

Dr Saunders' study describes the interrelations between the "Anglo" or English-speaking culture, and the Mexican or Spanish-speaking culture. The findings, intended for the use of medical personnel in the Southwest, are also valuable for similar borderline medical programs anywhere in the world. The World Health Organization, UNESCO, projects in technical assistance, Rockefeller Foundation projects abroad, are already using them to advantage. Beyond that, the findings are diamatic and revealing for anyone trying to look over the walls of his own culture.

## CASE WORK

Doctors and social workers in the Southwest find themselves repeatedly baffled by such situations as these:

A mother who clearly loves her child waits until he is critically ill before calling a doctor.

A patient with t.b. who walks out of the hospital to attend a family wedding.

Children, already retarded in school, do not appear until months after school opens.

A child, dying of leukemia, is taken from the hospital by the family and placed in the care of a curandera, or local herb-doctor.

Such cases are hard for "Anglo" professionals to understand. The natural reaction is to call names—"stupid," "ignorant," "childish," "irresponsible," "lazy," from which it is only a step to "genetically inferior." But to the Spanish-speakers, Anglos often seem to be crazy strangers, talking a harsh gibberish and making a fetish of bathing, of being on time, wearing outlandish clothes, their men degrading themselves by doing women's work, and showing alarming ignorance of the real nature of illness and disease.

What the Anglos often overlook is that medicine is a social activity. There are always at least two persons intimately involved, patient and therapist, and their relation takes place within a social system Medicine in every culture is, and has been for thousands of years, a vast complex of knowledge, belief, skills, roles, ideologies, attitudes, customs, rituals, and symbols, "interlocking to form a reinforcing and supporting system."

When the young doctor down from Ohio laughs off Juan's behavior as ignorant and irresponsible, the doctor really is the ignorant one. Juan is operating within a powerful and complicated system, which has rules about disease and its cure just as deep-seated as in the medical schools of Ohio, and far more ancient. There are at least 46 cures for rheumatism in Mexican folk medicine, some of them very elaborate therapies. Useless? Probably. But Juan does not believe them to be useless, and it is his belief which the Anglos do not allow for. He holds to it as firmly as they hold to cortisone.

### SEVEN DIFFERENCES

Analysis of the cultural chasm between Anglos and Mexicans reveals seven major differences:

- 1. Language.
- 2. Attitude toward time.
- 3. Attitude toward change and "progress."
- 4. Attitude toward work.
- 5. Accepting one's fate. Resignation.

- 6. Relation with one's group.
- 7. Attitude toward formal organizations.

## Language

Language forms the deepest cleavage. Anglos make little attempt to learn Spanish, though the Mexicans are all expected to learn English. It is possible to live out one's life in sections of El Paso, San Antonio, Los Angeles, without knowing a word of English. This creates a vicious circle of misunderstanding. Anglos tend to shout, hoping to make themselves better understood When the response is only a terrified no comprendo, the Anglo concludes that of course the chap must be stupid, he can't understand plain English and ought to go back where he came from. If the chap happens to be a Rio Grande villager, his ancestors got here in 1598.

Dr Saunders quotes the linguist, Benjamin Lee Whorf, showing how the language one learns as a child shapes his thinking throughout life. Our perceptions are organized around verbal symbols, what a person "sees," the meaning it has for him, is tied to the structure of his language and group experience. In English, a clock runs, but in Spanish el reloj anda, "he walks." This simple difference has enoimous implications. If clocks run, there isn't a minute to lose! If they walk, we can take our time.

In Spanish, a worker does not miss the bus, the bus left him—the culprit is the bus, not the person Spanish is replete with this kind of construction—buses leave people, objects lose themselves, automobiles wreck themselves, dishes break themselves by falling away from people. The English-speaker reaches into his box of categories and proceeds to label the Spanish-speaker as "lazy" and "unreliable."

The cultural characteristics of any people are not haphazard. They are all of a piece and built up over the centuries. The function of culture, as we have seen, is primarily utilitarian, to enable the group to survive. Every trait has, or once had, relationship to other traits and some relevance to the environment. New layers can be deliberately added, but old ones cannot easily

be taken away, although they may gradually erode through the process of cultural lag. When people move they take their culture right along, as much a part of them as the hair on their heads.

#### Time

To understand the Mexicans, says Saunders, we have to look to the old environment as well as the new. In the old environment, either along the Rio Grande or in Mexico, time moved slowly, the corn field was tended, the fiesta celebrated; changes were few. A past without written records is misty, and the future offers no particular promise—"neither anticipated with joy, nor feared."

In the villages the rhythm of life was seasonal rather than diurnal. What one did on a particular day did not matter much; what one did during the year mattered a great deal. There was no money, no boss, no time clock, "no pressure to develop any particular concern with time." This rhythm, of course, is found in handicraft cultures all over the world. Only recently has Western culture pushed pins into citizens, bidding them remember that time is money, clocks run, and they must get a move on if they expect to climb the ladder of success. Anglos are oriented toward the future, Mexicans are oriented toward the present and the remembered past. To them, the Horatio Alger story is meaningless, the American success saga a form of mild insanity.

The young doctor says to his Mexican patient. "What day would you like to come to the clinic next week?" How does Juan reply to this strange question? He stammers, runs his sombrero through his hands—not from stupidity, but because he does not think about time in that way at all.

## Change

A major belief among Anglos is that change is good and "progress" inevitable. There was little progress along the Rio Grande for 300 years, the villagers had almost no experience of change. The future, if they thought about it at all, was an ex-

tension of the present. Uncertainty, perhaps danger, would come with the new and untried. This is also true in many Russian villages, villages in India and China and Africa.

#### Work

Dr. Saunders picks up a story from Bennett Cerf to illustrate the attitude toward work. A businessman from New York is strolling along the platform of the railway station in Albuquerque. He sees a group of Pueblo Indian men relaxing in the sun. What a waste of manpower! He goes up to one of them and asks with some asperity why he isn't working.

"Why should I work?"

"To earn money," says the businessman

"Why should I want to earn money?" asks the Indian.

"So you can save it, and some day you will have enough so you can retire and won't have to work any more."

"I'm not working now," says the Indian

When I first went to Mexico I was told that the people were congenitally lazy, and a good many of them did seem to be sitting in the sun. But as I stayed on, collecting material for a book, I realized that Mexicans could work as hard as anybody else, carrying prodigious burdens on their backs, toiling incredibly to cut down the jungle for a new milpa, if they felt that the work was important. They seldom worked just for the sake of working, or from a moral compulsion. With Americans, work is tied to personal success, with Mexicans it is tied to the demands of the environment and the rhythm of the seasons.

## Resignation

A Mexican is more likely than an Anglo to resign himself to whatever fate brings. This again reflects the ancient village pattern—"a remembrance of men and women who were born, resigned themselves to suffering and hardship along with occasional joys, and died when their time came." There are plenty of never-say-die caballeros in Spain and in Mexico City, but most villagers see life in more philosophical terms. They may

not be dedicated to the main chance, but often they seem to have achieved an enviable human dignity.

Death is regrettable but inevitable, and so the Mexican does not call the doctor when the baby dies. To die at home, furthermore, is much better, he thinks, than in a strange, impersonal place called a hospital.

Here is Maria with a serious case of t.b. But she feels quite well. So she cannot be ill, she thinks. If she is not ill, how can she transmit sickness to her children? These Anglo medicos are very foolish. She does not hear the doctor's words saying she is sick, they simply do not come through. The medical concepts which make the words meaningful are unknown to her She "knows" about sickness, and in terms of her "knowledge"—deep and ancient and complex—she is not sick.

#### In Conclusion

Western ideas of medicine are unquestionably sounder than village ideas. Scientific medicine is bound to prevail in the end But it will win out sooner, with fai less frustration, if Anglo medical workers can be given a working knowledge of the culture concept. In due time, perhaps, the children of Maiia and Juan will understand it better too.

About 70 or 80 years ago, biology came in to help Western medicine, revolutionizing the theory of infections, among other things. Today the social scientist is offering medicine another important aid, in such studies as Dr. Saunders'. Students in medical school, he says, should begin with courses on the culture concept, while all large health programs, where more than one culture is involved, should include social scientists for planning and for constant consultation

Medicine is a social complex, as we have seen, but too many American doctors assume that it is only a business between doctor and patient, without reference to environment, cultural beliefs, and local customs. The Anglo often concentrates on symptoms, forgetting people. "During the first year in medical school the student's contacts are with dead people."

Looking at a man with the naked eye, he is an individual. Looking at him with a microscope, he is a biological specimen. Looking at him from the long view, he becomes a unit of society, bound into its culture with bolts of steel. The doctor needs all three perspectives to do justice to his great mission.

# Revolt in the Desert

A serious handicap of the social scientist is the lack of laboratory conditions where controlled experiments and measured observations can be carried on Researchers often dream of an isolated spot where they would have the power to vary conditions and pinpoint behavior.

Such an opportunity came to Dr. Alexander Leighton, psychiatrist and anthropologist, during World War II. With a small staff, he was assigned to observe one of the relocation centers for Japanese-Americans At Poston in the Arizona desert, men, women, and children were obliged to live under great tension and insecurity for many months. Various experiments might have been made, but Dr. Leighton chose to concentrate on the patterns of group tension itself. Later he reported his findings in a penetrating book, *The Governing of Men*, which has value for administrators and executors in many kinds of human situations

The camp was guarded by the Army and administered by the United States Indian Service. Leighton was delegated to watch its development, advise the administration, and search for valid conclusions He asks

... What in all this is recurrently human? What are the laws of individual behavior, what are the perennial social forces at work here? ... What general characteristics of human nature are in action, a knowledge of which would prevent such sudden diseases of society as this? The breakdowns of man's organizations of himself and his fellows are not events isolated in evacuation camps. They cover as much of the earth as is covered by the human race, and

questions that run deeply into the fate of mankind in a shrinking world are involved.

Japanese people coming to America to settle on the West Coast had different culture rings from the ancestors of George Adams. They had centuries of civilization back of them, to be sure, but not Western civilization, not Christianity, not Anglo-Saxon culture, and above all, not the English language. By 1940, however, they were well on the road to making the adjustment, to becoming "acculturated," as the anthropologists say. Their children were at home in both worlds.

In their ranks were tuna fishermen from Terminal Island, Judo instructors, lawyers, celery farmers, rose gardeners, a Y.M.C.A. leader, "Texas Mary" (the ornament of a Salinas saloon), wholesale produce merchants, a Baptist minister, research workers, butlers, bums At 7.55 A.M on December 7, 1941, Pearl Harbor was attacked. Instantly life for every one of these people became difficult. On January 2, 1942, Manila fell, and it became more difficult. Said the Los Angeles Times: "A viper is none the less a viper wherever the egg is hatched." On February 15, Singapore surrendered, and life became critical Ten days later, when a Japanese submarine shelled Santa Barbara, the limit was reached in the opinion of the authorities. The Japanese on the coast had to go inland to special camps, where they were held under observation by the government to forestall mob violence against them. On March 18, President Roosevelt created the War Relocation Authority to handle the mass evacuation.

Poston sits in the burning desert near an old mining town. In summer the temperature sometimes climbs above 120° in the shade. Here, as the spring of 1942 progressed and the sun mounted higher, 9,000 evacuees were assembled in a new community. The government did not plan to punish them for what had been done at Pearl Harbor, nor was the idea to pamper them. They were to be as self-sufficient as possible, to earn no little by raising some crops for the outside market, and to live a

very simple life in Army barracks on the hot desert floor until the war was over.

In the camp were three well-marked classes of Japanese. The Issei, who had been born in Japan and could never become American citizens. The Nisei, born in the United States and ipso facto citizens, mostly children of Issei. The Kibei, who were Nisei that had gone to Japan from America, and subsequently returned. Many of the Issei, after being treated like lepers on the coast, wanted Japan to win the war, though they did nothing overt about it. Most of the Nisei, however, despite the treatment they received, remained loyal to America. In complete disregard of these distinctions, demagogues in the Far West repeatedly made headlines by whipping up agitation against all people of Japanese descent, proclaiming that "a Jap is a Jap," and none could be trusted.

Meanwhile, the administration of the camp was split into two kinds of staff members, called by Dr. Leighton "people-minded," and "stereotype-minded." The former were full of good will, which was fine; but some of them tried to operate on the blanket assumption that "we're all human beings"—which was not so fine. We are human beings, right enough, but our cultures are different, and if this crucial fact is ignored we misjudge what is happening.

The stereotype-minded were at the other extreme. They looked on their charges as "Japs" first and people second—if indeed they were not to be classed among the higher apes Motivations were allegedly different from those of "white men" The stereotype-minded thought the Center ought to be an out-and-out concentration camp. Since they were thinking of slogans rather than people, they gave no attention to incentives, but relied on punishment and fear. Shoot a few Japs and the rest would come around, was the general idea—"the only treatment the yellow so-and-sos will understand." This attitude was held by the least educated of the staff, and those least informed about the reasons for the Center. One of the top officials, a man of fifty, "honest, forthright, and inflexible," came from the deep

South We will call him Mr Z. He had no difficulty in transferring to the Japanese his whole built-in belief system about

Negroes—a lower order of being to be kept in its place.

The hot months of 1942 dragged on. The divided policy of the Poston administration, shortages in many promised supplies, the unknown future, all combined to develop among the people of the community various acute needs—physical, social, psychological—and all related to a feeling of insecurity and fear. One task of the administration was to discover those needs and meet them, and so keep the community from disintegration.

This kind of situation is an acute test for any administrator. He should know that strong fear inside a group is likely to lead to strong anger, which in turn may lead to violence. The people at the Center were full of fear. They had no worthy status, no sense of belonging, no idea what was going to happen to them. They had lost most of their property, and had nothing to hope for.

A local self-government council had been set up, but it did very little and, as the people progressively lost hope, it became the target for their grievances. There was no real integration, no rank and file leadership in the whole camp. Toward the end of the summer, neighborhood groups began to form spontaneously, with each block of barracks as a political and social unit. The "good of Poston" was too nebulous an incentive, but many members began to pick cotton in earnest when it was known that the proceeds would be used to improve their own blocks.

As in all human communities, members varied from responsible upright citizens to bad actors full of hate. Within narrower limits, so did members of the staff vary. The degree of coöperation and responsibility was also affected by government policy at Washington Abrupt changes and reversals of policy were frequent, and they bewildered people and hurt morale.

By October, 1942, it was clear that the struggle to build a going community had been lost. The Center was visibly disintegrating, and dire things were in the wind. It was cool in the evenings now, and people stood on the streets around the

fires which they had built against the chill, recounting their grievances. They spoke bitterly of the poor food, the terrible heat of the preceding summer, the hospital equipment which had never come, the mosquitoes, the wretched pay of fifty cents a day.

Around the fires, ugly rumors began to spread. Premonitions and prophecies began to be heard, Ouna boards were brought out. A situation out of control usually encourages magical solutions. Crackpots, demagogues, trouble makers, had a receptive audience around the fires Gangsters were not only tolerated but admired as men who got action. . . . Action!

The administration consulted Dr. Leighton, and he sought to interpret what was happening. People, he said, were trying to adjust to a society that had no framework and no stability. They were trying somehow to exist without security or hope.

By the middle of November, their strong inhibitions against aggression and violence began to crack. Meanwhile, small elements of new social organization, the nucleus of a new structure, were appearing in the fluid confusion. The lack of harmony was almost unbearable. When would the little bonfires turn into one great conflagration?

During the night of November 14, a thirty-year-old Kibei, a rice broker and reputed swindler of Japanese farmers, was attacked in his sleep in the bachelors' barracks and beaten almost to death. Fifty suspects were rounded up, and two of them held for further investigation by the FBI, one a former university student, the other a Judo instructor, both were popular. Their families tried to obtain their release A meeting was held in the block where the two men lived, and a delegation was appointed to see the project director The director said that the FBI had the matter in hand, and he could not interfere with the investigation.

Then a curious thing happened. The handful of people who threatened violence unless the men were released became suddenly the catalyst which exploded the frustrations and grievances of the whole camp. There was a spontaneous walk-out—not so

much on behalf of the prisoners, as on behalf of long accumulated resentments and hopelessness As one striker said. "I didn't know what the issues were and I don't imagine anyone else did either—there were so many conflicting issues. Everyone took up the torch in defense of his particular peeve."

The administration was on the spot. Should they call in the Army and quell the strike with force, This would certainly involve bloodshed, for some strikers were offering to die for their cause, while soldiers outside the gates, mostly raw recruits, were eager to charge in. Should the administration try, on the other hand, to weather the crisis and use the emotional energy the crisis released to build a better community? If the Army came in shooting, the hope of anything better than a concentration camp was gone. The Berlin and Tokyo broadcasters, furthermore, would have a field day equating the attack with the Four Freedoms' The majority of the people at the Center, it must be remembered, were American citizens, American born, whose loyalty had never been disproved.

When the strike exploded, the staff split down the middle. To the stereotype-minded, the matter was simple. Mr. Z had his formula ready. The Japs (considered all to be identical) were raising hell, and it was the duty of good Americans to go in there, slap them down, and put them in their places. If this involved shooting irons, it involved shooting irons. The whole disturbance was the result of previous coddling and lack of discipline.

Mr. Z had followers, though not all so outspoken. Some of the staff saw the situation in pure Hollywood colors, with plots, secret agents, Axis machinations, buried food supplies for invading armies, all complete. The melodrama mind, Leighton says, was exceedingly dangerous at this juncture. It was primarily a product of fear, but "out of the figments of the mind springs actual catastrophe." Thus the top administration had to deal not only with tension in the community it was trying to govern, but with emotional breakdown in its own ranks

On the other side were the "people-minded" staff members,

some of them sentimental, some of them realists. They tried to canvass various alternatives. Breaking up the crowd that milled around the jail where the two suspects were held would not halt the strike If the Army took over there was no way to force residents to work. Frustrations and grievances would be driven underground, only to become worse.... So the "people-minded" reasoned

Not even the most tender-hearted of the staff entertained for a moment the idea of letting the two prisoners go free, as the crowd demanded. "Face seems to be important in all societies. . . . Orientals have no monopoly." The alternative to summoning the Army was some kind of negotiation which tacitly implied that the strikers had a case. The strikers by this time were represented by a so-called Emergency Council, mostly elder *Isseis*.

The top administrator was attending an important conference outside the State and could not, at this critical juncture, be reached. We cannot envy the assistant director, who, after a stormy staff meeting between these two schools of thought, stood looking out the window at the gray November desert, trying to decide what to do If he said "yes" and let the Army take over, he had a perfect escape for himself, but the Center was finished. If he said "no," perhaps the mob would go on the rampage, looting and burning, as Mr Z so confidently prophesied After a long time he turned back from the window and said "no" He would ask the Army to establish patrols outside the area, but not to take charge of the camp.

Every administrator, Leighton remarks, must be prepared when the time comes to back himself against the world, and if necessary take the consequences of losing. It is no field for the faint of heart. True, the moment does arrive when the administrator stands alone, but how much better, when that time comes, to be backed by knowledge! For a few hours at Poston it was touch and go, but the decision turned out to be the right one. When the people felt that the administration was ready to negotiate in good faith, the hotheads lost their following. The strike ended with a mass meeting in front of the jail.

It was a cold night and the fires were all burning. Speakers praised the work of the community's Emergency Council, the law and order which it had maintained during the strike; they looked toward the bright future of Poston as a self-governing community. The director, recently returned from his conference, made a warming speech. The strike was nobody's fault, he said. "It's not the administration up there and you people down here, but we're all working together." The meeting ended with three banzas and the crowd went quietly away, its tensions relaxed In some quarters there was even a feeling of jubilation, of liking everybody, including the administration. The fires were put out; the rubbish was cleared away.

One of the prisoners was released outright, after the FBI concluded its investigation. The other, the Judo instructor, was paroled pending examination by the regular civil courts of Arizona Subsequently the case was dropped because of insufficient evidence. Self-government really developed out of the Emergency Council and a sounder community with indigenous leadership was born Although other troubles arose from time to time thereafter, no more strikes and no more mass frustrations were found at Poston.

## LESSONS FROM THE CRISIS

The crisis and its settlement had focused attention on certain fundamental needs of the community "on behalf of which," says Leighton, "the strike had been only an imperious cry for attention." The story of the uprising, dramatic as it is, is merely the prelude to the conclusions which went into Dr. Leighton's notebook as a social scientist. Some of them will impress you as simple common sense; others are clearly exploring new areas in human relations. "I am certain that in the Relocation Camp experience, my hands, groping blindly below the surface, touched here and there on a real body of constants and laws in human living."

He begins his analysis with two constants which we have

Principle 1. In all the different peoples of the world there are universal basic characteristics inherent in human nature. Principle 2. There are profound differences in belief, sentiment, habit, and custom among the various communities, tribes, and nations which make up mankind.

These two linked principles summarize the culture concept. They are accepted by practically all modern scientists who have seriously studied the nature of man and his society. The more naive of the "people-minded" administrators at the camp accepted the first but were not sufficiently aware of the second. The "stereotype-minded" embraced the second in its most extreme form, and denied the first. So both groups missed the mark, though Mr. Z and the "shoot-'em-down" school were the more seriously afield.

Here are other useful conclusions and recommendations arising from the study.

Do not think of people as racial, national, or class stereotypes. Get up close and look at them, particularly at the children

Group stability is helped by situations which give economic security, by work which is thought to be important, by outlets in sports and recreation.

All people everywhere create social organizations, given time enough. Very recent immigrants are thus at a great disadvantage. Human groups cannot carry out actions for which they have no social organization.

Remember that your own staff is composed of human beings, too, reacting in ways similar to the people under them

Keep the communication line open, both from the administration to the group and from the group back to the administration.

Never make threats or lay down rules you cannot enforce. Do not take a strong stand on a weak position. This sounds a little like "don't kiss a buzz saw," but administrators and legislators and Secretaries of State are doing it all the time

Most individuals, most of the time, prefer peace and quiet. The administrator can always count on this massive mertia. He can also count on a sense of humor. He can count on the rela-

tively long time it takes for aggressive feelings to rise to the point of violence. In Poston it took almost six months.

A sure warning of breakdown is a rise in rumors and magic. Never dismiss complaints as trivial, they may be storm signals.

Following an outbreak of aggressive action, people have a feeling of relief and well-being, of liking everyone. This is the worst possible moment to deal out punishment.

Finally, if an administrator finds he cannot control his prejudices, he had better get into another line of work.

#### ROLE OF THE SOCIAL SCIENTIST

When Dr Leighton and his associates came to Poston, the administration was making decisions off the cuff after informal staff conferences. The communication lines were not good in either direction. After he had collected sufficient first-hand information, he began to tell the top managers about it—to their apparent astonishment. "We thus became aware of what would seem to be a basic principle in the application of social science to a fast-moving administration program, namely, that the research staff have direct access to policy-makers, and participation in policy meetings"

When the strike ended in November, the social scientists had been in constant attendance during the critical hours. They did not make the final decision; the man at the window did that. But they put the major characteristics of the situation before him, so that he could make his decision on the basis of understanding instead of passion. Mr Z supplied the passion . . . In these two men, Mr. Z and the Assistant Director, do we see two worlds, the one we have known, and another which may come?

#### FROM STONE TO STEEL

Here is another story about social scientists observing a community in the midst of change. A single small change, from a stone ax to a steel one, shook this particular community to its foundations, and came near to destroying it. On the subtropical north coast of Australia lives a tribe of native hunters and fishermen called the Yir Yoront. Like most primitive Australians, long cut off from other cultures, the tribe enjoyed great stability. Customs and beliefs were standardized, and before any change was accepted, a myth had to be invented which proved that one's ancestors did things that way, and thus the change was really no change at all.

Up to the turn of the century, the tribe was still living in the Stone Age. An important tool, a short-handled stone ax, was used to build huts, cut firewood, and make other tools for hunting, fishing, and gathering wild honey. The stone heads came from a quarry 400 miles to the south, and were obtained from other tribes in an annual intertribal fiesta. The handle was fitted with great skill and care and attached with bark and gum. The completed article—or artifact—was far more than a tool. It had become a symbol, a totem, a sign of the owner's masculinity, to be cherished and handed down, and loaned only with the greatest circumspection. The stone ax was not only useful, it was a kind of keystone in the belief system of the Yir Yoiont.

About 1900, steel axes began to filter in along the tribal trade routes. They were welcomed at first as more efficient; one could cut down a tree much faster By 1915, missionaries were distributing the steel axes as gifts and rewards. If a man worked especially hard he might get an ax, and so might his wife or young son. The missionaries hoped by this means to induce people to plant and fence gardens and improve their diet.

The idea was excellent, but it overlooked the culture concept. The steel ax destroyed a most important symbol in the belief system of the tribe. A man lost his importance and dignity; his very masculinity was threatened without his stone ax. Women and children, now possessing axes themselves, became independent and disrespectful. The entire system of age, sex, and kinship roles was thrown into confusion. The old trade relations were disrupted and the intertribal fiesta was robbed of significance and charm Stealing and wife lending increased. The ancient totem system was shattered, for it could not be decided

whether the steel ax should be a totem of the Sunlit Cloud Iguana Clan, as the stone ax had been since time out of mind, or the totem of the Head-to-the-East Corpse Clan....

Anthropologists, studying the situation in the 1930's, found that the culture had not broken down so completely as in the case of certain other tribes more exposed to western influences, but it was shaky and insecure. The major reason was the change in the composition of one artifact, from stone to steel, and a change technically for the better.

Lauriston Sharp, who tells this story in a collection about technological change, leaves it here, but the editor points the moral in a list of questions. Before introducing a new artifact into an established native culture, missionaries and others would do well to ask "What will it replace? What other tools and techniques are likely to be affected? Who will benefit and who will be hurt? What symbols and totems and beliefs will be upset?" Hundreds of native cultures around the world have been wrecked and undone by well-meaning Westerners for want of an Alexander Leighton

Well-meaning Westerners are themselves now threatened by the new electronic artifact of automation. Who will benefit and who will be hurt? What symbols and totems will be upset?

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Spicer. See Bibliography

# Scientists Look at Race

Despite their color, the Japanese-Americans at Poston behaved the way any human community would behave under severe stress. As we follow Dr Leighton's account, we almost forget the racial differences; to Mr. Z, however, these were paramount. But the scientist helped to prevent an explosion by treating the situation as a human problem in group tension.

Race prejudice is a cultural phenomenon. One is not born with it, it has to be learned. It has come to our Western culture in relatively recent times, a modern form of the age-old suspicion of the out-group, the foreigner, the person who is different. Religious prejudice has declined in the West as race prejudice has increased.

In the ideal community nobody would need to instruct children about races or warn them against prejudice. The adult would act without bias, and the children would automatically follow But in George Adams's New England, as well as below the Mason-Dixon line, the pattern of prejudice is established, sometimes stronger, sometimes weaker. The children see the snub, feel the antipathy, hear the ridicule, and presently they are locked into the pattern too, ready to pass it on to their children.

## THE BIOLOGY OF RACE

The story of Adam and Eve in the book of Genesis has been vindicated in part by biology. Its main point is now generally accepted as true, namely, that there is only one human family. All of us now alive, the whole two-and-half billion of us, are the descendants of a comparatively small group of common

ancestors. In Genesis, the dates are wrong, and we find quite a few poetic trimmings, but the idea is sound. If each of us could trace his family tree back for enough generations, we should all find the same great-great-great... grandfather.

Our most remote forebear, according to Linton, was probably a small tree-dweller, ancestral to both men and apes. Succeeding generations became larger, with relatively bigger brains. During the Miocene Age, some members became too large for trees and took to the ground, still on all fours. Gradually they developed carnivorous habits and began to stand erect. Their brains grew still bigger, and late in the Phocene Age, one branch reached the subhuman level, in the form of a very primitive gentleman indeed. He gave rise to a number of species, one of which finally developed into modern man. Language, the most human of all our traits, began then. This species overran the earth, and in due course began to differentiate into the various races which we know today—brown, yellow, and white.

If we could piece together the story of how a small group, starting probably in Central Asia, gradually spread and migrated around the globe, it would make the American conquest of the West seem like an afternoon stroll. How did these remote ancestors of ours get from the mainland to Japan, to the Philippines, across the watery wastes of the Pacific to one island after another? How did they make their way from the mouth of the Nile down to the Cape of Good Hope? What was their rate—a hundred miles a year, or ten miles a century? How did they eat, and keep the family together?

Even more astonishing, after crossing Bering Strait into Alaska, how did they reach Tierra del Fuego, 10,000 miles away, over some of the most savage territory on the planet? How did they get to Australia, and why was that continent then sealed off for 20,000 years, leaving the people there culturally frozen in the Old Stone Age, still using stone axes in AD. 1900 Did an easier route exist, perhaps on islands later swallowed by the ocean?

It has taken scientific teamwork of a high order to get the

facts of race together. The *historians* have studied recorded migrations, the *sociologists* have studied group organizations, the *biologists* have studied anatomy and genetics; some *anthropologists* have studied culture, and others have taken many measurements of skulls and shinbones; the *psychologists* have studied intelligence. Their joint findings have been checked and cross-checked, and they have come to the overall conclusion that "all the peoples of the earth are a single family with a common origin."

Take, for instance, the human foot. All human feet have practically the same structure, with intricate bones and muscles and joints. It is clearly impossible for this combination to have arisen twice in two independent species. All humans have the same tooth and jaw structure They are capable of similar physical tasks—running, striking, lifting. They are capable of similar mental tasks—acquiring a language, counting, abstracting, using logic, argument, persuasion. They all gather into bands and groups, and develop cultures which contain many parallel patterns and universals, as we have seen. No other creature passes on a culture to the next generation.

Scientists find that the only demonstrable racial differences, which are over and above individual differences, are in a few superficial bodily characteristics—the texture of head hair, the shape of the nose, eye color, skin color. White people are the hairiest, perhaps because most of them live in colder latitudes Negroes have the darkest skin color, certainly because this gives them protection against the rays of the tropic sun. All races have some primitive and other less primitive characteristics. The thin lips of the white man, for instance, are nearer those of the ape, the thick lips of the Negro further away.

Skin color is determined by two chemicals, carotene, which gives a yellow tinge, and melanin, which gives a brown. These colors, combined with the pinkish tinge from blood vessels showing through, provide all the skin shades known Every human

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Benedict and Weltfish, The Races of Mankind. A good short survey, based on Boas' Mind of Primitive Man.

being has some of each—unless he is an albino, which means he lacks carotene and melanin completely. Albinos are found in all races. Skin color "is not an all-or-nothing difference," says Ruth Benedict, "it is a difference in proportion . . . due to the amount of these chemicals present in your skin"

Height is no reliable characteristic of race. The Shilluk Negroes, near the sources of the Nile, average 6 feet 2 inches, while not far away the brown pygmies average 4 feet 8 inches.

Head shape is similarly unhelpful. In West Africa we find long heads, along the Congo round heads American Indians are both long-headed and round-headed. In Asia Minor, where human mixtures rise to a kind of frenzy, there are long heads and round heads among close relatives.

Blood differences between the races are not significant; no chemist can tell from a blood sample to what race its donor belongs. He can tell whether it is type O, A, B or AB, but these blood types are found in all races. Your son and a Maya Indian may both be type AB, while your father's type may differ from your own. Folklore has developed a great mystique about "blood," and how some people are "pure" and some are "mongrels." The truth is, says Gordon Allport, that "most men are mongrels." At the outbreak of the Civil War, however, a Kentucky editor clarified everything by declaring that it was a war to the death between the pure "Angles" of the South, and the decadent "Normans" of the North.

Differences in the size of the human brain today tell us little about race, nothing about intelligence. The world's largest brain belongs to an imbecile. Some geniuses have relatively small brains. As in the case of a blood sample, no scientist can tell by examining a brain alone to what race the owner belonged. The average brain size in cubic centimeters differs slightly by races, but it has not been proved that this affects intelligence until the variation becomes substantial. Back of Neanderthal man, differences in brain size are important.

Curt Stern, writing in the Scientific American,2 says that 2 October, 1954.

while there remains a group of believers in the mental inferiority of the Negro, the majority of students today holds this proposition to be unproved. All intelligence tests are loaded with cultural conditioning, but one extremely significant fact that has emerged from these tests is that the *range* of measured intelligence is as wide among Negroes as among whites. One little colored girl has scored an IQ of 200, and many Negro children score 140 on the Stanford-Binet scale.<sup>8</sup>

All races can interbreed everywhere, and with remarkable industry have done so. Your typical European is a dizzy mixture of Slav, Mongol, African, Celt, Saxon, Teuton, Semite, and other strains. "So far as we know there are no immutable laws of nature that make racial mixture harmful," says Benedict Have you a picture in your mind of the Scandinavian people as predominantly tall, blue-eyed blondes, with long heads and long faces? If you stood on a street coiner in Stockholm with a notebook and counted, you would find that only about 15 percent of the passers-by fitted this description

All races except the Australian aborigines have developed high civilizations from time to time. There were Negro empires and states in Africa when large sections of Europe were sunk in barbarism. The people of China were reading Lao Tze when the original Britons were painting their bodies blue and yelling in the fens. The Maya Indians were better astronomers and sculptors than their Spanish conquerors.

The "character" of the different races turns out, as we might expect, to be a result of culture, not biology. American Indians in New Mexico pueblos were mostly placid, peace-loving, and unemotional, while in the horse culture of the plains, Indians of the same stock were "frenzy-loving Dionysian warriors."

The three primary races—the Caucasian, Mongoloid, and Negroid—exhibit no significant difference in height, weight, anatomy, blood, intelligence, or character. They all have the same normal temperature of 98.6° F., the same life span under

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> In a ten-year study by Allison Dayis, some Negro children at the University of Chicago's demonstration school outranked children of professors.

similar conditions, the same muscular prowess. All are vulnerable to certain diseases and cured by similar methods Individuals within each race, of course, differ greatly, and subgroups differ in certain characteristics, like the Negro giants and pygmies.

### Nonbiological or Mythical Races

Many other "races" are identified verbally, argued about, and fought over. On analysis, however, most of them turn out to be national or religious groups with little or no biological difference. "Aryans" are properly people who speak languages derived from the Aryan language group. "Jews" are properly people who subscribe to the Hebrew religion, and practice certain ceremonies like the Seder on Passover. The so-called "Jewish type," with hooked nose and black hair, is a Mediterranean variation of the Caucasian race, and includes many Arabs, Armenians, Turks, Levantines, Greeks, and South Italians, as well as Jews

Hitler and his kept biologists got into some weird difficulties with their "Aryan" doctrines. The Hungarians were obviously not members of the master race, but when they joined Hitler's Axis, they had to be accommodated somehow under the main tent. The solution was to call them "non-non-Aryans" The Arabs and the Japanese presented further complications. In due time the savants in Berlin became so involved in this racial mythology that they had to assert that the Jews, far from being simple "non-Aryans," did not belong to any race at all, but formed a mongrel community thenceforth to be called "Anti-Race"

"A plotting of racial characteristics," says Linton, "on the basis of their degrees of evolutionary advance, shows such an uneven balance between the various races and breeds, that we are forced to conclude that all of them stand at about equal distances from their common ancestor." Perhaps the real reason for the long domination of Europeans over the so-called backward races was reflected in the famous couplet

Whatever happens, we have got The Maxim gun and they have not. The maccuracy of most talk about racial differences becomes apparent when one turns to the evidence which scientists have accumulated in the past generation or two. Neither science nor the book of Genesis has had much effect, however. The Christian ethic of the brotherhood of man, as well as the story of Adam and Eve, turns out to be substantially in line with the latest findings in blood chemistry—but the word does not get around. What is the trouble?

Polls show large majorities of Americans believing that the intellectual inferiority of Negroes is inborn. Thus while real biological differences are slight, believed-in differences are transcendent. "Race, so to speak," says Robert Redfield, "is a human invention." It is not to be found in the blood count, but it has an enormous place in the culture. We have gone far enough in our exploration of social science to know what that means. It means an intangible force against which argument has little effect.

When a white tenant farmer south of the Mason-Dixon line joined a posse to keep Negroes "in their place," he was not necessarily either a brute or an enemy of society. He was following the accepted customs of the tribe, doing what he had been brought up to do. To him it was right and proper that Negroes should give way to whites. This he began to learn almost before he could walk. George Adams learned it, too, but less tenaciously.

In the deep South—for reasons too complicated to go into here, but partly tied up with the frustrations of the War between the States—a caste system has been developed almost as rigorous as that of India. In India it is religion, here it is race, on which one's rank is founded To change the system suddenly would be as shocking to Southerners as the sudden elimination of Brahmins would be to Indians. Mark Twain in a magnificent passage reveals the conflict in Huck Finn after Huck saves the Negro Jim from being captured as a "runaway Nigger" before the Civil War. Huck feels that he has committed a major crime;

his whole moral code lies in ruins "I got to feeling so mean and so miserable I most wished I was dead."

Perhaps the only way to modify a caste system, in a culture where it has been established, is to change beliefs in people's minds. That is not done overnight. It probably can never be done solely by appeals to reason, or by reading the Bill of Rights in public parks.

### PREJUDICE VS. DISCRIMINATION

It is important to understand the cardinal distinction between race prejudice and race discrimination. Prejudice is a culture pattern not susceptible to frontal attack, and not to be reasoned about except within narrow limits. Discrimination, on the other hand, is a specific, material thing, like keeping Negroes out of schools, washrooms, restaurants, and making them ride in the rear seats of buses.

Discrimination can be attacked, particularly in a country where democratic traditions in other respects are strong. A specific Jim Crow practice can be selected for attack, and if the strategy is well devised, the discrimination can be, and has been, eliminated. Negroes are now being admitted into many colleges in the South. As a discrimination is reduced, there is in turn a reduction in prejudice. It develops, furthermore, in the best way, by use and wont rather than by arguments and propaganda. "If the do-gooders in race relations would waste less time fretting about prejudice and devote their efforts to the reduction of specific, vulnerable cases of discrimination, real progress could be made," says Donald Young

Branch Rickey, manager of the Brooklyn baseball team, engineered a famous example. He put a Negro, Jackie Robinson, on first base in 1947 for the first time in big league history, and backed him to the limit. It took great tact on Robinson's part to survive the first two or three months and avoid a fight with

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup>Rigorous Jim Crow practices in the American South are of comparatively recent origin, beginning about 1880. See Woodward, The Strange Career of Jim Crow

some of the players born in the South. By August, however, he was an accepted institution, batting, fielding, and base running with great brilliance. Other Negroes were then signed by Cleveland and St. Louis. John Chamberlain asked Rickey if he had fought for his first baseman to solve a sociological problem. "No," said Rickey, "I brought him up for one reason: to win the pennant! I'd play an elephant with pink horns if he could win the pennant."

This brings up the whole question of social engineering for better race relations. We will concentrate on the Negro problem in America, but the implications are world-wide. Most Southerners sincerely desire to see race relations improved. What methods are available in this direction? Leighton's book about Poston provides important suggestions, and Young has offered

more.

Suppose the mayor of a city wants to guard against a race riot; suppose the president of a big steel company wants to introduce Negro workers into his mill; suppose a labor leader wants to persuade the rank and file to accept Negroes into the union? Social scientists can help plan his campaign. They say that trouble always takes place at some point in the social structure—on a bus, at a factory gate, on a housing project, in a school. The social engineer studies these points and consults the growing literature about them. A War Department manual for white officers who were to lead Negro troops in World War II was prepared by a team of sociologists, psychologists, and anthropologists. Police handbooks now in use analyze the tensions that lead to race riots, and serve to alert police officers stationed in parts of a city where Negro and white communities merge—often a danger zone. Such technical studies are worth many manifestos about injustices and unconstitutionality.

The United States Armed Services are conducting a great program to abolish discrimination, aided by social science research. It was found that white soldiers who had no experience

<sup>&</sup>lt;sup>5</sup> Donald Young's "Techniques of Race Relations." *Proceedings* of American Philosophical Society, November, 1947.

with Negro soldiers in World War II voted more than 90 percent against being brigaded with them. (Samuel A. Stouffer designed the polls.) Those who had limited contact were 67 percent against it. Those who were used to Negroes in the same regiment but not in the same company were 50 percent against. But white soldiers who had fought side by side with Negroes in the same company were 86 percent in favor of continuing the arrangement!

"When I first heard about it," said a platoon sergeant from South Carolina, "I'd be damned if I'd wear the same shoulder patch with them. After that day when we saw how they fought, I changed my mind. They're just like any other boys to us." Elmo Roper, in summarizing Stouffer's findings, says that whites and Negroes got along well in the Army at the front because they had a common enemy, and had to depend on each other in battle. Nobody was conducting a moral crusade or appealing to the Constitution, far from it, American soldiers, with various percentages of melanin, were trying to win a war against stiff opposition.

These studies helped to hasten antidiscrimination programs after the war. A reporter at Fort Dix, New Jersey, found the Army program working well after six months of trial.<sup>6</sup> There had been no flare-ups, though the first days were rather tense. Negroes and whites were brigaded together, ate and played together; in some cases Negro officers had white enlisted men under them. The reporter asked a white private whether the Negroes in his platoon were good soldiers. "I never thought about it," he said "Like everybody else, I guess, some good, some lousy."

Col. L. L Gmeiner, the deputy post commander, summarized the situation at Fort Dix.

These young soldiers, put into large camps for the first time, have to learn to live together and work together. Under pressure of military necessity, we have found that they accomplish this adjustment in about two weeks.

New York Herald Tribune, May 21, 1951

The rigorous discipline of the Army makes an antidiscrimination program easier. Civilians usually take far longer than two weeks in learning to live and let live. United States public schools, in some localities, following the Supreme Court's decision of 1954, may require years. But the Army experience has abundantly verified social science theory.

### EXPLODED BELIEFS ABOUT RACE

We used to think that the "Negro mind" could not aspire to much education above a vocational course, as taught in schools like Tuskegee and Hampton. Now we know that such a limitation is as false as it is cruel. Negro education should follow the regular American educational pattern, varying with individuals and economic opportunity, not with race.

We used to think that the Negro was particularly susceptible to delinquency and crime. His moral brakes were weak, and he just could not help himself when temptation crossed his path. Now we know that his brakes are as well lined as anybody else's, and that the trouble is cultural, not racial If Negroes have a high crime rate, the social scientist investigates the slums in which they were reared, and the emotional security they got as children.

We used to think that Negroes were gifted with a special sense of song, rhythm, and dance. Now we know they are no more innately musical than the inhabitants of Aroostook County, Maine. If Negro children, or white children, or Balinese children, are brought up to sing and stamp their feet, they will sing and stamp their feet. Many Negroes are good at blues, but no better than Eddie Condon or Bix Beiderbecke

Derogatory stereotypes ("big, black, buck nigger"), and sentimental stereotypes (Aunt Jemima with her pancakes) both harm race relations. Playing up Joe Louis, the boxer, as representing a special race of superathletes is very harmful. "Such credits imply a biological theory of race differences just as surely as do unfavorable stereotypes," says Young The reaction to the brilliant career of George Washington Carver or Ralph Bunche should

be "Why not?"—rather than the more general "Who would have thought it possible?"

Interracial tactics should be designed—we are still considering engineering—to let whites and Negroes become more and more used to each other along Main Street; in stores, hotels, trains, parks, theaters, buses, and other public places, acting like anybody else. The young soldier at Fort Dix had the right idea: "Like everybody else—some good, some lousy."

It is bad tactics to suppress news unfavorable to Negroes. Twisting statistics to show their achievements is not sound engineering either. The unvarnished truth will be found a more effective agent in the slow process of cultural change than slanted stories. Negroes are no worse, and no better, than the rest of us. Born not far from George Adams, I never solved the race problem for myself until I began to look at Negroes the way I looked at dark Italians or blond Scandinavians—different complexions from mine, otherwise people; not to be pitied or fussed over because of their race any more than Tony the fruit dealer or Greta Garbo.

Harping on conflict and injustice can be harmful too. The right to protest injustice must be maintained, but to indict a whole region for injustice, day in and day out, is to challenge retaliation. Every sensible observer sees that the Communists' campaign to raise a black rebellion in the South is a perfect formula for putting the clock back to carpetbagging days. Fewer realize that harping on "incidents," like the trial of the Scottsboro boys, has a similar, if less violent, effect. One of the stupidest things to do is to send agitators from the North down to protest an incident in the South.

There are more than 100 national organizations working on race relations today, not counting federal agencies. Most of them lack any means of measuring the effects of their propaganda. They send out leaflets and broadcasts and hope for the best. "The dearth of appropriate research and consequent lack of a proven base for action is one of the most conspicuous features of existing intergroup programs," says Robin M. Williams, Jr.

How much good will and how much good money is wasted on projects that ignore the known laws of human relations? How much of it boomerangs, to make a bad condition worse?

Race prejudice involves a prejudgment of individuals on the basis of a stereotype—"a Jap is a Jap," "a Nigger is a Nigger," —Mr. Z's trouble at Poston. It involves also a set of evaluations. A prejudiced individual brings to the issue certain beliefs about traits in others, favorable or unfavorable. It is interesting to note that an unfavorable prejudgment does not always rate the victim as inferior In anti-Semitism the stereotype is sometimes the other way around—"the Jews are too smart."

#### HISTORIC DECISION

Negro children living in Negro districts are usually retarded in language compared to white children, but Negro children in mixed neighborhoods are practically equal. Segregation tends to slow down intellectual development.<sup>7</sup>

The United States Supreme Court made history—and gave Moscow propaganda a serious blow—when, in 1954, it ruled against separate public schools for white and Negro children. Most schools in the North have never had this separation—the schools and colleges I attended in Massachusetts almost always had Negroes in the classes—but the ratio of Negroes to whites is low compared with the South.

Now segregation is to be ended. After the Court spoke, certain border communities were first to end it, including Washington, D.C Some states in the Deep South have tried to postpone the day. So drastic a cultural change always carries the possibility of serious trouble, and provides a rich field for demagogues to exploit.

Social scientists promptly moved to meet the challenge. Forty-four scientists, headed by Alfred McClung Lee of Brooklyn College, set up a committee of consultants to assist local communities in making the change. Robin M. Williams, Jr., and Margaret W. Ryan edited a book, Schools in Transition: Com-

<sup>&</sup>lt;sup>7</sup> See Gordon Allport, The Nature of Prejudice.

munity Experiences in Desegregation, which describes the experience of 24 communities in giving up segregated public schools. "Where desegregation has been tried," the editors report, "the typical outcome has been eventual acceptance." Only in Cairo, Illinois, was violence reported, and that without bloodshed. Nowhere did the opposition remain organized very long after the change had been made. Citizens got used to it, like the soldiers at Fort Dix.

The scientists observe, however, that it is an uneven, shifting transition, not a sudden, massive change. General rules can help, but "there is no substitute for careful local diagnosis"—a survey of local conditions and tensions before any action is taken. Prejudice among the children themselves in the 24 communities studied was found to be slight . . . "If the parents did not interfere the children got along all right."

#### A Note on South Africa

In the United States, after a long and disgraceful period, citizens with a different melanin content are being accepted as fellow human beings. Lynching is growing rapidly obsolete, while signal advances can be noted in the armed services, Southern universities, in restaurants, theaters, public transportation, big league baseball, labor union membership, employment opportunities (F E.P.C.), and now in the public schools. Victory is far from won, but the curve is definitely up and has been mounting since the war.

In South Africa the curve is definitely down. In the United States whites outnumber the colored races, but in South Africa the reverse is true; Negroes, plus Indians, far outnumber the whites Fear and insecurity are much greater among the whites—a major reason for the downward curve. Both prejudice and discrimination are bred of this fear. Negroes are excluded from many occupations, or admitted only to serve their own race. Unequal pay for equal work is the rule, with a large differential in favor of the whites Negroes must live in designated areas,

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> No lynchings recorded in 1952, 1953, 1954, 1956 or 1958.

usually reeking slums. They cannot own land, and have no freedom of movement; passes must be shown if they travel. In the cities they must observe a nine o'clock curfew. They cannot vote.

Yet, Edmund Brunner points out, the white population is increasingly dependent on the Negroes for its standard of living. Whites in factory and industrial work are declining, Negroes increasing, and the rate is even more rapid in agriculture. The black man's brawn becomes a makeshift in place of machinery, but at a high economic cost, despite his low wages.

Careful studies show no evidence of inferior mental ability. The few Negroes who reach the universities—about 5 percent of the total enrollment—do well and some win honors. The nonwhite senior class of the McCord Zulu Hospital Nurses' Training School, in Durban, has for several years made the highest average score of any nursing school in the Union, on the final standardized examinations, set and graded by the government.

Bitterness among the majority is increasing, and this in turn breeds more fear and more repressive measures among the minority—a vicious circle if ever there was one! A heavy social cost is thus laid on top of the economic cost, and all the trend curves seem aiming for disaster. Here, as elsewhere, the social scientist finds himself confirming Abraham Lincoln when he reportedly said: "You can't keep a man in the gutter without getting into it with him."

## Laws of Social Change

For three days after the bombing of Hiroshima, newspaper men approached many physicists, chemists, and zoologists in the University of Chicago with the question "What does it mean to society?" Only at the end of the third day did it occur to one of the reporters to ask a social scientist. The moral does not need pointing. It is the chief reason why I am writing this book

The social scientist whom the reporter finally consulted was William F. Ogburn of the department of sociology. It would be difficult to find a man better qualified to deal with the effects of new inventions. He is the major interpreter of the broad concept known as Social Change For many years he has been running curves into the future, based on how people have behaved in the past, and has arrived at certain general conclusions about both the curves and the behavior.

Ogburn, together with Franz Boas and W. I Thomas, helped to establish, in the 1920's, an important landmark in the history of social science. They extended the culture concept into sociology, psychology, and other disciplines. Many earlier scientists had tried to explain the evolution of society by analogy with Darwin's theory, in terms of heredity, natural selection, and variation. The hypothesis was that social institutions progressed only as men's brains progressed. The modern white man in his white tie was contrasted with the savage in his nose ring. The Queen Mary was compared with a sailing barge, a parallel development.

This was all very pleasing, but there was a catch in it As the years went by and more was learned about genetics, it be-

came increasingly difficult to explain how the human cortex could have progressed so rapidly. The development of the Queen Mary took less than 100 generations—a span too short to allow much change in the brain or in the genes of ship designers.

How then could one account for the Queen Mary? Ogburn, pondering this question, measured the brain case in the skull of a Cro-Magnon man, who lived 12,000 years ago He found that it contained about as many cubic centimeters as that of modern man. More tests were made, and the conclusion was established that the brain case and facial characteristics of the Stone Age men of France—the artists who etched those dynamic buffaloes on the walls of caves—were no more primitive than those of the faculty of any university you care to name.

Was the mind of Cro-Magnon man as powerful an instrument as our own? Did it have the same 15 billion electrical connections in its switchboard? The evidence seemed to run in that direction. So scientists began searching for another hypothesis, and found it in the culture concept. Even if we hand down no more mental ability to our children today than our ancestors did 12,000 years ago, we do hand down the laws of their modynamics, analytical geometry, and how to split the atom Our children today have an enormous cultural storehouse to work with.

## THE LAW OF GROWTH

When to this conclusion is added the demonstration that material culture grows like compound interest, things begin to fall neatly into place. The theory of the evolution of the brain can be discarded in favor of a theory which fits the facts more closely. Invention, exponential growth, and cultural development account for the *Queen Mary* quite satisfactorily.

In Ice Age days the material culture transmitted from generation to generation was limited in amount, and changed very slowly. Gradually new inventions in weapons, foods, clothing, equipment came into use and the rate of change increased. If the number of inventions from our Cro-Magnon ancestors to

the present could be plotted on a chart, the resulting curve would rise first slowly, then more and more steeply, approximating a compound interest curve.

What an exponential rate of growth means has been dramatized in the story of the farmer who brought his horse to be shod. The blacksmith said he would charge one cent for the first nail, two cents for the second nail, four cents for the third, and so on until the job was done. That seemed reasonable to the farmer, and he accepted the offer. But the farmer had not fooled around with exponential curves. For eight nails in each shoe, or 32 nails altogether, the bill came to just \$42,949,672.95! (You may take your pencil and prove it—as I did when I first heard the story)

Ogburn has assembled a number of these curves, and they all point in the same general direction. He took Darmstaedter's ponderous record of inventions from 1450 to 1899, and plotted the number over four and a half centuries. He took the number of patents issued in the United States and Great Britain, he took various records of discoveries in physics and the other natural sciences. All show exponential rates of growth

Harvey C. Lehman, in a recent paper, has carried on the analysis He plotted contributions to chemistry, genetics, geology, mathematics, medicine, pathology, entomology, and botany for the past three or four centuries, on a 25-year time scale. They all show the typical compound interest curve. In chemistry, for instance, 688 contributions out of a total of 1616 noted since 1500 A.D. occur in the last 25-year period studied—1875 to 1900 There is no diminution in any of these subjects after 1900. Even contributions to subjects like economics, political science, education, philosophy, music, show similar curves. Lehman concludes "with each succeeding interval, man's creative output . . . has tended to double in amount." The increase has been in the order, per unit of time, not of 1, 2, 3, 4, but of 1, 2, 4, 8—and what a difference, as the farmer found out!

<sup>&</sup>quot;Exponential Increase of Man's Cultural Output," Journal of Social Forces, March, 1947.

The theory behind the graphs is that the larger the number of elements in material culture, the greater the number of possible inventions and improvements. Three elements can be combined in four different ways, but four elements can be combined in ten different ways. (Try it with playing cards.) Therefore, as the number of inventions increases, technological change becomes faster and faster. Man can thus proceed from a damp cave to the Waldorf-Astoria on the exponential law without needing any increase in his intelligence.

Let us reverse the proposition. If H. G. Wells's time machine were in good working order, and if it could carry 1,000 babies from the brightest of modern parents to be reared by Cro-Magnon mothers, it is very doubtful whether they would speed up progress. There was not enough in the storehouse for them to work on in 10,000 B.C. We catch a glimpse of the same idea when we realize that even if Leonardo had evolved the laws of an airplane in flight, he could never have flown it (except as a glider) because no engine had yet been invented to power it.

## CULTURAL LAG

It is necessary to distinguish clearly between: (1) material inventions, (2) human behavior resulting from the inventions, and (3) cultural institutions and systems of belief.

Inventions are usually accepted into the culture in two stages. To begin with, people change their day-by-day behavior to accommodate the new device. If it is a useful device, like radio broadcasting, this may happen fairly soon, a matter of ten or fifteen years. Americans are particularly spry at moving over and making room for new material inventions. Then, considerably later on, people change their institutions and belief systems to allow for the invention, and arrange means for controlling its effects. The time between the first and second stages is known as the cultural lag.

The invention of the steam engine made manimate energy practicable in workshops and factories to run machines. There was some opposition by hand workers, but not much. Because the tempo of the machine, not the tempo of the man, now dominated the process, industrial accidents became more frequent. In the United States, it took about 75 years before workmen's compensation laws were inaugurated to offset the accidents. Such laws ran counter to a belief system of prefactory society, namely, that it was the workman's duty to look out for himself. And indeed when the worker had control of the process in his own home or shop, it was his duty. This particular cultural lag can be measured not only in years but also in the number of pauperized widows and maimed workers over the period.

The invention of the automobile was joyously accepted by nearly everyone but carriage makers. The cultural lag was relatively brief in America. Laws were passed almost immediately in an attempt to control its speed and direction. The Amish community of Wayne County, Ohio, a kind of cultural pocket, still forbids its members to use automobiles as inventions of the Devil,

encouraging the sin of pride.

Andrew Yoder, a member of the community, was, however, confronted with a practical problem. He had to drive his baby daughter twice a week for treatment to a doctor who lived 15 miles away. Finally Andrew could no longer stand the trip in a horse-drawn buggy. He bought a car and learned to drive it—only to be ostracized by the community. He was still allowed to work but was deprived of social intercourse. His own brother would not eat with him. When out threshing he had to take his meals alone. "It was like feeding a dog out of a dishpan," he told a reporter from *Time*. No Amish cobbler would repair his shoes. The cultural lag governing automobiles held firm in Wayne County, if not in the rest of the United States.

By and large, the motor car has brought at least as much fundamental change in the life of the American people as the horse did in the life of the Plains Indians. In such institutions as traffic courts and parking facilities we are still trying to catch up, without much success.

Some of the most perplexing problems of the present time—mass unemployment, madequate housing, economic insecurity—

are really problems in cultural lag We have the economic tools available to cope with them, but community feelings will not permit it. Congress votes against it, often with a lofty sense of moral righteousness. Belief systems have not caught up with the facts. One of the most cruel illustrations of this is the full generation which elapsed between the introduction of the child labor law and its final passage. Robert Lynd in Knowledge for What? lists other lags, as of 1940:

The ragged disparities in marriage and divorce laws among the several States.

The taboo against discussing venereal disease (now lifting).

The opposition of the American Medical Association to

government aid in medicine

The resistance of almost 90 percent of the press to the social legislation of the 1930's

## ARE WE GOING TO HIT SOMETHING?

Another curious paradox arising from the cultural lag is the ample financial support given by society to encourage more material inventions, and the meager support for social inventions to mitigate their effects.

It is a fearful thing to be aboard an exponential curve—something like an express train out of control. Ultimately, such curves run off the map. A penny at compound interest grows in a few centuries to a ball of gold the size of the planet. Nature often permits such curves to start, as in the multiplication of fruit flies, but she never maintains them for long. They always hit something and shrink with great suddenness.

Are we going to hit something? Ogburn is too careful a scientist to say. He does point out, however, that when an invention like the atomic bomb comes along, social scientists should be urged to do their utmost to find a social invention to cope with it. He does not believe it is possible deliberately to halt the rate of material invention. Can you imagine Congress passing a law to "halt progress"? The answer to the tensions caused by growth

curves seems to lie in encouraging steeper curves in social invention.

A social change, when measured statistically, is called a time series, and is described by zigzag lines which move over time, with a sweep or trend in one general direction. An appropriate equation, fitted by the method of least squares, runs through the middle of the zigzags and indicates the trend. We do not know why these trends rarely change their direction, although they are undoubtedly connected with culture patterns and probably with methods of education. Whatever the explanation, social trend lines in hundreds of cases show remarkable inertia. There is a lesson here for social engineers. If a trend cannot be changed radically, it is better to accept it and adjust your program to it. If you are determined to change it, prepare to see the shift take place slowly. Or else analyze the connection between the educational system and cultural change. So far, to my knowledge, no one has adequately realized this problem. Perhaps John Dewey came closest.

The exponential law casts a heavy shadow on the Great Man theory of progress. This theory holds in essence that without the grants of the past we would still be living in Mesopotamian mud huts. The exponential law, on the contrary, indicates that what determines new invention is not a giant intellect so much as the number of elements in the culture. Thus when physics reached a certain point of development in the seventeenth century, and a dynamic mathematics was needed to carry on, both Leibnitz and Newton invented the calculus. If neither had lived, calculus would have been invented by somebody else. History is filled with simultaneous inventions of this kind. We can expect more and more of them as knowledge accumulates.

If Columbus had died of plague before he discovered America, some other explorer would soon have found it. Why? Because the techniques of ship-building and navigation had reached a point where a man could sail into the unknown with a fair chance of getting back.

#### THE INVENTION OF RADIO

Over the years Ogburn, together with other scientists, has developed many variations on the theme of Social Change. He has shown how the interrelated parts of modern culture are changing at unequal rates with consequent strains. He has traced the succeeding waves of new behavior which follow important inventions like the automobile and the radio. He has pushed trend curves boldly into the future to find out what the probable effects of a new invention are likely to be.

Take, for instance, his work on radio. In Recent Social Trends he lists 150 effects, of which 12 are in the direction of cultural diffusion, tending to "standardize" listeners. Some may deplore this tendency; others realize that a more homogeneous people may have less internal strife. Here are some effects of radio listed by Ogburn.

Regional differences becoming less pronounced.

Penetration of city musical and artistic culture into rural areas.

Distinction between social classes lessened.

Isolated regions brought into contact with world events.

Illiterates brought back into community life.

Concentration on fewer languages.

Canada, the United States, and Latin America drawn

more closely together.

One item on the list reads: "Interest in sports increased by radio." True enough; who can forget those first championship boxing matches over the air! Not content with this single statement, Ogburn goes on to outline 15 derivative effects of radio in the area of sports, a kind of secondary wave. Among them

Big matches emphasized to the neglect of local matches.

Reputation of star athletes further inflated.

Reputation of star football coaches also inflated, plus an increase in their salaries.

Recruiting of players in rural areas greatly increased.

Colleges with high scholastic standards put at a disadvantage.

Reduction in special sports editions of newspapers.

Sixty-one effects following the invention of x-rays have been chronicled by Ogburn; 23 following rayon; 150 following the automobile—including a change in the whole pattern of courtship in America. The young man with the convertible has dis-

placed the young man with the bouquet.

This is all very interesting and possibly all very scientific, you say, but what can one do with such studies? Ogburn offers us a monumental answer to that question, too. The United Air Lines retained him to predict the probable effects of the invention of the airplane over the next ten to twenty years, and his report runs to more than 700 pages. We are reminded early that there are some 50 variables to be considered in plotting the extrapolation. No one can know exactly what the place of civil aviation will be in 1970 or 1980, but an estimate based on trend curves looks like a safer probability than one based on a blind guess or on wishful thinking. Managers of airports, airplane companies, commercial airlines, federal, state, and city officials, real estate interests, all must now plan for the future on some basis. Meanwhile, the investments involved, both public and private, are enormous.

## "ELEMENTARY, MY DEAR WATSON"

Sherlock Holmes, philosophizing on Boyle's Law of Gases, said to his friend Watson: "While the individual man is an insoluble puzzle, in the aggregate he becomes a mathematical certainty. You can never foretell what any one man will do, but you can say with precision what an average number will be up to. Individuals vary but percentages remain constant." Social scientists, using this statistical approach, can give community leaders invaluable advice about future problems.

The life expectancy of American males (or females) can be predicted with great accuracy, although it is impossible to fore-tell when Adam, or Eve<sub>2</sub> will die. Using probability theory, furthermore, margins of error can be calculated, indicating how far off a prediction may be—say plus or minus 4 percent. The Royal Society, we remember, started actuarial science three centuries ago The United States Census is not a vast mass of

undigested figures as many people seem to think, but a helpful guide to programs for housing, schools, public services

In 1955 there were about 15 million persons in the New York metropolitan area. The Regional Plan Association, using census figures, predicted upwards of 19 million by 1975—an increase of 28 percent This in turn called for a new survey "very much more imaginative than has been displayed in the past to plan for this massive addition," and providing more transportation facilities, recreation centers, sewers, shopping centers, schools, and parking lots

#### Schools and Houses

Suppose we concentrate for a moment on schools—not desegregation this time, but classrooms, teachers, and textbooks. The National Citizens' Committee for the Public Schools, headed by Beardsley Ruml, predicted 12 million more children of school age in the population by 1965 than there were in 1954. This would bring the total school population to 48 million youngsters, a 33 percent increase, at a cost of \$3.5 billion more in 1965. For the whole nation to match the educational plant of New York State (tops for the country, though still madequate), would cost \$17.1 billion more in 1965. No fewer than 950,000 new classrooms would be needed by 1965, at a capital cost of \$32 billion.

The building boom in houses which began after World War II is still booming. Are we building too many houses? For the whole United States, says Edmund Brunner, that is not a difficult question to answer, and here is the way to go about it.

We know how many persons there are in the United States in each age group Therefore we know how many are under twenty-one, and the probable number—based on past performance—who will leave school, enter the labor force, and marry, year by year. We know how many families will be formed, and how many "dwelling units" they will require. We know how

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Report summarized in *Time*, December 13, 1954.

<sup>3</sup> Memorandum to the author.

many units burn up, or are torn down, every year, and how many new ones are now being built. Putting these figures together, it does not take an electronic brain to calculate how many units will be needed in the years ahead, and whether we are overbuilding or underbuilding.

On similar principles, scientists can calculate the probable size of the labor force ten years hence, the food requirements of future populations, the need for doctors, nurses, and engineers, the number of old people and their percentage of total population—the last a growing figure and full of thorny problems. Brunner estimates that population increases should solve the "farm problem" in the United States in another ten to twelve years, as agricultural surpluses are progressively consumed by urban eaters.

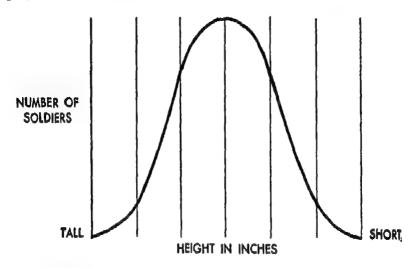
When social scientists in the mid-1930's looked at the 1930 census figures, says Brunner, they found that the United States had reached an all-time high in youth population, sixteen to twenty-four years of age. So they promptly urged a big housing program, especially as construction had meanwhile slowed down during the depression. They predicted that if this were not done, families would be doubling up by the 1940's, with a heavy strain on human relations. The program was not undertaken. American families were crowded as never before, often ready to tear each other apart—exactly as predicted.

## FAMOUS CURVE

Another statistical law which vitally affects human behavior is the frequency distribution curve. Biologists use it too, for it applies to all living things, as well as to many human characteristics and problems.

Take the height of men in the army. Line them up—the figures, not the men—the tallest at one end, the shortest at the other. The probability of a soldier being near the middle is great, of his being at either end is small. If we now plot the number of soldiers at the various points on the scale we will get the familiar bell-shaped curve.

The curve is a great help in making predictions about schools, desks, hospitals, markets, army uniforms and boots to be ordered, all manner of things. It is useful in plotting IQ's, and is even employed in marking examination papers.



It is also, I may add, the greatest destroyer known to man of the bad habit of overgeneralizing. With the frequency distribution curve in one's tool kit, no one can continue to say that all Mexicans are lazy, that all Swedes are blond, that all Russians are untrustworthy, or that all United States senators rival Socrates. Some do and some don't, as the anthropologists observe. Plot them on the curve

As modern living grows more complicated large plans for the future become more mandatory. Social scientists, like Ogburn and Brunner, with curves based on vital statistics and other dependable data, render an indispensable service. "Planning," somebody has said, "is intelligent cooperation with the inevitable."

## In Darkest Middletown

In my library I have a "Middletown" shelf of a score of volumes, which I enjoy collecting as others collect ship models. The collection started in 1929 when I reviewed Robert and Helen Lynd's Middletown and found it new and exciting territory. Later, in a book about Mexico, I compared Middletown with Robert Redfield's study of Tepoztlan, an Aztec town on the Mexican plateau. This cross-cultural survey of mine, strictly an amateur performance, served to bring out some of the striking differences between handicraft societies and those of the machine age.

Clark Wissler said, in his introduction to the original Middletown: "We are always hearing that the study of society must be made objective. . . The realities of social science are what people do." Here then, for the first time, is a study of the things people do in a normal American small city, observed as social scientists would observe a town in darkest Africa. There had been plenty of earlier urban surveys in the United States and Britain, but they were primarily concerned with coal miners, or working girls, or with wages, housing, the cost of living. The Lynds tried to comprehend the whole community. "A new field of science has been opened up," said Dr. Wissler, "the social anthropology of contemporary life."

There were 38,000 people in Middletown—which everybody now knows is Muncie, Indiana—when the Lynds arrived with their small staff in 1924 The great boom of the 1920's was fairly

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Famous pre-Middletown studies were Life and Labor of the People in London, by the Booths, and the Pittsburgh Survey of the Russell Sage Foundation. Rural sociologists had also made studies of American small communities, beginning with Warren II. Wilson's Quaker Hill.

launched, buoyed up by the soaring automotive industries Middletown had been chosen among many candidates because it was as American as a baked apple. Manufacturing was diversified, with the glass jar business prominent. Farmers came in from the rich surrounding corn lands to Saturday market at the county seat.

There were 42 churches in town and 6,300 automobiles. Said a factory worker from the South Side: "I'd go without a meal before I'd cut down on using the car." Said a police court judge after a difficult day: "The automobile has become a house of prostitution on wheels."

The Lynds stayed for nearly two years, studying the town in action under six main headings (1) getting a living, (2) making a home, (3) training the young, (4) using leisure, (5) going to church, (6) joining up. Before they got through, 454 active clubs and associations had been identified, including, along with the Chamber of Commerce, the Lions, and the Elks, an Ad Club, a Kill Kare Klub, and the Sew We Do Club for well-to-do matrons.

The Lynds gathered material by first-hand interviews, by questionnaire, by analyzing newspapers, by direct counting. They also obtained all relevant United States census figures covering the town, together with state and city statistics. When we finish reading the section on getting a living we know as never before the economy of the 1920's. We realize in an intimate, graphic way how the boys and girls that we see playing in the school yards of Middletown are later to be indiscriminately tumbled into the 400 occupations which the city affords. We see the shops, offices, factories in which they are to work; the machines they are to operate, the houses, bungalows, and shacks in which they are to live and raise their families; the stores in which they will buy their goods, the advertisements which will so often predetermine their wants, the editorials, sermons, service club speeches which will nourish their belief systems; the income groups into which they are bound to fall with the precision of a life expectancy table.

#### IN THE NINETIES

The Middletown survey, furthermore, compares the 1920's with the 1890's. Wissler calls it "a new kind of history." The authors try to reconstruct the community as it looked a generation earlier. "A small river wanders through the town, and in 1890 when timber still stood on its banks, it was a pleasant stream for picnics, fishing, and boating, but it has shrunk today to a creek discolored by industrial chemicals and malodorous with the city's sewage."

Workingmen in 1924 still attend lyceums and listen to some of the old lecture topics—"Milton as an Educator"—but businessmen have given up this type of "culture" altogether. The singing societies of the nineties have disappeared, save for one working class exception. The Apollo Club, once favored by the bloods of the town, has long since collapsed. Where are 300 schoolboys to sing Gounod in the Opera House? The Art Students' League was organized in 1892, and members went sketching along the clear waters of White River. The Art Club of 1925 listens to lectures on the Gothic Period and never handles a brush or tube of paint. Music, like poetry and the other arts, is almost nonexistent among the men of Middletown in the era of Calvin Coolidge. In the light of Linton's universals this shows how abnormal Main Street has become.

Everyone rides in a car, goes to the movies; more and more people are turning on the radio. One salty old character came back to Middletown for a brief visit in 1924. "These people," he complained, "are afraid of something." The Lynds point out that amid an ideology celebrating the ruggedest kind of rugged individualism, nobody along Main Street dared to be different. Again and again the word "bewilderment" creeps into the text. Citizens are bewildered about their jobs, about money, about the new "gob feeder" in the glass factory, which can make glass bottles a hundred times faster than a hand blower, they are bewildered about marriage, religion, the growing role of government, about their children, about their very souls.

The old traditions survive—many survive today for that matter—but even in the twenties there is little blood in them. A pecuniary economy and mass production call insistently for new systems of belief, but these have not yet crystallized. The lag grows longer. Back of the Buicks and the backslapping, one feels in the Lynds' account the confusion of a generation which has lost its way.

## Down, Down, Down

The Lynds went to Middletown to check their findings in 1935, after ten years had gone by—four more years of boom, then six of depression. They wrote another report on it, called Middletown in Transition. At a time when employment is near capacity, it is almost incredible to recall how far the nation dropped in the great depression. By 1933, Middletown's store-keepers had lost 57 percent of their business compared with 1929—yet there were 6 percent more stores struggling to survive. Building construction fell to 5 percent of 1929 while factory payrolls were cut in half. Motor car sales dropped 78 percent, but gasoline sales only four percent; the cars were old, but people kept on driving them. Loan sharks did a thriving business. When General Motors tore the machinery out of their big plant and left town, it looked as though the end had come. A full quarter of Middletown was on relief.

Yet for two years following the stock market crash, the leaders of the town refused to admit that their symbols of progress—self-help, bigger motor cars, bigger bank accounts and land values—could ever be tarnished. Not until General Motors shut its plant did they face reality, and then only for a brief interval. In 1934 the first federal farm relief checks, like gentle rain on parched ground, began to irrigate the Saturday market, as farmers drove in to cash them. Soon Middletown's leaders recovered their standard credos . . . "When Mr. Landon is elected president—as the Literary Digest poll shows he is sure to be—everything will be safe and sound again."

Across the tracks<sup>2</sup> on the South Side, however, the workers had pretty well abandoned their predepression ideas, and were organizing unions as never before. The great sit-down strike era is close at hand, and we must remember that for every three townsmen on Main Street, there are seven workers across the tracks.

#### THE MIDDLETOWN CREDO

In a chapter entitled "The Middletown Spirit," the Lynds preserve for the curious historian the credo of Midwest America in 1928. No fewer than 172 beliefs are categorically set down. As I scan the list today, I should estimate that about 100 of these beliefs have been rendered obsolete in whole or in part by the march of events. Some, of course, were specimens of cultural lag even when most fiercely held. Here is a sample lot:

That economic conditions are the result of natural order and cannot be changed by man-made laws.

That we always had depressions and always will.

That men won't work unless they have to.

That any man willing to work can get a job

That business makes all our employment.

That the open shop is the American way, and labor unions are foolish, if not wicked.

That all strikes are due to troublemakers.

That the individual must fend for himself and in the end gets what he deserves.

That the small businessman is the backbone of America.

That women cannot be expected to understand public problems.

That the American form of government is the final and ideal form.

That government is bad and politicians are the lowest form of life.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> "Across the tracks" is an important symbol in the American culture, dividing those who have arrived from those who have not.

That high tariffs mean protection to the American wage earner against the pauper labor of Europe.

That taxes are always evil.

That Christianity is the final form of religion.

That preachers are rather impractical people who wouldn't be likely to make good in business.

That you can't change human nature.

What happened in Middletown from 1929 to 1939 defied almost every canon of this credo. Main Street deplored federal aids for community survival and ridiculed them in a vast folk literature of stories about "boondoggling." At the same time it clawed like a drowning man for more federal relief. Its belief systems were thus in direct opposition to its tangible behavior—creating a kind of community schizophrenia.

So Middletown learned nothing from a world war, a crazy stock market boom, and a depression which made beggars of a quarter of its people? No, it is not so simple as that. Middletown, like every community, must have a suit of symbolic clothes. If no new styles are on the market the old will have to do. Middletown—at least the North Side—still wears the ancient garments, but the simple faith has gone Below the surface, Middletown is in profound ideological turnoil and transition.

## PLAINVILLE, USA

Running along my book shelf, we pick out *Plainville*, USA, by James West. The author, an anthropologist, knew exactly the kind of town he wanted to study. After a long search he found a rural community of under 1,000 people in the Midwest which fitted his specifications. He made the analysis alone, between June, 1939, and August, 1941, as part of a larger study on acculturation, financed by Columbia and directed by Ralph Linton.

Plainville is a far less complicated community than Middletown. There are no factories, and marginal farming is the principal way to make a living. Yet the same contradiction is to be found out here on the prairies as along the Wabash, People do

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Foolish and wasteful make-work programs.

not believe in what they are in fact doing. During the great depression Planville shifted from an individualistic to a welfare economy—it had to or starve—but almost nobody approves of it. Charity and relief in 1940 have become functions of the federal government, except for a little private charity still carried on by one church. All the federal agencies are utilized to the fullest extent, yet they are denounced constantly for "ruining this country," "making people unwilling to work," "meddling with other people's business. . . ."

A whole new form of rural social organization has been instituted under the government's agricultural program—subsidized prices for crops, soil conservation work, farm credit, rural electrification, government-promoted cooperatives, and the rest. The older system of farm operation, social aims, and personal security is disintegrating, but reaction to the new pattern is turbulent. Nowhere have I seen the agricultural revolution which has struck America since 1933 more vividly described.

Mr. West's working methods are interesting. He made the rounds of "several notable loafing centers," collected gossip and news at every opportunity, attended church bazaars, basket dinners, funerals, baseball games, pie suppers, public auctions. He taught in the high school as a substitute when a teacher was sick, and joined a number of clubs and organizations. Afternoon and evening were often spent in interviews. These interviews varied from a total of two hours to several hundred hours per person. He took life histories of eight adults, ranging from 30,000 to 75,000 words each He hired high school students to record their "autobiographies," some running to 50,000 words, under the general style of "I Remember."

He ransacked the county courthouse records, and those of the AAA, FSA, and other federal agencies; he combed files of the weekly newspaper back to 1885. He read genealogies and the History of Woodland County. He sums up this material with the surprising statement. "Even in an isolated community like Plainville, there exists so vast a body of relevant printed and other documentary material, that no one could read it all

in a lifetime." Mr. West's freestyle interviewing contrasts with the structured interviews of rural sociologists, where in some cases every respondent is asked the same series of questions.

#### DEEP SOUTH

Beside *Plainville* on the shelf is *Deep South*. Four social scientists, trained at Harvard, hved for a year and a half in the 1920's in a southern city of 10,000, studying its culture. More than 5,000 pages of typewritten notes form the basis for the book, together with statistical records of the town and the surrounding countryside. The investigators were two married couples, one couple white, one Negro, who thus had unparalleled opportunity to check events from both sides of the color line.

Deep South, by Davis and Gardner, describes the plantation system, both before and after the Civil War. We are shown the romantic memories which are preserved in the belief systems of the upper class, and also the tangible facts of history and sociology.

Ruth and Josephine took up the fight and went back generations telling each other things about their families, digging up things that nobody wants to hear about. That is the way people do here. If they once get mad with you, they don't just be mad with you—they go back as far as they can—telling stories on each other's ancestors.

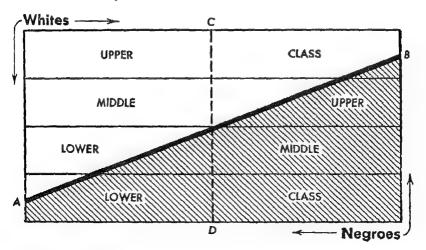
The greatest insult possible in "Old City" is to defame one's "original ancestor," the cotton planter who founded the family. No attention is paid to *bis* forbears—they can be burglars or pirates—it does not matter. The whole belief system of the upper class comes to rest about the year 1840. Nothing since then amounts to much. Naturally this emphasis affects all the town's behavior—10,000 people walking slowly backward. "A very old woman may be said to be a symbol of the upper class group. . . . The ritual and deference surrounding her attendance at a group gathering—generally limited by her great age to afternoon tea—is suggestive of royalty" She is the cherished link with the past, the closest living symbol of "the old days."

In the old days the planter aristocracy was recognized as

superior to all white freemen, who in turn were superior to all black slaves. This pattern was destroyed in the Civil War, but after some floundering in the dark days of reconstruction, "a new social system in Old City and its countryside began to evolve. It, too, organized the relation of Negroes and whites among themselves and with each other." It divided the occupations carefully, too—Negroes getting the more unpleasant tasks.

#### CLASS AND CASTE

A curious and interesting change gradually took place. Nobody should write seriously about race relations in America without mastering this change, for it extends throughout the deep South The investigators call it the emergence of a class and caste system <sup>4</sup> Educated Negroes, such as doctors and professional people, "recognize themselves and are recognized as being different from the laborers and domestics who now work for both whites and Negroes." The following diagram helps to visualize the system.



The line AB is the caste line, dividing Negroes from whites No Negro may ever marry a white person Other rules may be broken, this one never. A caste system by definition forbids

We referred to it earlier in Chapter 12 when discussing race.

intermarriage across a caste line, and considers any offspring of mixed unions illegitimate.

But on the Negro side of the line, as well as on the white, classes form—upper, middle, and lower. The white middle class has standards similar to the Negro upper class; the white lower to the Negro middle class. People can marry across class lines, and can move up and down across the lines. It is not easy or frequent, but it does happen. This mobility is what distinguishes a class from a caste system. In the latter one is frozen, in the former he can move.

Before the Civil War the line AB was not skewed but horizontal; there were no Negro professional people, no Negro upper class Slaves were in the subcellar, considered a different species altogether. Will the line AB continue to revolve until it approximates CD? Then the races would be truly equal, though still separate.

#### OTHER MIDDLETOWNS

There are many more books on the shelf. Here is *Preface to Peasantry*, a study of two Black Belt counties by Arthur F Raper, particularly interesting for its description of how the New Deal came to darkest Georgia To jump 5,000 miles north, here is *Arctic Village* by the late Robert Marshall. By profession a forester, Mr. Marshall determined IQ's and other data about every person in a small Alaskan town, including the Eskimos He lived there all winter, writing notes in his shack at night.

Here is Small Town Stuff by Albert Blumenthal, a keen analysis of a mining town in Montana; Small Town by Granville Hicks, the most readable of the lot but the most personal. Here is Wilton: A Study of Suburbanization (from where I am writing I can almost throw a stone into Wilton), Elmtown's Youth, and a dozen more.

#### DOCUMENTARY

Let us take down Home Town: The Face of America by Sherwood Anderson, and look over the photographs. This is a

special kind of scientific record, one which may have a considerable future. Instead of a man with a notebook, we have a man with a camera. Anderson's prose is, as usual, admirable, but the pictures tell us even more.

To get these pictures, Roy Stryker of the Farm Security Administration dispatched expert photographers all over America with instructions to record what people were doing—no posing, no retouching, no tricks; the straight documentary story. More than 35,000 negatives were collected. Home Town, accordingly, is not an account of a specific community, but a generalized picture of small-town life in the 1930's—Main Street, the Methodist Church, Town Meeting, Back of the Tracks, the Civil War Monument, the Church Supper, the Drug Store, One Room School, Front Porch, Saloon, Movie House, Shacktown, Poker Game, Filling Station, Service Club Lunch, Revival Meeting, Town Constable. . . .

We have in this Stryker collection a kind of visual sampling report—telling more, in one way, than any table of figures. . . . Cornfields in Iowa to make a farmer's mouth water, dust and drought in Colorado to dry anybody's throat, pictures of sunny rural peace, terrible pictures of rural poverty. The weathered faces of men, the faces of women sagging with household drudgery, the pinched faces of children, the cow barn, the farmer's tools, the sharecropper's rags—"they are all here, photographed in their context, in relation to their environment. In rows of filing cabinets they wait for today's town planner and tomorrow's historian."

## YANKEE CITY

So we come to the published volumes of the Yankee City series—the most ambitious Middletown to date. It is the costliest, most searching and technical of them all. Thirty scientists worked on it over a five-year period from 1930 to 1934—though they were not all working at once.

W. Lloyd Warner, back from a three-year study of Stone Age peoples in Australia, was appointed director With him were associated scientists from Harvard, Chicago, and Yale, and Paul S. Lunt was his first lieutenant. The Crane Memorial Fund underwrote the project.

Two regions in America had been selected as having the most stable local cultures—New England and the South. A city was chosen in each region for intensive analysis Of the southern project we have already caught a glimpse in *Deep South*. The northern one was far more ambitious. The city chosen was Newburyport, Massachusetts, once a great clipper-ship port at the mouth of the Merrimack river. Now its scafaring activities have declined to a little clamming along the mud flats, but factories making shoes, silverware, and other products keep the people employed in normal times. The old China trade families on Hill Street, each in its stately colonial mansion crowned by a captain's walk, rival the plantation families of Old City in pride of ancestors. The whole town, on the rising ground above the river, displays an architecture more gracious than America has built for a hundred years.

When the social scientists moved in, there were 17,000 men, women, and children in Yankee City. When they moved out, they carried punch cards for every citizen, with notations showing age, sex, class, status, occupation, clubs, religion, political affiliation, housing, health, income, expenditures, property owned, education, magazines read—and Heaven knows what. By running the cards through a machine, they could classify everyone in town in every conceivable manner. No community of this size ever had such a going over.

The research staff was particularly interested in the class structure of Yankee City. Who outranked whom—in the family system, in the factory, in ethnic groups like the Irish, Jews, Poles, French Canadians, Negroes? It was concerned with housing, property rights, sources of income, clubs and cliques, churches, schools, and the political framework of the town. . . It is all there, in immense detail.

In the middle sections of Volume I we find a novel experiment in social science. Here are a dozen very human short stories, drawn from the punch cards and the notebooks, but with fictitious names. One of them begins like this.

Mr. Charles Watson, the superintendent of the cemetery, squatted on his haunches while he supervised the pick-and-shovel activities of two workmen. It was hot. . . . A shoveler stopped his work and lit a cigaret. "Why the hell can't Phil Starr leave his old man and old lady rest in peace? Why they've been down in this grave thirty years. And now, by God, he's digging them up and running all over town with them I say once they're buried, let them stay buried."

#### And another:

Going home after he had said goodnight, Sam Jones crawled in bed beside his wife, and the springs sank in the middle. Three small children were asleep on a mattress in the corner of the room. Two adolescent daughters slept on cots next to the wood stove in the kitchen. . . It had suddenly turned bitter cold The kitchen table was still littered with the remains of the evening meal.

These stories have an effect like the photographs in Small Town; they tell about people in a vivid human way and put flesh and blood on the cold statistical tables and the charts.

## THE SIX CLASSES

The research staff had not been long in town before a cherished hypothesis was upset. They began their labors believing that the fundamental structure of American society was economic—rich on top, poor on the bottom—and that the richer you were the more prestige you had. But evidence began to accumulate which made it difficult to accept this simple thesis. Six classes were finally identified by the people of the town themselves. "She's one of those Hill Street snobs. . . . " "He runs around with the Riverbrook gang. .. "There were borderline cases, of course, but after thousands of interviews, nearly everyone in town was placed in one of six classes as follows

- 1. Upper upper
- 3. Upper middle 5. Upper lower

- 2. Lower upper
- 4. Lower middle 6. Lower lower

It was found that the rich were not necessarily on top, nor the poor necessarily on the bottom. The richest class was the lower upper, while some of the old families in the upper upper class were poor as church mice. Also it was interesting to note that many of the clammers in the lower lower class, who lived in shacks along the river, were descended from the same Anglo-Saxon forebears as the great folk on Hill Street. When fate beckoned they had preferred clammin' to smuggling.

This, observe, was a class system, not a caste system. Observe, too, that it bore little relation to the Marxist "class struggle" People moved up and down from class to class, but mostly up; and occasionally they married across class lines. The upper uppers were without exception old Yankee stock, but the Irish were breaking into the lower upper, Jews and Italians into the upper middle. It is an exhilarating sight to see steerage immigrants from the old country land first in the lower lower, and then ascend as in a slow elevator, class by class, while a misfit from Hill Street flashes by them on his way to the bottom.

New York City has long exemplified a similar process. The latest wave of immigrants—beginning with the Irish after the starvation time of 1848, and continuing with Germans, Jews, Italians, Greeks, Slavs, and so on—starts on the bottom, with the worst housing, the least attention by all city services except the police, the minimum of prestige All earlier waves of immigrants, including the original Dutch and the English, look down on them as the dregs of humanity. Gradually they ascend, sometimes to the highest levels—making a shambles incidentally of the New York Social Register—as new waves come in under them.

The books on my Middletown shelf may not always represent social science as defined earlier, but the research staffs use many of the latest scientific methods, and their techniques continually improve. A survey of intergroup relations begun in

<sup>&</sup>lt;sup>5</sup> American class structures are further analyzed in Warner's Democracy in Jonesville.

Elmira, New York, may turn out to be the most rigorously scientific of all.6

Meanwhile the information gathered and the conclusions drawn can be helpful to everyone interested in improving his town's performance—mayors, judges, chiefs of police, city planners, social workers, school boards, traffic engineers, housing authorities. The scientists take the town apart, but carefully and with due respect, allowing the rest of us to see for the first time its intricate, closely woven structure, and what makes it run.

John P. Marquand used some of the "Yankee City" material in writing what many believe to be his best novel, Point of No Return. Is it too much to expect that social science research will give novelists and playwrights both a rich mine of new material, and a closer check on the credibility of plots and characters? Instead of another course in How to Write, the aspiring novelist might take one in anthropology

<sup>&</sup>lt;sup>6</sup> Conducted by Cornell Studies on Intergroup Relations, under an eight-year grant from Rockefeller Foundation.

# Managing Men

The massive changes in human relations that have come over many large American firms in the last generation were highlighted for me in a recent conversation. I was talking to the vice president of a huge corporation, and he told me about the three presidents he had served under since he joined the

company, fresh out of college, in 1909.

"My first boss," he said, "was a complete autocrat. He made all the big decisions, and would have fired any of us who raised a question. He knew all the answers, and we did what we were told, yes sir, right down the line of management. Like the Army." The second president was an autocrat too, but he didn't believe in himself with the sublime conviction of number one. On big decisions he would ask for advice occasionally, and didn't claim to know all the answers. Once in a while you could talk to him as a human being.

"The president we have now," he went on, "has the ultimate power, of course, but none of us thinks of him as an autocrat. He goes in for open communication, group decisions, decentralization of authority, even opinion polls of workers. He has more experts on human relations around the shop than you can shake a stick at Once it was only lawyers. Then came the engineers and accountants Now the place is crawling with in-

dustrial psychologists"

"Is this shift typical of other businesses too?" I asked him.
"Yes," he said, "some executives go gladly, some grumble, but
we're all headed in that direction."

"And how about these industrial psychologists? Do they know all the answers?"

"Well, most of them never met a factory payroll, but they have something management wants. They can put you wise to angles you never thought of before It's probably being overdone, and there are some quacks—take that Dr Y with his Freudian motivations, but we'll never go back to the czardom of my first president. For one thing, the company has almost three times as many employees as it had in 1909. When an organization gets as big as that, you've got to use some science if you're going to manage it at all"

#### THE FACTORY AS A SOCIAL SYSTEM

Businessmen abroad are puzzled by these changes. In Europe, the chief concern of management is to manage money, materials, machines—and if possible markets. In the United States it is increasingly the management of men, and so becomes ever more deeply involved with the behavior sciences. Worker and boss in Europe are still heavily influenced by the class struggle concept—what one side gains the other side loses. Over here, a more flexible class system, plus the mass production idea of expanding markets—with gains for both worker and stockholder, and even consumer—have provided scanty nourishment for the Marxian philosophy.

Indeed some executives have gone beyond the managing of men to the managing of a social system. F. S. Roethlisberger of the Harvard Business School puts it this way:

I should like to suggest that the manager is neither managing men nor managing work, but that he is managing a coordinated set of activities, he is administering a social system. That is the human relations approach as contrasted with any approach which implies that people at work can be considered separately from their work.

This puts the culture concept into industrial relations. When a factory is thought of as a social system—a functioning community like Middletown or Plainville—the behavior of workers

and managers makes sense. When it is regarded as an exhibit in the class struggle, or in paternalism, or as a kind of zoo stocked with Economic Men, the sense goes out of it, and about all the investigator can do is to cuss human nature and argue whether the boss or the worker is the more to blame.

Somebody has said that you can lead good men through the fires of hell, but that you can't drive them across the sidewalk. The autocratic manager got the work out, but at a cost. He thought most people "dumb," distrusted "human nature," and believed firmly in Economic Man, i.e., that the pocketbook motive was supreme. Business existed solely to make a profit for its owners, and notions of public service were tosh. He had no conception of democratic leadership, of staff decisions, or workers' participation. Unions were anathema, and he never tired of declaring that "what we need around here is more discipline." One often found a picture of Napoleon on his office wall. Beatrice Webb, investigating labor records in Britain many years ago, kept finding the statement: "Water plentiful and labor docile"—which suited Mr. Big right down to the ground.

Napoleons are not extinct in America, especially in little business, but the problems of our giant corporations, now operating in harness with giant labor unions, have grown altogether too much for them. Mr. Sewell Avery may have been the last of the Great Tycoons.

## NEEDED: MORE SCIENCE

The American Management Association, composed of executives in many industries, is now deeply committed to more science, and fewer Napoleons in the front office. "Most individuals readily agree," said Lawrence A. Appley, president of the Association, "that as much should be known about the people of an organization as about the operations . . . The great danger lies in the assumption that all that needs to be known about people is already known by those who know it. That assumption is loaded with dynamite—and has blown up in the

hands of many a management." Mr. Appley argues for more research in human relations. After a visit to the tremendous laboratories of the General Electric Company at Schenectady, he hopes that some day he will see "the same fine facilities, the equivalent talent, the excellent environment for research, devoted to human resources."

American businessmen—and some union leaders, too—are already spending millions of dollars a year on social science research and consulting work. Here is a list of problems on which management wants help, and is willing to pay handsomely for it.

- I. Incentives What makes the workers work? The carrot and stick idea is an indifferent answer Will profit-sharing systems help?
- 2. Two-way communication. How can we get our story down to the rank and file? How can they get theirs up to us?
- 3. Decision-making. How can vital decisions be made most reliably? How the them effectively to the facts? What about group decisions? What about decentralizing decisions—pushing them down the line? What kind of decisions can be pushed down the line?
- 4. How can we pick executives with less uncertainty?
- 5. How can we mold various levels of management into a better team? How can we hold more effective executive meetings?
- 6 How can we deal more intelligently with powerful unions?
- 7. What can we do about absenteeism? About safety?
- 8 How can we train foremen better? And new employees?
- 9. How shall we handle technological displacement due to automation, or to any large shifts from handwork to machine?
- ro. What are the best methods for administering pension systems and fringe benefits generally? (Work for economists, psychologists, and medical experts, combined.)
- 11. How should we read the economic weather map, and adapt our business to it? Inflation, deflation, what is the outlook?
- 12. How do we come to terms with the community which surrounds our factory? Does it control the social system inside the factory?
- <sup>1</sup> The General Electric Company has purchased a large estate at Crotonville, N. Y., for a laboratory in human relations to rival its engineering laboratories.

These are large questions. Social scientists are far from solving all of them, but their knowledge keeps growing. We can only select for discussion a handful of illustrations from the expanding field. Suppose we begin with the most famous piece of scientific research so far done in labor-management relations. The story has often been told, but I find it a useful bench mark.

### THE HAWTHORNE EXPERIMENTS

Elton Mayo, who fathered this study, was born in Australia, lived for a while in England, and then became a professor at the Harvard Business School, where he taught and worked for 25 years. He died in 1949. He might have been a physicist, an entomologist, a surgeon—he had that kind of mind. He wanted to know, and he doubted what was known. No one who met him can forget his stimulating talk and blazing blue eyes. Mayo was not the originator of research in labor-management relations, he stood on the shoulders of other men, for instance, Carleton Parker and Clarence J. Hicks. Even Fiederick W. Taylor, with time studies of bricklayers and steel workers, had put some knowledge of human relations into the storehouse.

Here is a group of six girls, sitting in a small room in a large factory in the town of Hawthorne, near Chicago On the bench before them are small metal parts in trays, to be assembled into a telephone "relay"—which looks something like a pocket whistle. Their nimble fingers fly. When a relay is completed, every minute or so, it is dropped into a chute and automatically counted The production rate of each girl, and of the group, can thus be figured per hour, per day, per year.

In the back of the room sits a man with a notebook, watching everything that happens, day in, day out, for five years, beginning in 1927. (He has substitutes from time to time) The girls do not resent him, they come to like him and often tell their troubles to him They learn to trust him as a kind of father confessor, and he respects their confidence. He represents the Western Electric Company, and the Harvard School of Busi-

ness Administration, which are jointly making the experiment under Mayo's direction.

In experiments for the Fatigue Institute in England, during World War I, Mayo had worked with factory employees before. He found that they often produced more munitions in a ten-hour day than in a twelve-hour day. This was contrary to common sense, but not to human nature—which may tire and run down when worked too long. The girls at Hawthorne were a test group, being compared with a control group assembling relays in a larger room. The object of the experiment was to determine the effect on output of various changes in hours, in wages, rest periods, piecework, and so on. The assumptions were that higher wages would increase output, shorter hours decrease it—the usual common-sense assumptions.

Before the experiment was a year old, these preconceptions had been seriously undermined. What was the matter with these girls? Why didn't they behave the way they were expected to behave? Being scientists, the investigators continued to keep a faithful record of what happened even if they were in the dark as to what caused it. The mystery story developed like this

The first seven weeks were devoted to establishing a base period. The girls averaged 2,400 relays a week each, and worked a regular 48-hour week, including Saturdays, like the rest of the plant.

They were then put on a piecework basis for eight weeks. Output went up.

They were given two rest pauses, morning and afternoon, for five weeks. Output went up again.

The rest pauses were lengthened Output went up sharply.

Six rest pauses were tried and output fell off slightly. The girls complained that their rhythm was broken

Then back to two rest pauses Output went up again. Hours reduced for a seven-week period. Output went up.

So it continued, trial after trial, each one lasting for some weeks. Whatever new factor was introduced, the number of relays coming through the counters increased, with the one exception noted. The research staff began to lose sleep as their assumptions disintegrated. Some force they could not measure was pushing output up, no matter how they shifted hours, wages, rest pauses.

They prepared then for a supreme test. Take away everything given to the girls over all the periods, and go back to where the experiment started—48 hours, no rest pauses, no hot lunch on the company, no piecework, no Saturday holiday, nothing. The supreme test lasted 12 weeks. Output jumped to an all-time high—3,000 relays per week!

The scientists were as disorganized as their assumptions. They had tried to return the girls to the original conditions of the experiment, but the original conditions had disappeared The experiment had transformed the group; the girls no longer possessed the characteristics they had started with. What was this mysterious X which had thrust itself into the experiment? The staff began looking for it all over the factory.

They finally found it in the girls themselves. The workers' attitudes had changed The mysterious X was the way the girls now felt about their work. By putting them in a little friendly society of their own, by consulting them often, the scientists had caused a psychological change in these young women and given them a new sense of their status and value. The girls were no longer cogs in an impersonal, pecuniary machine; they were helping in a small way to direct the machine. So their output went up no matter how conditions were changed under them.<sup>2</sup> The investigators concluded that this happened because the girls were recognized, because they felt important. They had found work whose purpose they could clearly see and their interest was deeply engaged. So they performed their tasks faster and better than ever before in their lives.

Since the invention of the steam engine most factory managers had regarded workers as "hands"—a part, and on the whole an unreliable part, of the cost of production. "Labor" was a commodity, to be bought and sold like pig iron. Sometimes, by way

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Of course, if physical conditions had been changed beyond tolerable limits, output would have been affected. See account by F. J. Roethlisberger.

of contrast, a paternalistic manager treated his workers like little children, to be given candy and petted. The Hawthorne experiment broke down these illusions and proved that the way to make workers work hard and willingly lay in two basic and allied principles: First, make the worker realize that his work is important, and that he is important Second, accept the fact that a factory is part of society. Under its roof society must function in its accustomed ways. Bands and teams and groups will form. They must be allowed for, respected, and if possible utilized.

#### FOURTEEN MEN

The research staff then set up their instruments in another room in the Hawthorne plant where 14 men were engaged in "bank wiring," which means attaching wires to switches for certain kinds of telephone equipment. Nine men are wirers, three are solderers, two are inspectors. In another frame of reference, four are Czechs, three Germans, three Yankees, two are Poles, one is Armenian, and one Irish—an average Chicago ethnic cocktail.

These men have somehow become a team, a little society, inside the Hawthorne plant of 20,000 workers. Unlike the group of relay girls, however, this society does not increase output—which is one reason it is being studied. Not only was the team formed spontaneously, but natural leaders have arisen. The managers of the plant are sublimely unaware of the strength and toughness of this outfit. The 14-man team is not opposed to management but comparatively indifferent to it, having more important matters to attend to. It is strictly a cultural phenomenon, not an economic one. The men are not concerned with the amount of money they get nearly as much as they are concerned with how their wages compare with Tom's and Jerry's. Relativity is what counts with them

The company has recently adopted an incentive pay plan: the more work an employee does, the more he earns. It is a fair plan, and contains no speed-up provision. Management assumes it will increase production. It does nothing of the kind. The

team members hold to a flat 6,000 units a day, no more, no less—though they could readily turn out 7,000 units without fatigue. If some member gets ambitious, the gang slaps him down. There is no apparent relation between an individual's ability and his output. The team does not appear to act in accordance with its pecuniary interests at all. Why?

More racking of brains for the research staff. Why don't workers earn more money when they have a fair and honest chance to do so? The answer seemed to be that the men in the bank wiring room were more interested in maintaining their group relations than in cash. They were afraid, too, that a speed-up might be hidden in the plan. This was a result which neither the incentive plan nor the management was prepared to cope with. Yet any management which ignores the feelings, sentiments, belief systems of the workers is operating in the dark.

The great plant at Hawthorne was found to be full of similar informal groups and teams, powered by leaders whom nobody in authority had ever selected. They exerted a rigid control over "rate busters"—who turned out too much work; over "chiselers"—who turned out too little; over "squealers"—who told on group members. The life of a squealer could be made very unhappy indeed,

It was found that efficiency engineers had tried in the past to break up informal groups, hoping to free individuals for greater production. This policy looked well on paper, but when it was put into effect, time and again production went down. The engineers had unwittingly deprived the worker of the thing which chiefly gave meaning to his work, and without which his full cooperation was impossible. He wanted to "belong."

## AIRCRAFT PLANT TEAM

During the war, social scientists made a study for the government of labor-management relations in California aircraft factories. Why, they were asked, were labor turnover and absenteeism so high? This is what they found.<sup>3</sup>

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Reported by Elton Mayo and G. F. F. Lombard, See Bibliography.

"John Briggs" is a team leader in Department Z. Nobody appointed him, he just is, and every worker in that end of the shop knows it. One day John goes to the supervisor to present a grievance for one of his team members—a little matter, easily straightened out. The supervisor, who is having an off day and dislikes John anyway, fires him without even hearing the grievance. A team leader is lost who the management did not even know existed.

John had been building up production in Department Z the way a good football coach builds a random collection of rookies into a striking force. The research men discovered that he was boosting morale and could relieve the foreman of many problems of minor discipline—a real tower of strength. And now he is walking out the gate, burning with resentment at the supervisor and the company. The team he led has lost its structure. In the front office, the chart makers presently begin to wonder why output in Department Z has taken a nose dive.

It is useless, the scientists say, for management to ban informal groups. They will form anyway; they seem to be as natural as falling in love. Well-informed managers now are utilizing this drive, and even organizing groups deliberately. It was found in this California experiment that most absentecism and labor turnover came from workers who did not make a team, who perhaps had no chance to do so. Thus they had no social life in the factory, nothing to involve their interest and loyalty. Again and again we come back to the first principle of the behavior sciences man is a social animal.

You can readily see what has happened in these experiments. Scientists are at last uncovering some of the basic theory of human relations on the job. Before Hawthorne, we had a little common sense, no underlying theory, and a great deal of plain, loud dogma from both managers and workers. Now we are beginning to understand what makes workers work, and to test the knowledge in controlled experiments.

## A MILLION FOREMEN

The new understanding was applied on a grand scale in the Training Within Industry program during World War II.4 Under the War Manpower Commission, more than a million foremen were taught methods for handling workers under them, based on the recognition that they were human beings in a social structure. In one simple technique, the foreman may straighten out a situation in the factory by letting Bill tell him about the trouble at home. This is a long way from the old-time foreman who was asked.

"How do you handle a new employee?"

"I jest stand there . . . and stare him down to kinda show him how dumb he is."

"And then?"

"Then I spit. . . ."

The Job Relations Course in the TWI programs gave every foreman a little blue card with these printed reminders:

Let each worker know how he is getting along.

Give credit when due; tell him while it's hot.

Tell people in advance about changes that will affect them. Tell them why.

Look for ability not now being used.

People must be treated as individuals, not numbers on the payroll.

In any given problem, first get the facts, then weigh and decide, and only then take action Afterwards be sure to check results.

This problem-solving technique for foremen, you will note, is based firmly on the scientific method.

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup> See report edited by Walter Dietz and Frances Kirkpatrick,

## The Cause and Cure of Strikes

On a cold March day at the bottom of the great depression, 1,500 workers walked out of the dozen shoe factories in Newburyport, Massachusetts, almost without warning.¹ They struck with such impact that every factory was closed tight, not a man remained at his bench. The principal industry of the town shut down, at a time when work was very hard to get, and remained shut for a month. In two weeks' time the strikers were completely organized and began picketing effectively. Two weeks later the managers recognized the union. Arbitration by the state board was then accepted, and gave the workers nearly everything they had struck for.

The managers were dumfounded by this rush of events. Again and again they had said that their employees were too sensible to go on strike. Yankee City workers had never been thoroughly organized, and union men from the shoe factories of Haverhill and Lynn complained that they couldn't be organized—they were too obstinate and independent. Some of the workers themselves just before the walkout had told the research staff there would be no strike. Then the impossible happened!

Foreigners and Yankees of ten generations, men and women, the very old and very young, Jews and Gentiles, Catholics and Protestants—the whole heterogeneous mass of workers left their benches, and in a few hours wiped out most of the basic production from which Yankee City earned its living. Not only did they strike and

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Volume 4 of the Yankee City series is devoted to this strike.

soundly defeat management, but they organized themselves and joined an industrial union. . . .

### EXPLANATIONS

How could this have happened? To find the real causes required months of study. Explanations, however, were freely offered within ten minutes of the walkout. Everyone naturally asked the reason, and everyone had his own private answer. It was the depression, said a manager; low wages, said a worker; a plot of the rich, said a Greek shoe cutter, a red plot, said a superintendent; union agitators, said a Hill Sticet gentleman. . . . "Each man, owner and worker and townsman, spoke his own brand of economic determinism."

Plenty of noneconomic determinism was offered, too, and many scapegoats. "It's the foreigners," said the Irish-Americans, thinking of recently arrived Greeks, Poles, and Armenians. "It's the Irish," said some of those whose forebears had landed earlier "It's those New York Jews"—meaning the financial syndicate which now owned the shoe factories.

The research staff worked overtime, interviewing managers, workers, union organizers, tradesmen, city officials, government arbitrators. "All of them told us why the strike had happened Each told us but part of the truth; no one knew all of it." In every account, important characteristics were left out.

If social science is to be of any worth to us it must be capable first of all of adding significance and meaning to human behavior which will give us deeper insight into human life, and explain more fully why human beings act the way they do.

Among the questions in Newburyport were these In a community with few previous strikes and no successful ones, why did the workers suddenly walk out *en masse*, hold their ranks firmly, and win their demands? Again: How could a strong labor organization rise in a town where unions hitherto had hardly achieved a toe hold? What, in short, were the *real* rea-

sons for the strike, as contrasted with the alleged reasons so freely offered?

It did not take long for the scientists to agree that one real reason was the depression. Yankee City, like Middletown, in Indiana, had been hit hard. A clerk in the local relief office reported: "Last Tuesday I saw 360 people here, and yesterday 240.... We have two doctors, a minister, lawyers, businessmen on relief—people you'd never believe could be on our books." Citizens were breaking up furniture to burn in their stoves; some were literally going hungry.

Depression, low wages, rapid style changes in shoemaking, waiting around the shop without pay, all had contributed economic reasons for the explosion. But they did not explain nearly enough

### TRACING BACK

So the scientists began delving into the past. They constructed an economic and social history of Yankee City since its founding in 1635. They built a technological ladder, showing inventions and changes in shoe manufacturing. With the help of John R. Commons' study,<sup>2</sup> they reconstructed the labor history of the industry; and with a book by Emile Durkheim, they worked out the development of machines and division of labor which led to the mass production of shoes.

When settlers first came to the Merrimack Valley they made their own shoes, as one of the winter tasks. Then came the itinerant cobbler with his tools, to process the hides which the family had cured. He would live in the house with them for weeks, while he measured feet from baby to grandfather, and shod them for the coming year. His pay was mostly board and lodging.

About 1760, the so-called "ten-foot shops" were set up to make shoes to order for the local folk. A customer who went to be measured "bespoke" his order, and the shoemaker pro-

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> "American Shoemakers, 1648-1895," Quarterly Journal of Economics, November, 1909.

duced the complete article. Later the first entrepreneur, or capitalist, appeared. He hired workers to make shoes and then he sold them in the immediate neighborhood. Specialization began; some workers made soles and some made uppers, but there were no machines.

So we come to the great change. In 1852 a machine for stitching uppers was invented, and within a decade many other tasks had been mechanized. The saving in labor costs per pair of shoes was fabulous, sometimes up to 90 percent of the old hand cost. Where an expert hand laster could process 50 pairs a day, the lasting machine spewed out 700 pairs. The shoes themselves changed only in detail, but the process of manufacture shifted from a single skilled trade, carried on by a craftsman from start to finish, to a process involving hundreds of operations per pair, most of them done by machine. Workers no longer owned their tools; they had no part in designing the machines they were asked to operate, and no way of predicting what operations would next be mechanized. At a stroke they lost both their security and their pride.

By the time the last old shoemaker died, financial interests in New York had bought our the local factory owners, and the final link of control within the town was broken. Shoemaking in Yankee City had become a strictly impersonal operation for a distant market. New York interests might speed the factories up or close them down; nobody in authority seemed to care.

So the "American Dream" dimmed and faded out in the shoe factories of Yankee City. Warner's men had finished reconstructing the story and come to the end of the trail. They understood now why workers had marched out as one man on that cold March day and joined the union. The same evidence indicated one reason why the American labor movement has grown from two million to 16 million members in recent years. Unions restore some of the pride and self-respect which machines have taken away.

Shoes used to be made by people who wore them themselves,

or took pride in their skill, or both. They are now made by people who rarely wear the shoes they make, have no idea what happens to the output, and have lost their skill and the status which went with it From a dynamic and absorbing human occupation, mass production has revolutionized shoemaking into an impersonal, monotonous routine. So Newburyport shoemakers in 1933 were under tension not only economically but emotionally. Their work had ceased to give meaning to their life.

#### ON THE BELT

Shoes today are made by machines which the worker feeds, but mass production has taken a long step beyond that. In the conveyor system, used for automobiles and other durable goods, the machine sets the pace of the job The worker briskly attaches the windshield wiper as the car goes by. This presents us with the problem of the *robot*, the mechanical slave, the man on the belt. He has long been pointed to as a major liability of the machine age, but only recently have social scientists found out what the menace really amounts to. Some managers allege that there is no menace at all, the robot enjoys the job What are the facts?

Here is an automobile plant in New England, employing 1,800 workers. About a thousand of them are on various assembly lines—chassis, body assembly, final assembly after the dramatic "body drop" onto the chassis, and various subassemblies. A team of social scientists from the Institute of Human Relations at Yale, headed by Charles R Walker, have selected a group of men as a quota sample of the total force on the line. These men are given intensive interviews at their homes, with both management and union endorsing the investigation. The results are set forth in *The Man on the Assembly Line*, by Walker and Guest, published in 1952—a small book which is making industrial history.

What did the scientists find? They found that nine men out of ten did not like their work. Most of them preferred some for-

mer job in a smaller concern. They stayed on the belt because of the high pay and job security. But absenteeism and labor turn-over were higher for them than for other workers in the plant, and some said they could not take it much longer. One out of ten either liked his work, or was indifferent to it. "If you can daydream," one worker said, "it isn't so bad."

### GRIEVANCES

What did the majority object to? They hated being paced by a machine rather than by their own working rhythm. "The work isn't hard, it's the never-ending pace. . . . The guys yell 'Hurrah' whenever the line breaks down, you can hear it all over the plant!" Again, they were bored beyond endurance. "The job is so sickening, day in and day out plugging in ignition wires. I get through one motor, turn around, and there's another motor staring me in the face."

They said that they had no opportunity to develop personal skills, which made them feel inferior and stupid. "One of the main things wrong with this job is that there is no figuring it out for yourself; no chance to use your brain."

They said that the job was in a kind of mental twilight zone; they had to pay attention, but not enough attention to interest them A job which left the mind completely free was better, but a job which absorbed the mind was best of all. The craftsman in them was in revolt—like the shoe workers of Newburyport.

Perhaps the biggest grievance, however, was that each man worked alone. Assembly lines, as commonly run, break up the natural teams and groups which always tend to form in industry, and which can do so much, as Mayo discovered, to make factory work more tolerable and human.

These automobile workers had few grievances against foremen, equipment, the plant. The light was fine, the washrooms clean. But their unhappiness was reflected in the bitter things they said about "the company," off there in Detroit somewhere. They had to blame somebody. Frustration, as another group of scientists at Yale once concluded, usually leads to aggression.

### CAN THE BELT BE HUMANIZED?

The scientists found the men ready with suggestions to improve their lot. Two appeals stand out: give us a chance to use our minds; give us a chance to work together. Both are close to basic human nature and no culture can deny them indefinitely without risking an explosion.

Rest pauses, they said, might help. Instead of waiting for the line to break down, why not stop the damn thing for a few minutes morning and afternoon? "It would be something to look forward to." Any opportunity to change pace would help. It was suggested that they be allowed to "work up the line," attaching, say, defrosters, rapidly—and then relax for a few minutes, thus beating the remorseless rhythm Instead of one nut, screw in half a dozen, giving more variety. "I'd like for once to do a whole fender." A whole fender may be too much to ask, but the poor chap might do more of it than he does now.

Once set, the pace of the conveyor cannot be changed much, but workers would feel better if they were *consulted* about it at retooling time. If they had a hand in the process, they said, they would not resent it so much.

Instead of learning the job at only one station on the line, the men suggested, learn the job at five or ten stations, and take turns doing them—this week at Station 6, next week at Station 17. This is the principle of rotation, and not so impractical as it may sound. "Utility men," who substitute for sick or absent regulars, learn to handle a lot of stations, and feel much better about the job than the regulars The scientists found one foreman who had organized his whole crew this way, and the rotation worked so well that management considered extending the practice.

Many observers, both in and out of industry, have said that variety cannot be introduced into the conveyor system without abandoning the central idea. Mr Walker does not bear them out. The robot can become a good deal less of a robot without sacrificing the moving line. But the big problem of social relationships inside the plant needs much more research. How can team-

work, which is essentially circular, be combined with the belt, which is essentially linear? The conveyor is in conflict with a cardinal social principle.

The Yale scientists have demonstrated that there is a crack in the door. More research may well push it open. Industrial engineers have shown how physical materials can click in a moving line, delivering a Buick every 45 seconds. Social scientists, in consultation with workers, have now to show how human beings can click at stations along the way and retain their humanity. Mass production may never rival a ball game as entertainment for those who work at it, but it can become more tolerable if it allows for the laws of human behavior as well as the laws of physics.

### CONDITIONS OF INDUSTRIAL PEACE

We have looked at some of the causes of labor unrest, and listened to a few constructive suggestions. Have any large companies really solved their labor problems? Is there a tested formula for stopping strikes?

No, there is not. In totalitarian countries you can shoot strike leaders, but that does not make the rank and file work any better or cure their grievances. Some American corporations, however, have operated for many years without a strike, and social scientists are trying to find out why An outstanding example is the Standard Oil Company of New Jersey.<sup>8</sup> From 1917 to 1955 it went without a serious strike in any of its far-flung operations. Even though it may have a strike some day, its record cannot fail to remain impressive. When most American refinery workers were out in 1945, Jersey's employees remained on the job.

All this began during World War I, when a series of terrible strikes in the Jersey plants produced pitched battles on the streets of Bayonne, with men killed and the state militia mobilized. Management, at its wit's end, called in an expert on human relations, Clarence J. Hicks, a forerunner of Mayo, Roethlis-

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> On which I reported in their magazine, The Lamp, October, 1946.

berger, and Warner. After a careful survey he advised a change in policy which, for 1917, was revolutionary. He said that if managers wanted to stop strikes, they would have to think about workers as human beings rather than as commodities. He said that executives should not be hired unless they had demonstrated their ability to get on with people.

This was a heresy like telling the Republican Party it should come out for free trade. But the traditional policy had broken down so catastrophically that Jersey's managers were ready to try anything. They swallowed the bitter pill of Mr. Hicks. His specific recommendations included: collective bargaining, the highest wage scale the industry could afford, a full set of what we now call "fringe benefits" for workers, the encouragement of teamwork, better communication between men and management—especially the prompt settlement of grievances.

Since that day, Jersey's management has been in the hands of executives who have followed these policies in good faith, and added more along the same line. The policies were first suggested by a social scientist, and the company has employed other scientists to carry them forward. It has on the payroll, for instance, several expert counselors, who meet with older workers and advise them about the tough psychological problems of retirement at age sixty-five.

One activity which particularly interested me, when I was looking into Jersey's labor relations, is the survey conducted from time to time by Elmo Roper Associates to determine what workers think about the company and their jobs. These consultants first secure the full cooperation of the union, and then conduct a mass questionnaire When the poll was first proposed, the men were naturally suspicious. Mr. Roper at a shop meeting guaranteed that no names would be revealed, and that the union as well as management would see the results. After a period of uneasy silence a union president spoke up:

"I'm for it," he said. "It's a good idea and here's why. I tell the management what the workers want. They want this and they want that, and I bang the table. So Bill here [the superintendent of the plant], he says no, that's not what the workers want, they want that and they want this. And be bangs the table. But neither of us knows a damn thing about what the workers really want, and I'm for Mr. Roper finding out!" The questions Mr. Roper asks include:

Does management consider you as a human being or a number on the payroll?

Does it make you feel your job is important?

Do you like your foreman? Does he welcome your suggestions? Show favoritism?

What is your favorite company policy? (Sick benefits get a large vote, also the promotion system.)

Would you rather work for a big company or a small company?

### EIGHT PRINCIPLES

In 1947 the National Planning Association, a private research group in Washington, set up an ambitious project—to find the principles of industrial peace. Instead of relaxing and thinking about it, the Association sent field crews of social scientists all over the country to study big companies where strikes were few and labor relations good. Clinton S Golden, of the Harvard School of Business Administration, assumed command of the project with these classic words: "Instead of looking into the causes of the conflicts we hear so much about, we ought to try to discover how much peace there is and what makes peace"

Twelve companies were analyzed in the field, and 18 more by questionnaire and records, over a period of five years—the most comprehensive study of labor relations ever undertaken. They were all "good" companies, selected deliberately to answer the question How do the good companies do it?—so that the word could be passed along to the not-so-good companies All 30 corporations had strong unions, which was also central in the program.

<sup>4</sup> Some of the companies were Crown Zellerbach Corporation, Libby-Owens-Ford Glass Company, Hickey-Freeman Company, Lockheed Aircraft Corporation, Colorado Fuel and Iron Corporation, Now recorded in a book, edited by Golden and V. Parker See Bibliography.

The story of the research has been published in detail by the National Planning Association. Here we have space only to list the eight "universals" for industrial peace which were found to be operating in all the companies. We can be confident that these same principles also help labor and management to get on relatively well together in America today.

The principles were taken hot and dynamic from actual operations. If you are thinking of starting a nice little business some day—say the manufacture of magnesium wheelbarrows—you could do no better than to plan your labor policies with these eight guides. You may not need them all, you may modify them, but they will start you in the right direction, they are something to predict with, based on careful scientific research.

I. Management accepts the union as here to stay, and begins looking for ways and means to put the union to work to help the company. Rather than a headache, the union becomes an ally A responsible union, for one thing, can take over the administration of discipline in the shop.

2 Management gives top priority to human relations. Its personnel department is the best that money and brains can

obtain.

3. Management recognizes the union as a different kind of social organization from the company itself. Union leaders are responsible to the rank and file, while company leaders are responsible to the man above. Deals with union leaders are accordingly dangerous; management must keep its eye steadily on the rank and file.

4 The union unreservedly accepts the company as a profitmaking institution. All thoughts of "taking it over," or raising wages to the point of financial loss, are abandoned. The class

struggle is out the window.

5. The union expects management to manage. The union ceases to be a protest outfit and becomes a watchdog outfit. This marks a profound change in labor philosophy. In the early stages of union organization, violence is frequent, bosses are always wrong, name-calling is loud and eloquent. But in these

30 companies the union has grown up, leaders assume that managers are ordinary decent human beings. Ordinary decent human beings, however, need to be checked up from time to time, and the union exercises this function.

- 6. Both union and management deliberately subordinate drives for power to a search for the accommodation of their differences. They do not expect to agree on everything, but they do expect to avoid violent conflict, and to find a modus vivendi, a way to live and let live.
- 7. Both union and management use the "problem-solving" approach rather than the legalistic approach. Instead of reading the fine print on the contract and battling for their "rights," both sides try to settle problems as they arise, on their merits.
- 8 Both union and management keep communication lines open, ready to discuss practically anything, any time, anywhere We noted earlier that the American Management Association is concentrating on this principle, promoting it throughout industry. It has become as live a topic as Taylor's scientific management was a generation ago.

This is all very fine, the skeptic may say, but what is the net result? All the 30 companies were found to be paying relatively high wages, while earning very satisfactory profits. Good human relations, it seems, pay off.

I have given only a hint of what the scientific attitude is accomplishing in labor-management relations in America. My business friend, who described the change from czardom by referring to the three successive presidents under whom he had served, was not talking about an isolated case. The new ideas are making astonishing headway. One finds them not only in private business, but in some government agencies like the TVA, and in many nonprofit organizations—charities, universities, foundations—wherever men and management face one another. The college student who wants to make a career of social science as researcher or consultant will find here a vast and exciting field.

# The Science of Polling

Polls of public opinion are used increasingly by all the social science disciplines as a research tool, and are now a formidable discipline in their own right. Research centers for training interviewers are operating at Princeton, Columbia, the University of Michigan, Chicago, the University of Washington at Seattle, and in large private organizations like Gallup, Roper, and Crossley.

Customers for opinion research include government at all levels, the mass media, businessmen, advertisers, labor unions, foundations, political candidates Polls have lately spread half-way around the world. The same question can be asked in Canada, the United States, England, France, Denmark, Italy, Belgium, Australia. Whatever its scientific accuracy, obviously the product would not be in such large supply unless there were a powerful demand for it. The case of Jersey Standard, cited in the preceding chapter, is one example of its use. The study of the robot on the assembly line was done by a special polling technique, so-called "depth interviews."

To the man on the street, the word "poll" usually means the prediction of elections, especially for United States President. These get the most publicity, though they constitute a very small part of opinion research. This chapter is primarily concerned with less sporting matters, but election results need an introductory word.

## ELECTION POLLS

The original election polls were "straw votes," where a reporter might ask a few people on the street how they intended to vote. Then came an elaborate tabulation of a great many straw votes, like that of the *Literary Digest* in the 1936 election. The *Digest* sent out millions of return postcards, asking the respondent's preference as between Roosevelt and Landon. Returns indicated that Republican Landon would be overwhelmingly elected. When the actual voting in November showed him overwhelmingly defeated, the *Literary Digest* as a vendible property presently folded.

Messrs. Gallup and Roper, newcomers in the field, correctly foretold the 1936 election of Franklin Roosevelt. They foretold it again in 1940 and in 1944. In 1948, however, they predicted the election of Thomas E. Dewey over Mr. Truman. In the words of Mr. Roper, "We could not have been more wrong." In the presidential elections of 1952, the pollsters retreated to more cautious estimates. Some of them concentrated on measuring changes in public opinion during the campaign rather than venturing flat predictions.

There is a very important difference between straw voting and the sampling technique of modern opinion research. The former has no protection against bias; the latter is scientifically designed to eliminate it. The Literary Digest poll contained two serious errors in selection: (1) postcards were sent to people listed in telephone books—who, especially in 1936, were the more well-to-do; (2) most of the cards returned came from those who had the clerical habit strongly enough to fill out and mail them Republicans tended to have more telephones, and superior clerical habits, so the Literary Digest poll was doubly biased in Mr. Landon's favor.

Gallup and Roper used the sampling method, whereby representatives from all groups in the voting population were interviewed, in their estimated proportions. Thus if Negroes were 13 percent of all American voters, the sample interviewed would include 13 percent of colored citizens—and similarly for other major groups, with various qualifications for regions.

Sampling theory is scientific, as we shall see, why then did the pollsters go so wrong in 1948? There has been a good deal of soul-searching analysis, and a number of explanations. The outstanding reason seems to be that the pollsters did not allow for voters changing their minds between late summer, when the predictions were announced, and November, when citizens actually voted. It is possible that if the electorate had marked their ballots for President on September 1, Mr. Dewey would have been elected Both the labor vote and the farm vote were seriously affected by events after September 1, while many Republicans, thinking that the election was in the bag, did not bother to vote. Several local polls that persisted through October caught a large drift away from Dewey in the last three weeks before election

Certainly one of the reasons for the pollsters' success in 1936, 1940, and 1944 was the outstanding personality of Mr. Roosevelt. Voters were strongly for him or strongly against him, and there was not much change in their feelings between September and November of those years. In 1948, however, Mr. Roosevelt had passed from the scene, and opinions had not crystallized so strongly about either Mr. Truman or Mr. Dewey.

Opinion research was in low repute for months after Mr. Truman's election, but presently it emerged, and today is at an all-time high It furnishes useful information which can be got in no other way. Even if results are occasionally wrong, the demand is massive enough to overlook some errors. The pollsters, moreover, are not likely to repeat their carelessness of 1948.

## SAMPLING THEORY

Sampling theory has been in use, largely for material things, for thousands of years Instead of counting or tasting or weighing the whole lot, you analyze a sample which represents the whole lot. But unless the sample is truly representative of the whole lot, or "universe," as the scientists call it, the technique is not only valueless but dangerous.

An early illustration was sampling wine by tasting it, a few sips would define the whole vintage A "universe" of sand, marbles, or other free-flowing material can readily be measured by sampling. When units are not free flowing, they are said to be "clustered," and the sample must then be composed of similar clusters.

Most of us use sampling to save ourselves work, without realizing that we are on the edge of a scientific technique. If, for instance, I want to find out how many words I have written so far in this book, I select half a dozen typed pages at random, count the words on each page, average them, and multiply by the number of pages typed. The result will be close enough for my purposes. I know from previous tests that it will be within 2 or 3 percent of the exact number of words.

If we have any way to find a representative sample, we can determine the total of the universe at a fraction of the cost of a complete census. To count all the words in a book would take many hours. Not only can we get answers to more questions, but we can get a given answer faster; the technique has both coverage and speed. It applies to many aggregates, organic as well as inorganic—nails, bolts, most mass-produced units, trees, grain, sheep—anything which has some uniform characteristics.

The first use of scientific sampling in the social field seems to have been when Halley, whom we met in the Royal Society, employed the mortality statistics of the town of Breslau for 1693, to draw conclusions about the mortality of mankind. Breslau was the sample, and mankind the universe. In 1800 Sir Frederick Eden, using the sampling technique, estimated the population of England at 9 million, and next year the actual census confirmed the estimate. Among the most active uses today are:

Inspecting mass production articles and parts in factories. Johnson & Johnson, for instance, have scores of sampling stations in one of their factories at New Brunswick.

Estimating crop yields—widely practised by the Department of Agriculture.

Compiling economic data, such as the number of unemployed, wages, prices, housing conditions—and thus saving the taxpayers' money The number of unemployed published by the government

every month is calculated on a sample basis. If a complete census were taken, results would be months behind and the cost fantastic.

Health surveys, crime surveys, youth surveys, indeed all manner of social surveys. As I write, the United States Public Health Service is estimating the effects of smoking on health by interviewing 25,000 Americans.

Market research: to find answers to such questions as "What don't you like about Plymouth cars?" "What is your favorite toothpaste?" Also to measure the popularity of radio and TV programs

The depression of the 1930's gave sampling theory tremendous impetus. The government needed figures in a hurry concerning the number of people unemployed, on relief, eligible for social security benefits, and so on. Time did not permit a complete census, samples would serve the purpose within a calculable margin of error.

World War II carried the technique further. Samples were taken to determine consumer wants, housing facilities, goods in short supply, dealer inventories, public reaction to war measures, characteristics of selectees, employee attitudes in war plants, radio listening habits, quality control of munitions

"The science of sampling," says Angus Campbell, "has reached the point where it can select unbiased samples of known probable error to represent virtually any universe a surveyor is interested in." In the face of this comprehensive demand, the question of who is going to be elected president or senator or dog catcher is minuscule. We can summarize the development of public opinion research something like this.

First comes sampling theory, founded on the mathematics of probability and rigorously scientific.

From it many useful applications have been worked out in counting material things—beans, rice, gravel, many kinds of industrial and military inventories.

From it, counts of human populations have also been developed, such as the total number of boys subject to the draft, of housewives with electric washing machines, etc.

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Journal of Social Issues, May, 1946.

Counts of opinions are next in line—what people think of the United Nations, the Marshall Plan, President Eisenhower's performance, the Jack Benny program.

Out on the far edge is the prediction of political elections—since the trouble in 1948, the boys are going easy on this one. It would suit a lot of us if they would forget the whole thing. But the popular demand for a winning prediction, as in the case of the Kentucky Derby, is great.

Until scientific sampling came along, no politician, leader, reformer, had any objective way of knowing what the people thought about public issues Leaders relied mostly on intuition, wishful thinking, or pessimism about the intelligence of the rank and file. Congressmen tended to draw conclusions from their mail—which provides a perfectly terrible sample of the congressman's universe! Only angry people, or very earnest and literate people, or people prodded by pressure groups, write letters to Congress. Congressional mail in 1941, for example, ran 90 percent against the draft law. But careful polls indicated a majority of citizens in favor of the bill. The bill won by one vote.

### WARTIME POLLS

Samuel Stouffer, whom we met at the Harvard Laboratory, directed many of the Army polls during the war. Soldiers were asked what they thought about their food, about their equipment, their uniforms, the entertainment offered, promotion methods in the Army, deficiencies in leadership, methods of discipline, personal plans after the war. The soldiers themselves determined the "point system" of discharge. Subsequently the system never fell below the 70 percent line in soldier approbation. It worked so well that even the Marines took it over The Army knew two years in advance, and within 3 percent, how many claimants there would be under the G.I. Bill of Rights. The government probably saved millions for the taxpayers by knowing what to plan for in this costly business.

Rensis Likert found out by opinion research that if the

Treasury made it easier for people to refund war bonds, more new bonds would be bought, and more net would stay bought. This was contrary to some positive opinion in high quarters, but the Treasury trusted the poll, and made the change, with the results predicted. The Price Control Board kept in close touch with the public by frequent opinion surveys. When a poll showed a bad public reaction to some ruling in, say Cleveland, trouble-shooters were rushed to Cleveland before the grievance grew. Sometimes the ruling was changed, sometimes a better explanation was given of its necessity. . . What a future in public relations this opens up!

A poll in June, 1946, showed that 78 percent of Americans wanted price controls maintained for a while longer Presumably they were afraid of inflation without them. Yet Congress killed the agency, on the assumption that competition would reappear after its long hibernation and bring prices down. Congress turned out to be wrong and the people right

### OUTSTANDING ACCOMPLISHMENT

This brings us to an outstanding achievement of the polls. They have given strong statistical proof of the wisdom of the people, and thus vigorously supported the theory of political democracy. Time and again the polls have shown the majority of the people ready for a given change ahead of their leaders, and even farther in advance of Congress William A. Lydgate, of the Gallup organization, has written a book, What Our People Think, packed with evidence. His first chapter is entitled, following Carl Sandburg, "The People, Yes." He cites the pluralities for rearmament, higher taxes for defense, the draft, price control, wage control, rationing, an antistrike law —all approved by the people ahead of Congress. In March, 1940, six months after Hitler's armored divisions marched into Poland. the Army asked Congress for money to build 1,200 fighting planes. Congress appropriated funds to build exactly 59. Yet samples of the American people were showing majorities of nine to one in favor of more air power!

The people are not always right judged by subsequent events; but as Mr Lydgate shows, they often sense reality better than those whom they elect to represent them. The rank and file are soon lost when questions become technical, but when broad policies are put before them, the polls vigorously support the famous warning. "Never overestimate the people's knowledge, nor underestimate their intelligence."

# Steps in Opinion Research

To run a poll today is a major operation, in which an amateur would do about as well as he would trying to produce sulfathiazole in the kitchen sink. If the "universe" is all the adults in the United States, as many as 400 skilled interviewers may be needed, stationed at strategic points throughout the country. Perhaps the best way to understand the operation is to follow the process of polling for a public policy question from beginning to end, and note the steps involved. There are eight of them, and we will consider each in turn. Why not save the cost of personal interviews and send questions by mail Because, as the sad case of the *Literary Digest* made painfully clear, mail returns often introduce a systematic bias.

## STEP 1: SELECTING THE QUESTION TO BE POLLED

Suppose that you are the director of a polling agency, what do you want to ask people about? Granted that it would be interesting to have an answer, is there any reason to believe that enough plain citizens know anything about the topic to make the answer significant? Do not try "free enterprise," for instance, for only three Americans out of ten have a clear idea what "free enterprise" means. Many think it is something given away, like premiums for soap wrappers. Citizens need background before they can answer a policy question—unless you are polling specifically to determine the lack of background. In 1955 there was a good deal of agitation about a private power combine, called Dixon-Yates, supplying current to the

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Following Maccoby and Holt, in Journal of Social Issues, May, 1946

TVA. Most Americans had no idea of the facts, which were complicated. So any poll you might have taken would be not on the issue but on symbols—"Private Power vs. Public Power," or "Republican vs. Democrat." This would tell you how people feel about symbols, but not about Dixon-Yates.

Again, even if people know about the subject, do they care? This brings up the *intensity* of public feeling; questions which carry low intensities may not be worth the cost of polling. Again, how permanent is the reaction likely to be? Questions subject to large and sudden changes in popular attitudes are less meaningful than those which have more stability, unless you are specifically studying changes, as in "panel" polling to be described later, where the same group is interviewed at different periods

### STEP 2. SELECTING THE UNIVERSE

Will the universe be the whole adult population of the country, Negro sharecroppers in Mississippi, Ph D.'s in sociology, consumers of Post Toasties, unskilled workers in the Ford Motor Company; or what?

Though opinion can be studied not only in the United States but in other Western nations, polls behind the so-called Iron Curtain have only recently begun, and are conducted so differently as to be useless for comparison. To compare reactions between nations is always interesting and can be important. An international poll asked the question "Do you think most people can be trusted?" Only 6 percent of Germans said yes, compared with 66 percent of Americans—a penetrating sidelight on feelings of security in the two countries ten years after World War II.

## STEP 3. SELECTING THE SAMPLE

Individuals, as we have seen, must be selected from the universe in such a way as to represent the universe. Here the amateur goes completely out of his depth As director you choose among various alternative methods. "random sampling," "quota sur-

veys," and so on. You choose the one which seems best to fit the universe—remembering too your client's pocketbook.

Random sampling means using some automatic method of choosing which gives each individual in the universe an equal chance of being included in the sample. If one is sampling marbles, random sampling is quite satisfactory. It can be done by picking up a handful anywhere, though it would be a good idea to shake the whole collection first. If, however, one is sampling people, random sampling is more complicated Suppose we want to know how many members in a given service club go regularly to church. Here is the card file, with tens of thousands of club members' names. Now pick up a book, any book, and open it at random. If the page is 64, take 4, the last digit. Good, we will start with the fourth card in the membership file, and take every hundredth card thereafter. If we want to work to a larger sample and thus a smaller margin of error, take every twentieth card. Prior experiments have proved that when some person, however wise, tries to pick the random sample, bias

A quota sample tries to arrange the units in the sample in the same proportions as in the universe. If the universe is total adult population, then divide the sample into corresponding proportions of rich, poor, white, Negro, farmer, city man, old, young, skilled worker, unskilled worker, etc. Elmo Roper claims that by asking 5,000 Americans selected on a quota basis whether they expect, say, to take a vacation in the next six months, he can get, within a few percentage points, the same answer that 100 million adult Americans in a complete census would give. If he is correct, and there is strong reason to suppose that he is, the saving in cost is in the order of 20,000 to 1. Incidentally, here is the reason why you may not have been polled (I was polled for the first time a few days before writing this paragraph. It was about United States oil companies abroad.)

The quota theory is sound, trouble comes in making clusters which truly agree with the clusters in the universe. The studies of Dr. Kinsey in sex behavior have been criticized for

having too many respondents with college education. This may be true, but the results are still useful. Though the Kinsey samples may not be perfect, they have told us more than was ever known before about the subject, and may quite possibly have laid the foundation for more intelligent sex education in the future.

## STEP 4: PHRASING THE QUESTION

How best to word the question is as delicate as approaching the boss for a raise. Here the survey director must use taste, sympathy, intuition, and semantics. There is no such body of knowledge to help him as in the theory of sampling. He is confronted, among other things, with a problem in the meaning of words. What he must strive for above all else—with an exception to be noted later—is to get a completely dead-pan question, to remove all emotion-stirring words<sup>2</sup> so the respondent can answer spontaneously from his own inner feeling.

When Franklin Roosevelt was President it was found that attaching his name to a policy which was being polled increased its popularity—although not necessarily in the Union League Club. Out where votes are counted this produced a bias in favor of the proposal. "Do you think the United States should send food to starving people in Asia" gets more votes than the same question with "starving" deleted.

Mr. Roper once ran an interesting semantic test. He matched two groups of people so they were practically identical samples, as proved by asking them various questions and getting close percentage results. He then asked each group a series of questions, identical except that for one group a new and ugly word was introduced, the word "propaganda" The general topic was the usefulness of foreign broadcasts by the State Department.

Interviewers asked Group A "Some people say it is better to explain our point of view as well as give the news do you agree?" The answer came back "yes," 42.8 percent. Group B got the following wording, and observe it is substantially the

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Sometimes called "purr" words, or "slur" words.

same question: "Some people say it is better to include some propaganda as well as give the news." The "yes" reaction was cut almost in half, to 24.7 percent.

In Step 4, the director has to decide whether to use "closed" questions, "open" questions, or a combination of both. Closed questions are those to which the respondent answers "yes," "no," "don't know," or selects one reply from a number of alternatives. For instance "If the election were held today would you vote Republican . . . Democratic . . . Don't know. . ." The "don't knows," or D. K's, used to go down the drain in some of the polls, but now their importance is emphasized. Public ignorance of certain questions can be measured by the percentage of "don't knows." Percentages based only on those who indicate a preference, adding up to 100 percent with the D. K. vote excluded, can give a strongly biased conclusion.

An open question, on the other hand, is not so clean-cut as the closed variety. It gets in shades of opinion and also may show intensity. The interviewer starts with a big general question and works down to cases, encouraging the respondent to express his views in his own words and think all around the topic. For instance.

"What do you believe will happen to prices in the next year or so? . . . Why do you think so? . . What are you doing about it in your own buying? . . ."

Open questions are often a better measure of public opinion, but the interviewer must be better trained and work harder, with a much tougher job of coding and note-taking. Instead of ticking off a "no," "yes," "don't know," he must take down nearly all the respondent says—and most of us like to talk.

Another rule in phrasing questions is to ask only one thing at a time. "Do you think it wise these days to put money into real estate and securities?" is bad wording. George Adams may favor real estate and be afraid of securities, while his banker holds the opposite view Split it into two questions

The one time when it seems permissible to load a question is

in polling for the extent of prejudice. The usual impersonal questions about race and religious prejudices will not be answered honestly. Many Americans are ashamed of their feelings about Jews or Catholics or Negroes. They will give stereotyped replies based on the Declaration of Independence. But when the interviewer says: "Well, we're through with that. Now tell me what you really think about those so-and-so's?" prejudice emerges from its dark den Marie Jahoda has reported that this technique may cause a 25 percent shift.

Miss Jahoda also says that when parents are polled about corporal punishment, 80 percent give the textbook response: they are against it. But when followed up by a probe of actual behavior 70 percent of the same people are found not to be sparing the rod.

## STEP 5. THE TEST RUN

After we have the question worded to our satisfaction, the next step is to put it into the wind tunnel and measure reactions. This gives us the "feel" of what to expect in the larger project. In a study which I followed closely, 22 questions were tried out on a preliminary group of 100 people. The ultimate sample was to be 5,000, for a universe including all United States adults. In this sample of a sample, the interviewer took down replies in full and asked respondents to explain what they meant by all their answers Thus cloudy wordings were identified and corrected before the final survey.

## STEP 6. THE INTERVIEW

Poorly trained interviewers can ruin everything we have arranged so far—the universe, the sample, the wording, the test run It is easier to train an interviewer for closed questions than for open, but good judgment is always required. He needs it, to get people talking (As a matter of current practice, most interviewers are not he's but she's—intelligent matrons working part time.)

An interviewer on an unemployment survey must never say:

"You're not working now, are you" but always. "Are you looking for a job now, or are you waiting for a while?" Thus the respondent is permitted to keep his pride. Also an interviewer must never put answers in the respondent's mouth "Do you say that because of the high cost of living?" will cause many a respondent to follow the leader with, "Sure, that's why." Then bias is in.

Four main causes can make trouble in the communication line between interviewer and respondent: (1) deliberate misstatements, (2) pretense, the respondent assumes a special role for the interviewer's benefit, (3) psychological blockages in the respondent, (4) honest mistakes

Some respondents try to influence poll results. This is especially true of community leaders who want to make a good showing for the town's schools, or crime record, or whatever the question is. Unless the ground is well prepared, a troop of interviewers invading a small community will start a blizzard of rumors. To cite a case After all the families in "Springdale" had been briefly contacted by a team, two contradictory rumors spread through the town the interviewers were FBI agents, no, they were communist spies!

The Fund for the Republic retained two big polling agencies to find out what was worrying Americans in the middle 1950's. It appeared that we were not nearly so much upset about Communists in the State Department, or even in Russia, as we were about our jobs, our health, and our families. Each agency, of course, had its own squad of interviewers, but they asked the same questions of different respondents. Both groups of respondents represented samples of all adult Americans. Here was a rigorous test of the technique of interviewing, but it was brilliantly met. The results, when tabulated, were almost identical.

## STEP 7. TABULATING RESULTS

Interviewers have made the rounds, and sent their notes to the central office. The modern method is to make punch cards, one <sup>8</sup> Samuel A Stouffer, Communism, Conformity and Civil Liberties.

per respondent, and let a computing machine tabulate them. In practically no time at all it will sort and count the cards in as many ways as the director desires.

Attaching equal numerical weights to all responses and adding them, performing least squares and other fancy mathematical operations upon them, could result in a fearful hash. The data should be kept relatively simple For depth interviews—where the respondent gives the interviewer the whole background of his answers—statistics must be used with great caution. These data are still beyond the mechanical level, a handicraft job for highly skilled interviewers. Depth interviews are also the only way to find out wby people hold the opinions they do.

### STEP 8. REPORTING THE FINAL RESULT

The director of the survey now takes the figures, discusses them with his staff, and sits down to write his report for client or press. An advertising client may be handed a special market survey of how his new TV set is liked, while George Gallup's reports have been widely syndicated in the newspapers.

The report must explain clearly not only what the figures show, but also what they do not show. The common habit of generalizing from insufficient data can raise havoc with any poll not carefully guarded. The director must repeatedly caution his readers against generalizing the findings to a different universe from the one being measured. For instance, if the universe is lowa farmers, guard against extending the results to United States farmers.

## A Look at the Future

All the eight steps are now under scientific microscopes. The sample is increasingly subjected to mathematical analysis and verification. The questions asked are being developed from a static to a dynamic phase, registering changes in opinion through time. Louis Harris, with the Roper organization at the time, described the progress of polling to me.

We began years ago, he said, with a simple yes-or-no. Do you approve of UNESCO? Anwer yes or no.

Then we discovered the critical importance of "don't knows." A lot of Americans had never heard of UNESCO

We went on to "cafeteria questions," where the respondent is asked to select one.

Do you highly approve of UNESCO? Mildly approve? Mildly disapprove? Highly disapprove? No opinion?

We experimented with such multiple questions, using the index method and the scaling method. Sometimes we arrange a series of questions all bearing on a single topic. Take, for instance, race prejudice. We put, "Do you approve of complete segregation?" at one end of the scale, and "Do you approve of mixed marriages?" at the other end. In between are a number of questions registering reaction to such things as desegregation in schools, F.E.P.C., Negro players in big league baseball, joint housing facilities, and so on—all in scale between the two poles. The result gives us a deeper insight into the respondent's feelings.

The "panel" method is used more and more to follow shifts in feelings. We used to ask a sample what they thought about a given topic, say on January 1, and then ask another sample on June 1. Now we ask the same people they are the panel. Ask 1,000 people on January 1 if they approve of admitting Red China to the UN. Ask them again on April 1, and again on August 1. This gives us a picture of change, and it develops interactions The technique can be used to bring out the various pressures and influences which bear on the respondent and influence his opinion—such as his trade union, his industry, his church, his region.

We are a long way from the old "yes-no," said Mr. Harris, though we still use it for some questions, but we still have a long way to go Harris believes that ultimately a great deal will be discovered about human behavior by the panel method.

Here are some areas where opinion research was especially active in the mid-fifties Consumer opinion. Paid for by advertisers, businessmen, government. It includes product research, design research, impact of advertising, behavior of consumers in the market, cost of living, TV and radio ratings.

Worker opinion. Paid for by management and labor unions. How employees feel about the boss, the company, the union, the foreman,

their jobs.

Public opinion. Paid for by government, foundations, the mass media, business. Includes popular opinion on United States foreign policy, international problems, internal security, political pressures, studies dealing with the fear of communism, behavior in disasters, education—a long list.

A significant report on political pressures was made by a group of social scientists who conducted panel studies in Elmira, New York, covering the 1948 elections. Results have formed the basis for a startling hypothesis about the workings of political democracy, upsetting many cherished ideas of the past We will save the story for Chapter 24, which deals with political science more specifically. Enough that it shows how opinion research, as conducted by qualified experts, can fertilize new political, economic, and social theory.

We will let Samuel Stouffer sum up the subject. Polls, he says, can replace myths with facts when people are discussing current political questions in press, iadio, TV, or barber shop. "We, as social scientists, have an obligation to make the tools better and better, and we as citizens have the obligation in and out of government to see that these powerful instruments are wisely employed ... There is no turning back."

<sup>5</sup> Scientific Monthly, December, 1946.

See Berelson, Lazarfeld, and McPhee, Voting

## Is Economics a Science?

"The Republican congressional leaders are preparing to go ahead with their plan to cut taxes, but economists disagree as to whether a reduction would be inflationary or deflationary. Those fellows have the whole thing down to an inexact science."

As one who has written several books on economics, I confess that my mirth at this crack in the New Yorker is somewhat forced. Our "science" is fortified with many learned theories and many impressive curves and graphs, but repeatedly it proves unreliable for prediction, the acid test of science as we have seen. George Soule once wrote a book called The Useful Art of Economics, but one may ask—and many do—how useful is a body of doctrine which says that things will go up which then go down, or will go down which presently go up?

Despite the frequent failure of prediction, economics is a popular subject, with flourishing departments and business schools in the universities. It wins great attention in financial sections of the newspapers, and is pursued in magazines, monographs, and books without number. If, for the purposes of discussion, we divide the field into three parts, General Theory, Special Theory, and Practical Economics, a pleasanter and more revealing landscape appears

The two big General Theories in the world today—Ricardian and Marxian—are dogmatic, contradictory, and not reliable for prediction. What the theory says will happen usually does not happen.

The Special Theories cover a more modest area—like Berle and Means's discussion of the evolution of the modern corpora-

tion, Colin Clark on the tertiary trades, Keynes's analysis of business depressions. These are capable of verification, and close to social science<sub>1</sub>.

Practical Economics, or the use of economic tools, is often excellent, and a great help to government administrators and businessmen in planning and forecasting their operations. The United States economy in World War II, as we shall see, would probably have jammed without the work of economic administrators and statisticians.

All three departments, however, lose by their failure to draw on the behavior sciences—especially the General Theory department. Economists have worked late, employing some high-powered mathematics, trying to find dependable laws for the behavior of money and prices, without sufficiently realizing that prices often fluctuate with the way people feel about the situation—a phenomenon in behavior.

A scientist armed with the operational definition would look in vain for any world of economics functioning according to a system of laws of its own. He can find only the behavior of people—as workers, consumers, managers, borrowers, lenders—concerned with getting a living, achieving security, protecting the family, fortifying their egos. He can record and classify this behavior in a number of ways, such as:

Producer behavior—on the farms, in the crafts, factories, mines, laboratories.

Financial behavior—first in the form of barter, then in the invention and use of money, followed by the scramble for the division of the money income in a given society.

Consumer behavior—the impulse to spend or not to spend, the impact of advertising, the stimulation and satisfaction of wants, and so on.

It all goes back to people's needs, drives, desires, fears, hopes for security—psychological incentives. Recall again the girls in the relay room at Hawthorne This is the reason why the Big Theories ring so hollow. They either leave out human be-

havior altogether or assume a psychology which does not exist in flesh and blood. They speak of "other things being equal," when things are not equal, and of "self-evident truths," which cannot be proved.

#### FIFTEEN FORECASTS

To illustrate the inadequacy of much economic theorizing, suppose we glance at some confident predictions of recent years.

- 1. Following the prompting of leading bankers and financial experts, Britain returned to the gold standard after World War I. They were confident it would restore her economic position in the world. It did nothing of the kind. After six years of steadily accumulating financial difficulties Britain abandoned gold in 1931.
- 2. When the U.S.S.R. proposed her first Five Year Plan in 1927, it was ridiculed by economists in London, Paris, and New York. The U.S.S.R. was bankrupt, they said, and where would she raise 60 billion rubles to invest in capital assets? Where would the money come from? At the end of five years the factories, power dams, railroads, transmission towers, schools, housing developments, steel plants were there, ugly, solid and substantial, as planned. Where did the money come from?
- 3. In 1928 there were almost no economists in the United States who saw the looming depression. On the contrary, many were coming to believe that the business cycle had been smoothed out and permanent prosperity reached.
- 4 After the stock market collapse in 1929, few financial experts would admit that it was more than a little swerve—and a healthy one at that. Prosperity, we were told, was "just around the corner."
- 5. In 1935 a noted financier and economist announced that unless the federal budget were promptly balanced, a dire inflation would ruin the nation. I remember it well, because I debated the question with him before the Economics Club of New York. He won the debate hands down, but the budget was not balanced and the inflation he predicted for the 1930's never came.

- 6. When Hitler proposed to rearm Germany, the cry went up from the highest authorities: "Germany is bankrupt, she cannot even pay reparations; Hitler has no gold or foreign exchange; where will the money come from?" So the rest of us breathed easier to think of ragged, bankrupt Hitler.
- 7. A leading economist cited by Beardsley Ruml said in 1937 that unless federal expenditures were brought into line with revenues, the interest rate would rise to 6 or 8 percent. Deficits continued as before, and the interest rate continued in the deep freeze.
- 8. In 1940 economists affirmed that with a federal debt of the staggering proportions of \$45 billion it would be difficult if not impossible to finance a program for defense and rearmament. It proved, on the contrary, surprisingly easy. In 1940, indeed, there was not an economist in the country—including your author—who would have dared to suggest that the United States could shoulder a debt of \$280 billion by 1945.
- 9. As we entered the war economists sternly bade the nation choose between guns and butter, we could not have both We got both—the mightiest assortment of guns in human history, and a total volume of consumer goods slightly greater than before the war, though differently divided among the population.
- 10. In the fall of 1941 a flood of articles and news stories assured us that Japan presented no real danger. The long years of war in China had exhausted her resources, she had no gold and was nothing but a hollow shell economically. The attack on Pearl Harbor came as these pronouncements were at their height. The hollow shell gave us a painful amount of trouble for more than three years.
- tr. In 1943, the Bureau of Labor Statistics estimated that there would be 7 to 12 million unemployed six months after the war's end. The actual number in March, 1946, proved to be 2,710,000. Unemployment during reconversion never went above three million.
  - 12. Early in the war economists were having nightmares over

what they ominously called the "inflationary gap." The gap never opened—not, at least, in any ominous way. Citizens did not spend their money the way economic theory said they should.

- 13. Many economists opposed any plan for general price control at the beginning of the war. It was believed to be unworkable and would only make the price situation worse. As J. K Galbraith said. "Standard pedagogy had emphasized this conclusion quite literally for generations" The Office of Price Administration was set up nevertheless, and worked astonishingly well, holding most prices within narrow limits throughout the war.
- 14. On July 3, 1946, as Congress was enthusiastically dismantling price controls, the National Association of Manufacturers ran full-page advertisements saying.

If price controls are permanently discontinued, the production of goods will rapidly mount and, through free competition, prices will quickly adjust themselves to levels that consumers are willing to pay. . . . Then as production gets rolling again, supply will catch up with demand . . . prices will be fair and reasonable to all

For at least 20 months thereafter, prices for most goods continued to increase What happened to the leveling power of free competition the NAM economists have never explained.

15. In the spring of 1947 most expert opinion held that the peak of price inflation had been reached, as the merchants of Newburyport made their well-publicized 10 percent price cut across the board. A business survey announced that signs of a business recession were abundant, and that it would strike in the late summer. August came and golden September, and all lines continued their mighty zoom upward.

This melancholy story could be indefinitely continued Business economists, government economists, labor economists, great bankers and fiscal experts, college professors, financial editors, your author—all have missed the boat by alarming margins.

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> American Economic Review, June, 1947

What is the trouble? No other branch of the social sciences which we have been examining has such a record. Reviewing it, one can scarcely be surprised that the man on the street thinks himself an economist as competent as the professors.

There must be some good reason why such grave miscalculations keep coming from serious and intelligent scholars. Various explanations have been offered by members of the fraternity as well as by outsiders. The *Economist* of London has put its finger on one source of the trouble. As perhaps the leading economic journal of the world the *Economist* speaks with authority:<sup>2</sup>

Economics is a curious science, if indeed it is a science at all. The investigator who digs down through the textbook generalizations in the physical sciences finds at their root a series of facts, checked by carefully controlled experiments, and as accurately known as human ingenuity can compass. The investigator who does the same for economics, penetrating the smoke screen of curves and mathematical symbols, will find not facts, but a series of elementary psychological assumptions checked, if at all, by crude common sense. And, like most assumptions of this kind, he will find that most of them are wrong. . . . It is this lack of a solid factual basis which has brought it about that, while the Army is alleged to be always winning the last war, economists are almost invariably engaged in defeating the last slump. The characteristic of a genuine science is that its practitioners . . . can tell the practical man what to expect around the next corner. Economists may sometimes do the same; but as often as not they have to wait to formulate their theory until the practical man has himself turned the corner. . . .

There have of course been correct predictions. Roger Babson achieved a prodigious reputation by forecasting the great slump of 1929 in his business letter a few weeks before it struck. But observe, if economics were social sciences, the majority of the profession would have checked his calculations and agreed with him, instead of being practically to a man on the other side of the fence.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> July 27, 1946.

As things are now, one faction is delighted at the discomfiture of another school when a forecast fails to materialize. The opponents of John Maynard Keynes were overjoyed when the prediction of the Bureau of Labor Statistics about unemployment after the war proved wide of the mark. But the man on the street took it as one more sign that all economists are unreliable. Real scientists take pride in their discipline and are concerned when careful forecasts go wrong. Can one imagine, for instance, a group of astronomers rubbing their hands and saying. "Splendid! Halley's Comet never came around the way he said it would"

#### BIG THEORY: RICARDO

For almost a century, economic theory has been dominated by two schools which largely contradict each other. The laissez faire or classical school holds that the government should keep out of practically everything, while the Marxist school holds that it ought to get into practically everything. The former has been preferred by most American economists, the latter by many European. It is now the official philosophy—if not indeed the official religion—of the U.S.S.R. and her satellites.

Classical theory was first formulated in a comprehensive way by Adam Smith with his epoch-making book, The Wealth of Nations, published in 1776. His ideas were refined by David Ricardo early in the nineteenth century, and were summed up in the term "laissez faire"—let things alone. Ricardo became the chief theoretician of the classical school—the economics which my generation was taught in college.

The theory says that when each individual seeks his own interest and is given opportunity to do so, a higher harmony is established, which cancels out the apparent selfishness, coincides with "natural law," and makes for the maximum of wealth and happiness. The intervention of the state is fatal to this harmony, and must be kept to the absolute minimum necessary for law and order Let the free play of the market determine prices,

wages, rents, interest rates, and let profit be the judge of those entrepreneurs who are to survive.

The culture in which Adam Smith, Ricardo, John Stuart Mill, and the other giants of the classical school did their writing was barely past the handicraft stage, with mass production all but unknown. The machine age was in its infancy. an economy of little markets, little mills, and little ironmasters. Classical theory may have fitted that scene—though this is in some dispute—but it fails to fit the world of electronics, jet planes, and billion-dollar corporations.

Ricardo was trained in the London brokerage business, with little first-hand experience in industry. His powerful mind elaborated the imposing logical structure which came to be called lassez faire. The philosophy was never verified but for a century and more students in all the universities of the Western world have been drilled in its syllogisms, and even expected to go out and run their businesses in accordance with it.

Elton Mayo, from his post in the Harvard Business School, declared it impossible to square Ricardo with practical problems in business administration, or in labor-management relations He cited Chester I. Barnard, at the time president of the New Jersey Telephone Company, who complained that he could find no treatise in all economic literature which covered business organization as he had to deal with it day by day. Mr. Barnard finally had to write his own book about it, which he called The Functions of the Executive. Worse still, said Mr. Barnard, economists fail to recognize the extreme importance of organization as the principal structural aspect of society itself. That is, the businessman is doing something out there in the real world which economists are supposed to interpret, but which they are mostly unaware of.

Society as viewed by the lassez faire school, Mayo continued, consists of a rabble of unorganized individuals striving to serve

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Muskets for the War of 1812 in the United States were manufactured on an elementary mass production principle—uniform parts were made and then assembled

the self-interest of each, and yet, by a curious alchemy called "natural law," achieving harmony in the whole. Anthropologists have not discovered anything corresponding to this state of affairs. Ricardian economics "is a study of human behavior in non-normal situations, or, alternately, a study of non-normal behavior in ordinary situations". The number of people activated entirely by self-interest is small. Observe again the 14 men in the bank wiring room at Hawthorne. In Mayo's extensive clinical work over a 30-year period he found that human beings relapse into exclusive self-interest only when society has failed them. Hermits and recluses are examples. Meanwhile Linton fails to mention "natural law" among his universals, and reports no Economic Man, except as an abnormal type.

The lassez faire postulates, in brief, run counter to the culture concept as we outlined it earlier, where man is found to be not an atomistic unit in a human rabble, but an integrated member of a band, group, society, bound together by immemorial patterns. Smith and Ricardo can be excused, for they wrote long before Morgan's initial study of the Seneca Indians. It is harder to explain why their followers have consistently disregarded cultural anthropology, sociology, and social psychology right down to the present day.

# ECONOMISTS SUPPORT MAYO

Mayo was an industrial psychologist, but many professional economists now agree with him. As far back as 1914, the late Wesley Clair Mitchell, an outstanding American economist, anticipated Mayo by emphasizing the lack of attention paid to the other social sciences. Economists, he said, have "tacitly imputed to the men whose behavior they were analyzing, certain traits consistent with common sense and convenient for theorizing, especially the pleasure-pain principle. . . ." Meanwhile, psychology has abandoned hedonism or pleasure-pain as a governing principle of human behavior. The economics of both Ricardo and Jevons rests squarely upon it. Yet when hedonism

<sup>4</sup> Quarterly Journal of Economics, 1914.

was dethroned by the psychologists, were the theories of Ricardo modified by the economists? They were not, said Mitchell; it was ruled that psychology is no concern of the economist. "Thus economics is said to rest upon the simple facts of choice, and the psychological explanation is said to be a matter of indifference to our science."

This neat elision leaves classical economic theory so purified and rarefied that human nature has no place in it. Mitchell called for a restoration of human behavior as the basis for economic assumptions. Only then, he said, will economics "cease to be a system of pecuniary logic, a mechanical study of static equilibria under non-existent conditions, and become a science of human behavior." This was a daring position for an economist to take in 1914, but everything which has happened in the intervening years has served to strengthen it.

Thorstein Veblen anticipated Mitchell in his Theory of the Leisure Class, published at the turn of the century. It was an ironical amalgam of anthropology and economics. He undertook to show how members of the upper-upper class in America helped to maintain status by what he called "conspicuous consumption"—big town and country houses, steam yachts, retinues of servants, diamond tiaras, fox-hunting, and collections of Old Masters. The study dates a bit today, but it was acute observation before World War I, and before the graduated income tax.

# BIG THEORY: MARX

Karl Marx, who published Das Kapital in the 1860's, based much of his theory on Ricardo, but with a special twist. Also he relied heavily on the philosophy of Hegel with its "thesis, antithesis and synthesis," which, despite its fine verbal roll is a hard thing to measure

We have already noted in Chapter 4 how Marx developed his theory in a state of emotional sympathy for the poor, and emerged with the principle of the class struggle. He made it an absolute, but anthropologists like Linton find it operating only under special temporary conditions. Perhaps such a condition prevailed when Marx was haunting the British Museum, but it is anything but universal in the West today. Let the reader run back through the last two chapters dealing with relations between labor and management, and note how many exceptions to the class struggle can be found. There was a vicious struggle between men and management in Jersey Standard for a time, but after 1917 it changed first to accommodation, and then to active cooperation. A truly scientific postulate cannot seesaw like this, it must hold for all conditions, and for long periods, if not indefinitely.

Marx predicted, and Lenin repeated the prediction, that as capitalism developed, the rich would grow richer, and the poor would grow poorer. In America, both groups have become richer, but the graduated income tax shaves more than 80 percent from the income of the very rich. The graduated income tax indeed, both here and in Britain, is a vast machine for the redistribution of income, unthinkable in the Marxian philosophy. The divorce of ownership from management in our great corporations, to be described in the next chapter, is also unthinkable. Capitalism has taken a course utterly different from what either Marx or Ricardo expected, bursting the bonds of both socialistic theory and laissez faire. Ricardo, I suspect, would recast his ideas in line with the facts if he were writing today, Karl Marx was a more obstinate man.

# CRITICAL BARRAGE

With the rise of the behavior sciences, both economic schools have been under increasing criticism. Both tend to be static theories, while economic behavior, spurred on by technological change, is dynamic Both have become "self-sealing doctrines," to use Robert Oppenheimer's phrase, with disciples of each vociferously maintaining that their school is absolutely right, and the other school absolutely wrong.

At a time in the early 1950's when the Moscow radio, in ringing Marxian prose, was calling on the downtrodden peasants of

America to arise and shake off their chains, I was making a survey of the Palouse wheat area in the state of Washington. The State Agricultural College at Pullman reported that the average yearly income of farmers in the area was \$28,000 a year. After the combines had harvested the wheat crop, the downtrodden peasant and his family got into the new Cadillac and took off for Florida or Southern California.

#### Is ECONOMICS A SCIENCE?

We are back at the initial question raised in this chapter, and so far as the two big theories are concerned the answer seems to be "no." When one examines the operations going on inside the National City Bank, for instance, or in the Standard Oil Company of New Jersey, or the Social Security Board, or the Supermarket Institute, or the Hartford Empire Company, or the United Mine Workers Union, or the New York Stock Exchange, or the United States Treasury—the dynamic happenings therein do not correspond to the economic theories about them, either Ricardian or Marxian. The universe of the atom has been described, but not the economic universe—not in such terms that you can make an economic bomb with it. Economic bombs go off, right enough, but nobody knows exactly why.

For 30 years I have been reading economic literature, and as a professional accountant I have had an intimate view of many business enterprises. I have been through all the standard theories—laissez faire, socialism, single tax, social credit, Keynes, the cooperative commonwealth. None of them fits the objective realities which I have seen. Parts fit here and there, but as general systems they do not fit.

I have come to the conclusion that the quest for an economic "system" is a forlorn one, as forlorn as the quest for a complete philosophical system. I have come to believe that prices, wages, costs of production, profits, are expressions of the economic behavior which underlies them—what human beings do about them. Such economic behavior, in turn, is only a part of cultural behavior. Economic acts therefore will often be irrational, often

elaborated far beyond the necessities pursued by Economic Man, and quite incalculable on any "equilibrium" framework, no matter how powerful the mathematics.

Probably no human being ever lived who possessed the characteristics ascribed in the textbooks to Economic Man. No society ever existed which followed the "economic determinism" formulated as a cardinal principle by Marx and Engels The perfect "equilibrium" is an economic dream world, beyond space and time. The great words go round and round, but I cannot make them connect except in the most spasmodic and discontinuous way with any reality I know.

Little wonder then that the forecasts often fail to materialize. He who tries to formulate "pure" economic theory is like Alice trying to play croquet with no points fixed. The mallet is a live flamingo, the ball is a perambulating hedgehog, and the wickets are soldiers who like to get up and walk around.

If we economists can break away from the notion that there is one perfect, natural, right economic system to which mankind must adhere no matter what the concrete situation may be, our progress in solving specific economic problems should be more rapid. If we can come to realize that economics is only one aspect of the science of man, closely allied with both the culture concept and social psychology, we will abandon quixotic quests for perfect markets, perfect equilibria, perfect states, and concentrate on techniques to halt this depression, curb that inflation, eliminate malnutrition here, adjust factory conditions to workers there, prepare for automation, raise living standards as the curve of technology rises.

A good share of this book has been dealing with situations which can in one sense be called economic—the experiments at Hawthorne, the strike at Yankee City, the credos of Middletown, the testimony of the polls, the exponential growth of invention. We cannot tear this living fabric apart Human society is all of a piece and a genuine science must treat it so.

# Some Economic Tools

The mass production industries, like aircraft, chemicals, motorcars, are based on the work of scientists, but few of our economic institutions are based on the work of professional economists. Most banks, brokerage houses, public treasuries, supermarkets, chain stores, labor unions, trade associations, the gold standard, Farm Bureaus—either just grew like Topsy or were blocked out by lawyers.

The founding fathers of economics—Adam Smith, Ricardo, Karl Marx—came along, looked over the scene, and retired to their studies to evolve those massive theoretical structures we have been reviewing; and most students coming later were satisfied to choose which structure they preferred. It remained for Wesley Mitchell to call for exhaustive observation of what is actually going on as a necessary condition for the formulation of theory.

Most American economists, until the great depression at least, had, so to speak, been making poems about business. These often fortified the businessman's morale but did not tell him what to do—as Chester Barnard complained. For advice on that the businessman went to a first-class corporation lawyer, or accountant, or public relations man. (Now he is also going to industrial psychologists)

The depression and then the war put economists to work on practical problems. From this experience came some remarkable new techniques, and the shape of more than one new institution—for example, the Securities and Exchange Commission.

Economists, furthermore, did not work alone but often in teams with lawyers, engineers, statisticians, sociologists.

Here and there, of course, ever since Malthus' famous monograph on population, economists and political scientists have produced sound theoretical analyses of specific institutions. Some of them properly belong in the storehouse of dependable knowledge, having far more than historical interest. I should like to outline briefly three studies published in the 1930's that seem to belong in that class. They are Colin Clark's analysis of shifts in occupation, the work of Berle and Means on the modern corporation, and J. M. Keynes's study of the causes of business depressions

#### CONDITIONS OF ECONOMIC PROGRESS

Colin Clark, British economist, tiring of grandiose economic "systems," produced a solid book of facts and figures entitled Conditions of Economic Progress, in which he draws some useful conclusions With a certain irony he quotes Bacon on the title page. "It cannot be that axioms established by argumentation can suffice for the discovery of new works, for the subtilty of Nature exceedeth many times over the subtilty of argument."

To handle his data he invents at least one new concept and one new measuring device. The concept is a classification of occupations and industries on three levels, while the measuring rod is what he calls an International Unit, defined as the average amount of goods and services which could be purchased for one dollar in the United States over the decade 1925-34.

Armed with these tools, Professor Clark establishes two principal points. First, that the world as a whole is a long way from the age of plenty. Only the United States, Canada, Australia, New Zealand, Argentina, Great Britain, and Switzerland had, when he wrote, a standard of living of 1,000 International Units per head per year or better. These countries account for only about 10 percent of the world's population.

Five hundred International Units, or less, was the lot of 81 percent of mankind. More than half the world, including India

and China, subsists on less than 200 International Units. The economy of abundance holds good only in those areas where science and quantity production are energetically applied to both industry and agriculture.

The second point I think is even more important. Colin Clark says:

Studying economic progress in relation to the economic structure of different centers, we find a very firmly established generalization that a high average level of real income per head is always associated with a high proportion of the working population engaged in tertiary industries. Primary industries are defined as agriculture, forestry and fishing; secondary industries as manufacturing, mining, and building, the tertiary industries include commerce, transport, services, and all other economic activities.

In the United States, Canada, Great Britain, Australia, and New Zealand, nearly half the working population was engaged in tertiary activities so defined. They include the professions, as well as what are called the "service trades." In other countries of Western Europe, and in the Argentine, from 33 to 44 percent was so engaged just before World War II.

When a country begins to industrialize, Clark's figures for man power show a relative decline in primary industry (agriculture), and an increase in secondary (manufacturing). After a while the secondary industries reach a maximum and in turn begin to level off. This seems to have happened in Great Britain and France after the turn of the century, in the United States around 1920, in Germany in 1925. Thereafter—except in the special circumstances of war production—only the tertiary industries, the service trades, can be expected relatively to expand. Common sense agrees with scientific analysis in this conclusion. As the machine contributes more energy, human beings are bound to contribute less. The number of jobs will increase in intellectual and clerical fields—the professions, education, recreation, government work, and the services generally.

This is a conclusion of great importance to the economic fu-

ture of the world, and one as yet madequately appreciated. It amounts to a formula for a mass production society, close to a scientific law. It is close enough for me constantly to advise young people that tertiary occupations offer the widest opportunities for future careers. It is close enough to encourage the government of Pueito Rico to launch an industrialization program, in the hope of getting surplus workers out of the sugar cane fields, where unemployment has been rife, into factories, and ultimately into the service trades.

#### Modern Corporations

Adolf A Berle, Jr, and Gardiner C. Means in The Modern Corporation and Private Property contributed another conclusion of long-term importance. They took a hard look at big American corporations in the era of President Coolidge. what they owned, what they did, how they priced their products, who owned them, who controlled them. The 200 largest non-banking companies in the country were selected, companies which together accounted for nearly half of all business activity. Means as an economist assembled the corporate statistics; Berle as a lawyer assembled the legal status or analyzed the lack of it.

One effect of the study was to shatter various economic "laws" of both Marx and Ricardo. The great corporations—United States Steel, International Harvester, and the rest—had little in common with laissez faire theory. The legal owners, or "capitalists," were found to be virtually stripped of their power by a new elite of self-perpetuating corporation managers, who controlled the vast properties without owning them—something Marx had never dreamed of. The leviathans thus were left swinging in a kind of property vacuum. As the authors put it: "Ownership of wealth without appreciable control, and control of wealth without appreciable ownership, appear to be the logical outcome of corporate development." A voting proxy is not a means whereby an owner of corporate stock controls his property, but a means whereby control is taken away from him If

he gets his "conventional dividend," however, he does not normally complain.

For the 200 corporations, control was found to lodge as fol-

lows:

In self-perpetuating management
In legal devices, including
pyramiding, non-voting stock,
voting trusts
In minority interests

Total control without majority
ownership of stock

21

Total control without majority

Thus property has come to be a different thing, and ownership a very different function, from most textbook stipulations. In many cases the great companies were found to be beyond and above the free competitive market. Either they were outright monopolies, or they practiced "monopolistic competition" like the great tobacco or motor car companies—a condition called by the awkward name "oligopoly" in another famous study, by E. H. Chamberlin.<sup>1</sup>

Gardiner Means, in a later analysis of prices in the depression, showed conclusively that prices in markets where there was active competition among small units like farmers, tended to fall as demand declined. The "law" of supply and demand worked. On the "administered" markets of great corporations, however, as demand fell, output was curtailed, workers were laid off, but prices were substantially maintained. Supply and demand did not work.

# Keynes and the Great Depression

John Maynard Keynes first came to public attention when, as a young man, he wrote *The Economic Consequences of the Peace*. He took a gloomy view of the Peace of Versailles after World War I, and later events, culminating in the rise of <sup>1</sup> The Theory of Monopolistic Competition.

Hitler, turned out to be even gloomier. He wrote with wit and precision, and was widely read through the 1920's, but the publication of General Theory of Employment, Interest and Money in 1935 made him world-famous. Hardly a professor could write a paper without discussing him pro or con. For a time it looked as if he were to join the ranks of the Big Theory men, to stand with Ricardo and Marx as a scholar who offered an answer to every economic question.

Now, a generation later, we are realizing that his contribution was more modest. He analyzed brilliantly what happens in a business depression, and went on to demonstrate how to prevent or halt depressions. He analyzed the up-phase of the cycle too, and showed how to check inflation. His slim volume, How to Pay for the War, contained suggestions for curbing inflation which all belligerent governments put to use in some degree in the 1940's, with the result that inflation was better controlled than during any other war in history (Later it broke loose when the controls he recommended were relaxed.)

Keynes outlined what has been called the "compensatory economy," whereby the business cycle can be leveled out in peace time. The government engineers it, but businessmen and unions cooperate. The basic idea is to promote spending vigorously when the economy starts down, and vigorously restrain further spending and expansion when the economy starts soaring toward the stratosphere. He outlined the various tools to be used, such as public works, interest rates, controls on consumer credit, taxation policy, and so on.

His major thesis was that "the spending of income does not take care of itself automatically in such fashion as to tend constantly toward full employment". He denied the Ricardian assumption that it did. Keynes said, in effect, that when an economy starts up, or starts down, in a major movement of inflation or deflation, political and business leaders had better

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup>I am following Dr John Maurice Clark's analysis of Keynes, in an article for the *American Economic Review* in 1947.

do something about it, not fold their hands and wait for "natural law" to set things straight.

In a downswing, if consumers have no money to spend, and businessmen are afraid to spend for new investment, then the government had better spend. This policy was as reasonable as it was heretical from the Ricardian standpoint, for it contravened a major postulate of laissez faire: that intervention by the state is an absolute evil. But Keynes was no Marxian either; to the day of his death he was a vigorous defender of free competition whenever and wherever it would work.

He emphasized that men in bread lines, not prices in the market, are the more significant economic data. He split the academic guild wide open, and created a ferment among professional economists which rivaled the ferment Einstein had created among the physicists a generation earlier. He formalized a feeling which many economists were beginning to share, namely, that Ricardian theory did not fit reality closely enough to warrant following its principles in a major depression. Meanwhile not many economists, especially in America, were prepared to embrace Marxism as an alternative; it too was founded on exceedingly shaky assumptions, as we have seen. Keynes came to the rescue with a middle-road, pragmatic program which said in effect: "Don't stand there hoping for a god from the machine; do something!" And he made some excellent suggestions about what to do. It may well be that because of his work, no large nation will ever again submit to such a catastrophic depression as that of 1929-39. J. K. Galbraith, speaking of the United States, after the promises of the Republican administration to halt a downswing in 1954, puts it this way:8

There is a widespread notion that one of the most primitive of modern ideological choices is whether a government shall be Keynesian or not. In fact, faced with the reality of a depression, this comes to nothing more or less than a choice of whether or not to commit political suicide. . . . No present or future administration really has the non-Keynesian choice, come a serious depression, of

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Economics and the Art of Controversy

trying to balance the budget and letting nature, unemployment, farm prices . all take their course.

Keynes offers national administrations anywhere a three-point formula to stop depression: (1) lower taxes so that consumers can spend, (2) liberalize credit, (3) promote public works. It is to be presumed that no administration will refuse the gift after the harrowing lessons of the Great Depression.

While Keynes discussed in his writings the "propensity to consume," and the "propensity to save," which look like psychological factors, it is doubtful if he ever really grasped certain fundamentals of economic behavior. He was primarily an economist, not a sociologist. His economic theory did not allow, for instance, for the behavior of housewives after World War II. His school looked for a sharp depression when war spending stopped; estimates ran up to ten million unemployed in America unless the government took vigorous compensatory action. No action was taken, and unemployment never went above three million. Why? Because five long years without durable goods -refrigerators, washing machines, houses, automobiles-had built up a tremendous spending drive in millions of American households. Consumers descended on the market after the war like a tidal wave, bought everything in sight, and clamored for more. It would be hard to find a better illustration of the frailty of economic theory without the study of actual behavior.

# New Deal Philosophers

"The New Deal" is a label covering a series of congressional and administrative acts over a period of about seven years, 1933-40. The people who originated and refined these acts—the FDIC, SEC, AAA, TVA, and the rest of the "alphabet soup" as critics called it—had no settled economic philosophy at all. They were trying to stop the depression with any means which came to hand. Their efforts undoubtedly helped to stop it, but not until the war boom of 1941 was unemployment finally liquidated.

Two main ideas struggled for mastery in the ranks of the New Dealers. I used to sit in at some of their conferences and listen to the uproar. One group was for accepting Big Business, Big Labor, Big Government, and proceeding from that base with big overall planning. The other group, heavily influenced by Mr. Justice Brandeis, was for curtailing Big Business, enforcing the antitrust law, getting back to the grass roots and small units. Thurman Arnold was one of the leaders of the latter school, with his spirited campaign against monopoly.

There was, accordingly, no ideological unity among the New Dealers, no strong group of embattled followers of either Ricardo or Marx. There were some followers of Keynes, especially in the analysis of savings and investment. There were deliberate attempts, such as the Public Works Administration, to keep dollars moving according to Keynesian ideas

Political opponents called the New Dealers "agents of Moscow." The actual agents of Moscow, with headquarters in Union Square, New York, called them "lily-livered liberals," "social fascists," and "agents of Wall Street." History, I suspect, will record that the period was marked by intelligent young men, some with degrees in economics, some with degrees from law schools, working 14 hours a day trying to find food and employment for a stricken people, trying to make the economic wheels go round again. In Middletown, we remember, a quarter of the population was on relief.

# PRACTICAL ECONOMICS

We have looked at the two Big Theories, Ricardian and Marxian, and retreated in some disorder. At best they are social science<sub>2</sub>—unverified hypotheses. We have inspected the less lofty formulations of Colin Clark, Berle and Means, Keynes, and found them helpful for a better understanding of what is going on—not all that is going on, but some of it.

Now we will sample some of the significant work performed by economists during World War II; work not only useful but soundly scientific and capable of prediction. After the attack on Pearl Harbor, a large number of professional economists and statisticians volunteered for public service. Their activities were divided into these main groups (1) Price control and rationing, (2) The allocation of materials, (3) Techniques for financing the war, (4) Manpower mobilization, (5) Economic intelligence—such as finding out the economic condition of the enemy, and preclusive buying to keep strategic materials out of his hands.

Galbraith gives us a lively account of economists in action, especially in the price control board <sup>4</sup> "During the second World War the United States, partly by improvisation, partly by plan, developed a system for mobilizing economic resources that, by commonly accepted standards of performance, proved highly satisfactory." In common with most belligerents, the United States employed the "disequilibrium system," by which Galbraith means that the normal market economy was suspended for the duration. Old motivations were supplanted by new forces for determining economic behavior, among them government control over economic resources and over prices, including rationing.

Ordinary market incentives proved largely useless. Automobile makers, for instance, would not voluntarily convert to tanks and bombers even when guaranteed large profits. Similarly, steel makers declined to enlarge their capacity. Finally, the government through the War Production Board had to lay down the law, telling automobile men and steel men what they must do if the war was to be won.

As prices on many markets had long since been "administered," i.e., kept in line by business management, Galbraith found that in this case "price fixing presents no problem of principle, and the war experience came close to showing that such markets are not the exception . . . The designing of price regulations to fit the structure of such markets and their enforcement was the price administration's ablest piece of craftsman-

<sup>4 &</sup>quot;The Disequilibrium System," American Economic Review, June, 1947.

ship." Thus the thesis of Berle and Means was amply verified. When war came, the government took over the control of prices from the large corporate or trade association interests which for years had been exercising that supervision, and the transition was relatively smooth.

In those markets where free competition still remained, "price control must be supplemented by rationing. In spite of brilliant initial successes, this was the area of . . . failure in the operation of the disequilibrium system." But the failure was not the fault of the economists. The early rationing programs were ably conceived and ably executed. "A good case could be made that the rationing of meats, canned goods and fuel, were among the outstanding administrative achievements of the war." Meat rationing, in particular, brought order to markets which price control without rationing had reduced to chaos.

Price control, guided by such men as Leon Henderson, Galbraith, Donald Wallace, and John M. Clark, achieved brilliant success in holding prices. It was designed, launched, and administered largely by economists. Yet while it was in full career, Congress suddenly banned professional economists from holding administrative positions! Presumably they had never met a payroll, and did not know what they were doing. This was a savage thrust at social science. Scientists were not only saving the country's morale by holding prices firmly, but also saving billions of dollars for taxpayers. Yet Congress banished them to Siberia.

#### **GNP**

The letters GNP stand for G10ss National Product, which is an elaborate statistical compilation to estimate the total dollar value of goods and services turned out by a nation in a year. It is a rate of work and so a useful figure for peace as well as war, indicating levels of production, employment, and general economic well-being. A whole complex of studies have clustered around GNP. Isador Lubin believes that war production could not have reached the volume it did without this statistical information. He credits its inception to Wesley Mitchell's work on

national income at the National Bureau of Economic Research

years before.

Thanks principally to the GNP studies, everybody who is interested in the economic shape of his world now knows that there are three, and only three, agencies which can spend money (1) the ultimate consumer, (2) the businessman, (3) the government. Gross National Product is the total of their combined efforts. If the total begins to shrink, the first step is to find out which agency is curtailing its outlays, and why. The second step is to offset the shrinkage by stimulating one, or two, or all the agencies. This is the heart of the "compensatory" program for maintaining permanent prosperity.

Keynes, like Einstein, introduced the idea of relativity into his science. An increase in government spending at a time of full employment is an invitation to harmful inflation, but an increase at a time of serious unemployment is a blessing. More money placed in the hands of business when investors are alarmed by fears of depression will not "trickle down" to the consumers, but will remain frozen. When business investors have confidence, the reverse is true. It all depends upon when, and by whom, the spending is done—the judgment is relative, not ab-

solute.

# OTHER WAR ACTIVITIES BY ECONOMISTS

Stacy May headed a brilliant statistical group in the War Production Board that not only helped to find raw materials, but calculated the proper allocation between essential and less essential uses. The central control agencies, such as the Requirements Committee and the Controlled Markets Plan, were largely devised and staffed by economists, including E. S. Mason, W. L. Thorp, Clair Wilcox.

Then there was a series of Anglo-American economic control boards, some headed by economists like Thomas Blaisdell. There were economists in the War Shipping Board, in the Office of Defense Transportation, in the Board of Economic Warfare, in the Treasury advising on war loans, in the Bureau of the

Budget and in the Federal Reserve Board. Chairman Marriner Eccles was himself a profound student of economics.

The war called for all the analytical and administrative talents which classroom teachers of economics had ever concealed. It gave them full scope to show what they had in them. They responded magnificently but they worked within a closed system. The end was given: to win the war. Only the means were sought. This wartime experience, however, represented an important stage in the relation of economists to society. Thousands of them streamed across the bridge from uncertain theory to practical reality.

#### Some Financial Lessons of the War

Perhaps the major economic lesson of the war is the one underlined by the International Labor Office at its 1946 convention in Montreal. "A nation can afford anything it can produce." If this lesson had been learned before the stock market crash of 1929, there never would have needed to be a serious depression. Factories and workers were all there, ready to produce. But in 1929 it was believed that the country could not "afford" to let them go to work. This catastrophic cultural lag has now been pretty well overcome.

Beardsley Ruml continues the theme. New discoveries due to war have not been limited to the natural sciences, he says. Great advances have also been made in the fields of finance and economics. The full impact is not yet understood, but we "know enough to know that some things which many competent people thought were true, are either false or true in a different way than was believed." For instance, during the 1930's most people believed that a budget deficit must have an inflationary effect Now we know that this is not necessarily so.

"The plain fact is," says Ruml, "that the war was actually financed on a declining rate of interest. What does this mean? It means that a new relationship has been created between the private money market and the national state." To meet its ex-

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> In a speech to the New York Employing Printers' Association in 1946.

penses, a nation can either tax or borrow. Borrowing postpones the tax. In the past this has meant higher interest rates charged by the private money market as the national debt has grown. Thus up to 1940 the private market—in the United States we call it Wall Street—dictated the terms for government loans, and usually dictated the tax structure.

In World War II this system was outgrown. Financing became too great for private lenders to handle. Private bankers no longer have the final word on the fiscal policies of the United States government, and control, says Ruml, must henceforth come from the whole community, not from private lenders. Washington, not Wall Street, is now the financial center of not only the country but the world. "It follows that our federal government has final freedom from the money market in meeting its financial requirements. Accordingly the prime consideration in the imposition of taxes has become the social and economic consequences"

It is interesting to note that while Ruml was describing this great historic change in the relative positions of Wall Street and the Treasury, Communists in Moscow were reviving their ancient slogans to the effect that Wall Street was out to dominate the planet. The Communists suffer more from cultural lag than many American conservatives.

Perhaps there is nothing to be called an "economic system" and therefore no laws foretelling its overall performance. But if somebody wants to operate a Central Bank, or float a bond issue, or finance a war, or halt a depression, or arrange an international loan, there are many useful tools now in the hands of economists to assist the process.

Both the great depression and the great war shook economists out of their classrooms into the market place—the real market, where they had to face the National City Bank, United States Steel, Henry Kaiser, John L. Lewis, Ed O'Neal of the Farm Bureau Federation, and the embattled Cattlemen's Association. Their classroom theories were of little use to them in the

- "disequilibrium" system, but their habits of analysis and of suspended judgment, their ability to handle statistics, were of the greatest value. They got rid of their academic frustrations<sup>6</sup> by experience in practical policy-making and administration.
- o"... Long-standing frustration on the part of many economists that economic theory gave no answers to questions of economic policy ..." Paul T. Homan in American Economic Review, December, 1946.

# New Dimensions

We have applied the test of the scientific method to three departments of economics—General Theory, Special Theory, and Practical Applications. The first was found to be shaky, but the other two stood up well. Let us now look at some experiments, hypotheses, and studies in the economic field today which are opening a new dimension in economic thinking.

# OPERATION BOOTSTRAP

The island of Puerto Rico is smaller than the State of Connecticut, but has a larger population. It is a beautiful, mountainous island, with sugar fields along the coasts, white beaches, palm trees, old Spanish forts, and the incredible colors of the Caribbean sea all around. Those economists who have been fond of erecting theories with Robinson Crusoe's island as a model—a two-man economy—might turn with more profit to Puerto Rico, where they find a two-million-man economy.

"Operation Bootstrap" is an attempt to shift from a one-crop sugar culture to a diversified industrial society in a few years' time and do it without exploiting workers or surrendering democratic freedoms. It took the United States nearly a century to become a society primarily industrial. Political democracy was maintained, but the condition of workers in factories and mines, especially in the early years, left a good deal to be desired. It took the U.S.S.R. forty years to become a great industrial nation, for which the Russian consumer paid a heavy cost in low living standards.

In America our economic slogans have celebrated the indi-

vidualism of Ricardo, in the U.S.S.R. the collectivism of Marx. But in Puerto Rico we find a more realistic and scientific approach to economic problems. Operation Bootstrap is not "capitalism," or "socialism," or "labor unionism," or any other-ism. Its standard is the well-being of the whole island, using whatever agency—government, private business, cooperative enterprise—best serves that goal.

One would have expected a more ideological approach from the political party of Governor Muñoz Marin, for when it rose to power in 1940, the party was frankly socialistic. Early reforms were along socialist lines, with government corporations set up for both agriculture and industry, and plans for further nationalization on the drawing board. Private owners were to be bought out at a fair price (which is of course not the communist idea of nationalization) and the state was to become the major entrepreneur. The government acquired a cement plant, and built factories for the manufacture of shoes, paper, glass, clay products. It began collectivizing the sugar industry.

Presently the program got into management troubles, labor troubles, credit troubles. The cement plant did fairly well, but the other four state factories showed persistent losses. A serious difficulty was that the labor unions, who thought that a socialistic government was their government, expected exorbitant favors.

With the economy beginning to crack, the Governor and his staff abandoned socialism as a policy guide, and inaugurated Operation Bootstrap. They deliberately designed it to encourage the development of private business on the island, and to get the government out of losing enterprises. The five plants were sold to local capitalists who had demonstrated their managerial ability, and the proceeds were promptly used for new construction. Hotels and factories were built, to be leased or sold to businessmen. Proceeds from these were later reinvested in a kind of perpetual revolving fund. Taxes on new enterprises were abated for a series of years, and the labor force required was trained by the government.

Local businessmen and businessmen from the States began to

feel differently about a government which was so mindful of their interests, and good relations grew apace. While I was investigating the program in 1951, I used to hear American businessmen, interested in establishing a branch in San Juan, damn Washington as a nest of interfering bureaucrats, and in the next breath praise the staff of *Fomento* (Operation Bootstrap) as gentlemen and scholars. Their whole ideological mechanism seemed to have gone into reverse.

This was a strange but cheerful shift of gears. It meant that neither the structure of modern business, nor that of government, necessarily prevents friendly cooperation for common goals. The difference is ideological, not structural Also it means, I am afraid, that Puerto Rico has forged far ahead of the mainland in developing this new dimension.

A major goal of the program is to cut down the birth rate, increase employment opportunities, and so reduce emigration to congested areas in New York and elsewhere. Industrialization, as population experts have demonstrated, always reduces the birth rate. It also reduces the death rate, especially of babies. I do not know whether this goal of balancing births against jobs can be reached, but there seems to be a good fighting chance. What nobody can overlook who studies the island is that Puerto Rico now offers a unique and significant laboratory for experimenting with economic change and economic behavior.

### OTHER ECONOMIC LABORATORIES

There are other laboratories exploring the new dimension, though none so tidy as that of Governor Muñoz. Sweden has long practised the "Middle Way," with wide areas of agreement among businessmen, government men, and the managers of large cooperative associations. The powerful Social Democratic Party however, is committed to a mild type of socialism, as is the British Labour Party. Turkey provides another interesting laboratory in rapid economic and social change.<sup>1</sup>

<sup>1</sup> The USSR, has the largest economic laboratory of all but publishes no dependable results. The best guess is that it is old-fashioned in labor policy, and very hard on agriculture, but does turn out a surprising volume of munitions.

The Tennessee Valley Authority has developed close cooperation with businessmen in the Valley, but not with businessmen elsewhere, especially executives in the power and light industry. The United States Atomic Energy Commission is now promoting joint projects with private business in developing peacetime uses of atomic fission. In the manufacture of aircraft, partnership is well advanced; some 95 percent of all United States airplanes are built in private plants to government order, with the aid of research in government laboratories.

The fact of partnership in common goals is widespread, but only in Puerto Rico has a cease fire in the ideological battle of "Bureaucrats" vs. "Profiteers" been declared.

#### Countervailing Power

Probably the most arresting economic theory since Keynes is the concept of "countervailing power," advanced by J. K. Galbraith in 1952. Puzzled because the "disequilibrium" system had not foundered, despite the gloomy prophecies of both conservatives and liberals, he sought a theory to explain the relative stability of the American economy in recent years.

Five massive political and economic forces, he finds, have supplied the checks and balances to keep the system on a reasonably even keel. They are: (1) Big Industry, (2) Big Distribution—the great mail-order houses, chains, supermarkets; (3) Big Labor; (4) Big Agriculture—with probably the most powerful lobby in Washington; and (5) Big Government

When one of these giants attempts to dominate the national scene, the others—one or more of them—make a countermove, thus producing in effect a competitive system on the highest level. If Big Industry gets too tough, Big Distribution will build its own factories to cut the price on washing machines or TV sets. If Big Labor thinks it owns the roost, Big Business, Government, and Agriculture may join to slap it down with a Taft-Hartley law If Big Government tries to extend its industrial controls, the others may combine to set a limit. The old com-

American Capitalism.

petitive system of small units, says Galbraith, has passed into history; but this supercompetition now provides a brake on excessive power in any one place.

It is a stimulating hypothesis, and is being widely discussed. Verification will have to wait for tangible performance over the years. Like the laboratory in Puerto Rico, the theory of countervailing power takes economic thinking into fresh new fields.

#### THE CONCENTRATES

Adolf Berle in a recent book has pushed ahead with his theory of the development of corporations in America.<sup>8</sup> In his earlier work with Gardiner Means, he demonstrated how control had passed from legal owners to self-perpetuating managers, who might or might not own a share of stock. This demonstration helped to overturn traditional ideas about "capitalism"—as noted in the last chapter.

In the quarter-century since the publication of *The Modern Corporation*, the big firms in America have continued to grow, and owners have become still more detached from their legal property. Competition among giants, sometimes called monopolistic competition, is very different from competition among the little firms of Ricardo's day "It means quite another thing when four or five large units are grinding against each other." In motorcars, only three giants now grind, and if Chrysler is not careful, there may be only two. The few great companies grinding within a given industry Berle calls a *concentrate*. "Competition within a concentrate is more a struggle for power to balance supply against demand, than to secure customers by price competition."

Concentrates are found in oil, sugar, railroads, electric power, meat products, aluminum, chemicals, rubber, and many other mass production industries. Where are they headed? Nobody knows, but Berle ventures some preliminary speculations. "We are nibbling," he says, "at the edges of a vast, dangerous and fascinating piece of thinking." Americans are not used to think-

<sup>&</sup>lt;sup>9</sup> The Twentieth Century Capitalist Revolution.

ing of Big Industry as the political institution which it has now actually become. We have not created any frame of responsibility, any formal mandate to make the concentrates legitimate.

"There is no recognized body of doctrine by which they themselves must test their choice as they act from day to day... no one has ever made a blueprint of the community desired by Jersey Standard, Sears Roebuck, Southern Pacific, Ohio Edison, least of all the corporations themselves."

I would like to pause for a moment here, and quote Mr. Frank Abrams, who as Chairman of the Board of Jersey Standard, once told me something of the future he desired for that vast enterprise. Its mission was to use scientific research to explore new and better ways of providing things that people wanted. It must become a kind of public service, said Mr. Abrams, responsible to at least four publics to the consumers of its products, to its employees on all levels, to suppliers of its materials, and to government as representing the whole community. Unless Jersey Standard holds steadfastly to this role, Mr. Abrams prophesied, it will not survive—not in the kind of world which lies ahead.

To return to Mr. Berle: he calls in effect for the kind of corporate conscience expressed by the Chairman of the Board of Jersey Standard. Such conscience has not been widely developed. The "concentrates" swing in a legal and political vacuum, turning out half of America's goods, holding enormous interests abroad, "capable of becoming one of the master tools of society—capable also of surprising abuse. . . ." A common abuse today is for a concentrate to pick up and leave a town—say Manchester, New Hampshire—tearing the economic heart out of the community as it goes.

Berle finds that 135 nonbanking corporations control 45 percent of United States industrial assets and account for a quarter of the manufacturing output of the world Their managers decide. (1) the activities of millions of workers—subject to certain checks and balances by Big Labor and Big Government. (2) whether and how to carry on operations, whether to get out

of a city regardless of its future. (3) what markets to serve—either to meet a public demand, or create one. (4) the important function of technological development—for example, deciding how much automation to introduce, and how rapidly. They try (5) to influence public opinion through mass media. Finally (6), managers control the extent and rate of capital expansion, making that cardinal contribution to gross national product (GNP) noted in the last chapter.

The above six powers of management, says Berle, add up to an informal planned economy, leaving the "judgement of the market place" far behind. Some two thirds of the funds for expansion, furthermore, do not come from borrowing in the market place, but from sources within, or available only to, the concentrates—reinvested profits, depreciation and other reserves Of \$150 billion of new capital improvements, 1946-53, about \$9 billion, or 6 percent, came from stock issues. Only at this point do "we approach the risk capital so much relied on by classical economic theory. The capital is there; so is capitalism. The waning factor is the capitalist"

The concentrates, says Berle, share the goal of most American businessmen: "Fundamentally they all want not a perpetual struggle but a steady job—the job of producing goods at roughly predictable cost, under roughly predictable conditions, so that goods can be sold in the market at a roughly predictable price." They want, of course, to grow in size and power.

Well, there it is, the economic powerhouse of half America, and a quarter of the world, the climax of a long process, markedly accelerated since 1930. Mr. Berle wants the managers to get religion, and feel greater responsibility for their massive institution, now in effect a political institution. Mr. Abrams seems to feel it, so does Murray Lincoln, the insurance company executive and cooperative leader, and one could name a few more. Most managers, one suspects, have little comprehension of the role into which history has thrust them.

Here then is another new dimension, demanding scientific analysis. It connects with the thesis of countervailing power. We

find in the concentrate the essence of America's secret of production. It is indeed a secret in the sense that nobody knows' much about the forces which brought it to pass, or the trend it rides To declaim about "our glonous free enterprise system" explains nothing. To declaim about "the blessings of competition," is not much better, until the extraordinary character of the competition, the grinding of the concentrates, and the countervailing thrusts of other institutions, are explained.

"If ever corporation managers base their continued tenure on power and not on reason, the end is disaster." Social scientists have plenty of work cut out for them here. Mr. Berle is of course not alone in the field, others are making contributions too—including acute studies of the new corporation structure by David Lilienthal and Peter Drucker.

#### RESEARCH IN ECONOMIC BEHAVIOR

New institutions obviously cannot be successfully analyzed with the tools of traditional economic research. The behavior sciences, including opinion research, must all be enlisted to help. To begin with, the postulates of the traditional Big Theories need more examination, not necessarily to refute them, but to determine what drives really underlie the behavior we call economic. Will an increase in wage rates, for instance, induce more or less work from the society? The Hawthorne experiments tell us something but not enough. Should a government seeking more output from citizens raise income taxes or lower them, make tax rates more steeply graduated or less? There is plenty of theory both ways, but what are the facts? We need more research on the behavior of unions, the behavior of household consumers—where, for instance, is the do-it-yourself movement taking us?—the behavior of large financial institutions, of government managers, as well as corporation managers.

What does "full employment" mean in human terms? What are the consequences of consumer attitudes on future economic conditions? Is there any saturation point to consumer demands? What is the process by which a new product— TV, for instance—is absorbed? What makes consumers spend or save? The

above questions, raised by a member of the economics faculty at Yale, are fundamental to an understanding of the American economy, and for most of them we have only tentative answers.

#### STUDIES AT MICHIGAN

George Katona of the University of Michigan, writing in the Scientific American (October, 1954), supplies some answers based on sampling United States consumers in recent years. After the outbreak of war in Korea, he says, prices rose sharply, with little increase in government spending or money in circulation—the classical reasons for inflation. But in the spring of 1951, when government spending in the form of rearmament outlays really began to roll, United States householders ceased their panic buying and began to save their money—contradicting traditional theory again. "People's economic behavior appeared to be governed more by their expectation of what was going to happen, than by the situation at the moment."

Katona reports that five sets of variables should be considered when research into economic behavior is undertaken. (1) enabling conditions—assets and income of the group being studied; (2) precipitating circumstances—a new house, a new baby; (3) habits as imposed by the culture; (4) contracts already in force—for installment purchase of the new car, for rent, insurance; (5) psychological state of consumers at the time. "As a result of group identification and mass communication, similar changes in attitude often occur among very many people at about the same time," and so a measurable trend can be plotted

In an economy held to bare subsistence such trends will not appear, as all income goes for stark necessities. As abundance comes in, the definition of a "necessity" expands, and consumers' choices become more complicated. Analysis of economic behavior becomes increasingly essential as living standards rise. Katona offers the following generalizations.

Keynes said that in prosperous times, people whose income declines will draw on savings to maintain standards. Research shows this to be correct, provided they expect the decline to be temporary.

Keynes said that as consumer income rises, savings also increase.

No, says Katona, our studies show that spending often goes up faster than income. In the period 1947-50, people with rising incomes borrowed the most; people with declining incomes came second; people with steady incomes borrowed least.

Classical postulates say that if people expect prices to go up they will buy; if down, they will not buy. Advertised bargain sales contradict this conclusion, and such sales have a substantial effect on consumer behavior today.

If people think prices are "about right" they will buy briskly; this is the condition most favorable to consumer spending. The current business policy of aiming at price stability, tempered with bargain sales, suits householders.

There is no "saturation point" in buying-as-a-whole, says Katona. If people have enough cars, they will send their children to college "We give up aspirations when we have failed, not when we have succeeded." Following the American success saga, our buying proceeds from one level to another. "Saturation" for most people comes only when they feel economically insecure. (For some of us, however, saturation comes with material comfort Personally I do not want to be bothered with any more stuff, and buy less than I did 20 years ago. But my status in the culture depends on my work as a writer, not on keeping up with the Joneses, and so I am probably an abnormal case.)

The last generalization of Katona's is encouraging. His surveys show no reason to expect a depression automatically following a period of prosperity, but rather the contrary. Consumers do not behave in a way to give the business cycle any regularity of ups and downs. (Perhaps we ought to drop that word "cycle" as a semantic misfit.)

We have learned enough from these surveys, Katona says, to know that "economic psychology very usefully supplements the theoretical and statistical approach of traditional economics." Mr. Katona is too modest. his surveys do not so much supplement the traditional approach as make a shambles of it.<sup>4</sup>

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup> Another fruitful lend in this connection is the work of a team composed of Oskar Morgenstern, economist, and John von Neumann, mathematician, Their book, *Theory of Games and Economic Behavior*, brings the laws of probability to bear on decision-making by executives and other economic agents

Reviewing the art and science of economics today, one finds encouraging signs of a new dimension. Fortified with studies in behavior, in probability mathematics, and aided by electronic computers—as in Leontief's "Input-Output" calculations — some fresh and important economic theory may be close at hand. Galbraith and Berle are obviously on the edge of it, and a whole school may blossom quite suddenly. It will not be grandiose, full-whiskered theory covering the entire economy, but limited, verified theory, which policy-makers in government and in business—and in households too—can put to useful work.

<sup>&</sup>lt;sup>5</sup> In which the raw material used by every industry is balanced against the finished product of every industry, an impossible statistical achievement before electronics. See his book, *The Structure of the American Economy*.

# Reforming the Reformers

To one who has been advocating reforms of one kind and another ever since he read Henry George on the single tax many years ago, social science in its more rigorous aspects comes with something of a shock. Your author looks back at his enthusiasms and begins to realize that some of his aims were unachievable, and most of his means were unworkable. Clearly he will have to start again from the beginning, and he is not as young as he was.

We are speaking of reformers, who genuinely wants to see conditions remedied, without too personal a motive. Reformers, on the other hand, as the psychologists describe him, is a frustrated individual with something wrong in his home or job or emotional life. He takes to communism, currency reform, or technocracy, as an escape from personal difficulties. Reformers, furthermore, tends to select a cause where he can do a lot of hating—communism, for instance, is ideal for this, with its hierarchy of demons: "Capitalists," "Wall Street," "Imperialist Warmongers," "Trotskyites." The best service which science could render reformers would be to clear up his emotional insecurity.

What can social science do for reformer, A number of helpful suggestions are on file and more are being accumulated all the time. We have met a few of them earlier in this book and will now try to get them in some sort of order. This chapter is addressed to those who seriously want to change an institution or a custom in the culture, especially in the field of economics.

### Perpetual Motion Machines

Perhaps the first task for the genuine reformer is to take a look at the history of perpetual motion machines. For centuries, at least as far back as the Greeks, ingenious persons have devoted themselves to a search for the principle of perpetual motion. Some wanted to make their fortunes, others a great name, most,

perhaps, were just curious

Whatever their motives, the inventors spent years constructing frictionless wheels, ball-bearing spheres, dissolving chemicals, and mechanical constructs that would amaze cartoonist Rube Goldberg. The wheel which the Marquis of Worcester devised in 1660 was 14 feet in diameter and elaborately rigged with 40 sliding weights of 50 pounds apiece. Even Leonardo gave his attention to a wheel to turn itself forever by quicksilver. The screw of Archimedes, the "hydrostatical paradox," capillary attraction, were all employed by the savants. Crackpots to this very day are working on electronics, magnetism, natural heat, and liquid air, hoping to give their construct a shove which will keep it going forever.

As early as 1775 the Paris Academy of Science refused to receive any more schemes for perpetuum mobile, though the theoretical refutation was still incomplete. When the first and second laws of thermodynamics were laid down a little later, perpetual motion machines were thrown finally into the scientific ash can. Nobody in his right mind would ever again waste time on them—except to sell a gold brick to the scientifically illiterate.

How many social and economic mechanisms for reform—agitated and supported by leagues, societies, institutes, celebrities, mass subscriptions, and high-priced publicity agencies—are perpetual motion machines? Every week as I open my mail and the appeals and summonses to action drop out, I finger them and ponder how much of a perpetuum mobile is this, and had the Marquis of Worcester anything to beat that?

The social scientists have not yet produced generalizations as

elegant and definitive as the first and second laws of thermodynamics, but they have produced enough to raise a large question mark over my mail. They are certainly as far along as the Paris Academy when it banged the door on callers with a box of sliding weights. Already they have chilled my crusading zeal, built up my bank account, and caused me to get a larger wastebasket.

Here is a sample from an aspiring inventor. During the great depression I received literally hundreds of such plans, representing incalculable devotion by their authors.

#### Dear Mr Chase:

The fateful years prior to and during the late war with their terrible aftermath have impressed all thoughtful people with the pressing need for some basic change in our social system.

In my manuscript, The Perfect Answer, I have outlined a plan to eliminate the boom-and-bust economic cycle, as well as the peace and war political cycle. I have also devised a transition period which would ultimately give us the perfect world of tomorrow through a form of evolution allowing complete fairness to all concerned.

Feeling that you would be interested, I am mailing you a copy of my plan. Please send me your comments as soon as possible and suggest what publisher would be most interested in it.

Yours very truly, Ernest Mead

Mr. Mead—I am shielding his real name—is obviously on the side of the angels. But I am afraid that he was beaten by the laws of the culture concept before he started.

Linton explains in one sentence what is wrong with most Utopias and with such omnibus schemes as Mr. Mead's. "The greatest difficulty which confronts a leader who seeks to develop a new society is that he has to start with persons who have already been trained to live in some other society." The Utopia builder can compose admirable constitutions and codes; but the wayfaring citizen is unable to accept them outright no matter how much he may desire to. "People live mainly by habit, acting as they have been taught to act without stopping to think first."

If we were suddenly transported to Utopia we should have to stop and think before nearly every act we performed, and would go stark mad long before we acquired a whole new set of automatic habits. We should be like the centipede who was asked which leg came after which, only to fall exhausted in the ditch, considering how to run.

Training to live in one's culture, as we have seen, begins at birth. By the time George Adams is even half-grown he has accumulated a mass of unconscious habits closely fitted to his Middleburg society. If George's little son were sent to live in a Burmese village, the boy could probably shift over within a few years. But if a large group of Americans go to live in Burma, they will take most of their culture with them and not even learn the language. The typical Utopian reform is like trying to move a whole American town to Burma and make it a Burmese community overnight. It is a perpetuum mobile. So is the converse, sometimes attempted by missionaries and economic advisers—making a native community behave like Americans.

# WHEN REFORM HAS A CHANCE

A second fundamental principle for practical reformers is that a successful movement requires enough tension and frustrations in the society to offer political leverage. When the majority of citizens are going contentedly about their business, the reformer had better teach canasta or give a course on the Great Books. A good illustration is the postwar period in the United States. With practically full employment all large plans for housing, health, minimum wages, inflation control, were received with yawns. There was not enough frustration to give such reforms a chance, however useful they might have proved.

A major problem of the reformer is to determine when the lag between popular credos and real need is great enough to promise some success. Franklin Roosevelt, who was far from being a typical reformer, happened to arrive when the lag was long, and a change overdue. Three years of economic paralysis had made the need for jobs, food, security, abnormally great.

The credos of the American culture, with their insistence on self-help, had come to sound unrealistic, if not positively cruel, Action was accordingly possible over a wide front, and Roosevelt and his New Dealers moved briskly in with a whole alphabet of reforms. The tensions and the frustrations were there; and though the old credos began to be heard again on Main Street after 1935, the needs of the mass of the people were strong enough to reëlect Roosevelt repeatedly, a political phenomenon without precedent.

Had Roosevelt been aware of these cultural laws he might have laid his communication lines more wisely and achieved wider agreement. Unfortunately he saw the situation as a fight, good people against bad, when it was not that kind of two-valued situation. He called the "bad people" a number of hard names—"moneychangers," "economic royalists," and the like. Naturally this infuriated the well-to-do; and they heaped on Roosevelt all their depression-born frustrations and fears. If the President had consistently spoken for all the people whom the depression had hurt or bewildered, including the upper brackets, and summoned all brackets to move toward recovery and freedom from fear, he might have averted much of the Roosevelt-hating. The point is that the great depression provided one of the few periods in history when a large majority of the people were ready for change.

# CLASS STRUGGLES AGAIN

Many reform movements, as we noted earlier, assume an inevitable conflict between the classes and the masses. Two types of conflict are always latent, though they do not often follow the Marxian pattern. They arise between the individual and society, and between groups inside the society. The individual is kept in line by formal or informal penalties, ranging from ridicule, through ostracism and imprisonment, to death at the hands of the law. The important thing to remember, observes Linton, is that these penalties are rarely used. Most individuals are successfully conditioned to the patterns they are expected to conform

to, and carry them out unconsciously. The thief and the murderer get the headlines, but they are exceptions

In handicraft societies even stealing is rare. Among the Sakalava of Madagascar, for instance, when a person steals for the first time the circumstances are carefully investigated. If the thief was actually hungry, he is given land and a chance to reform. If he steals again, he is speared—not in a spirit of revenge but because he has shown himself a public liability.

Struggles between groups, or class struggles, are not frequent in societies where all members have a fixed place in the culture, as noted earlier. They arise when status is being undermined—as the factory system undermined it in Europe in the nineteenth century Factory workers were under continual tension because they had no accepted place—until labor unions were invented to give them one. In the United States status has never been rigid, except perhaps for Negroes. Classes here are mobile, as the proverb "shirtsleeves to shirtsleeves in three generations" indicates. Few Americans care for the role of "proletarian," while the managers of industry, as Berle and Means pointed out, have superseded the "owner" and split the solid front among the "capitalists."

I would venture a guess—a wild one to be sure—that more than half the reform energy in this country over the past 50 years has been directed to a perpetuum mobile. The reformers' research, such as it was, had never included a controlled study of human behavior. Old-line socialists, dimly recognizing this, used to complain about the "dumb" workers who could not be brought to recognize their class interest. How could they recognize what they did not have?

In Chapter 12 we observed a few perpetual motion machines in efforts to improve race relations. We concluded that where a caste system exists, as in the deep South, reforms based on logic, justice, reason, are unavailing, while strong-arm measures are likely to boomerang. People in the deep South hold their belief systems as sincerely as people in the North. To them, logic, reason, and justice are on the side of caste. They will fight

any one who tries to destroy caste abruptly or violently. Reformers who neglect these scientific findings are squandering their energy, to say nothing of the funds of their well-meaning subscribers.

#### FACTORS OF SOCIAL CHANGE

W. F. Ogburn, whom we met as a student of social change, advises reformers<sup>1</sup> to figure out the social forces which will aid the change, and those which will oppose it. The next step is to study carefully three factors which are bound to affect any but the smallest change, namely: (1) the natural environment; (2) the biological factor of heredity; (3) the culture, including customs and beliefs.

Natural environment changes only over long periods, but man can control it to a degree by using oil-heated houses, igloos, woolen clothing, umbrellas, air conditioning, snowplows, headlights, deep freezes, TVA systems, irrigation, contour tillage,

rain-making.

Human heredity has apparently not changed much since Cro-Magnon man. Eugenic programs to modify homo sapiens deliberately are mostly talk, though we see what might be done in the effects of deliberate breeding on plants, fowls, and race horses. Fortunately, in the present state of knowledge we cannot tamper with our genes, which are singularly well encased against reformers. Even sterilization does not get far, Hitler provided some revolting examples in this department. The genes possessed by different family lines, says Ogburn, are not well known. The best thing we can do now is to reform our diets, especially by the better feeding of babies, and so improve each generation. Already we can measure the effects of orange juice, green vegetables, and plenty of milk on the present generation of American college girls and boys. As a group they are taller, heavier, and larger-footed than their parents.

Moving on to the third factor, culture, Ogburn says that progress can be made if the reformer carefully fits his program into

<sup>1</sup> Letter to The New York Times, September 29, 1946.

the folkways and allows for cultural lag—a precaution which Franklin Roosevelt did not take One New Deal reform, however—the Food Stamp Plan—did exactly that. So skillfully did Milo Perkins, its inventor, map his campaign that when the plan was finally launched on a nation-wide basis it was everywhere applicated, without a single vested interest in opposition

Head-hunting, a strong cultural trait in various primitive societies, may lead to rapid depopulation, and colonial administrators are always trying to check it. In Sarawak, British reformers have abolished the active practice but have wisely kept the tribal ciedos unimpaired. Officials accumulate old skulls as trophies and issue them when needed for a given ceremony. Among the Papuans, meanwhile, bridegrooms have been persuaded to offer a boar's skull to their brides. It is pointed out that a boar is harder to bring down than a human, especially a woman or a child, and is therefore a better proof of manhood.

These, like the Food Stamp Plan, are examples of really effective reforms. Belief systems are maintained while the harmful practice is eliminated and a better one substituted.

# LABORATORY FOR TESTING PLANS

Such prevision and calculating take time, while the typical reformer is in a hurry. "Unbridled social idealism," says George Lundberg in Can Science Save Us? "unbalanced by scientific criteria as to possibilities and cost, is a social liability and in effect a type of fraud on the body politic." The American prohibition law of 1920 was probably of that type. It was promoted, at least in part, by fanatics who lacked the remotest idea of the culture concept and the probable psychological effects of their reform Alcoholism is a social calamity, but it must be controlled by a different strategy.

Social scientists have been at a disadvantage in competition with eager reformers who promise panaceas. But now scientists are getting into a position to tell us not only what won't work, but what might I, for one, would like to see a series of competent scientific reports on such current proposals as

Plans for the control of atomic energy (like the Lilienthal-Acheson proposal).

Restoring international free trade.

Federal World Government.

Calendar revision.

The Social Credit proposals.

A wide extension of Rochedale cooperatives.

Protecting witnesses in congressional investigations.

Installation of the metric system by all nations.

Adoption of a universal language.

Proposals such as these cry for analysis, and every day there is a new one, judging by my mail. Perhaps a permanent laboratory should be set up by scientists to dissect economic and social reforms. It might even be made self-supporting. When an inventor is seized with a plan to save the world, he might take his blue-print to the laboratory, and for say \$100, get a report on any stray elements of perpetual motion it might contain.

Inventors of nonpuncturable tires and plastic TV selectors can choose among a number of testing laboratories, to say nothing of patent attorneys, and Consumers' Research and Consumers' Union. Social inventions are much harder to analyze, but a scientific appraisal would be welcomed by those whose goal is benevolence, not hatred, and who really want to get a mess cleaned up.

# THE MUCKRAKERS

Lincoln Steffens made a significant contribution to political science during the great muckraking era after the turn of the century. He cut through the stereotype of the big, wicked political boss, and gave us the real story. Low-income people in the great cities of the power age have deep-seated needs, both material and emotional. Their economic security is low, their status indeterminable, and their relations with city neighbors uncertain and often unsatisfactory. Into this situation steps the city boss. He finds out what people want and, in exchange

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> In his autobiography.

for votes, tries to satisfy these desires. He sends groceries to a hungry family, finds a job for an unemployed bricklayer, delivers coal when the thermometer drops to zero. Above all, through the "organization," he re-creates the face-to-face group. It may be a sorry substitute for the immemorial village community but it is something.

Thus the boss not only wins votes for the party and power for himself, but reduces frustration, bitterness, and even violence. If the Japanese-Americans at Poston had had a "boss" to discover their needs and satisfy them, tension might not have mounted so high. A case could be made, though I do not remember that Steffens ever made it, that the political boss is the institution which keeps Megalopolis from disintegration, especially during its melting-pot period.

In contrast with this shrewd analysis, most reformers, muck-rakers, "do-gooders," Steffens pointed out, conducted their strategy on the hypothesis that bosses were "bad," politics "dirty," poor people weak and gullible—and not very clean either<sup>3</sup>—and that "good government" with a spry businessman in the mayor's swivel chair was the answer.

After many spirited reform campaigns, businessmen swiveled in dozens of chairs but they did not prove to be the answer. The voters, it turned out, missed the boss. If Uncle Timothy dies, the boss calls to express his sympathy and helps out with the funeral expenses. The boss can tear up a parking ticket or help out a juvenile offender for a grieving mother. "All of these rewards," observe Miller and Dollard, "are immediate and therefore more effective than the delayed consequences of good government." The real task of a municipal reformer is thus very different from the assumed task; it is to beat the boss in finding out what people need and meeting those needs. Indeed it is similar to the task of the foreign aid administrator in the international field—to get ahead of the communist infiltrators in satisfying local wants.

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Bathtubs, if any, were used for storing coal, according to the stereotype.

### NATIONAL ECONOMIC PLANNING

Reformers who advocate planning can find some excellent advice in the files of the London Economist. Suppose, said the Economist, that after the war Britain had called her best social scientists together to plan for demobilization and reconstruction. First, the planners would use polls to find prevailing attitudes. What do people want most—what will they stand for? Second, they would appraise Britain's foreign balance of payments, exports, imports, United States loans and lend-lease contracts, with a cold eye. Third, they would similarly appraise Britain's production possibilities. Fourth, they would study the attitudes of the government of the U.S.S.R., the Indian leaders, for areas of possible international conflict and danger.

On the basis of these hard looks, the scientists would block out a flexible program, and use all the modern arts of communication to put it before the British people and also the people of the United States.

But what actually happened? asked the *Economist*. The Labour Government then in power did not use polls; it had no clear idea of the needs of the people at all. It made too many campaign promises. When the government tried to keep some of them, like permanent housing, it found the program completely out of place in the postwar emergency. It forgot other promises, and hushed up bad news; yet psychologists know that in many emergencies people stand things better if they are frankly told the worst. In an earlier crisis, Winston Churchill had promised nothing but blood, sweat, and tears.

Finally and most serious of all, said the *Economist*, the Labour Government wasted valuable time trying to nationalize industries on the Marxian formula. The coal industry was breaking down because of ever deepening shafts and *bad* to be nationalized, but other nationalization proposals—like steel—were dubious even in normal times.

<sup>\*</sup>December 14, 1946.

In a democratic state, the planning must be done by political parties. Yet no economic policy is right at all times, and the skilled economic planner must know when to reverse his engines. But political parties are not equipped with reversing gear. In 1931 the Tories showed how stubbornly they could defy the facts and follow a policy of contraction in the middle of deflation. Their performance has been equaled by the Labour Party since 1945, with its devotion to the trade union doctrine that it is always right for the pay envelope to grow. Clearly, if it is unsafe to let the Tories out of jail in a slump, the Labour Party ought to be locked up in times of inflation . . . However, in spite of the doubts, mankind is not now going to abandon the resolve to be master of its economic circumstances.

If the *Economist* is right in believing that nations will increasingly try to plan their economic destinies, the social scientist becomes a consultant of the first importance. Working in a team of specialists, everlastingly digging for the facts—he can advise a government whether its plans have a chance to succeed, or are just so many perpetual motion machines.

# The Behavior of Groups

The scientific analysis of face-to-face groups was launched in the 1930's by a social psychologist who came to America from Germany, the late Kurt Lewin. His experiments with children making masks have become a classic in the field of group dynamics, like Elton Mayo's classic experiments in the labor-management field.

We have crossed the trail of small groups repeatedly throughout this book. Not only did the relay room and the bank wiring room at Hawthorne illustrate group behavior, but so did the informal teams in aircraft factories, the solidarity of combat fliers in World War II, and many more.

# HANDICRAFT CLASSES

Shortly before World War II, Lewin, with Ronald Lippitt and R. K. White, made an intensive study of ten- to twelve-year children in handicraft classes at the Iowa State Welfare Station. The scientists were allowed to rearrange the classes, and they set up three structures: autocratic, democratic, and anarchistic.

In the first an adult leader told the youngsters exactly what to do; in the second he kept his hand on the group, but let the children make most of the decisions; in the third he left them to make all the decisions, without any real leader. Children were shifted from group to group to make sure that structure, not personality, was chiefly responsible for results.

Conclusions from the experiment proved heartening to believers in democracy and the techniques of participation. The autocratic group caused a good deal of internal friction, forcing some youngsters to leave, and began to disintegrate after the adult leader withdrew. The anarchistic type fell apart almost immediately. But the democratic group, starting slowly, built up so much internal stability that when the adult leader left, it went right on functioning.

The experiment demonstrated that participation and so-called "permissive" leadership make a stronger, more productive group than either autocratic leadership or a policy of everyone for himself. The results agree with other experimental findings, as well as with much practical experience. They still need more detailed laboratory checking, especially in other kinds of situations, and more theory to explain them.

### EXPANDING LABORATORIES

The movement Lewin started is now literally sweeping the country. Face-to-face groups, of course, had been studied before, but Lewin added precision, and deliberately undertook to make it social science. His books are concerned with experimental techniques in group behavior, how controlled experiments may be set up and verified, how research may be applied to change.

The famous National Training Laboratory, now operating each summer at Bethel, Maine, was founded by Lewin, and "little Bethels" are spreading across the nation to the Pacific Coast. I have visited the Maine laboratory three times, and find it a fascinating enterprise. "Delegates" who work professionally with groups at home—teachers, adult educators, business executives, union leaders, Y.M.C.A. secretaries, government administrators, Army and Navy officers—are formed into experimental groups of various sizes, with various tasks, under various kinds of leadership. Their performance is analyzed by a competent research staff, using observers, tape recordings, a special ques-

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> As in the work of E C Lindemann, Charles H. Cooley, Mary P Follett, Alfred Sheffield, and others.

tionnaire called "PMR" (post meeting reaction), and other techniques.

Sometimes a giant role-playing project is set up. In 1954, members of the laboratory impersonated various citizens of a community faced with a crisis in its school building program. I played the part of a member of the planning commission, and became increasingly involved as the crisis developed. Role-playing, much used in group analysis, has the strange effect of involving one's emotions in the role he is playing, and making him share the other fellow's feelings. Our school crisis at Bethel took two days to work through. It is safe to say that everyone who participated will approach a real crisis in his own town with greater awareness of the forces involved.

The goal of the Bethel Laboratory is to learn to predict how people will react in face-to-face groups, and to improve performance, both individual and collective. The field for practical application is virtually unlimited—school committees, P.T.A. meetings, directors' meetings, classroom teaching, Army training, faculty meetings, fraternity meetings, union meetings, business conferences, international conferences, UN meetings—an endless array now full of headaches and frustrations Perhaps Americans hold too many meetings. Bethel can help us find out.

One of the staff at Bethel, Herbert A. Thelen of the Education Department of the University of Chicago, has dramatically demonstrated how the techniques may be put to work.<sup>2</sup> He used them to set up a series of block organizations in the Hyde Park district of Chicago, a large section with many fine houses, which was threatening to become a "blighted area," if not a slum. Homes had been thrown on the market for sale, white residents were beginning to leave, real estate values were dropping, rumors were rife and violence in the air.

Five years later, in 1954, more than 400 blocks had been organized by white and Negro families together, in a cooperative

<sup>2</sup> See Dr. Thelen's account of the experiment in his book, Dynamucs of Groups at Work, and Julia Abrahamson's A Neighborhood Finds Itself

effort to improve the section and make it a better place to bring up children. The city and the University have started a huge redevelopment project for the seedier blocks, and it looks as though Hyde Park will be saved. A vigorous application of group dynamics has helped to save it.

The adult education movement is vitally interested in group analysis, both to improve performance in classes and as a subject for study. Its magazine, Adult Leadership, keeps up with the latest research findings.

Lewin said that if a person is to change his habits, he must change as a whole. This can often be done best through a group. Alcoholics Anonymous is a good illustration, in which members, trying to break the drinking habit, support one another's resolution. It has proved far more effective than lectures, logical arguments, or taking the pledge.

Alexander Bavelas was one of Lewin's associates at the Massachusetts Institute of Technology. He continues there as an experimenter and industrial consultant, arranging ingenious structures to test face-to-face groups He gives the example of introducing a new machine in a factory, a machine which requires a rearrangement of jobs. If it appears suddenly on Monday morning, already connected, the morale of the whole department is likely to be shattered. If, however, the machine is placed on the floor unconnected, and its functions are carefully explained—"Look, this is how it works"—disorganization will be less. But the best method, says Bavelas, is to consult with the men before bringing in the machine. If the workers themselves can be involved in its adoption, the new machine will be introduced without a tremor. Such a course can transform an impending change "from a misfortune to be resisted or endured, to a positive step to be willingly taken."3

Group dynamics has already developed a body of principles, of which these six impress me as particularly helpful.

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Confirmed by Edmund Brunner, when studying the introduction of a cane cutter and harvester in Hawaiian sugar fields in 1937.

r. Identify oneself with other members in the group, rather than play a lone hand.

2. Encourage maximum participation in activities and discussions.

3. Practice democratic or "permissive" leadership.

- 4. Protect the emotional security of others. Never let a member feel ridiculous.
- 5. Keep communication lines open.

6. Encourage better listening.

# IN CONFERENCE

In Stouffer's laboratory at Harvard is Robert F. Bales, specializing in group analysis. Let us stop for a moment and gaze through his "one-way window." He has important suggestions for us to employ at the next meeting we attend, supplementing the principles listed above.

Here is a room about the size of a small classroom, with blackboard, round table, chairs, and what seems to be a large mirror on one wall. Out in the hall we enter a closet behind that mirror, and find to our surprise that we can look through it and see everything going on in the classroom. One-way glass divides the two groups; a microphone catches all the talk in the classroom, and a tape recorder can preserve it.

In addition, the staff has developed a machine like a type-writer to record changes in group behavior. Twelve standard types of interaction can be clicked off on this machine: three kinds of questions, three kinds of answers; three kinds of negative behavior—disagreement, tension, antagonism; three kinds of positive behavior—agreement, release of tension, friendly solidarity. It takes long training to record these changes rapidly and reliably. All the techniques have been improved since Bales first set up his window in 1947, and thousands of group meetings have now been studied.

What kind of meetings? Many kinds—family discussions, business conferences, labor-management negotiations, classroom

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup>See his book, also accounts in *Harvard Business Review*, March, 1954, and Scientific American, March, 1955.

seminars, problem-solving meetings. Will people talk freely when they know they are being watched? They are always told, and experience shows that the group usually takes about five minutes, like a motor on a cold morning, to warm up. It then forgets the unseen observers and turns over normally.

#### PROBLEM-SOLVING

A long study, involving hundreds of meetings, has been made by Bales of groups trying to solve a specific problem—say a business staff discussing a pension system for employees. What happens in such a situation? What is the best group size? What leaders arise? What antagonisms develop? What can be learned to help problem-solving groups elsewhere?

About half the time in a problem-solving conference, the experiment shows, is spent in answering questions. Such a 50-50 balance may be one characteristic of good communication, allowing plenty of give-and-take, so that members do not leave the conference with unresolved doubts. A group decision is not successful unless members feel actually bound by it, as proved in their subsequent behavior. Members feel bound, furthermore, only when they have participated in making the decision. This need not mean an equal amount of talk, some may not even talk at all. It means a mental involvement. But a voiced reaction does help for there is "no adequate substitute for some actual verbal participation of each member."

When a real row develops, the observer behind the window is in danger of becoming involved himself. He may have heard the same case discussed many times before, but he is "caught in the illusion of reality" as the temperature in the classroom rises. Here is an example of what follows.

Suddenly the credulity of the observer is strained beyond some critical point. The illusion that the group is dealing with some external problem breaks. It becomes perfectly transparent . . . that emotions have taken over, and that what one member is saying does not refer at all to some external situation but to himself and the other members present. "Facts" are unwittingly invented or are

falsified. Other facts drop out of sight entirely. When one member insists that "people in this office should be treated like human beings," it is clear that he refers to himself and how he feels he should be treated. When his opponent insists that "troublemakers should be fired," it is equally clear that he refers to the man who just spoke to him.

If this particular business group reaches a decision—which is unlikely—it will have all the characteristics of a bad dream.

On the other hand there can be too much sweetness and light in problem-solving. A group determined to agree on everything rarely arrives at durable decisions. There must be some giveand-take, some pungent criticism, usually some compromise, to arrive at consensus on tough problems.

The laboratory has determined the best order for discussing a problem, and it happens to be the "exact opposite of that which is characteristic of formal parliamentary procedure." Successful groups go through three steps, always in this order:

First, they assemble the largest possible pool of facts.

Second, they make inferences and evaluations based on these facts, and try to form common opinions on a level above the actual problem in hand.

Third, then, and only then, do members begin offering specific suggestions for the actual problem—suggestions fertilized by a rich background of fact and common opinion.

Not all groups do this by any means; many begin with suggestions. Many members "are hardly conscious of any difference between a fact and an opinion." Then trouble lies ahead. A good suggestion given too early either dies for lack of support or "is trampled to death in the general melee"

# TWIN LEADERS

Bales and his staff have reached a striking conclusion about group leadership. It is usually assumed that members in a face-to-face group compete for leadership—provided a leader is not designated in advance. They do compete but this is only part

of the story. A problem-solving group normally develops not one but two leaders: a task leader and a social leader. The function of the first is to keep the boys on the problem. The function of the second is to keep the boys in good temper

The task leader emerges as a rule in the first session, and often he will be voted "best liked" in the PMR as well. In the second session, however, his popularity wanes as he holds noses to the grindstone. Somebody else wins the "best-liked" role, somebody who can crack jokes, relieve tensions, make members feel good. By the end of the fourth session, on the average, the chance of the task leader also being the social leader has sunk to one in seven!

Not many persons can fill both roles because the functions are so different. But it is important for each leader to recognize the other's role, and form a working coalition. "There are indications that such small and durable groups as the family . . . are constructed this way, and apparently the coalition also takes place in many administrative staffs, sometimes consciously but more often accidentally." In the family, presumably, father is the task leader, and mother the social leader. Says Bales

Millions are spent each year by business, government, and the armed forces in developing means for recognizing leaders—yet it appears that whatever superior qualities the individual may possess he may be unable, just because of the way groups work, to maintain a stable leadership position without a co-leader of complementary qualities.

Quite a window, this of Mr. Bales. Here are some further conclusions, drawn after years of analyzing face-to-face groups:

Seven members are about the limit for problem-solving. Two or three are not enough, they get into power difficulties—one against one, or two against one.

Be wary of too many "high participators," i.e., bright boys who know the answers and are overveibalized. For best results, the group should be salted with a few quiet characters

If a row is brewing, back-track to the facts with all possible

speed—before facts become weapons and unrecognizable. Also try to find similar experiences—referents—for the words being used. Unless experiences overlap, the same words often mean different things to different people.

Keep your eyes on the group rather than on a particular member. "Nothing tones up general harmony like a good strong undercurrent of direct eye contact."

Keep your car, meanwhile, to the ground. Do not become so absorbed in the problem that you forget the play of group tension and interaction. Try to hold yourself and your fellow members "in good operating condition."

I do not know about the reader, but I have a meeting of the zoning board at four o'clock tomorrow afternoon, and I shall take this whole tool kit right along with me.

# Notes on Political Behavior

Albert Einstein was once asked, at a meeting in Princeton. "Dr. Einstein, why is it that when the mind of man has stretched so far as to discover the structure of the atom we have been unable to devise the political means to keep the atom from destroying us?"

To which the great scientist replied "That is simple, my friend. It is because politics is more difficult than physics."

Political science, like economics, has many brilliant names on its roster—Aristotle, Marcus Aurelius, Machiavelli Its large general theories, however, again as in economics, lack adequate verification. The study has been a curious amalgam of philosophy, history, polemics, brilliant prose, common sense, and primitive psychological assumptions. Only lately has there been added a good deal of hard-headed observation, and the beginning of some verifiable theory. Like economics, political science badly needs help from the sciences of behavior. Who Gets What, When, How? as Harold Lasswell subtitles his stimulating book on politics, is obviously oriented in this direction.

The political columnist, Gerald Johnson, gives us an example of shrewd psychological observation when he says: "A professional politician may be secondarily a Democrat or a Republican, but he is primarily a professional His function, as he understands it, is to give the people what they want, and he will supply crass reaction, or creeping socialism, with the complete indif-

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup>Reported in a letter by Grenville Clark to The New York Times, April 20, 1955.

ference of a haberdasher handing out blue shirts or white, according to the customer's demand."2

#### HIGH TALK ABOUT INEVITABILITY

Some political scientists employ a literary style which carries a special ring of doom. They speak of the "implacability," the "inevitability," and the "remorseless processes," of history, and do not hesitate to chart its predestined course. The career of James Burnham, for instance, shows us how a skillful political writer, equipped with plenty of gloomy foreboding and a forensic vocabulary, may range unchecked over the field In physics he would hardly get to first base.

In 1941 Burnham published a book called *The Managerial Revolution*, which extrapolated the theory of Berle and Means about the shift in corporate control from owners to managers, and made considerable sense. Its central thesis has been amply vindicated. Along with this solid contribution, however, Burnham has given us a number of predictions, mostly doleful, which have not been vindicated by events. What he announced as "inevitable" at a particular time, later lost its inevitability, to be succeeded by a new inevitable. His score card, according to Lewis Corey, runs like this:<sup>8</sup>

- 1. In the 1930's Burnham thought the Trotskyite revolution was inevitable. The Stalinites would be overthrown; 100 percent wrong.
- 2. In 1941 the managerial revolution was inevitable, true up to a certain point.
- 3. A little later the victory of Germany was inevitable; 100 percent wrong.
- 4. After the war, said Buinham, three superstates will dominate the world—Geimany, Japan, and the United States. Mark him 33 percent
- 5. After the war, again, the U.S.S.R. will inevitably break up and be swallowed by Germany on one side, and Japan on the other; 100 percent wrong.

<sup>2</sup> New Republic, November 18, 1954.

<sup>&</sup>lt;sup>a</sup> Antioch Review, Summer, 1947.

- 6. The 1940, or at the very best, the 1944 United States elections will inevitably be the last free elections. Well, we have had a number since then, free and flamboyant as usual.
- 7. By 1947 it became inevitable to Mr. Burnham that Number 5 was wrong, and that war with the U.S.S.R. was inevitable.

He may be right on Number 7, but it is the purest speculation. Political speculation is entirely legitimate provided one posts it as such. Posted as the truth, inevitable as Halley's Comet, it is dangerous stuff. If war with the U.S.S.R. were inevitable, readers of Mr. Burnham might conclude the sooner we began it the better.

#### THE GREAT SOCIETY

We have encountered many examples of political behavior earlier in this book—in the relocation camp at Poston,<sup>4</sup> the Middletown studies, opinion research, Puerto Rico, in much of the economics section. Economics used to be known as "political economy," a term which recognized that the two disciplines overlap. As part of the concept of culture, we remember the cardinal distinction between formal and informal government. The first carries the written laws, the latter carries the ultimate sanction of what is permissible in the society.

Mass production and the machine are largely responsible for the rapid, often painful growth of formal government. They have increased the division of labor and destroyed the old self-sufficiency of the family and the small community, as in the shoe factories of Newburyport. Acute problems appear—great armies of unemployed, destitute old people, child labor, strikes, breakdowns in transportation, slums and blighted areas, juvenile delinquency, soil erosion, stream pollution—problems which individuals cannot cope with alone. Yet they must be solved if society is to go on. So big government comes in, on federal, state, and city levels, especially the first and the last.

Frederick Jackson Turner produced a famous hypothesis in

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup>Leighton's book is of course an important contribution to political science, as shown in the title. The Governing of Men.

1893, called "The Significance of the Frontier in American History." Many of our culture habits, he said, can be explained only by the frontier. In the United States, with its tradition of self-help and rapid expansion, government up to 1900 tended to be loose and flexible. But by the twentieth century, it proved inadequate for its new functions, especially for coping with the great depression. Political scientists have been trying to design improvements to keep pace with the march of the machine, but they still have a long way to go before government structure is adequate to handle the demands put upon it. The old forms come down from handicraft days; George Washington never saw a railroad, let alone a power line.

To study this serious lag, the Social Science Research Council has set up various committees, and some universities have established courses in public administration. These include specialized graduate schools, and whole departments to work on administrative techniques, as in the University of California. In governing a big city, modern methods include the city manager plan, uniform accounting, city planning, public housing and slum clearance, great recreational centers like Jones Beach near New York. Outstanding technicians have come to the fore, such men as Robert Moses, Joseph McGoldrick, Luther Gulick, Louis Brownlow, and the late Claience Dykstra.

But rapidly as techniques expand, aided by such invaluable organizations as the Public Administration Clearing House, Megalopolis accumulates its problems even faster. The outlook for traffic control was never darker than it is today. Within a year or two, the way traffic jams are now multiplying, Fifth Avenue in New York, and the Loop in Chicago, will be frozen solid. Somebody has said that if you are injured in the Loop, you can get to the nearest hospital faster in a wheelbarrow than in an ambulance.

Fresh ideas on the federal level have come from such men as Thomas Finletter, Paul Appleby, the late Senator Robert M. LaFollette, Jr.—who have seen government from the inside, and

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> Admittedly an extrapolation.

then generalized from first-hand experience. The President's Committee on Administrative Management, headed by Charles E. Merriam, produced some original thinking on the vast change in the office of the American presidency in recent years. Because of the pressure groups which flatten so many congressmen, only the President can now represent the whole people.

The TVA should be mentioned again as an important new development in political science. Its regional position between federal and local governments gives it many advantages, for it starts comparatively free of red tape and political vested interests. Its boundaries correspond with geographic realities better than do most of the States. Experts come from all over the world to study this new agency, to admire the towering dams, the gleaming instrument panels which control navigation, flood waters, power, as on a great organ The TVA may be working out a new adjustment to the machine age. It may show us how businessmen, labor men, government men, professional men, can cooperate for their mutual welfare; how decentralization can be carried to the limit consistent with technology. The TVA is still treated, however, as an ideological football.

Eight states have entered into a compact to eliminate pollution in the Ohio River Two states cooperate in the tremendous tasks of the New York Port Authority; three states try to compose their differences as to who gets what from the Colorado River—with Mexico as a fourth claimant. All such compacts require new political and administrative thinking. If the United Nations takes a further step, and begins to exercise mandates over territory now disputed, a new dimension in international politics will open.

Administrative consultants and government technicians can be aided by electronic computers, says H. M. Davis in the Scientific American. The new machines can help us keep up with the machine age by flashing out statistics almost simultaneously with the event The "curse of bigness" has been due, in part at least, to people's ignorance of what is going on over vast

a April, 1949

territories. One trouble with planning, says Davis, is that the planners cannot learn the facts rapidly enough to keep abreast of their plans. Computers can remedy this lag, and redefine "bigness" upward. "They may even offer a technical means of contributing to world peace by helping to make world government possible."

When the science of polling is refined a bit further, computers can transmit to government leaders what citizens think, and how their ideas are changing about many important political questions—such as foreign policy, disarmament, taxation, the price of wheat, proposals for an annual wage, public housing, health and vaccination programs, school buildings, traffic jams, desegregation. Elmo Roper favors this idea, but says a research agency to carry it should have a status equivalent to the United States Supreme Court—beyond political pressure. Political scientists are here presented with the nice task of designing such an agency.

Political science may be on the verge of great developments. Certainly many of the old patterns, classifications, and theories stand in urgent need of revision. John M. Gaus<sup>7</sup> has outlined a research program along this line, emphasizing the following questions:

What is a realistic foreign policy for the United States in the atomic age?

What are workable relationships between federal, regional, state,

and local governments?

What are the proper relationships between executive, legislative, and judicial power today? (Some recent congressional investigations have stretched and distorted these relationships.)

What are the proper line, staff, and auxiliary relationships in

government?

What is happening to the presidency? Is it moving toward some quite new status?

What does the average citizen think of his government today?

<sup>&</sup>lt;sup>7</sup> Memorandum to Social Science Research Council.

What does he want from it? (A kind of perpetual inventory of public opinion.)

#### LABORATORY IN ELMIRA

In Chapter 18 we noted how social scientists have been analyzing the voters of Elmira, New York, using the panel method of opinion research. Some arresting new theory has come out of the charts and figures. We will describe it briefly, not as the last word on political democracy, but as an example of social science, in action, and a dramatic contrast with the polemics of Mr. Burnham.

#### CLASSICAL THEORY

The Elmira researchers quote a British writer, A. D. Lindsay: "There is always a terrible gulf between the fine and elevating theories about democracy which we read in books on political theory, and the actual facts of politics." Locke, Burke, Hobbes, Bentham, Mill, and the other great classicists wrote about politics because they wanted to change methods then in practice. Out of their observations and arguments came injunctions about how you and I, as citizens in a democracy, should behave. We have, according to the classicists, four political duties. (1) our interest in politics should be strong, (2) our knowledge of issues should be competent, (3) our political principles should be cherished and acted upon, and (4) our political behavior should be guided by reason and logic. All citizens may not be in such firm possession of these virtues as thee and me, but a majority must possess them, says classical theory, or democracy cannot survive.

How do the citizens of Elmira meet these standards? A panel of 1,000 voters, studied over a period of many months before the 1948 elections, were found to lack all four essential virtues. Their political behavior did not follow the classical theories. As a group they had little sustained interest in politics, their

<sup>&</sup>lt;sup>8</sup> See Berelson, Lazarsfeld, and McPhee, Voting.

knowledge of issues was rudimentary, their political principles were hard to find, beyond voting the way their fathers voted; and often they seemed to exercise their reason in reverse. In brief, the figures showed this sample of United States voters failing on all four counts. So democracy should be deader than the dodo.

Yet democracy in Elmira, and in America, is very much alive. How is the paradox to be explained? The scientists seek to explain it with this hypothesis: Classical theory concentrated on the individual citizen and neglected the social system in which the individual operated. Once the requirements of the system are brought into the analysis, it is unnecessary if not positively dangerous for the average voter to exercise all the standard virtues. Why? Because political apathy on the part of a substantial bloc of voters in America has cushioned the shock of disagreement and change. If one does not take his politics too seriously, social change is easier. The United States, we recall, has been a regular roller coaster of change, geographical, technological, cultural.

Again, if too many voters cling devotedly to fixed party principles, change will be impeded, and bitter fights more frequent. A reductio ad absurdum of fixed principles was found in the behavior of a small group of Puerto Rican "nationalists," who were convinced some years ago that it was their high patriotic duty to go around taking pot shots at their own governor, the United States president, and congressmen.

The Elmira research shows that most voters do have some principles, some information, some political interest, and some rationality, but not in the degree called for by the classicists. Happily for the system, voters distribute themselves along a continuum, running from sociable man (including many women voters)—who is bored by politics, to political man—who takes an intelligent interest, to ideological man—who is a party stalwart with rigid principles and a low boiling point. At the outer edge of the last group are characters like those Puerto Rican nationalists. If we were all ideological men, democracy would

dissolve in a cosmic Donnybrook Fair. If we were all sociable men, it would expire from lack of motivation.

In the United States we have these types in the proper proportions apparently to make the political system work. (It reminds us a little of Galbraith's theory of "countervailing power" which accounts for the working of the economic system) "This distribution itself, with its internal checks and balances, can perform the functions, and incorporate the same values ascribed by some theorists to each individual in the system, as well as to the constitutive political institutions."

The die-hards, the apathetic, and the quick changers (mostly youngsters on the make), provide "enough consensus to hold the system together, and enough cleavage to make it move." Too much consensus would be deadening—as in Bales's problem-solving groups at the Harvard Laboratory. Too much cleavage would be destructive—as in the case of various Latin-American republics. Total politics, of course, as Lenin well knew and advocated, leads to one-party government and the monolithic state, the opposition is banished or shot. Total apathy could lead to authoritarianism too, as the man on horseback rides in to fill the political vacuum.

The Elmira studies indicate that American voters have found a happy medium, a kind of mulch in which political democracy can grow. If the hypothesis of these scientists stands up, it may well revolutionize our ideas about democracy, and be one of the few substantial additions to democratic theory since the close of the eighteenth century.

# Learning Things

Granted that most of our habits come from the culture, how did we learn them? The anthropologists toss this fundamental question to the psychologists, and some of them have accepted the challenge. Practically all agree that it is in the first few years of life that we acquire the basic habits which distinguish one culture from another; which enable us to live with our families and neighbors, communicate with them, and thus go on learning. A child becomes "socialized," or "acculturated," as his nervous system is trained in innumerable unconscious routines. How are we to explain even the simplest of these habits?

The Institute of Human Relations at Yale, backed by many experiments over a long period of years, ventures an explanation. John Dollard and Neal Miller, working with others, including the late C. L. Hull, have formulated and tested a hypothesis which they call "learning theory." They have written two books about it, the first, now a classic, called Social Learning and Imitation, the second, which restates the theory and applies it widely, called Personality and Psychotherapy.

# MONKEYS AND RATS

I visited the authors at New Haven to see some of their experiments. The first exhibit was a small, brown-eyed monkey. He crouched in the back of a cage about three feet square, while the man with the notebook turned the page to trial number 873. The man touched a switch and a bell rang sharply. In one sweeping movement the monkey leaped to the front

of the cage, thrust a hand through the bars, and pulled the lever of a small box with a light in it. As he did so the bell stopped ringing and the light went out. He looked up at us with his sad eyes, relieved that the noise had ceased but still worried. He stretched a long finger through the bars again as though to say: "I hope the damn thing is really off." Then he turned around, leaped to the back of his cage, and crouched there again to wait for trial number 874.

The bottom of the cage was made of metal strips capable of giving a mild electric shock. After repeated exposure the monkey had learned to pull the lever to stop the current. Then the shock had been associated by the experimenters, first with the light in the box, next with the bell, on the best Pavlov principles of conditioned reflex. Now without getting an electric shock at all, only an emotional one, the sad monkey pulled the lever to stop the bell.

Next I saw a documentary movie about two white rats and how they learned things—a film that compared favorably with a Walt Disney production. One rat was very hungry, the other not. They were placed in identical cages side by side. The camera would focus first on one cage, then on the other. An ingenious mechanism attached to the cage deposited a pellet of food in a dish whenever a metal bar was depressed

The hungry rat with quick, cager movements explores his cage for possible food. About the fifth time around, he hits the bar by accident, and down comes a pellet. He gobbles it but makes no connection between cause and effect Round and round the cage he goes, with now and again another accidental reward. Then light begins to dawn—the bar! At first he presses it deliberately but awkwardly, gradually performs more swiftly and surely, until in the end he does it as nonchalantly as Groucho Marx lights a cigar.

Meanwhile, the well-fed rat continues to digest ruminatively in a corner of the other cage, taking no interest whatever in his slot machine. Unfortunately for him, however, his cage is equipped with a shockable bottom like the mournful monkey's.

A shock is applied and the rat, for all his satiation, leaps to the top of his cage. Then ensues a sort of super-Disney ballet, in the course of which he accidentally hits the bar and shuts off the power.

More shocks are given, resulting in more wild dances and more accidental collisions. Presently rat Number Two learns to associate depressing the lever with a reward—not food, but relief from annoying sensations in the soles of his feet. Furthermore—and this is important - he learns more rapidly than rat Number One learned about food. The pain drive is more powerful than the hunger drive—at least for those white rats under those conditions.

# LEARNING THFORY

What lesson have we here? According to Dollard and Miller, the process of learning in the case of the higher mammals, including man, normally proceeds in four steps:

- 1. A drive—such as hunger or pain, which makes the individual ready for action.
- 2. A cue-such as the metal bar.
- 3. A response—such as pulling the bar.
- A reward or reinforcement—such as food, or relief from electric shock.

After a stiff shot of theory on the learning process in New Haven, I drive home and try it on our cat. Did you ever teach a cat to sit up and beg? The four steps are conspicuous in this act of learning. The drive is hunger. The cue is a piece of meat held well above the cat's head. The first response is an eager reaching, but the reward must not be given until the animal sits erect on its haunches, paws hanging down. I taught Boots in twenty minutes flat—though I admit that he is a smarter cat than most—and he now sits up politely for anything he wants—dinner, a drink of water, to go out of doors, to have some-body play with him.

"After learning has been completed, response and cue are

bound together in such a way that the appearance of the cue evokes the response. . . The conditions under which human learning takes place . . . are primarily social and cultural. . . ." If the reward is not forthcoming, the response gradually suffers extinction The reward, as we have seen, can be either positive or negative—pleasure, or relief from pain.

The theory is derived from Pavlov, Thorndike, Watson, and Hull. On human levels the theory has been verified by many experiments with children, students, soldiers. Here is one of Dollard and Miller's simple experiments which you can repeat with a six-year-old.

# CANDY EXPERIMENT

Hide a piece of candy under a book on a bookshelf. Bring the youngster into the room—making sure he is hungry—and tell him to look under the books and find the candy. Then count the books he picks up and keep track of the time. He may take three or four minutes to find the candy, after moving thirty or forty books.

Now send him out of the room again, hide another piece of candy under the same book, call him back as before. He is likely to find this piece within two minutes. Try again and he will get it in less than a minute and, after some ten trials, he will go at once to the right book and find the candy in about two seconds.

You can chart the curve of this learning, either by time or the count of books, and you will find that it starts on a high level at the upper left and descends steeply toward the lower right of the chart. Analyzing it for the four elements, it is clear that the drive was the child's desire for candy; the cue, instructing him where to look for it, the response, searching the bookshelf; the reward, eating the candy.

In more mature learning, of course, the drives become more subtle and remote, the cues more complex. The reward, often deferred, may be a word of approval, the hope of a promotion, even a private feeling of satisfaction. When human reasoning and foresight are interpreted in these four steps, the theory can be widened to include most forms of human behavior. A whole chain of responses may take place inside one's mind, each one becoming the cue to start the next.

The public cue-producing responses, like words and sentences, that are used in social communication receive an enormous amount of social training. The accumulated cultural heritage of generations of trial and error is represented in the categories, common-sense rules of logic, standards of reasonableness, and sequences of orderly narration of language. This greatly increases the usefulness of verbal responses and their derivatives, such as mathematics, in the solution of social, emotional, and instrumental problems.<sup>1</sup>

Behavior in controlled situations can be predicted, even quantitatively predicted—for instance, the number of trials needed to teach a subject a simple lesson, like a set of nonsense syllables. At higher levels, in situations which are really complicated, the scientists cite many cases on which the theory throws light. Meanwhile they realize that much research remains to be done. Miller and Dollard, like good scientists, are willing to take the hard, gruelling path to knowledge, the path of measurement and counting and endless repetition of experiment—the same path the physicists took for so many decades before the clouds suddenly opened.

Meanwhile, parts of the theory can be usefully applied in innumerable ways: for instance, to simplify and improve teaching in school, to help interpret and explain the habits of an individual or even a culture, to win friends and influence people for business, advertising, social, or political reasons; to help people analyze and overcome their neurotic problems.

Like all scientific findings, learning theory has been challenged. Some critics complain that the parallels between animal and human learning have been pressed too far; again, that not all four steps are present in every case—that is, some learning may take place in the absence of either drive or reinforcement; and again, that in the perennial argument of nature versus nurture,

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Dollard and Miller, Personality and Psychotherapy

this theory, like others of the behaviorist psychologists, tends to overemphasize nurture.

# HEREDITY PLUS ENVIRONMENT

Well, how about nature versus nurture? Probably no scientist today would admit a bias in favor of either heredity or environment, since the importance of both has been so clearly demonstrated Yet the argument continues in a different form. Perhaps as clear a statement as any of how the two forces interact appears in a study by Norman Cameron of the University of Wisconsin, The Psychology of Behavior Disorders: A Biosocial Interpretation. Dr. Cameron is a specialist in both psychology and psychiatry who believes that personality is developed by the interweaving of physiology with training. Every culture, he says, is built to an unrealized extent around the biological needs for food, shelter, mating, and parenthood, all of which are satisfied—or denied—in a social situation. The baby cannot eat without help, or keep himself warm or clean, so his comfort or discomfort is connected at every stage with an older person on whom he depends. Thus physical and emotional habits grow together, as one "grows from a biological newborn to a biosocial adult in an environment of other individuals and cultural products. . . It is always this interplay of biology and society." Thus Cameron explains the connection among individual structure, drive, and learning, in developing the total personality. Nature and nurture are woven tightly together.

# CODE FOR PSYCHOLOGISTS

Psychology is easily the most discussed of all the social sciences, far outdistancing economics, its nearest rival. The word "psychology" is bandied about by most of us quite irresponsibly, along with tags and phrases from popular psychology. Big-time baseball players, prize fighters, taxi drivers, salesmen, tycoons, labor leaders, as well as college graduates, claim a working knowledge of its principles: "I used psychology on

him, and he signed up"... "She's got an inferiority complex"... "Bad case of Oedipus." And "Too much unsound speculative psychology in the stock market" came over my radio from a financial expert this morning.

The growing interest in psychology has of course increased the number of "psychologists," including a considerable group of gentlemen—and some ladies—who harbor no objections to turning a fast buck. Anybody with a penetrating gaze and a command of the lingo could hang out his shingle and line up the customers. But as our visit to New Haven makes clear, psychology in the hands of honest investigators is a rigorous and demanding science. By the time the student has won his Ph.D., he may have spent as many years as a medical man in rigorous training. Also he is painfully aware of how many questions of human behavior are still unanswered.

The American Psychological Association has boldly attacked this problem. It has set up a code of ethics to stiffen the profession, and to protect the person in need of psychological counsel from half-trained "doctors" and outright quacks. Thus it follows the lead of the Bar Association, the medical societies, and the Certified Public Accountants, in putting an official stamp on accredited professionals.

The making of the code was a kind of polling operation. Instead of sitting down and thinking about ethical behavior, the Association asked its 12,000 members to describe ethical problems arising from their personal experience. More than 2,000 replies were received, and cases were classified six ways: ethical behavior (1) toward the public, (2) toward clients, (3) toward other psychologists, (4) toward students, (5) in research work, (6) in writing. A code covering all these matters was officially adopted in 1953. Prospective clients might do well to find out if the counselor they select is a member of the Association and bound by the code.

Here is one of the problems sent in: A famous feature writer visits a clinic to get a story on juvenile delinquency. A psychologist on the staff uses a hypothetical case to illustrate the

clinic's work. The writer seizes on the case, and writes it up as true, with a sensational twist, as the lead for his story. The psychologist objects, and the journalist hits the ceiling. On appeal, the trustees of the clinic think the psychologist ought to play along. "It's good publicity," they say.

What should the psychologist do? The Code indicates clearly that he should refuse to cooperate with the journalist, however fine the publicity. "The psychologist may be expected to offer every assistance to reputable reporters, but he may refuse to give materials to a reporter who does not adhere to the ethical standards of the profession"

Another case. A psychologist is retained to make a market survey for a soap company, using a questionnaire prepared by the publicity department. He complains that it contains a built-in bias for the company's soap against competitive brands "Take it or leave it," says the management. What should the psychologist do? The Code gives him no choice but to leave it.

Thousands of such cases are in the Association's files. They constitute a unique method of establishing professional ethics, one that can be recommended to other professions with ethical problems. Ask the members to participate in digging out the facts, classify the types of problems, and build the code on that objective base (Notice the connection between science and ethics).

F. H. Sanford, Secretary of the Association, tells us that more than half the members are now outside the universities, acting as consultants and researchers for industry, government, schools, private clients. Industrial psychology is booming. Research is progressing in aptitude testing (such as Flanagan's work in the Army, described earlier), in group therapy, in counseling methods. Many colleges provide counseling service for students worried about their grades or their personal problems. (Nowhere is social pressure more visible and acute than in the case of a student who does not make the team, or the fraternity, or the glee club—the niche in the subcultural structure which gives status and security.) By and large, psychologists give advice to

normal people, or people only normally upset; they send severe cases to psychiatrists.

The therapist or counselor, says Sanford, should establish a brotherly relationship with his client, rather than the fatherly role of most doctors and lawyers. The client states his problem, and the doctor or lawyer fixes it for him (or tries to), speaking a special language, keeping his distance. Not so the good psychologist. His task is to listen, talk out, advise, set forth alternatives, but not to take command and fix. Human behavior problems "by their nature must be solved by the human beings who have them." The wise psychologist helps people solve their own problems.

Industrial psychologists, Sanford observes, should not make the administrator's decision for him. "That's his job, not yours." (Remember how Leighton waited at Poston, while the administrator, looking out at the desert in the fading light, decided not to call in the Army.) A psychologist often makes a good administrator, but in this role he becomes an ex-psychologist.

A psychologist addressing a meeting, he continues, should also avoid the fatherly approach. Do not talk down to the Parent-Teacher Association, talk with them. Do not imply that "technical knowledge is only for experts, and that parents, if they had it, would only use it to clobber up the already miserable job they are doing with their children." Give parents new hypotheses, new facts, new ways of testing old ideas, alternative courses. The children are theirs, not yours.

Mr. Sanford adds this somber warning, during a time of many attacks on academic freedom and traditional American liberties:<sup>2</sup>

Societies that become sick . . . restrict first the psychological and social sciences. Individuals who have a violent neurotic need for security are noted for their hostility to knowledge about the inner workings either of personality or of institutions. . . . Only those societies characterized by considerable maturity will tolerate at all those individuals who have new and boat-rocking ideas about

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Address at Houston University, April, 1954.

human behavior.... Psychologists must do all they can to see that knowledge is available for the solution of human problems. But if psychologists are ever perceived as using their knowledge to impose any sort of control over society... they will be the targets of great and deserved hostility.

Perhaps the most important item in the Code of Ethics lies right here.

Social psychology, like economics, appears in many places throughout this book. Chapter 6 is almost nothing else. The present chapter has not attempted to summarize modern social psychology, but to pick up some interesting theoretic material, experiments, and cases, to add to what has gone before.

# The Communication Sciences

"Much vain disquiet maketh mankind," said the Psalmist—long before singing commercials, broadcasting from airplanes, and mass communications generally, had made the disquiet a good deal vainer.

Every case we have discussed, and every generalization drawn, is also an exercise in communication. Those students who first observed the case received a communication and recorded it. They used language, perhaps the language of mathematics, sometimes maps or photographs as well. Next I, the author, had to study what the observer reported (or what I myself had seen), and then communicate what I found to you, the reader of this book. The line could be broken or distorted between event and observer, between observer and me, between me and you. Communication is almost as pervading as the air we breathe, and often as unnoticed.

Animals, of course, communicate in many ways, mostly by making sounds. Parrots can even imitate the sound of words. But only man has true language. Evolving through the culture, first as talk, and only lately—in the last 5,000 years or so—as writing, language is the most human of all our characteristics, and many scientists think it the most important. Science, literature, abstract thought, logic and reason would be impossible without words.

Yet, at the same time, words can compound misunderstanding and generate needless conflict. Organized warfare would be impossible without language, and so would the savage disagree-

ments about race, religion, and ideologies. We have been given this power, and have proceeded to foul it up. A major goal of the communication sciences is to find out how language works and if possible abate some of its misuse.

The power of words comes home to me as I compare what you and I know, with what Boots my cat knows. His universe consists of the house and the land around it—perhaps three square miles of lawn, garden, orchard, swamp, pasture, and woodland, mostly belonging to the neighbors. He knows the detail of this area better than I do, especially the habits of field mice, he could survive in it during a blizzard as I, without human shelter, might not. He knows the environment which he sees, hears, smells, feels—and that is all be knows. He has no means of relating this experience to wider environments in the same town, to environments beyond that in the State and nation, and beyond that to the spinning planet on which we live, and beyond that to the solar system and the galaxies whose light may take a score of light-years to reach us.

Looking inward again, he has no knowledge of the processes in his own body, or the cells which compose it, or the molecules within the cells, or the atoms which nobody will ever see, or the electrons and the packed nuclei which compose them. Out to the almost inconceivably great, and down to the almost inconceivably small, lies knowledge which we humans may master, chiefly because of our command of words.

Language has been taken too much for granted, but we can now report important progress toward understanding this gift so useful and so dangerous Many, if not most, of the political and social problems which plague us today are at bottom communication failures. Take for instance the big words in the headlines—"aggression," "appeasement," "coexistence," "socialized medicine," "free enterprise," "liberty," "security," "bureaucracy," "welfare state." It is not difficult to prove, using the discipline of semantics, that such high abstractions mean different things to different people, and unless great caution is taken in using them, they become not only meaningless as coin for

common understanding, but actively productive of misunderstanding.

Among current problems which are in good part communication failure are the true menace of communism, international relations, labor-management conflicts, advertising misrepresentation. Much of the trouble between man and wife, parent and child, teacher and student, is due to communication breakdown. "Talking it out" might have repaired the line before a small grievance developed into a monstrous injustice. "Reasonable men," said Beardsley Ruml, "always agree if they understand what they are talking about."

Elton Mayo, in Social Problems of an Industrial Civilization, observes.

I believe that social study should begin with careful observation of what may be described as communication, that is, the capacity of an individual to communicate his feelings and ideas to another, the capacity of groups to communicate effectively and intimately to each other. This problem is beyond all reasonable doubt the outstanding defect that civilization is facing today. . . . Our international troubles are unquestionably due to the fact that effective communication between different national groups was not accomplished. . . . On the contrary, an effort was often made to "find a formula," a logical statement which should conceal the fact that neither side had any insight into the actual situation of the other. . . .

As Mayo develops it, communication is like the circulation of the blood—the free flow of ideas through structured channels within groups of all sizes, and between groups, up to nations, to the great alliances, to the United Nations. Communication depends at the lowest cycle on the articulateness of individuals; next on the functioning of small groups where individuals express their needs and desires, and where the expressions are passed upward to the next cycle, and so on. Such flexible communication, helped by the mass media, could respond sensitively to an appeal from the grass roots, from the little people who want peace and reasonable security. It could—but so far it does not.

Education, science, human progress depend on expressing an idea clearly and being understood by one's fellows. As Edward Sapir puts it:

While we often speak of society as if it were a static structure . . . , it is a highly intricate network of partial or complete understandings between the members of organizational units of every degree of size and complexity, ranging from a pair of lovers to a league of nations, or that ever-increasing portion of humanity which can be reached by the press. . . . ¹

"A network of partial or complete understandings." This is as good a definition of communication as we are likely to find, as well as a dynamic definition of society itself. It suggests that relations between people, in patterns that are active and changing, are the important thing. Sapir goes on to point out the three main techniques of human communication: (1) languages; (2) symbols in special technical situations—such as wigwagging at sea, bugle calls, smoke signals, and other wordless devices; and (3) inventions favorable to communication, such as the telegraph, telephone, radio, airplane

Through these techniques a given culture is spread. It is due to the third, mechanical invention, that the culture called Western civilization has overrun a large part of the globe. But its very speed has produced serious difficulties at every stage. In an individual, blocked communication may be a major cause of mental breakdown. In a group it may cause conflicts of any

degree of violence up to atomic warfare.

This new urgency is one reason for the present vogue of communication about communication, and another reason is the expansion of the mass media. We are all being constantly attacked by messages in ever-growing volume, and we need screening and translating devices, as well as sufficient skill to hold our own in the babel. So in various universities we find departments for the study of communication, which include everything from public speaking to electronics engineering. We

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> In Encyclopedia of the Social Sciences

find great national societies, and new scholarly magazines Valuable research is being done, not only in universities but by consulting firms. Without attempting to do justice to all this useful work I will try to classify briefly the most active sections of the field.<sup>2</sup>

#### TWELVE DISCIPLINES

It would not be too much to say that every serious study known to man is wrestling with communication, but 12 of them are now particularly concerned with it; four of them full time, eight part time. The 12 cut across that shadowy boundary between natural and social science, for three—physics, cybernetics, and neurology—are classed with the natural sciences. We cannot do much more than list them here with a few comments, reserving for semantics a somewhat closer preview. Semantics is a study with which I, as a writer, have long been concerned. A short, useful definition is that semantics is "the systematic study of meaning."

# 1. The Communication Engineers and Cybernetics

The Bell Laboratories in New York are doing fundamental research into the theory of communication today. It is strictly within the field of natural science, being more concerned with the fidelity of the transmission of messages than with their meaning But the sciences concerned with meaning also depend in part for their future development on a brilliant analysis by Claude Shannon and his staff The Telephone Company puts the findings to work in expanding the dial system

Every message, they say, whether by sounds, words, flashes, flags, gestures, wires, wireless, begins with an *information source*. From this a *signal* in the form of light waves, sound waves, radio waves, is sent out over some kind of transmitter, to be picked up by the *receiving mechanism* There the message is *decoded* and passed on to its destination. At any point, "noise," as the

 $<sup>^2</sup>$  In the Tyranny of Words and Power of Words, I have reported at greater length

engineers call it, may get in to distort the signal. "Noise is universal and insidious"—such things as static, fading, "snow" in television. The engineers' goal is to get the message through with a minimum of "noise." They do not yet care what the message is, it can be dots, dashes, music, pictures, letters, nonsense phrases.

Now let us move to another level. The word "cybernetics" was coined by Norbert Wiener, of the Massachusetts Institute of Technology, from a Greek root meaning pilot or governor; and he defines it as "a study of messages which control action." Cybernetics has to do with the theory and design of electronic computing machines, those uncanny robots like the famous "Univac," "Emac," and their kin. I once compared my rate of multiplying four-digit numbers with that of "Number 701," an electronic computer designed by International Business Machines. It did not take long to determine that he was 100,000 times a better man than I!

Computers send messages which control action like the human brain Like the brain, a computer has a memory system—Number 701 indeed has three memory systems. As they build computers for more complicated tasks—say operating an oil refinery, or guiding a Nike, or figuring out the weather a month in advance—the engineers increase our knowledge of how the human brain and nervous system work to encode and decode messages

# 2 The Neurologists and the Physiologists

These scientists study the impact of signals on the retina or the eardrum, follow their course to the brain, then the corresponding signals sent out by the brain to the muscles for action. Take such a simple case as the light waves coming to you from a car that is veering over to your side of the road, the decoding of the signal in your mind, and the action of your hands on the wheel and your foot on the brake. If you do not interpret the message correctly and rapidly there will be a crash.

The whole process inside us is deeply buried and very com-

plicated, but it is obviously cardinal for understanding communication.

## 3. Perception Theory

Now we go over the line to the social sciences. A school of psychologists, headed by Hadley Cantril of Princeton, is investigating how we perceive things: how we know that a rose is a rose, or a chair is a chair. They use elaborate apparatus, invented by the late Adelbert Ames of Hanover, and since extended and improved One comes away from a morning in their laboratories slightly seasick, because of what his eyes, his nerve channels, and brain have expenenced.

Unless we have had experience we cannot know. We never see all of an event out there—say an object like a chair—only enough to deal with it. We "bet," in the light of past experience, that it is a chair. An Eskimo who has never seen or used a chair would have nothing to bet on. One reason for becoming seasick is that a perfectly good chair, as seen from one angle in the laboratory, turns out from another angle to be nothing but a flimsy arrangement of sticks and wires. The relativity of perception is thus impressively demonstrated to the somewhat disorganized observer, and new light is thrown on the connection between words and things.

# 4. Animal Psychology

These studies include communication among animals, and also from animals to human beings. Dogs are more eloquent than cats in sending messages to people, while insects apparently don't give a damn. Bees have a mysterious and complicated message system of their own, in the form of an oriented dance. A scout retuins and tells the hive where to find a good haul of nectar. He can pinpoint it, says von Frisch, up to two miles from the hive. Studies of higher animals, especially chimpanzees, throw side lights on human communication, and along with startling parallels, emphasize the gulf which separates man from his fellow creatures.

# 5. Child Psychology

A baby arrives with a cry but it is wordless. He has a fear response, but no true perceptions, for lack of experience on which to base them. Naturally he has no stock of words. He sets about collecting experience immediately, and by about eighteen months he has enough memories stashed away to begin verbalizing. Then for several years his tongue, mouth, larynx, and thorax develop at a furious rate; the drive to talk is on him. He talks with his whole body. Some five-year-olds have been clocked at 35,000 running words a day—not of course all different, but all running.

At an early age, the experts say, normal children in all cultures have mastered the structure of their language. Here is an illustration. Take three words in English. Man, Bear, Kill. These three words can be arranged—or structured—in six different ways, two of them meaningless, and two which mean something dramatically different from the remaining two. Thus:

KILL MAN BEAR means nothing as written.8
KILL BEAR MAN means nothing as written.

MAN KILL BEAR and

MAN BEAR KILL means the same satisfactory act.

BEAR KILL MAN and

BEAR MAN KILL mean the same disastrous act.

Junior at three has probably mastered such structural distinctions—a remarkable accomplishment when one stops to think about it—and at six he talks in fairly complex sentences.

# 6 The Culture Concept

Junior learns his language from the culture, and social scientists say that language is the most important part of any culture. Any two cultures, furthermore, will have cardinal problems of mutual understanding. A joke in one culture, for instance, may be a deadly insult in another.

<sup>&</sup>lt;sup>3</sup> Spoken and accented you might make something out of it See C. C Fries, The Structure of English. Harcourt, Brace, 1952.

## 7. Linguistics

These scientists are very useful on any field expedition. They collect the sounds of a native language and arrange them into patterns. Presently they can describe and predict the basic phonetic structure. They are less interested in writing than in speaking, while grammar as traditionally taught fills them with alarm. It is not improbable that the linguists are on the way to revolutionizing the study of grammar—an idea which most high school students will be able to take in their stride.

Linguists are concerned not with how things ought to be said, but how they are in fact said. They are also concerned with nonverbal communication in the form of gestures and facial expressions—a subscience called Kinesics They tell us that while certain tribes may be living under conditions which we call primitive, there are no primitive languages. The tongue of the Australian aborigines—who are about as "primitive" as they come—is more complicated than English. Eskimo has more than 20 words for snow—something any skier can appreciate.

### 8. Metalinguistics

According to Benjamin Lee Whorf, the language we learn tends to control our thinking. In Chapter 10 we illustrated the idea by comparing cultures in the Southwest, in English the clock runs, but in Spanish be walks. This results in an important difference between the time sense of Anglos and Mexicans, and serious trouble in the practice of medicine. Indo-European languages tend toward black-or-white thinking, while the Chinese language tends toward multivalued thinking, which considers shades of gray. The Hopi language, says Whorf, makes it easier to understand the idea of relativity, with time as a fourth dimension.

## 9. Modern Physics

Until physicists cleared up their communication they could not tell each other what they had discovered. Every large new advance, especially the theory of relativity, brought a communication crisis. Percy Bridgman, a Nobel prize winner, has ably documented this story in *The Logic of Modern Physics*. New language has been developed by the physicists in mathematics, multivalued logic, operational definitions, probability theory, statistics of aggregates, theory of types. These languages are international, understood as readily in Tokyo or New Delhi as in Pasadena. The operational definition is especially useful to the student of communication. It gives him a verbal screening machine to eliminate meaningless or unanswerable questions. "Is space bounded?" "Can time have a beginning and an end?" are such questions

## 10. Group Dynamics

Scientists here are intimately concerned with the relationships inside face-to-face groups, as described in Chapter 23. Much of that relationship takes the form of communication, both by words and by *Kinesics*—the reinforcement of words through gesture. When a member, for instance, leans back in his chair and carefully folds his aims, the message can usually be decoded as, "I won't budge from my position!"

Some of the group analysts are investigating *listening*, the reception and decoding of messages. They are experimenting with listening clinics, with labor-management groups listening to the reading of a contract, and with college students—who, according to some experiments, hear only about twenty-five percent of what the lecturer says.

### 11 and 12. Semantics and General Semantics

These two closely connected disciplines may well merge in the years ahead. Semantics has been around since the turn of the century, when a book by Lady Viola Welby, What Is Meaning? first brought it to public attention. In 1921, C. K. Ogden and I. A. Richards published their classic study The Meaning of Meaning, and gave us the useful advice. "Find the

referent"—meaning find the thing in the space-time world to which an abstract term refers.

Take, for instance, such a term as "liberty." Floating up there in the stratosphere, it can mean all things to all men. Ogden and Richards would bring it down to earth by asking, liberty to do what? "Your liberty to swing your arms," a great jurist is reputed to have said, "ends where my nose begins." "Liberty," like "freedom," "democracy," and "justice" is only a vague sentiment, amiable or quarrelsome, until a referent is found where the idea can be put to work-liberty to criticize the government, freedom to travel, democracy in elections with secret ballot, the justice of letting an accused person crossexamine his accusers, and so on. Political speeches are normally studded with lofty terms which do not have a referent in a carload. Committees of the United Nations have been trying for two years, without success, to define "aggression." They can try for 200 years with no better luck, unless they start with referents and build cautious generalizations from there.

In 1933, Alfred Korzybski, a Polish-American, published Science and Sanity, and inaugurated the school of General Semantics. It differed from mere semantics in leaning more heavily on mathematics, relativity, neurology, and psychology. Most of us, said Korzybski, are "unsane," in the sense that we scramble communication, and waste time arguing about little men who are not there. Beyond this normal unsanity, there are cases of real mental breakdown which General Semantics can help repair. The first big test came when Dr. Douglas M Kelley, psychiatrist, tried using General Semantics in treating some 7,000 cases of battle shock in World War II. His hospital in Belgium returned 96 percent of its patients to their units, cured. It should be pointed out, however, that while semantic treatment undoubtedly helped, it was not the only therapy employed.<sup>4</sup>

Korzybski not only analyzed language from a fresh point of view, but suggested ways to make its use more precise, and

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup> This experiment is described at more length in Power of Words.

enable people to think straighter. One useful suggestion is never to forget that a map is not the territory. Language, he said, is the map, and the territory is a real event, out there beyond our heads. If the structure of the map agrees with the structure of the territory—if north and south are in the same relative positions—we can use the map to traverse the territory. But if our road map shows Toledo west of Chicago, and we want to drive to Toledo, we are in trouble. Korzybski tried to bring language maps closer to space-time territory.

#### ROAD BLOCKS

At least a dozen road blocks can break the communication line, among them.

r Confusing words with things. Believing that the map is really the territory, or controls the territory Say the right words and your enemy will get the pox, or in the modern version, sell the label and never mind what's in the package.

2. Failing to check abstract terms with concrete events. As in the careless use of "liberty," "aggression," and the like.

- 3. Confusing facts with inferences, with opinions, or value judgments. Most people do not know the difference; they say, "It's a fact that I think she is not as virtuous as she should be."
- 4. False identifications. We have been treated to a whole-sale demonstration of this road block in accusations of guilt-by-association. Reduced to a syllogism these take the form:

President Eisenhower once had meetings with Russian Gen-

eral Zhukoff.

Zhukoff is a Communist.

Therefore Eisenhower is a Communist.

Ridiculous! you cry, and you are right, of course it is ridiculous. But millions of Americans have not learned to avoid this kind of semantic confusion.

5. Thinking in terms of either-or, black-or-white, those who are not with us are against us. If Prime Minister Nehru of India is a so-called "neutralist," he is not with us, and therefore must be in the enemy camp. Isn't it serious enough to

have real Communists against us from Leningrad to Shanghai, without taking on the whole neutralist world?

Other roadblocks to clear communication include the use of gobbledygook, failure to appraise motives, failure to consider major characteristics before passing judgment, and so on.

Enough has been sketched to show that the communication sciences not only are hard at work, but are beginning to form an interlocking front. With every advance the science of man gains strength and direction.

In lighter vein we might end this chapter with another illustration of communication failure <sup>5</sup>

"Mrs Lee, do you think women are better housewives than they used to be?"

"Which women?"

"Which women? Why, any women."

"But I don't know 'any women.' I only know certain women."

"Well, then, the women you know. Are they better house-wives than they used to be?"

"In the first place, I don't know what they used to be. In the second place, I don't know what you mean by 'better housewives.' Do you mean, do their draperies match their slip covers? Do you mean, do they compare prices before they buy? Do you mean, do they cook vegetables without destroying the vitamins?"

"Why, yes, we mean all those things."

"But I can't answer all those things at once."

"Well, then, answer one of them. Let's say, do the women you know cook vegetables without destroying the vitamins?"

"I couldn't say. I've never tested their vegetables for vitamins. Wouldn't know how to."

"Well, just give us your opinion, Mrs. Lee"

"What good is my opinion? That isn't a matter of opinion;

<sup>5</sup> An imaginary interview by Mrs. Irving Lee, after she had listened to a radio quiz program sponsored by a food manufacturer of "Fluffy Duff."

it's a matter of fact. The only way I can answer that question is to go and test their vegetables."

"But can't you just make a guess?"

"Oh, well, if you want me simply to guess, I can do that. Yes, my guess would be that most of the women I know destroy some of the vitamin value of vegetables by cooking. But actually, of course, I don't have any way of knowing."

"So, Mrs. Lee, you maintain that women are not better housewives today than they used to be. Well, we're all entitled to our own opinions, aren't we, folks?"

"Look here, I didn't say that. I made one little guess and you puffed it up into a big generalization"

"Thank you very much, Mrs. Lee."

"Why don't you quit asking people these ambiguous ques-

"Thank you very much, Mrs Lee."

"And what's more, the first time I hear a sidewalk interviewer who can distinguish between statements of opinion and statements of fact, I'll buy a whole case of your Fluffy Duff."

Mrs. Lee has amused us while making a serious point Most of us don't know what we are talking about when we climb to the level of high abstractions, and neither does anyone else. The communication sciences are trying to haul us back to the base of common understanding.

# On the Same Planet

Fitzpatrick, the great cartoonist of the St. Louis Post Dispatch, once pictured a huge bomb leaning against a wall, and beside it an equally huge question mark. Two small human figures in the foreground—they might be scientists—are looking up at the vast monoliths. The bomb is labeled, "How to Kill Everybody," and the question mark, "How to Live with Everybody." It was sketched when only the A-bomb was loose, but now with II-bombs in production, and cobalt bombs on the drawing board, the point is even more ominous.

Perhaps the choice is not quite so two-valued; perhaps there will be scattered survivors after the next World War, no one can tell. Atomic weapons, said Sir Winston Churchill in 1955, have passed "outside the scope of human control." The fall out on Eniwetok came as a surprise, and scientists no longer know what can happen, what radiation is doing and may do to forms of life on this planet. Heads of state, who use the methods of diplomacy and war which were standard before Hiroshima, are like boys playing with matches beside an open drum of gasoline.

### THERMONUCLEAR TRUCE

Sir Winston emphasized another idea which has been gaining ground, a happier idea. The very frightfulness of atomic weapons, he thinks, will tend to restrain their use. The U.S.S.R., the United States and Britain all are aware that if one side begins the assault, retaliation will be a matter of hours. The size of the stock pile makes little difference so long as there are warheads for that first flight of missiles. Realizing

that atomic attack is a form of suicide, heads of state may hesitate to launch it.

The world may now have reached a Thermonuclear Truce which could last some years. It will be an uneasy truce, for if a psychotic like Hitler should come to power, he might consider it his exalted duty to press the button. Or some local "incident" might touch it off, or some trigger-happy junior officer. A daring belligerent during the truce might gamble boldly on getting what he wanted with lesser weapons—a "brush fire" war—and lose his gamble.

But there is a chance for time, and so a chance to end the truce by something other than pillars of mushroom cloud on all the continents. Perhaps we can utilize the uneasy years to block out the forms of a durable peace, and so contrive an answer to Fitzpatrick's question Perhaps not. But all men of good will must now try

#### Some Questions

Clearly this is the greatest test of the race since it came down from trees, stood upright, and began to talk like men. Have we stood upright long enough? Are there enough mature men and women in the world to see the shape of the present crisis? Do they see the impasse, the dilemma of power and responsibility which we face? It can sound so easy. "We have an explosive that endangers survival; why not get rid of it?" "Everyone wants peace; why not agree to establish it?" These reasonable-sounding questions have difficult and discouraging answers.

Shall we choose death because we cannot forget our quarrels? I appeal as a human being to human beings remember your humanity, and forget the rest. If you can do so, the way hes open to a new Paradise, if you cannot, nothing hes before you but universal death.<sup>1</sup>

This appeal by Bertrand Russell, eloquent as it is, neglects four serious difficulties.

1. Most of us, in all cultures, cannot forget our quarrels, or "forget the rest," without some intensive training

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Saturday Review, April 2, 1955.

- 2. Most of us have little concept of our "humanity," as a generalization.
- 3. We have no clear concept of a new Paradise—or even an old one.
  - 4. We cannot imagine "universal death."

To cause ordinary mortals to act requires a method beyond an appeal to reason, however eloquent. Social scientists are beginning to understand the complicated process by which new ideas get into the central nervous system, how the learning mechanism operates, and change takes place. Appeals such as Russell's may be good for the soul, but if great masses of men are to be moved, we must go deeper.

To neutralize the bomb, a psychologist has written me, social scientists must begin at the same conceptual level as the physicists did when they split the atom, avoid haste, and go to the root of the problem. This calls for scientific courage. Men who are doing fundamental research should continue it, even if they fail to see a clear application.

Certain tasks, however, are obvious, and many useful tools are ready to hand. Let us look briefly at some of them, and summarize findings described earlier. First, however, let us consider what sort of agency might assemble and use the tools. We begin by setting up a rough, preliminary structure on which to hang ideas.

### United Nations Clearing House

The United Nations now has a group working on peaceful uses of atomic energy, following the popular proposal of President Eisenhower in 1953. Let us assume that this group expands to become a clearing house not only for peacetime uses of the atom, but for all serious proposals covering security and peace. It should have qualified social scientists on the staff, able to distinguish between workable plans and perpetual motion machines. Its prime objective should be to find a modus vivendi, a method of accommodation, a technique for negotiation, between the Great Powers.

An early task might be to analyze all international machinery now in use. The World Court, the World Bank, the Postal Union, the international weather service, the Geneva Convention, the Red Cross, epidemic controls, Olympic games, uniform weights and measures, air lines and airports, scientific congresses, religious conferences—the list of agencies which at this moment link the peoples of the world together is as impressive as it is little known. How do these agencies work? Which work best and why?

Here, for instance, is the International Whaling Control.<sup>2</sup> In 1930, representatives from 20 governments concerned with whale fisheries met at Sandefiord in Norway. They came from Britain, the U.S S R., Japan, the United States, South Africa, Aigentina, as well as Norway. They proceeded to set up the International Whaling Convention which specified rules for the annual hunt, for ocean "sanctuaries," for protecting various species, and a rigorous system of inspection and enforcement. In 1950 the world quota was set at 16,000 Antarctic whales of the large varieties, like the blue whale.

Inspectors of whales have the same difficult problem which inspectors of atomic weapons may some day have: they must develop a double loyalty—to the International Convention, and to their own national fleet. There is some poaching, but to date the system is working well. Everyone agrees that without it the whaling industry would have destroyed itself through national competition. All the valuable kinds of whales would have become extinct. An interesting parallel for study.

### Some Problems in Disarmament

Conference after international conference has come to a dead-lock on the issue of nuclear test inspection—though one reason for beginning here was the apparent simplicity and desirability of such a measure Disarmament clearly presents many other tough problems—existing stockpiles, for instance, biological and chemical weapons, economic substitutes for arms production.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> See R B Robertson, Of Whales and Men, Knopf, 1954

In essence, we need a method for allaying fear. The United States is afraid of U.S.S.R. conquering the world, waving the banner of communism. (In 1940 we were afraid of Hitler conquering the world, waving the banner of fascism.) The Russians are afraid of the West overrunning the homeland, remembering what Hitler did on his march to Stalingrad, and what Western armies did on Russian frontiers after World War I. The Germans are afraid of the U.S.S.R., the French are afraid of Germany, the Chinese are afraid of a rearned Japan. If these fears could be reduced, nations would be more ready to sit down around a table.

World peace must also rest on a modicum of economic security. The vast new potential of atomic energy can be used to increase standards of living. Atomic power, isotopes, irrigation of dry areas with sea water desalted by atomic heat, other engineering miracles, are already on the horizon. Energy in one form or another—from slave power to fuel oil—has always laid the base for a civilization. Now we are developing a wholly new energy base for a planetary civilization. Control agencies must be concerned with building things, not just with stopping things. The enterprise must appeal to the idealism of young people, as well as to the common sense of their elders.

### CULTURE CONCEPT AGAIN

Every control agency and negotiating group will of course need the culture concept as a guide. Unless leaders understand the universal characteristics which all men share, permanent peace is inconceivable, and temporary machinery very difficult to install.

As things are now, chiefs of state, foreign ministers, war departments, must predict behavior in other countries, friendly and unfriendly, every day. If officials predict that certain nations will not live up to their agreements, or that their citizens are ripe for revolt, or that all the nation respects is force—and if they proceed to stake the future of all of us on such assumptions, we are in serious jeopardy. What a help it would be if predic-

tions about the other nations' psychology could be based on something more than fear and hunches.

Social scientists should be retained to attack seriously this problem of prediction. Others should give serious attention to the matter of in-group versus out-group—a subject on which sociologists, anthropologists, and psychologists have already pooled their interest, and which is close to the roots of nationalism and patriotism. At the primitive end of the in-group scale are tribes, like the Copper Eskimos, who think it perfectly moral to steal from strangers, though not from members of the tribe. At the sophisticated end are diplomats who insist that their great nation wants only peace, and the rival power is doing all the warmongering.

Anthropologists call the attitude of the Copper Eskimos "a kind of personal vanity enlarged to embrace the group" What shall we call its counterpart, among the citizens of a Great Power? Peace may depend on clearly understanding such motivations. Is some insularity necessary to stabilize a society, and if so how much? Would it help—as some students have half-seriously suggested—to declare war on Mars, and so throw the out-group to another planet?

The cultural lag must be reckoned with, and the vitality of current institutions, both at home and abroad. We can make little progress by resolving that such and such an institution should be abolished, especially if it is still serviceable to a powerful minority. The only known way to get rid of a worn-out culture trait is to replace it with a more practical one—which was William James's idea in his "moral equivalent of war." Peace will be won not so much by ceasing to do things—say disarming—as by actively doing something else—say building atomic power plants.

### SEVEN WANTS

A group of social scientists, led by Mark A. May of Yale, has made a study of American foreign information agencies, especially the Voice of America. Their report, published in 1953,

contains a short list of seven major wants and needs now shared by all the peoples of the world. The list should be rechecked, but as they stand these seven wants give us some valuable leads. Plans which collide with them are suspect. Plans which run parallel are headed in the right direction. People everywhere, the May committee found:

- 1. Want to know the facts, the truth about domestic and foreign affairs. Where, they ask, can we go for news which is not twisted for political purposes?
- 2. They want peace. It is a universal desire in all countries. Who is furthering peace sincerely?
- 3. They want better standards of living, more security in food and shelter. Who is promoting such standards? Per contra, who is exploiting the poor?
- 4. They want political independence; no more colonialism, no more foreign masters. Who are the imperialists?
- 5. They want their own religious customs and beliefs Who is trying to undermine our religion?
- 6. They want to know more about other peoples. They would like to go and see at first hand. Who is afraid of letting us go, or of letting us in?
- 7. Finally, they want to be on the band wagon, the winning side.

  Whom shall we join?

The U.S.S.R. is winning on some of these issues, the democracies on others. The Kremlin is aware of them as forces to be dealt with, while Washington and London have often been more concerned with moral issues than with what people want. Any Western politico at the drop of a hat can tell anyone, anywhere, what he *ought* to want. Among other difficulties, however, the oughts collide.

These mass desires again show the wisdom of the rank and file. The things people want, the questions they ask, are direct and human. The answers they get are often slippery and abstract. The people of the world seem to be unconsciously oriented toward survival, like iron filings to a magnet. Their leaders, by their very responsibilities, to say nothing of the gum process

which brought them to the top, are oriented toward power. How can the people be heard?

It is hard for Westerners to realize that in the last few years more than 500 million people, a quarter of the race, have thrown off the yoke of colonialism. It is safe to assume that more will do the same, until colonialism is as dead as the divine right of kings. How would Americans, collectively or individually, enjoy the permanent role of underdog? Have we imagination enough to put ourselves in the place of a poverty-stricken peasant, working till dark to raise food which will be eaten by someone higher up? Can we remind ourselves that he has a body like ours and a family relationship not so different from ours? The collection of photographs assembled by Edward Steichen under the title "The Family of Man" can help us to remember. So can the pictures of small orphaned children in Korea holding up their arms to American soldiers.

#### To Utilize the Storehouse

Well, what can social science offer to peace and a viable world? Sample offerings line the shelves of the storehouse, and we have inspected a number of them, but the first is a renewed warning. Very few are being used in international relations, where cultural lag is at its strongest. War and nationalism are deeply embedded in Western culture, and are infecting those lesser powers who either had a tendency to non-violence—like India—or left the fighting to their colonial masters, or settled local quarrels with spear and arrow. Now the new UN states are enthusiastically seeking, and receiving, Western armaments

To reverse this trend requires a strong, clear intention for peace on the part of Western leaders. The small nations, though they have registered their disapproval of our arms race, are helpless to control the great nuclear powers—which may account in part for their eagerness to acquire atomic weapons for themselves

Once the Western leaders dared to risk even a small reversal of the nuclear arms race, it would be possible to get the new nations to follow. The experience of the past decade has pretty well shown that the most reasonable peace proposals tend to become perpetual motion machines, failing strong leadership, backed by a strong

popular mandate.

So the first contribution of social science is a warning from anthropology. Do not underrate the strength of war habits and national prejudice in the culture; do not forget that peace depends on workable machinery to settle disputes between nations. Remember that it is not enough to keep postponing a resort to ultimate weapons from year to year; the postponement must be permanent, or destruction will be permanent. Applied technology, growing at an exponential rate, was bound sooner or later to bring us to this impasse in lethal weapons. That day has now arrived, however hard to glimpse through the mists of cultural lag

Here are other items from the storehouse, some described earlier

in this book, some new, all helpful in this crisis.

1. Light on the "fighting instinct" Is the human animal incurably addicted to fighting and war? Not according to responsible psychologists and anthropologists, who agree that, while quarteling and fighting are in the genes, organized warfare is a culture trait, without which societies can survive and have survived. Personal fighting and violence, meanwhile, are traits which most individuals are able to do without, aided by a civilization that inculcates law and order. What percentage of college graduates in the West have ever been in even a fist fight over individual disagreements?

<sup>2</sup> Help for the UN. Why did the League of Nations fail? For one reason because the Senate would not permit the United States to join. How may the UN be made stronger and more useful? Social scientists such as Grenville Clark and Louis Sohn are hard at work on the problems of World Peace through World Law,

and have published a book under that title.

3. Useful data is available in numerous study centers throughout the country, in universities, government, and private foundations. The University of Michigan has a Center for Research on Conflict Resolution. Stanford has a center for the behavioral sciences. The "area study" technique, developed by such scientists as Kluckhohn, Murdock, Leighton and Gardner, who in World Wai II discov-

ered what was going on in a country without being there, offers a mine of material. The technique can be useful in respect to areas like Red China, where for many years direct information has been sealed off. Russian Research Centers at Columbia, Harvard and elsewhere continue to collect stores of valuable data on the Russian people, their government, their economy, their leaders and ideology. Can we hope to negotiate successfully without an understanding of the group on the other side of the table? Many accounts of Russia in American mass media are not much more reliable than Pravda's accounts of "ruling circles" in the United States.

4 Useful data is now being collected by the U.S. Arms Control and Disarmament Agency, set up by Congress in 1961. With its limited budget, however, this group might welcome reports by

other expert and objective researchers.

5. To improve techniques of conference and negotiation, much useful material is available in studies by UNESCO and by the Group Dynamics people, especially National Training Laboratories, at Bethel, Maine, and elsewhere. The simple but effective technique of role-playing, in which one puts oneself in the other fellow's shoes, can be particularly valuable for delegates to international conferences. Foreign service officers should practice it intensively at every level. Even Messis, Kennedy and Khrushchev, if they could role-play a summit conference beforehand, might make better progress. (A union delegate, after role-playing a meeting on contract renewal with officials of a large rubber company, remarked. "I could just feel those stockholders breathing down my neck!")

6. UNESCO can furnish useful studies too on national stereotypes. When you think of a Frenchman, what kind of image forms in your mind? When he thinks of an American, what does a Frenchman see? UNESCO's reports describe how these stereotypes change over the years. We may recall how most Americans pictured the Japanese after Pearl Harbor, of the Germans at the time

of D-day, and compare with the present pictures.

7. The Foreign Service Institute in the State Department has recorded much good work in preparing career officers for foreign

service by giving them strong doses of the culture concept. Officers also learn remote languages by an effective and rapid method based on speaking first and writing later.

Flenry Lee Smith, Jr., an expert language analyst, who helped install these courses at the Foreign Service Institute, points out that language is always a function of culture. As we have no world culture, an international synthetic language can never be much more than a signal system and must always lack the rich overtones of true language. Whatever its shortcomings as a medium for poetry, for instance, a universally accepted communication code would nevertheless simplify all international relations, from locating the rest room to negotiating disarmament.

In a cultural exchange conference I attended in Russia in 1961, the language difference lengthened the time appreciably, in spite of simultaneous translations by skilled UN interpreters. It hampered our personal relations outside the conference room, as delegates tired quickly with the effort to understand each other. The few talented bilinguists fared best, but they were overworked trying to help the others. A few techniques from the laboratory at Bethel would also have expedited our communication.

The language barrier is said to have been the most formidable brake on the development of the Common Market in Europe. Communication difficulties, we may be sure, will continually haunt us until a common coin is adopted. The most popular natural language all over the world appears to be English. To adopt it as a world language, however, presents severe difficulties, both from such rival languages as Russian, Chinese and Arabic, and from the chaotic spelling and derivations of English words. Social scientists must work continually on this cardinal matter of world communication. Someone, I believe George Eliot, once said: "The peoples of the world are islands shouting at each other over seas of misunderstanding."

8. Close beside the problem of disallowing nuclear war, and deeply involved with it, stands the problem of the Hungry World—that half of mankind where per capita income is \$100 a year or less in equivalent supplies, and where the illiteracy rate is above 50

percent. Is there any answer except to hold population in line with the food supply? While organic chemists invent synthetic foods of various types, social scientists are working on means to control the birth rate. Programs of foreign economic aid, unless guided by these findings, can result in and have already resulted in waste and futility. Of what use is the great Aswan Dam on the Nile if the new cropland it irrigates can barely feed the increase in population that accumulated during its construction, so that it leaves Egypt as hungry as ever?

# Toward a Science of Man

What have we learned from our rough-and-ready survey across the front of the social sciences, in this second decade of the Atomic Age? The reader must answer for himself, but for the author the journey has been rewarding. This sample, rough as it is, shows that knowledge is now available on a scale which most of us have been unaware of.

The interest in social science, furthermore, is deep and growing. Government, business management, all our major institutions, increasingly depend on its findings. The questions, indeed, are piling up faster than answers can be found. The scientists are under pressure from two sides—on the one hand to speed application and engineering, on the other to maintain research standards. New responsibilities fall upon the psychologists and economists and political scientists, and now the whole faculty is charged with the greatest responsibility of all—to help us safely through the Thermonuclear Truce.

It is no longer necessary to argue whether social science is "science," or what good it is beyond providing credits for a university degree. The Scientific American, for instance, has long since ceased to look down its nose at the social disciplines. A count of articles published in 1953 and 1954 shows 38 out of 194 of them in the social field, with nine on the borderline, or almost one quarter not primarily concerned with traditional natural science. We note such titles as "Conditioning and Emotions," "Linear Programming," "Economic Psychology," "What Is Memory?"

## FACING THE PARADOXES

A more important question is a philosophical one, and it is often raised. Granted that the scientific method has invaded the field of behavior, where is "science" itself taking us? Scientists have produced a weapon which Churchill says is out of human control—not to mention the robots, the "lonely crowds," the unemployed, the juvenile delinquents, the uprooted people, of the machine age. Might it not have been better if Galileo had never dropped his shot from the Leaning Tower; better if the Second Law of Thermodynamics had not been verified, better if Einstein had never demonstrated that energy equals mass times the speed of light, squared?

There are two answers. In the first place, Galileo did inaugurate the era of modern science, which the Royal Society presently formalized, Einstein did discover the explosive equation governing atomic energy, and whether science is a good thing or not, it is locked in the culture. Among other results, it has made life possible for far greater numbers than could survive without it Deprived of mechanized agriculture, serums, and prime movers, at least half the present population of the West

would soon be dead.

In the second place, "science" is only one of a whole battery of paradoxes which the mature mind must face. "Science" can blow us off the planet, yes, but it is abolishing disease around the world, and has all but wiped out helpless poverty in the United States. "Language," as noted in Chapter 26, is both a blessing and a menace—"danger: men talking." "Religion" can be a great comfort, but religious fanatics have promoted holy wars. "Liberty" to move and speak freely is priceless, "license," at the other end of the scale, is destructive. "Democracy" can give the fairest form of government yet devised, and also provide a field day for demagogues. It is difficult to think of any large abstract quality which is not at its extremes both beneficent and malignant.

A little semantic analysis helps resolve these paradoxes. The

lofty terms are meaningless as they stand. Not until referent are found for them can they become meaningful—"liberty" of the what? Once found, referents can be arranged on a scale, of a frequency distribution curve, with the extremes at either end. Applying this idea to the scientific method we find that its use are legion, on a scale that varies all the way from "how to live with everybody" to "how to kill everybody." Science, someone has said, does not provide an escalator to carry man automatically to Utopia, but an elevator which can carry him either up or down. Every new invention presents him with the challenge of which button to press. We should stop, look, and listen before jumping to the conclusion that "science," or "democracy," or "liberty," is either all good or all bad—any more than an ax is either good or bad. How are you going to use the ax?

#### How Abour Ermes?

The scientific method as such is amoral; but Alexander Leighton notes that ethical considerations can influence a piece of scientific research at three points: (1) When deciding what to investigate—say crime and prisons; (2) when selecting experimental techniques—say, no surgical experiments on human beings, however revealing; (3) when deciding how to apply the results—shall automation be allowed to increase unemployment? Remember, too, the oath of Hippocrates, and the ethical code of the psychologists.

Only the scientific method can icsolve problems independently of our wills, desires, and emotions. To fudge an experiment, as we observed earlier, slant a conclusion, report anything but the whole truth as one knows it alone in the night, brings ignominy and oblivion. Integrity must follow curiosity in the development of any genuine scientist. In this regard, science is perhaps the most ethical of all man's disciplines, operating above cultures, above nationalism, above all ideological systems. Thus ethics itself can be a legitimate study in social science. One professor I know teaches it as a branch of anthropology.

The culture concept, indeed, can provide a stabilizing element

for one's philosophy in this crisis-ridden world. It shows the student, on good scientific authority, that he belongs to something more enduring than one society or one nation. He feels himself part of a process which has been evolving for perhaps a million years. Many standard dogmas—Marxism and fascism for instance—dissolve on continued contact with the idea of culture, leaving something more substantial in their place,

Again in Chapter 12 we saw how science has demolished fixed notions about racial differences. If it has not established complete "equality," it has established the negative proposition which is almost as strong—there is as yet no proof of inherent inequality. We owe to social scientists the cardinal distinction between race prejudice, which is deep in one's nervous system and hard to change and distributions to change, and discrimination, which can be removed overnight in many cases. It is not a superior of the control of the contro in many cases. Ultimately its removal helps to melt down prejudice. Ethics and udice. Ethics and science meet in this analysis.

# Two Observations

Throughout this book two major observations recur: the place of relativity in scientific work today, and the need for taking

Absolutes in science have all but vanished, to be replaced by down partitions between the disciplines. ideas of order, structure, relation, probability. Few conclusions are 100 percent are 100 percent so; there is always room for a new experiment to increase the nate of the same of the increase the probability. Such an attitude is baffling to minds that like stark was a second and attitude is baffling to minds that like stark yes or no answers, but there seems to be no other way still to fruitful discovery. On a very few levels, absolutes may still prevail—nerbor C. d. prevail—perhaps C, the speed of light, is an absolute. But in most scientific work as a solute. scientific work, as in climbing a granite face, it is a rocking, flexible belongs which flexible balance which gets one up the cliff.

Waldemar Kaempsfert meanwhile believes that scientific teamwork saved Britain:

It was not the generals who won the war for the British, but the ofessors and they were professors, and they won it by cooperatively applying the scientific method to every phase of 6-1 method to every phase of fighting Strange as it may seem, zoologists, geneticists, mathematicians, psychologists, anthropologists, physicists and chemists, worked together in teams to solve problems presented by German bombers and submarines....

Before the war, emphasis in the graduate schools here and abroad was on training students to be competent, clever, and critical within the walls of their own discipline. One goal was to see who could most effectively annihilate whom. The war reversed this attitude and demanded cooperation between disciplines and an end to intellectual feuding. Social scientists found it hard at first, but many grew to like it. "Each came out of it," says John W. Gardner, "with a new respect for the special competence of the others." How long will it be before a group of graduate students may be freely permitted to submit a joint thesis? Several advance cases are already on record.

This brings us to some notes about training. A professor of sociology gives us a picture of what to expect in a modern department of social science.¹ One of his colleagues is collecting data to determine "what combination of urban and rural living will conserve the values of each, yet avoid the ill effects of both a mass society and provincialism?" Another colleague inquires: "How does the life one leads influence his development and growth?" A third is just back from islands in the Pacific, where he worked out written languages for natives who used only the spoken word. (The poor chaps will now have to learn to spell.) A fourth associate, flying to the scene of tornadoes, earthquakes, plane crashes, is studying how people behave in crisis, and so how to control panic and speed relief in disasters

The role of a social scientist is now so central, Wilson says, that training is of great importance. It should include, along with his speciality, courses in biology, language, cross-cultural comparisons, statistics, history, philosophy, and logic. The student should be "taught to challenge the easy generalizations by seeking in his own experience a contradictory case." He should learn to state a problem clearly and precisely before he

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup>E K. Wilson in Antioch Notes, November 15, 1954.

attempts an answer, and learn to relate his particular problem to a class of problems. "Whatever he sees, he must learn to analyze; and for this he needs background in the logic and tools of inquiry." His training should enable him to separate sharply what is from what ought to be.

The day is approaching, furthermore, when an intelligent layman will not feel himself competent to decide complicated questions about crime or sex or the federal budget without some background in social science—perhaps a course or two in college, or in the extension field. He does not now claim competence in genetics or astronomy without study, and why should he here? Newspaper editorials deal with social problems every day, but most editorial writers seem quite unaware that there is anything to learn beyond common sense and a fistful of figures.

What do students specializing in social science look like? We said earlier that they may spend as many years at it as a medical student. The Social Science Research Council has made a study of 153 students majoring in the field in 100 colleges.2 They

were a picked group, averaging B plus or better. Their spelling—like your author's—was found to be "highly original," while their sentence structure was often a deep mystery. Very few have yet developed a clear prose style—as Oxford and Cambridge students usually do at the same age and one wonders why, Their parents are a varied lot-professional people, business executives, tradesmen, clerks, and skilled workers. It was usually a high school teacher who first aroused their interest. "The fondness and sense of intellectual debt displayed when writing of these teachers are impressive." Sometimes a parent or a college professor opened a window and let in the light

These students reflect the flexible class structure of America, with parents encouraging children to a professional standing higher than their own. There has been a good deal of moving about the country, giving the youngsters direct knowledge of

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> SSRC Items, September, 1954.

many places and many people. As a group, the students have been good observers, and despite high marks are far from "greasy grinds." They are active in athletics, fraternities, college organizations. The stereotype of the social musfit who retires into a world of books is "simply not substantiated."

The group is less interested in scholarship than in people, but is glad to use scholarly knowledge in trying to understand people. Along with curiosity about human behavior, a majority have a dash of the reformer in them. This helps to keep them interested while they gradually acquire a more scientific approach. (Perhaps Chapter 22 would do them no harm.) Said one: "I want to work in a field which presents challenges in terms of personal satisfaction, and in terms of a world need." On the whole their attitude reflects the observation of George C. Homans: "There is only one paramount reason for studying anything but the multiplication table . . . you are so interested in a subject that you cannot let it alone. . . ."

The proper study of mankind presents plenty of challenges. It is replete with half-answered, unanswered, and slurred-over questions. Young men and women of spirit and imagination have a none too easy career before them if they embrace social science. They will have, too, the haunting certainty that the world's future depends on finding better answers than any which have yet been demonstrated.

But these human problems are more urgent and more dramatic than the problems in any physics laboratory. Here, as the atomic age deepens, is the intellectual adventure of our time, here the unknown continents to be explored and mapped. What can be a greater life work than extending the boundaries of the science of man?

## Selected Bibliography

This partial list gives sources cited in the text, along with some background material not directly quoted. Reports of laboratory or field studies are designated R, works especially recommended for students are starred; P stands for pamphlet. Magazine articles quoted are not listed here, but are covered in the text itself by footnotes.

A complete list of important work in so broad a field would clearly be impossible, and many excellent books remain unlisted. This includes the major classics and Great Books in these subjects, which the student can readily find in libraries or in popular editions. Two good recent summaries of the classic economists will be found, by George Soule and Robert Heilbroner. Linton's Study of Man is recommended for background in cultural anthropology, Leonard Doob's Social Psychology for that subject, and for sociology, both Davis, Bredemeier, and Levy's Modern American Society and MacIver and Page's Sociology are useful.

Allport, Gordon W., The Nature of Prejudice, Boston, Beacon Press and Cambridge, Addison-Wesley Publishing Company, Inc., 1954.

R Anderson, Sherwood, Home Town: The Face of America, New York, Alliance Book Corporation, 1940

Appleby, Paul, Big Democracy, New York, Alfred A Knopf, Inc., 1046

Arnold, Thurman, The Bottlenecks of Business, New York, Reynal & Hitchcock, 1940.

R Bales, R. F., Interaction Process Analysis, Cambridge, Addison-Wesley Publishing Company, Inc., 1950

Barnard, Chester I., The Functions of the Executive, Cambridge, Flavoid University Piess, 1938.

- Barnard, Chester I., Organization and Management, Cambridge, Harvard University Press, 1948.
- Benedict, Ruth, Patterns of Culture, Boston, Houghton Mifflin Co., 1934.
- \*P Benedict, Ruth, and Weltfish, Gene, The Races of Mankind, New York, Public Affairs Pamphlets, Pamphlet No. 85, 1943.
- R Berelson, Bernard R., Lazarsfeld, Paul, and McPhee, William N., Voting: A Study of Opinion Formation in a Presidential Campaign, Chicago, University of Chicago Press, 1954.
  - Berle, Adolf, The Twentieth Century Capitalist Revolution, New York, Harcourt, Brace & Co., 1954.
  - Berle, Adolf, and Means, Gardiner C., The Modern Corporation and Private Property, New York, The Macmillan Co., 1933.
- R Blumenthal, Albert, Small Town Stuff, Chicago, University of Chicago Press, 1932.
  - Boas, Franz, Anthropology and Modern Life, New York, W. W. Norton & Company, Inc., 1928.
  - Boas, Franz, The Mind of Primitive Man, New York, The Macmillan Co., 1911, 1938.
  - Bridgman, Percy W., The Logic of Modern Physics, New York, The Macmillan Co, 1932.
  - Brunner, Edmund de S., and Hallenbeck, Wilbur C, American Society: Urban and Rural Patterns, New York, Harper & Brothers, 1954.
  - Burnham, James, The Managerial Revolution: What Is Happening to the World, New York, The John Day Co., 1941.
  - Cameron, Norman, The Psychology of Behavior Disorders: A Biosocial Interpretation, Boston, Houghton Missin Co., 1947.
  - Cantril, Hadley, The "Why" of Man's Experience, New York, The Macmillan Co., 1950.
  - Carroll, John B., The Study of Language: A Survey of Linguistics and Related Disciplines in America, Cambridge, Harvard University Press, 1953.
  - Chamberlin, E. H., The Theory of Monopolistic Competition, Cambridge, Harvard University Press, 1932.
- PR Chase, Stuart, "Operation Bootstrap" in Puerto Rico, Washington, National Planning Association, Planning Pamphlet No. 75, 1951.

- Chase, Stuart, Mexico, A Study of Two Americas, New York, The Macmillan Co., 1931.
- Chase, Stuart, Power of Words, New York, Harcourt, Brace & Co., 1954.
- Chase, Stuart, Roads to Agreement, New York, Harper & Brothers, 1951
- Chase, Stuart, The Tyranny of Words, New York, Harcourt, Brace & Co., 1938.
- Childs, Marquis, This Is Democracy: Collective Bargaining in Scandinavia, New Haven, Yale University Press, 1938.
- Clapp, Gordon R., The TVA: An Approach to the Development of a Region, Chicago, University of Chicago Press, 1955.
- Clark, Colin, The Conditions of Economic Progress, London, The Macmillan Co., 1940.
- Clark, John Maurice, Guideposts in a Time of Change, New York, Harper & Brothers, 1949
- Clark, John Maurice, Social Control of Business, 2d ed, New York, McGraw-Hill Book Co., 1939.
- Cohen, Morris R., and Nagel, Ernest, An Introduction to Logic and Scientific Method, New York, Harcourt, Brace & Co., 1934.
- Cole, Margaret, Beatrice Webb, New York, Harcourt, Brace & Co., 1946.
- Cooley, Charles H, Social Organization, New York, Charles Scribner's Sons, 1922.
- R Dahir, James, Communities for Better Living: Citizen Achievement in Organization, Design and Development, New York, Harper & Brothers, 1950.
- R Davis, Allison, Social Class Influences on Learning, Cambridge, Harvard University Press, 1948
- R Davis, Allison, and Gardner, Burleigh and Mary, Deep South: A Social Anthropological Study of Caste and Class, Chicago, University of Chicago Press, 1941.
- \* Davis, Kingsley, and Bredemeier, H. C., Modern American Society, New York, Rinehart & Company, Inc., 1949
- R Dietz, Walter, and Kirkpatrick, Frances, eds., The Training Within Industry Report, 1940-1945, Washington, War Manpower Commission, 1945.

Dimock, Marshall Edward, Business and Government, New York, Henry Holt & Co., Inc., 1949.

R Dollard, John, Caste and Class in a Southern Town, New York,

Harper & Brothers, 1949.

 Dollard, John, and Miller, Neal F., Personality and Psychotherapy, New York, McGraw-Hill Book Co., 1950.

Dollard, John, and Miller, Neal F., Social Learning and Imitation, New Haven, Yale University Press, 1941.

\* Doob, Leonard W., Social Psychology: An Analysis of Human Behavior, New York, Henry Holt & Co., Inc., 1952.

Doob, Leonard W., The Plans of Men, New Haven, Yale University Press, 1940.

Drucker, Peter, The Practice of Management, New York, Harper & Brothers, 1954.

R Dublin, Louis I., The Facts of Life from Birth to Death, New York, The Macmillan Co., 1951.

R Dublin, Louis I., and Lotka, A. J., Length of Life, 1936, rev. ed. with M. Spiegelman, New York, The Ronald Press Company, 1949.

Durkheim, Emile, The Division of Labor in Society, New York,

The Macmillan Co., 1933.

Fine, Benjamin, 1,000,000 Delinquents, Cleveland, The World Publishing Company, 1955

Finletter, Thomas, Can Representative Government Do the

Job? New York, Reynal & Hitchcock, 1945.

R Flanagan, John C., ed., The Awation Psychology Program in the Army Air Forces, 19 vols., Washington, Government Printing Office, 1948.

PR Flanagan, John C., American Institute for Research Reports,

Pittsburgh, 1948-51.

Follett, Mary P., Creative Experience, New York, Longmans, Green & Co., Inc., 1924

Frank, Lawrence K., Nature and Human Nature: Man's New Image of Himself, New Brunswick, Rutgers University Press, 1951

Fraser, James G, The Golden Bough, abridged ed., New York, The Macmillan Co., 1922.

R Frisch, Karl von, Bees, Their Vision, Chemical Senses, and Language, Ithaca, Coinell University Press, 1950.

- Galbraith, J. Kenneth, American Capitalism: The Concept of Countervailing Power, Boston, Houghton Mifflin Co., 1952.
  - Galbraith, J. Kenneth, Economics and the Art of Controversy, New Brunswick, Rutgers University Press, 1955.
  - Galbraith, J. Kenneth, The Great Crash, 1929, Boston, Houghton Mifflin Co., 1955.
  - Giddings, Franklin H., Studies in the Theory of Human Society, New York, The Macmillan Co, 1922.
  - Gillin, John, The Ways of Men: An Introduction to Anthropology, New York, Appleton-Century-Crofts, Inc., 1948.
- R Glueck, Sheldon and Eleanor, Unraveling Juvenile Delinquency, Cambridge, Harvard University Press, 1950.
- R Golden, Clinton S., and Parker, Virginia, eds., Causes of Industrial Peace under Collective Bargaining, New York, Harper & Brothers, 1953.
  - Hansen, Earl Parker, Transformation: The Story of Modern Puerto Rico, New York, Simon and Schuster, Inc., 1955.
- Hayakawa, S. I., Language in Thought and Action, New York, Harcourt, Brace & Co., 1949.
- R Healy, William, and Bronner, Augusta F., New Light on Delinquency and Its Treatment, New Haven, Yale University Press, 1936.
  - Hecht, Selig, Explaining the Atom, New York, The Viking Press, Inc., 1047.
- \* Heilbroner, Robert L., The Worldly Philosophers: The Lives, Times, and Ideas of the Great Economic Thinkers, New York, Simon and Schuster, Inc., 1953.
  - Herskovits, Melville J., The Anthropometry of the American Negro, New York, Columbia University Press, 1930.
  - Hicks, Clarence J., My Life in Industrial Relations: Fifty Years in the Growth of a Profession, New York, Harper & Brothers, 1041.
  - Hicks, Granville, Small Town, New York, The Macmillan Co., 1046.
  - Hogben, Lancelot, Science for the Citizen, New York, Alfred A. Knopf, Inc., 1938.
- R Hollingshead, August B., Elmtown's Youth: The Impact of Social Classes on Adolescents, New York, John Wiley & Sons, Inc., 1949.

- Homans, George C., The Human Group, New York, Harcourt, Brace & Co., 1950.
- Huxley, Julian, Man Stands Alone, New York, Harper & Brothers, 1941.
- R Katona, George, Psychological Analysis of Economic Behavior, New York, McGraw-Hill Book Co., 1951.
- R Katona, George, and Mueller, I-wa, Consumer Attitudes and Demand, 1950-1952, Ann Arbor, Survey Research Center, 1953.
  - Keynes, John Maynard, The General Theory of Employment, Interest and Money, New York, Harcourt, Brace & Co., 1936.
  - Keynes, John Maynard, How to Pay for the War, New York, Harcourt, Brace & Co., 1940
  - Kinsey, Alfred C., Pomeroy, Wardell B., and Maitin, Clyde E., Sexual Behavior in the Human Male, Philadelphia, W. B. Saunders Co., 1948.
- R Klineberg, Otto, ed., Characteristics of the American Negro, New York, Harper & Brothers, 1944.
  - Klineberg, Otto, Race Differences, New York, Harper & Brothers, 1935.
- Kluckhohn, Clyde, Minor for Man: The Relation of Anthropology to Modern Life, New York, McGraw-Hill Book Co., 1949.
  - Korzybski, Alfred, Science and Sanity: An Introduction to Non-Aristotelian Systems and General Semantics, International Non-Aristotelian Library Publishing Co., 1933, 1941, 1948. Distributed by Institute of General Semantics, Lakeville, Conn.
  - Kroeber, A. L., Anthropology, New York, Harcourt, Brace & Co., 1923.
  - Lasswell, Harold, Politics: Who Gets What, When, How? Gloucester, Peter Smith, 1950.
  - Lee, Irving J., Language Habits in Human Affairs: An Introduction to General Semantics, New York, Harper & Biothers, 1941.
- \*R Leighton, Alexander, The Governing of Men, Princeton, Princeton University Press, 1945.
  - Leighton, Alexander, Human Relations in a Changing World:

- Observations on the Use of the Social Sciences, New York, E. P. Dutton & Co, Inc., 1949.
- R Leontief, Wassily, The Structure of the American Economy, New York, Oxford University Press, Inc., 2d ed., 1951.
  - Lewin, Kurt, Field Theory in Social Science: Selected Theoretical Papers, New York, Harper & Brothers, 1951.
- R Lewin, Kurt, Resolving Social Conflicts, New York, Harper & Brothers, 1948.
  - Lilienthal, David E., Big Business, A New Era, New York, Harper & Brothers, 1953.
- Lilienthal, David E., TVA, Democracy on the March, New York, Harper & Brothers, 1944
  - Lindeman, E C., Social Education, New York, New Republic, 1933.
- \* Linton, Ralph, The Study of Man, New York, Appleton-Century-Crofts, Inc., 1936.
- R Lippitt, Ronald, Training in Community Relations, New York, Harper & Brothers, 1949
- R Lombard, George F. F., Behavior in a Selling Group: A Case Study of Interpersonal Relations in a Department Store, Boston, Harvard Graduate School of Business Administration,
  - Lorimer, Frank, and Osborn, Frederick, Dynamics of Population, New York, The Macmillan Co., 1934.
  - Lubell, Samuel, The Future of American Politics, New York, Harper & Brothers, 1952.
  - Lundberg, George A, Can Science Save Us? New York, Longmans, Green & Co, Inc., 1947.
- \*R Lydgate, William A., What Our People Think, New York, Thomas Y. Crowell Co, 1944.
  - Lynd, Robert, Knowledge for What? The Place of Social Science in American Culture, Princeton, Princeton University Press, 1939.
- R Lynd, Robert and Helen, Middletown: A Study in Contemporary American Culture, New York, Harcourt, Brace & Co., 1929.
- R Lynd, Robert and Helen, Middletown in Transition: A Study in Cultural Conflicts, New York, Harcourt, Brace & Co., 1937.

 MacIver, Robert M., and Page, Charles H., Sociology, New York, Rinehart & Company, Inc., 1949.

Malinowski, Bromslaw, A Scientific Theory of Culture, Chapel Hill, University of North Carolina Press, 1944.

Malthus, Thomas, An Essay on the Principle of Population, London, 1798.

Marrow, Alfred J., Living Without Hate, New York, Harper & Brothers, 1951.

R Marshall, Robert, Arctic Village, New York, Smith and Haas, 1933.

R May, Mark A., and associates, Seventh Semi-annual Report of U. S. Advisory Committee on Information, House Document 94 of 83rd Congress, Washington, Government Printing Office, 1953.

Mayo, Elton, The Human Problems of an Industrial Civilization, New York, The Macmillan Co., 1933.

Mayo, Elton, The Social Problems of an Industrial Civilization, Boston, Harvard Graduate School of Business Administration, Division of Research, 1945.

PR Mayo, Elton, and Lombard, George F. F., Teamwork and Labor Turnover in the Aircraft Industry of Southern California, Boston, Harvard Graduate School of Business Administration, Business Research Studies, No. 32, 1944.

\*R Mead, Margaret, Sex and Temperament in Three Primitive Societies, New York, William Morrow & Co., Inc., 1953.

Menninger, William C., Psychiatry, Its Evolution and Present Status, Ithaca, Cornell University Press, 1948.

Merriam, Charles E, The Written Constitution and the Unwritten Attitude, West Rindge, New Hampshire, R. R. Smith, 1931.

Merriam, Charles F., What Is Democracy? Chicago, University of Chicago Press, 1941.

Miller, George A., Language and Communication, New York, McGraw-Hill Book Co, 1951.

Mitchell, Wesley C., The Backward Art of Spending Money, and Other Essays, New York, McGiaw-Hill Book Co., 1937.

R Morgan, Lewis II., Ancient Society, or Researches in the Lines of Human Progress from Savagery Through Barbarism to Civilization, New York, Henry Holt & Co., Inc., 1877.

- Morgenstern, Oskar, and Neumann, John von, The Theory of Games and Economic Behavior, rev. ed., Princeton, Princeton University Press, 1947.
- Murdock, George Peter, Our Primitive Contemporaries, New York, The Macmillan Co., 1926, 1934.
- Murdock, Geoige Peter, Social Structure, New York, The Macmillan Co., 1949.
- Muriay, Elwood, Barnard, Raymond H., and Garland, Jasper V., Integrative Speech, New York, The Dryden Press, Inc., 1953.
- R Myrdal, Gunnar, An American Dilemma, 2 vols, New York, Harper & Brothers, 1944.
- \* Ogbuin, William F., Social Change, New York, The Viking Press, Inc., 1950.
  - Ogburn, William F., The Social Effects of Aviation, Boston, Houghton Mifflin Co., 1946.
- \* Ogburn, William F., and Nimkoff, M F., Sociology, Boston, Houghton Mifflin Co., 1940, 1946, 1950.
  - Ogburn, William F., Odum, Howard, and Hunt, Edward E., eds., Recent Social Trends, 2 vols., New York, McGraw-Hill Book Co., 1933.
  - Ogden, C. K., and Richards, I A., The Meaning of Meaning, New York, Harcourt, Brace & Co., 1923, 1936.
  - Park, R. E, and Burgess, Ernest W., Introduction to the Science of Sociology, Chicago, University of Chicago Press, 1921.
- \* Parker, Carleton H., The Casual Laborer and Other Essays, New York, Harcourt, Brace & Co., 1920.
- R Raper, Arthur F., Preface to Peasantry, Chapel Hill, University of North Carolina Press, 1936.
- R Redfield, Robert, Tepoztlan, A Mexican Village, Chicago, University of Chicago Press, 1930.
  - Rivers, W. H. R., Medicine, Magic and Religion, New York, Harcourt, Brace & Co., 1924.
  - Rivers, W. H R., Social Organization, W. J. Perry, ed., vol. 1, History of Civilization, New York, Alfred A. Knopf, Inc., 1924.
- R Roethlisberger, F. J., and Dickson, William J., Management and the Worker, Cambridge, Harvard University Press, 1940.

- Rogers, Carl R., Counseling and Psychotherapy, Leonard Carmichael, ed., Boston, Houghton Mifflin Co., 1942.
  - Ruml, Beardsley, Tomorrow's Business, New York, Farrar & Rinehart, 1945.
  - Sapir, Edward, Language: An Introduction to the Study of Speech, New York, Harcourt, Brace & Co., 1921.
- R Saunders, Lyle, Cultural Difference and Medical Care, New York, Russell Sage Foundation, 1954.
- Scheinfeld, Amram, The New You and Heredity, Philadelphia,
   J. B. Lippincott Co., 1950.
- R Schultz, Richard S., Wartime Supervision of Workers: The Human Factors in Production for Executives and Foremen, New York, Harper & Brothers, 1943.
  - Selekman, Benjamin M., Labor Relations and Human Relations, New York, McGraw-Hill Book Co., 1947.
  - Seligman, F. R. A., Johnson, Alvin, and Lerner, Max, eds., Encyclopedia of the Social Sciences, 8 vols., New York, The Macmillan Co., 1937.
  - Shafer, Boyd C., Nationalism, Myth and Reality, New York, Harcourt, Brace & Co., 1955.
  - Shannon, Claude, and Weaver, Warren, The Mathematical Theory of Communication, Urbana, University of Illinois Press, 1949.
- Soule, George, *Ideas of the Great Economists*, New York, The Viking Press, Inc., 1952.
  - Soule, George, The Useful Art of Economics, New York, The Macmillan Co., 1929.
- R Spicer, Edward H., ed., Human Problems in Technological Change: A Casebook, New York, Russell Sage Foundation, 1952.
  - Steffens, Lincoln, Autobiography, New York, Harcourt, Brace & Co., 1931.
  - Stimson, Dorothy, Scientists and Amateurs: A History of the Royal Society, New York, Henry Schuman, Inc., 1948.
- R Stouffer, Samuel A., Communism, Conformity and Civil Liberties: A Cross-section of the Nation Speaks Its Mind, Garden City, Doubleday & Company, Inc., 1955.
- PR Stouffer, Samuel A., and associates, Report for the Five Years,

- 1946-1951, Cambridge, Harvard University, Laboratory of Social Relations.
- Stouffer, Samuel A., and associates, The American Soldier, 2 vols., Princeton, Princeton University Press, 1949.
- Sumner, William Graham, Folkways, Boston, Ginn & Company, 1906
- Taylor, Frederick W., Scientific Management, New York, Haiper & Brothers, 1923.
- R Terman, Lewis M., and Merrill, M. A, Measuring Intelligence, Boston, Houghton Mifflin Co, 1937.
  - Thelen, Heibert A., Dynamics of Groups at Work, Chicago, University of Chicago Press, 1954.
  - Thomas, W. I, Primitive Behavior, New York, McGraw-Hill Book Co, 1937.
  - Thomas, W. I., The Unadjusted Girl, Boston, Little, Brown & Co., 1923.
  - Turner, Frederick Jackson, The Frontier in American History, New York, Henry Holt & Co., Inc., 1920.
  - Veblen, Thorstein, The Theory of the Lessure Class, New York, The Macmillan Co., 1899. Modern Library, Inc., 1934
- R Walker, Charles R., and Guest, Robert H., The Man on the Assembly Line, Cambridge, Harvard University Press, 1952.
- R Warner, W. Lloyd, and associates, Democracy in Jonesville: A Study in Quality and Inequality, New York, Harper & Brothers, 1949.
- R Warner, W. Lloyd, and Lunt, Paul S., The Social Life of a Modern Community, Vol. 1 of Yankee City Series, New Haven, Yale University Press, 1941.
- R Warner, W. Lloyd, and Lunt, Paul S, The Status System of a Modern Community, Vol. 2 of Yankee City Series, New Hayen, Yale University Press, 1942.
- R Warner, W. Lloyd, and Srole, Leo, The Social Systems of American Ethnic Groups, Vol. 3 of Yankee City Series, New Haven, Yale University Press, 1945.
- Warner, W. Lloyd, and Low, J. O., The Social System of the Modern Factory, Vol. 4 of Yankee City Series, New Haven, Yale University Press, 1947.
- R West, James, Plainville, U. S. A., New York, Columbia University Press, 1945.

- PR Whetten, Nathan L., Wilson, A Rural Town near Metropolitan New York, Connecticut State College, Storrs, Studies of Suburbanization in Connecticut, No. 3, 1939.
- P Whorf, Benajmin Lee, Four Articles on Metalinguistics, Washington, Foreign Service Institute, 1949.
  - Wiener, Norbert, Cybernetics, Cambridge, Technology Press, 1949.
  - Williams, James Michel, Our Rural Heritage and the Expansion of Rural Life, New York, Alfred A. Knopf, Inc., 1925.
- R Williams, Robin M., Jr., and Ryan, Margaret W., Schools in Transition: Community Experiences in Desegregation, Chapel Hill, University of North Carolina Press, 1954.
- Wissler, Clark, An Introduction to Social Anthropology, New York, Henry Holt & Co., Inc., 1929.
  - Woodward, C. Vann, The Strange Career of Jim Crow, New York, Oxford University Press, Inc., 1955.
- R Yerkes, Robert M., Chimpanzees, A Laboratory Colony, New Flaven, Yale University Press, 1943.
  - Young, Donald, American Minority Peoples, New York, Harper & Brothers, 1932.
  - Young, Pauline V., Scientific Social Surveys and Research, New York, Prentice-Hall, Inc., 1939, 1949, 1955.

## Index

Abrams, F1ank, 230, 231 Acheson, Dean, 244, 293 Alcoholics Anonymous, 251 Alger, Floratio, 98 Allport, Gordon, v, 44, 117, 126, American Council on Education, 51 American Management Association, 158, 178 American Medical Association, 134 American Psychological Association, 32, 272 Ames, Adelbert, 25, 282 Anderson, Sherwood, 150, 309 Antioch College, x, 306 Appleby, Paul, 206, 309 Appley, Lawrence A, 158, 159 Aptitude testing, see Tests, psychological Aristotle, 34, 257 Arnold, Thurman, 218, 309 "Atomic Ladder," 12-15 Automation, 45, 113 Avery, Sewell, 158 Axes, stone to steel, 111-113

Babson, Roger, 202
Bacon, Francis, 2
Bagehot, Walter, 62
Bales, Robert F., 252-256, 265, 309
Barnard, Chester I, 204, 210, 309-310
Barnard, Raymond H., 317
Bavelas, Alexander, 251
Becquerel, H, 13
Behavior, economic, 232-235
Beiderbecke, Bix, 124
Bell Laboratories, 280, 281
Benedict, Ruth, 24, 116, 117, 310

Bentham, Jeremy, 29, 263 Berelson, Bernard R, 196, 263, 310 Berle, A A, 197, 211, 213, 218, 220, 229-235, 241, 258, 310 Bethel, Maine, 25, 249, 250, 299, 300 Binet, Alfred, 24 Blaisdell, Thomas, 221 Blumenthal, Albert, 150, 310 Boas, Franz, 24, 83, 129, 310 Bohr, Niels, 13 Booth, Charles, 141 Boyle, Robert, 1, 72, 137 Brahe, Tycho, 60 Brandeis, Louis, 218 Bredemeier, H C, 309, 311 Bridgman, P W, 285, 310 Bronner, Augusta, 33, 313 Brooklyn College, 126 Brown, Esther, 94 Brownlow, Louis, 260 Brunner, Edmund deS, x1-x11, 128, 138-140, 251, 310 Bunche, Ralph, 124 Burgess, Ernest W., 317 Burke, Edmund, 263 Burnham, James, 258, 259, 263, 310 Business cycles, 45, 144-146, 214-218

Caesar, Julius, 69
California, University of, 39, 260
Cameron, Norman, 271, 310
Campbell, Angus, 183
Cantril, Hadley, 25, 282, 310
Cairoll, John B., 310
Carver, G. W., 124
Case Institute of Technology, 39
Caste system, 120
Census, United States, 15, 16, 137, 142

Center for Advanced Study, Palo Alto, 39 Cerf, Bennett, 99 Chadwick, J., 13, 14 Chamberlam, John, 122 Chamberlin, E. II., 214, 310 Chase, Stuart, 310, 311 Chaucer, Geoffrey, 79 Chicago, University of, 14, 39, 42, 118, 129, 151, 179, 250 Childs, Marques, 311 Churchill, Winston, 246, 290, 303 Cavilian defense, 42-43 Clapp, Gordon R., 311 Clark, Colin, 35, 198, 211, 212, 218, 311 Clark, Grenville, xii, 257, 298 Clark, John Maurice, 215, 220, 311 Class structure, 153-155 Class struggle, 30, 31, 240, 241 Cockeroft, John Douglis, 13 Code for psychologists, 271-275 Cohen, Morris R., 6, 7, 35, 311 Cole, Margaret, 311 Colomalism, 43 Columbia University, 16, 39, 42, 149, Bureau of Applied Social Research, 26, 27, 39 Columbus, Christopher, 135 Combat groups, 55-57 Common Market, 300 Commons, John R., 169 Communication, 276-289 Compacts between states, 261 "Compensatory economy," 215-217 Computers, electronic, 261, 262 Comte, Auguste, 29, 35 Concentrates, business, 229-232 "Conditions of industrial peace," 174-Condon, Eddie, 124 Control, plans for atomic, 290-301 Conveyor belt, 171-174 Cooley, C. H, 21, 249, 311 Coolidge, Calvin, 143, 213 Corey, Lewis, 258 Cornell University, 38, 155 Corporations, large, 213, 214, 229-232 "Countervailing power," 228, 229 Crane Memorial Fund, 152 Crime, 46, 47, 88-90

Groschey, A. M., 179
"Cultural lag," xm, 29, 132-134, 260, 297-298

Culture concept, 62-110, 283, 294, 295, 300

Curie, Marie, 13

Curie, Pierre, 13

Cybernetics, 280, 281

Dahir, James, 311 Dalton, John, 13 Darwin, Charles, 16, 23, 67, 129 Davis, Allison, 118, 148, 311 DAVIS, H. M., 261, 262 Davis, Kingsley, 309, 311 Decembralization, 45, 46 Deep South, 148-150 Delmquency, juvenile, 32, 33, 46 Democritus, 12 Dewes, John, 133 Dewcy, Thomas U, 180, 181 Dickson, W. J. 317 Dietz, Walter, 199, 311 Dimock, Marshill I., 312 1) isarmament problems, xiii, 293, 297–300 Distacli, Benjamin, 4 Dixon Yares, 185, 189 Dollard, Charles, 18, 11 Dollard, John, 245, 266 270, 312 Dooly I conard, 33, 300, 312 Drucker, Peter, 242, 412 Dublin, Louis I., 16, 312 Durkheim, Emile, 12, 21, 169, 312 Dykstra, Clatence, 260

Fecles, Mariner, 222
Feonomics, 198-235
Feddington, Arthur S., 4
Federick, 15, 182
I brich, Piul, 7
Finstein, Albert, 6, 11, 13, 14, 60, 221, 257, 303
Fisenhower, Dwight D., 42, 64, 184, 191, 287
Flections, polls on, 179-181
Flimra Study, 155, 196, 263-265
Fingels, Friedrich, 30, 209
Fethics, 304, 305

Factory system, 157, 158 Family systems, 86-88

Hahn, O, 13, 14

Fine, Benjamin, 312	F
Finletter, Thomas, 260, 312	F
Fitzpatrick, D. R., 290, 291	F
Flanagan, John C., 51-60, 273, 312	F
Flanagan, John Od J. Soy 1755	
Follett, Mary P, 249, 312	
Food S-amp Plan, 243	
Ford, Henry, 3	
Ford Foundation, 39	F
Forecasting, economic, 199-202	•
Foreign and, 43, 44, 63, 80, 299, 301	1
Foreign Service Institute, 299-300	j
Fosdick, Raymond, v	í
Frank, Lawrence, 312	1
Fraser, James G, 4, 312	i
Frequency distribution curve, 139, 140	- 1
Fries, C. C, 283	
Frisch, Karl von, 282, 312	
Frisch, O. R, 14	
~ "	
Galbraith, J K, vn, 201, 216, 219, 220,	,
228, 235, 265, 313	
Galileo, 2, 303	
Gallup, George, 179, 180, 185	
Galton, Francis, 16	
Garbo, Gieta, 125	
Gardner, Burleigh, 148, 311	
Gaidner, John, 298, 306	
Gardner, Mary, 148, 311	
Garland, J. V., 317	
Gaus, John M, 262	
General Pleetrie Company, 159	
George, Henry, 236	
Giddings, Franklin II., 21, 313	
Gillin, John, 313	
Glueck, Fleanor, 313	
Glueck, Sheldon, 313	
Gmeiner, L L, 123	
Gobbledygook, 37	
Goldberg, Rube, 237	
Golden, Clinton, 170, 313	
Gounod, C. F., 143	
Graunt, John, 2	
"Great Man" theory, 135	. w
Gross National Product, 24, 220, 22	119
231	Ç,
Groups, dynamics of, 55-57, 164, 16	יני
248-256, 285	

Guest, Robert II, 171, 319

Gulick, Luther, 260

Fermar, Pierre, 15

Fermi, Enrico, 14

Hallenbeck, Wilbur C, 310 Halley, Edmund, 2, 15, 182, 203, 259 Hansen, E. P., 313 Tarris, Louis, 194, 195 Harvard University, 151, 299 Graduate School of Business Administration, 157, 160, 176, 263 Laboratory of Social Relations, 24-26, 39, 184, 252-256 Hawthorne Experiment, 9, 37, 160-165, 198, 205, 209, 232, 248 Hayakawa, S. I, 313 Head-hunting, 243 Healy, William, 33, 313 Hecht, Selig, 12, 14, 313 Hegel, G W. F., 206 Heiferz, Jascha, 50 Heilbioner, Robert, 309, 313 Heisenberg, Werner, 11 Henderson, Leon, 220 Herodotus, 68 Herskovits, M. J., 313 Hicks, Clarence J, 160, 174-175, 313 Hicks, Granville, 150, 313 Hippocrates, 29, 304 Hitler, Adolf, 13, 32, 70, 119, 200, 215, 242, 291, 294 Hobbes, Thomas, 34, 263 Hogben, Lancelot, 27, 28, 313 Hollerith, H, 16 Hollingshead, A B., 313 Holmes, Sherlock, 23, 137 Holt, Robert, 187 Homan, Paul T., 224 Homans, George C., 308, 314 Homer, 79 Hooke, Robert, 1 Hull, C. L., 266, 269 Human Relations Area Files, 24, 35, 93 Hunt, E E, 317 Huxley, Julian, 82, 314 Huxley, Thomas, 40 Hyde Park, Chicago, 250, 251 "Input-Output" economics, 235

Interviewing for polls, 192, 193

Jahoda, Marie, 192 James, William, 21, 34, 65, 295 Japanese-Americans at Poston, 102-113 Johnson, Alvin, 318 Johnson, Gerald, 257 Jones, Bassett, 37

Kaempffert, Waldemar, 305
Kaiser, Henry, 223
Katona, George, 233, 234, 314
Kelley, Douglas M., 286
Kelly, William II., 60
Kepler, Johannes, 60
Keynes, J. M., 198, 203, 208, 211-224, 228, 231, 314
Kinsky, Alfred G., 40, 47, 180, 190, 314
Kinsky, Alfred G., 40, 47, 180, 190, 314
Kinsky, Kirances, 166, 311
Kinsky, Cho, 24, 205, 314
Kinsky, Alfred, 286, 287, 314
Korzybski, Alfred, 286, 287, 314
Kroeber, A. L., 83, 314
Kroeber, A. L., 83, 314
Kuczynski, R. R., 16

Labor-management relations, 45, 156-178 LaFarge, Oliver, 80 LaFolicite, Robert M., Jr., 260

Laussez-faue, 203-206 Lindon, Alfred, 144, 180 I inguage, international, 300 Lasswell, Harold, 257, 314 Lazarsfeld, Paul, 16, 196, 263, 310 Leadership, group, 254-256 Learning theory, 266-275 Lee, Alfred McC., 126 Lee, Irving J., 314 Lee, Laura L., 488, 289 Lehman, Harvey C., 131 Leibnitz, Gonfried, 135 Leighton, Alexander, 24, 38, 63, 102-113, 114, 122, 259, 274, 298, 300, 304, 314 Lenin, V I., 207, 265 Leonardo da Vinci, 132, 237 Leontief, Wassily, 235, 315 LePlay, P G., 21 Lerner, Max, 318 Lewin, Kurt, 20, 56, 248-256, 315 Lewis, John L, 223 Lewis, Sinclair, 79 Likert, Rensis, 184 Lilienthal, David, 232, 244, 293, 315

Lincoln, Abraham, 92, 128 Lincoln, Murray, 231 Lindemann, F. C., 249, 315 Tandsay, A. D., 263 Languistics, 284 Linton, Ralph, 31, 46, Chaps. 7, 9, 115, 119, 143, 146, 205, 206, 238, 240, 200, 315 Lipputt, Ronald, 248, 315 Lappmann, Walter, 44 Incrary Digest, 180 Lacke, John, 29, 263 Lombard, G. F. F., 164, 315, 316 Lormer, Frank, 16, 315 Lotha, A. J., 16, 312 Louis, Joe, 124 I ow, J. O, 319 Lubell, Samuel, 315 Lubin, Isador, 220 I undberg, George A., 243, 315 I unr. Paul S., 74, 152, 319 Lydgate, William A , 185, 186, 315 I ynd, Helen M., 141-155, 315 I vnd, Robert, 134, 141-155, 315

Maccoby, Fleanor, 187 Machiavelli, Niccolo, 29, 32, 257 Maciver, Robert M., 309, 316 Magic, 3, 4, 28 Milmowski, Bronislaw, 28, 316 Malthus, Thomas, 15, 29, 44, 316 Mateus Aurelius 257 Marquand, John P., 155 Martow, Alfred J., 316 Marshall, Robert, 150, 316 Martin, Clyde E., 314 Mary, Groucho, 267 Mary, Karl, 30-34, 206-210, 213, 215, 218 Mason, F. S., 221 Massachusetts Institute of Technology, 39, 251, 281 May, Mark A., 59, 295, 296, 300, 316 May, Stacy, 221 Mayo, Piton, 24, 36, 37, 160-164, 172, 174, 204, 205, 248, 278, 300, 316 McGoldrick, Joseph, 260 McPhee, W. M., 196, 163, 310 Mead, Margaret, 63, 316

Old age, 47 Means, Gardiner C., 197, 211, 213, 214, O'Neal, Ed, 223 218, 220, 229, 241, 258, 310 "One World," 290-308 Meitner, Lise, 13 Mendeléev, D. I., 8, 13 "Operation Bootstrap," Puerto Rico, Menninger, William C., 23, 66, 316 213, 225-227 Oppenheimer, J. R., 11, 18, 34, 39, 207 Menninger Clinic, 60 Merriam, Charles E., 261, 316 Organizations, international, 292, 293 Osborn, Frederick, 16, 315 Merrill, M. A., 319 Metalinguistics, 284 Michigan, University of, 39, 42, 179, Page, Charles H, 309, 316 Paine, Thomas, 20 "Middle Way" in Sweden, 227 "Panel" method in polling, 195, 196 Middletown Study, 19, 24, 141-155 "Parachute technique" for anthropol-Mill, John Stuart, 29, 203, 204, 263 ogists, 63 Miller, George A., 316 Paris Academy of Science, 237, 238 Miller, Neal, 10, 54, 245, 266-270, 312 Park, R. E., 317 Milton, John, 143 Mitchell, Wesley C., 205, 206, 210, Parker, Carleton, 160, 317 Parker, V., 176, 313 220, 316 Pascal, B., 15 Morgan, Lewis H, 21, 83, 86, 316 Patterns in science, 8, 9, 82-93 Morgenstern, Oskar, 234, 317 Pavlov, Ivan Petrovich, 25, 267, 269 Moses, Robert, 260 Pearson, Karl, 16 Muckrakers, 244, 245 Perception theory, 282 Mueller, Eva, 314 Perkins, Milo, 243 Muñoz-Marin, Luis, 226, 227 Perpetual motion machines, 237, 238 Murdock, George P, 84, 298, 317 Perry, W J., 317 Petty, William, 1, 2 Murray, Elwood, 317 Muriay, Henry A., 26 Pilots, aptitude tests for, 50-60 Myrdal, Gunnar, 24, 317 Pittsburgh, University of, 58 Plainville, USA, 146-148 Nagel, Ernest, 311 Planck, Max, v Napoleon, 92, 158 Planning, economic, 246, 247 National Planning Association, 176-Plato, 19, 29, 32 178 Political science, 257-265 National Science Foundation, 18 Polls, opinion, 24, 175, 176, 179-196, National Training Laboratory, 249, 262-265 in Army, 184, 185 Nehru, J., 287 Pomeroy, W B, 314 Neumann, John von, 26, 234, 317 Pope, Alexander, 111, 1 Newburyport, Massachusetts, 19 Population, xiii, 15, 16, 44 New Deal, economics of, 217, 218 Prejudice vs discrimination, 121-124 New dimensions in economics, 225-235 Princeton University, 39, 179, 282 New England, culture of, 78, 79 Psychology, 266-275 Newton, Isaac, 1, 6, 29, 30, 60, 135 anımal, 277, 282 Nimkoff, M. F., 317 Public Administration Clearing House, Nobel Prize, 13, 59 260 Puerto Rico, 213, 225-227 Odum, Howard, 317 Pythagoras, 4 Ogburn, William F., xiii, 24, 32, 68, 129-140, 242, 317 Quetelet, L. A. J., 15

Ogden, C. K., 285, 286, 317

Race, 43, 44, 124-128 Radio, habits with, 136, 137 Raper, Arthur, 150, 317 Redfield, Robert, 120, 141, 317 Reformers, 69-71, 236-247 Renner, George T., 39 Reston, James, 48 Ricardo, David, 29, 203-207, 210, 213, 214, 218, 229 Richards, I. A., 285, 286, 317 Rickey, Branch, 121 Rivers, W. H. R., 83, 317 Robertson, R. B. 193 Robinson, Jackie, 121 Rockefeller Foundation, 95, 155 Roethlisherger, F. J., 157, 162, 174, 317 Rogers, Carl R., 318 Roosevelt, Franklin D., 12, 50, 74, 103, 180, 181, 190, 239, 240, 243 Roper, Flmo, 123, 176, 179, 180, 189, 100, 262 Rorschach, Hermann, 24, 26 Royal Society, 1, 2, 15, 30, 137 Ruml, Beardsley, 138, 200, 222, 223, 278, 318 Russell, Bertrand, 201 Russell Sige Foundation, 94, 141 Rutgers University, 38 Rutherford, E., 13 Ryan, Margaret W., 126, 320

Sampling theory, 24, 181-184, 188-190 Sandburg, Carl, 185 Sanford, F. 11., 273, 274 Sapu, Fdward, 279, 318 Satellites, Russian, 48 Saunders, Lyle, 94-100, 318 Schemfeld, A , 67, 318 Schultz, R S, 318 Science and scientific method, 1-28 Seashore, Robert II., 24, 57 Selekman, B M, 318 "Self-sealing systems," 34, 207 Seligman, F. R. A., 318 Semantics and general semantics, 276-Service trades, 212, 213 Shafer, Boyd C, 300, 318 Shannon, Claude, 280, 318 Sharp, Lauriston, 113 Shaw, G. B., 91

Sheffield, Alfred, 249 Small, A. W., 21 Smith, Adam, 29, 203-205, 210 Smith, Henry Lee, Jr., 300 Smith, John, 79 Social change, 129-140 Social science, students of, 307, 308 Social Science Research Council, 39, 260, 307 Socrates, 79, 149 Soddy, Frederick, 13 Soule, George, 197, 309, 318 South Africa, race problem in, 127, 128 Spencer, Herbert, 29, 35 Spengler, Oswald, 32 Spicer, F. 11, 113, 318 Spiegelman, M., 312 Stole, I co. 310 Standard Oil Company of New Jersey, 174-176, 230 Stapledon, Olaf, 3 Statistics, prediction by, 137-139 Steffens, Lancoln, 214, 245, 318 Steichen, I dwird, 297 Steinbeck, John, 73 Stern, Curt, 117 Srevenson, Adlai, 191 Somson, Dorothy, 418 Stouffer, Sunuel A., xm, 25, 26, 32, 123, 184, 193, 196, 252, 318, 319 Strassmann, I', 13, 14 Strikes, 167-178 Stryker, Roy, 151 Sunmer, William Graham, 21, 62, 319 Szilard, L., 14

Faboos, 39
Favlor, Frederick W., 160, 178, 319
Teamwork, 38, 30, 156 166, 248-256
Tennessee Valley Authority, 228, 261
Ferman, Lewis M., 24, 319
Lests, psychological, 24, 50-60
Thelen, Herbert A., 250, 319
Thermonuclear Truce, 42, 290-301
Thomas, W. L., 11, 129, 319
Thomological, 21, 129, 319
Thomological, 21, 129, 319
Thomological, 21, 269
Thorp, W. L., 221
Toby, Jackson, 38
Training Within Industry program, 166

INDEX 327

Truman, Harry S., 180, 181 Turner, Frederick J., 259, 319 Twain, Mark, 120

UNESCO, 22, 43, 95, 195, 299
United Air Lines, 137
United Nations, 43, 63, 278, 286, 290-300
United States Atomic Energy Commission, 228
United States Bure in of Labor Statistics, 200
United States Federal Bure in of Investigation, 106
United States Indian Service, 102
United States Military Academy, West Point, 39
United States Supreme Court, 126
Urey, Harold C., 13

Veblen, Thorstein, 89, 206, 319 Voting, behavior in, 263-265

Waite, John Barker, 47 Walker, Charles R, 171, 173, 319 Wallace, Donald, 220 Walton, F. T. S., 13 War, economy of, 221-223 Ward, Lester, 21 Ward, Seth, 1 Warner, W. Lloyd, 74, 151, 154, 170, 175, 319 Washington, George, 260 Washington State Agricultural College, 208 Washington, University of, Seattle, Washington University, St. I ouis, 12 Watson, John B, 269 Weapons, atomic, 290-292

Weaver, Warren, 318 Webb, Beatrice, 311 Welby, Viola, 285 Wdb, H. G., 132 Weltfish, Gene, 116, 310 West, James, 146-148, 319 West Point, 39 Western Flectric Company, 9, 160-165 Whaling, International Control Agency for, 293 Whetten, Nathan L., 320 White, R K., 248 Whorf, Benjamin Lee, 24, 34, 97, 284, Wicher, Norbert, 281, 320 Wilcox, Clair, 221 Wilkins, John, 1 Williams, James Michel, 320 Williams, Rolun M., Jr., 125, 126, 320 Wilson, F. K., 306 Wilson, Warren II., 141 Wirth, Louis, 48 Wisconsin, University of, 271 Wissler, Clark, 83, 141, 143, 320 Woodward, C. V , 121, 320 Worcester, Marquis of, 237 World Health Organization, 95 World trade, 44, 45 Wren, Christopher, 1

Yale University, 10, 33, 54, 84, 233
Institute of Human Relations, 50,
151, 171, 266-271
Law School, 30
Yankee City study, 151-155, 167-171
Yerkes, Robert M., 23, 320
Yoder, Andrew, 133
Young, Donald, 18, 24, 121, 122, 320
Young, Pauline V., 320

. Zhukoff, G., 287